प्राप्ति स्थान—

१. श्री अलबेली माधुरी शरणजी महाराज
सरसकुंज दरीबापान, जयपुर।

२. श्री कृष्ण जीवन जी भार्गव
जयपुर पेपर मार्ट, शारदाभवन चौड़ा रास्ता, जयपुर।

३. ईश्वरलाल बुकसेलर त्रिपोलिया बाजार, जयपुर।

४. अजमेरा बुक कंपनी ,, ,,

५. महन्त श्री गंगादासजी महाराज,
गद्दी सु. श्री. सहजो बाई
३२१५ श्री चरणदास मार्ग, दिल्ली ६।

६. श्री रूप माधुरी शरणजी महाराज
सरस कुंज जुगलघाट, वृन्दावन।

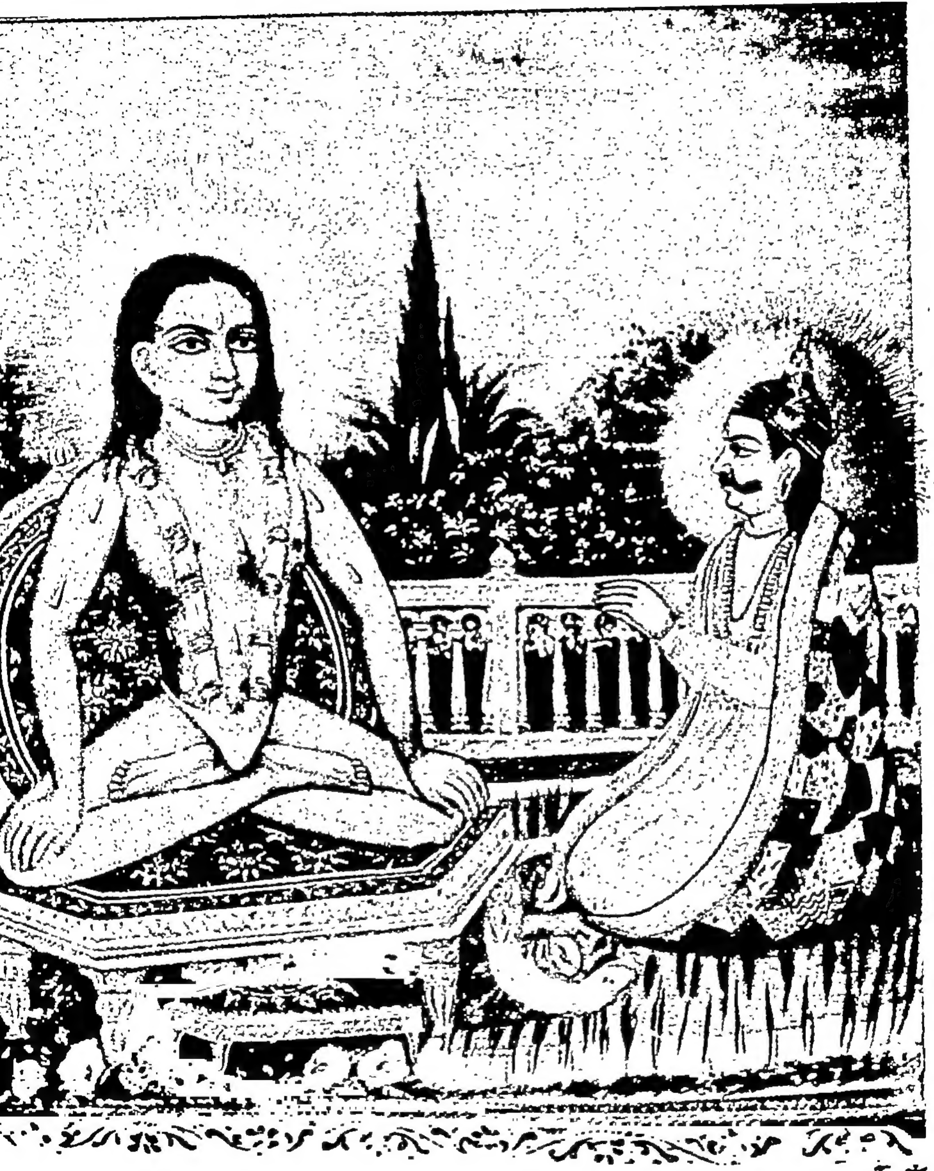
७. श्री प्रेम स्वरूपजी महाराज
शुकभवन मोहल्ला दुसायत, वृन्दावन।

हमारे प्रकाशन—

१. श्री लीला सागर
श्री स्वामी चरणदासजी महाराज का वृहत जीवन चरित्र
पुष्ठ ४०० मू. रु २—०

२. श्री भक्ति सागर
श्री स्वामी चरणदासजी महाराज द्वारा रचित ग्रन्थ,
परिशिष्ट भाग सहित, पृष्ठ ८०० मू. रु. ६—०





परमहंस चूड़ामणि महाभागवत महामुनीन्द्र
श्री शुकदेवजी महाराज

अनन्त श्री विभूषित
स्वामी श्री चरणदासजी महाराज

श्री स्वामी चरणदासजी कृत

श्री शुकमुनिराज अष्टक



षोड़शवर्ष किशोर मूरति, श्यामवरण दिगम्बरम् ।
घूँघरवाले केश झलकें, शुकमुनि चरण प्रणाम्यहम् ॥१॥
पद्म आसन उदर त्रिवली, चरण पंकज शोभितम् ।
आजानु भुज मुसकात मुख सों, शुक मुनि चरण प्रणाम्यहम् ॥२॥
गूढ़जत्रु विशाल उरछवि, नाभि गंभीर विराजितम् ।
जलज लोचन सुखद नासा, शुकमुनि चरण प्रणाम्यहम् ॥३॥
व्यास नंदन जक्त वंदन, मोह ममत्व निकन्दनम् ।
काम क्रोध मद लोभ न जिनमें, शुक मुनि चरण प्रणाम्यहम् ॥४॥
ब्रह्मरूप अनूप मुनिवर, पराशर कुल भूषणम् ।
कृष्ण चरित पुनीत वरणत, शुक मुनि चरण प्रणाम्यहम् ॥५॥
त्रिभुवन उजागर कृपासागर, द्वंद संकट मोचनम् ।
प्रेम मदमाते रहैं नित, शुक मुनि चरण प्रणाम्यहम् ॥६॥
निरालम्ब निहभरम निशिदिन, स्थिर बुद्धि निकेतनम् ।
धर्मधारी ब्रह्मचारी, शुक मुनि चरण प्रणाम्यहम् ॥७॥
पतित पावन भर्म नशावन, शरणागत सुख दायकम् ।
माया जीतं गुणातीतं, शुक मुनि चरण प्रणाम्यहम् ॥८॥
श्री शुकदेव अष्टक परम सुन्दर, पठत पाप नशायकम् ।
चरणदास शुकदेव स्वामी, भक्ति मुक्ति फल दायकम् ॥९॥



श्री स्वामी श्याम चरणदासाचार्य स्तवन



प्रभु पतित पावन दुख नशावन, जयति श्यामचरणदास हो।
रसिक आचारज विदित, पूरणकला सुख रास हो॥
कुंजो के नन्दन करों वंदन, मुरलीसुत मंगल करन।
प्रेम भक्ती के प्रदाता, द्वंद संकट के हरन॥
जान कर कलि काल भृगु कुल, प्रगट व्है दर्शन दियो।
च्यवन वंश प्रशंस कर, संसार को पावन कियो॥
योग ज्ञान विराग साधन, सिद्ध कर समरथ धनी।
विमुख हरि सन्मुख किये, भव विपति जीवन की हनी॥
रूप नाना धार देश, विदेश भक्ति प्रचारिया।
नाम दंपति दान कर जिय, अमित भव सों तारिया॥
धाम वृन्दावन युगलवर, मिले सेवा कुंज में।
लखी रास विलास लीला, मिल सखिन के पुंज में॥
इन्द्रप्रस्थ निवास कर, बहु शिष्य सेवक निज किये।
राव रंक नरेश जिनको, विविध विधि परिचय दिये॥
प्रात संध्या प्रेम कर, स्तोत्र जो गायन करैं।
कहै सरसमाधुरी भक्तजन, संसार सागर सों तरैं॥



श्री भक्तिसागर ग्रन्थ पर अभिमत

श्रीमन्महर्षि योगिराज राजगुरु
वेदवाचस्पति महामहोपाध्याय भारतमार्तण्ड अनन्त श्री विभूषित
श्री श्री १००८ श्री स्वामीजी माधवानन्द जी महराज के सद्विचार

भक्तिसागर ग्रन्थ का अवलोकन कर परम सन्तोष हुआ। इस ग्रन्थ के प्रणेता श्री स्वामी चरणदासजी महाराज अत्यन्त उत्तम सन्त थे। वीतराग मुनि श्री शुकदेवजी से उन्होंने दीक्षा प्राप्त की थी। भक्तिसागर के निर्माण से निश्चय ही संसार का वहुत वड़ा कल्याण हुआ है।

इस ग्रन्थ में सरल कविता के द्वारा कर्मोपासना व ज्ञान का समीचीन वर्णन किया गया है। हठयोग की क्रियाओं का भी साङ्गोपाङ्ग विवेचन इसमें जहाँ निहित है वहाँ भक्ति ज्ञान का भी सुन्दर सामञ्जस्य है। अनुभवी सन्तों की कविताएं छिपी नहीं रह सकती हैं। जिज्ञासु पाठकों को इस ग्रन्थ का व्यवहृत करना उपादेय रहेगा। उपासना से समाधि की प्राप्ति का ग्रन्थ में जो प्रतिपादन किया है, वह चित्ताकर्षक है। जितने भी साम्प्रदायिक ग्रन्थ हैं उनमें कुछ न कुछ पक्षपात रहता ही है, यही एक ग्रन्थ ऐसा है जिसमें किसी प्रकार का पक्षपात नहीं है व निष्पक्ष है। वाणी के श्रवण से भक्ति का संचार हो जाता है। जो भक्ति द्वारा दर्शन चाहते हैं उन्हें प्रतिदिन एक दो भजन गाने चाहिए, उससे उन्हें आत्मिक वल प्राप्त होगा। योग का अभ्यास जिज्ञासुओं को गुरु के द्वारा सीख लेना चाहिए। यदि जिज्ञासा से अभ्यास किया जाएगा तो श्री चरणदासजी स्वप्न में आकर जिज्ञासुओं को आदेश देंगे। पूर्व संस्करणों में जो वहुतसी त्रुटियाँ रह गई थीं उनका इस ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित संस्करण में परिष्कार कर दिया गया है।

श्री स्वामी चरणदासजी रचित भक्तिसागर का

सूची-पत्र

ज्ञान अङ्ग

विविध अंग



श्री राधाकृष्णाभ्यां नमः

प्रकाशकीय

किसी भी विचारधारा की रक्षा करने के लिये यह आवश्यक है कि उसके साहित्य की रक्षा की जाय। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये श्री शुक सम्प्रदाय के साहित्य के प्रकाशनार्थ जयपुर में एक ट्रस्ट का निर्माण किया गया है जिसका नाम "श्री शुक चरणदासीय साहित्य प्रकाशक ट्रस्ट" रखा गया है। इसका पूर्ण विवरण इस ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित प्रथम पुष्प, "श्री लीला सागर" ग्रन्थ में दे दिया गया है। यह "श्री भक्ति सागर" ग्रन्थ इस ट्रस्ट का द्वितीय पुष्प पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है।

यह ग्रन्थ सर्वप्रथम प्रातः स्मरणीय श्री सरसमाधुरी शरण जी महाराज, जयपुर निवासी ने सन् १९०८ ई० में श्री वेङ्कटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई में मुद्रण करा कर प्रकाशित कराया था। उस समय तक श्री स्वामी चरणदासजी महाराज द्वारा रचित १६ ग्रन्थ उपलब्ध थे जिनके नाम नीचे दिये जाते हैं। इन्हीं का संग्रह "भक्ति सागर" के नाम से प्रकाशित हुआ था।

(१) ब्रज चरित्र
(२) अमरलोक अखण्ड धाम
(३) धर्म जहाज
(४) अष्टांगयोग तथा हठयोग
(५) योग संदेह सागर
(६) ज्ञान स्वरोदय

अथर्ववेदीय पंचोपनिषद् भाषा :—

(७) हंसनाद उपनिषद्
(८) सर्वोपनिषद्
(९) तत्त्वयोग उपनिषद्
(१०) योगशिखा ,,
(११) तेज बिन्दु ,,
(१२) भक्ति पदार्थ
(१३) मन विरक्त करण गुटका सार
(१४) ब्रह्म ज्ञान सागर
(१५) शब्द
(१६) भक्ति सागर

इसके पश्चात् श्री सरसमाधुरीजी महाराज को निम्न ग्रन्थ और प्राप्त हुए जिनको उन्होंने परिशिष्ट के नाम से उसमें सम्मिलित करके श्री नवल किशोर प्रेस में छपवा कर प्रकाशित कराया था।

(१) जागरण माहात्म्य
(२) श्रीधर ब्राह्मण लीला
(३) माखन चोरी लीला
(४) मटकी लीला
(५) दान लीला
(६) काली नथन लीला
(७) चीर हरण लीला
(८) चौवन लीला
(९) अनुराग लीला
(१०) रास लीला
(११) होरी लीला
(१२) गोपी विरह लीला
(१३) संयोग लीला
(१४) वेनी गूथन लीला
(१५) कुरुक्षेत्र लीला
(१६) फुटकर पद, कवित्त आदि
(१७) नासकेत लीला

प्रस्तुत ग्रन्थ की विशेषताएँ

(१) अब तक यह ग्रन्थ बड़े साइज़ में छप रहा था तथा मूल्य अधिक होने से प्रचार में रुकावट पड़ती थी। वर्तमान ग्रन्थ अल्प मूल्य में प्रकाशित करने का लक्ष्य रखा गया है।

(२) पूर्व संस्करणों में ६० वर्षों से ऐसी अशुद्धियाँ चली आ रही थीं कि जिनसे पाठकों को अर्थ ग्रहण नहीं हो पाता था तथा कुछ प्रसंग दो बार छपते चले आ रहे थे जिनका इस ग्रन्थ में संशोधन कर दिया गया है।

(३) "शब्द वर्णन" नामक ग्रन्थ में ३१० भजन हैं, इनमें नम्बर लगा दिये गये हैं। उन भजनों में ज्ञान, योग, वैराग्य और भक्ति के सम्पूर्ण तत्त्वों को थोड़े शब्दों में बड़े अनुपम रूप से वर्णन किया है, जिसका सूची पत्र आज तक किसी ग्रन्थ में नहीं छपा था। वह अकारादि क्रम से इस ग्रन्थ में दिया गया है।

(४) प्रत्येक ग्रन्थ में शीर्षक लगाकर प्रसङ्गों को छाँट दिये हैं जिनसे वे पाठकों को रुचिकर हों और प्रसंग देखने में सरलता हो।

(५) सब ग्रन्थों में दोहों के नम्बर लगा दिये हैं जिससे प्रसंग ढूँढने में सरलता हो।

(६) श्री कृष्ण लीलाएँ क्रमबद्ध नहीं थीं उनको क्रमबद्ध कर दी गई हैं।

(७) कठिन शब्दों को यथासंभव सरल करके फुटनोट दे दिये गये हैं।

(८) इस ग्रन्थ को एक हस्तलिखित प्रति से, जो श्री चरणदासजी महाराज के जीवन काल में सम्वत् १८३७ विक्रमी में श्री रामरूपजी के शिष्य श्री सतवादीरामजी ने लिखी है, जिस पर श्री चरणदास जी महाराज के हस्ताक्षर हैं, मिलान करके शुद्ध किया गया है।

इस ग्रन्थ को प्रकाशित कराने की सर्वप्रथम प्रेरणा श्रद्धेय स्वामी श्री प्रेम स्वरूपजी महाराज ने मुझको दी थी। उन्हीं की चेष्टा और अथक परिश्रम का परिणाम है कि मैं पाठकों की सेवा में यह पुस्तक प्रस्तुत कर पाया हूँ। श्री मदनमोहनजी तोपनीवाल और पं० पुरुषोत्तम जी शर्मा ने पुस्तक संशोधन एवं प्रूफ देखने में अपना अमूल्य समय दिया है, मैं इन महानुभावों का हृदय से आभारी हूँ, तथा ट्रस्ट की ओर से उन्हें धन्यवाद देता हूँ। पाठक अपनी चिरकालीन कठिनाइयों का इस ग्रन्थ से समाधान करके लाभ उठावेंगे और इसको अपना कर प्रकाशकों का उत्साह वर्धन करने की कृपा करेंगे। पुस्तक को यथासंभव शुद्ध करने का प्रयत्न किया गया है फिर भी अशुद्धियाँ रही हों तो पाठक सुझाव देने की कृपा करेंगे जिससे अगले संस्करण को शुद्ध करके छापा जा सके।

दासानुदास

श्री शुकदेव जयन्ती महोत्सव
वैशाख कृष्ण अमावस्या
सम्वत् २०२७ विक्रमी

कृष्ण जीवन भार्गव
सभापति
श्री शुक चरणदासीय साहित्य प्रकाशक ट्रस्ट,
शारदा भवन, जयपुर।

श्री स्वामी चरणदासजी महाराज का

सूक्ष्म जीवन चरित्र

यह विश्व दैवी और आसुरी गुणों का मिश्रण है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, क्षमा, दया, उदारता, प्रेम, सेवा आदि दैवी गुण हैं और इनके विपरीत हिंसा आदि आसुरी गुण हैं। दैवी गुणों से जीव कल्याण की ओर, और आसुरी गुणों से पतन की ओर जाता है। इन दोनों ही प्रकार की प्रकृतियों का विकास और ह्रास अनादिकाल से चला आता है। जब आसुरी शक्तियाँ बढ़ जाती हैं तब कल्याण गुणगण निधान भगवान् अवतार लिया करते हैं अथवा समयानुकूल सन्त भूतल पर पधार कर समाज को सन्मार्ग दिखाया करते हैं।

आसुरी गुण प्रधान यवनो के ५०० वर्षों के निरन्तर अत्याचारों से हिन्दू धर्म जर्जरित अवस्था को प्राप्त हो चुका था। शिक्षा के अभाव से पाखंडी एवं स्वार्थी लोगों ने समाज को अन्ध विश्वास में ढकेल कर बहुदेवोपासना में लगा दिया था। वर्णाश्रम व्यवस्था का स्वरूप विकृत हो चुका था। ऐसे समय में एक अलौकिक शक्ति के प्रादुर्भाव की आवश्यकता थी। उसी समय सम्वत् १७६० भाद्रपद शुक्ला ३ मंगलवार को (राजस्थान में) अलवर नगर के समीप डहरा ग्राम में भार्गव कुल भूषण श्री मुरलीधरजी के घर माता कुंजो देवी की कूख से युग प्रवर्तक, बाल रवि के रूप श्री चरणदासजी महाराज का प्रादुर्भाव हुआ। आपका जन्म नाम श्री रणजीतलाल था।

पाँच वर्ष की अवस्था में सिद्ध रूप से विचरते हुए व्यासपुत्र परम हंस चूडामणि महा मुनीन्द्र श्री शुकदेवजी महाराज ने आपको अवधूत वेष में दर्शन देकर शिष्य किया। आप जन्म से ही अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न थे। सात वर्ष की अवस्था में आपके पिता भगवद्धाम पधार गये थे। तब आपकी

माता आपको अपने पिता श्री रायविहारीदासजी के घर जो मोहम्मद शाह के कोषाध्यक्ष थे, दिल्ली ले गई। तब से आप ननिहाल में ही रहे।

आपके नाना ने आपको साक्षर बनाने का भरसक प्रयत्न किया परन्तु आपने अपने अध्यापक को अपने अनुभव ज्ञान का परिचय देकर अवाक कर दिया और कहा कि इस रोटी कमाने की विद्या से भगवान् नहीं मिलते। विवाह के विषय में भी आपने स्पष्ट मना कर दिया कि मैं इस बन्धन में नहीं पड़ना चाहता, मैं तो स्वच्छन्दता से प्रभु का स्मरण ही करना चाहता हूँ।

उन्नीस वर्ष की अवस्था में आपको मुजफ्फर नगर (उत्तर प्रदेश) से १९ मील उत्तर में "शुकतार" नामक स्थान (जिसको आजकल शुक्रताल कहते हैं, जहां श्री शुकदेवजी ने राजा परीक्षित को श्री मद्भागवत की सप्ताह सुनाकर मुक्त किया था) पर श्री शुकदेव महा मुनीन्द्र ने आपको श्री कृष्ण मंत्र की विधिवत दीक्षा दी और श्री राधाकृष्ण का ध्यान बताया। इसके पश्चात् १४ वर्ष तक आपने दिल्ली में ही गुफा बनाकर निम्नांकित सम्पूर्ण साधन किये—

अष्टांग योग हठ योग जु कीया। राजयोग सब साध जु लीया॥
भक्ति योग कीना करि हेती। सांख्य योग साधा हित सेती॥
परकाया परवेश विचारा। साधा तन सों होना न्यारा॥
भाँति भाँति किरिया आराधी। जिनसे पाया भेद अगाधी॥

गुरु भक्ति प्रकाश पृष्ठ ६८

आपने १९ वर्ष की आयु से ३३ वर्ष तक अष्टांग योग का साधन करके उच्चतम जड़ समाधि प्राप्त करली जिसके फलस्वरूप आपकी सेवा में समस्त ऋद्धियाँ व सिद्धियाँ सदा उपस्थित रहती थीं। जिनका आपने भगवत आज्ञा से बहिर्मुख प्राणियों को हरि सन्मुख करने के लिये एवं परमार्थ मार्ग में उन्नति हेतु तथा दीन दुखी व्यक्तियों के कष्ट निवारणार्थ समय २ पर चमत्कार रूप में सदुपयोग किया। ऐसे आपने सैकड़ों चमत्कार दिखाऐ। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं जैसे—सिंह को दीक्षा देना, घोड़े से राम २ बुलाना, नरक का दर्शन कराकर भक्त बनाना, माता को गोलोक दर्शन व गंगा स्नान कराना,

आंवले के वृक्ष से सुवर्ण मुद्राओं की वर्षा, लड़की से लड़का बना देना, अनेक रूप धारकर भक्तों के अनेक कार्य संवारना आदि आदि अनेकों चरित्र हैं।

ज्ञान मार्ग में आपने ब्रह्म एकत्व की अवस्था प्राप्त की। इन साधनों की पूर्णता के पश्चात् गुरु आज्ञा से आप पाँच वर्ष फतेपुरी के बाग में स्थल बनाकर राजाओं के समान वैभव से रहे परन्तु आपके हृदय में श्री कृष्ण दर्शन की तीव्र लालसा थी इसलिये उसमें आप संतुष्ट नहीं थे—

ऐसे रहैं सदा वा ठाईं। तन सों ह्वां पर मन हरि पाईं॥

गुरु भक्ति प्रकाश पृष्ठ ६५

अब आपकी अवस्था ३८ वर्ष की हो चुकी थी। आपका प्रभाव सम्पूर्ण भारत, काबुल, कंधार, ईरान आदि देशों तक फैल चुका था। बादशाह, राजा, अमीर, गरीब, सभी आपके चरणों में शिर झुकाते थे। आप सबको समान रूप से हृदय से लगाकर उनके कष्ट मिटाते थे और उनको कल्याण के मार्ग में लगाते थे। एक दिन कृष्ण दर्शन की तीव्र उत्कंठा से स्थान का सब सामान लुटाकर अकेले ही चोला, टोपी और मृगछाला लेकर वृन्दावन की ओर चल दिये। वहां सेवा कुंज में अर्ध रात्रि के समय श्री कृष्ण भगवान् ने कृपा करके आपको अपने अमरलोक अखण्डधाम तथा नित्य रास विलासादि का दर्शन कराया और यह आज्ञा दी कि अब तुम योग ध्यान आदि को छोड़कर भक्ति का प्रचार करो, जिस कार्य के लिये तुमको हमने भेजा है—

योग ध्यान को छांड कर, नौधा भक्ति सँभार।
यही करो अस्थापना, यही धारणा धार॥

गुरु भक्ति प्रकाश पृष्ठ ६५

वृन्दावन से लौटकर आप नंदराम ढूसर के मकान पर रहे। उसी जगह आपने दो ग्रन्थों की रचना की—

(१) अमरलोक अखण्ड धाम वर्णन (जिसमें आपने जैसा भगवान् श्री कृष्ण के नित्य धाम एवं लीला का दर्शन किया था उसका वर्णन किया है)

(२) व्रज चरित्र वर्णन (जिसमें श्री कृष्णावतार में भगवान् ने जिन जिन स्थानों पर जो जो लीलाएं की थी उन सब का वर्णन है)

आपने हिन्दू, मुसलमान, गरीब, अमीर सबको भगवत रूप समझ कर आदर और प्यार दिया। जिसको जैसा अधिकारी देखा उसको उसी मार्ग का उपदेश किया परन्तु आपके उपदेशों में भक्ति की ही मुख्यता रही।

आपने अपनी माता को तथा अन्य कई शिष्यों को जैसे गुरुछौना जी, जोगजीत जी आदि को भगवान् श्री कृष्ण के नित्य धाम तथा रास विलास का दर्शन कराया और रामसखीजी को सदेह अमरलोक धाम में भेज दिया।

आपकी अलौकिक शक्तियों और समदृष्टि के प्रभाव से मुगल सम्राट मोहम्मद शाह, आलमगीर द्वितीय, शाह आलम द्वितीय ही नहीं बल्कि क्रूर और भयंकर आक्रमणकारी नादिरशाह ने भी आपके चरण पकड़ लिये। पानीपत के नवाब साकरखाँ, जयपुर नरेश सवाई ईश्वरीसिंह, तथा सवाई प्रतापसिंह एवं कंधार के शस्त्र विजयीशाह मौला ने भी आपके चरणों की शरण ग्रहण की।

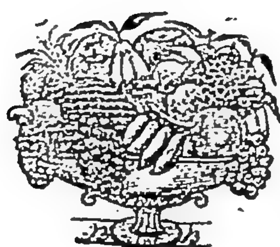
इस प्रकार ज्ञान, योग वैराग्य और भक्ति की सरिता बहाते हुए ७९ वर्ष की अवस्था तक आप दिल्ली में ही विराजे। सं० १८३९ ई० मार्गशीर्ष कृष्ण ७ को आपने भगवत लीला में प्रवेश किया। आपकी जीवनी आपके दो प्रिय शिष्यों ने लिखी है। एक श्री रामरूपजी ने जिसका नाम "गुरु भक्ति प्रकाश" है, दूसरी ध्यानेश्वर श्री जोगजीत ने लिखी है जिसका नाम "लीलासागर" है। ये दोनों जीवनियाँ आपके जीवन काल में ही लिखी जा चुकी थीं अतः पूर्ण रूप से प्रामाणिक हैं। जिज्ञासु पाठक विस्तृत वर्णन उन ग्रन्थों में देखने की कृपा करें। यहाँ विस्तार न करके अति सूक्ष्म रूप में वर्णन किया है।

आपके जीवन के सम्बन्ध में अनेक पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों ने लिखा है। पाश्चात्य विद्वानों में सर्व श्री जेम्स हेस्टिंग्ज, एच० एच० विलसन, विलियम क्रुक्स, सर जार्ज ग्रियर्सन, सम्पादक राजपूताना गजेटियर, भारतीय विद्वानों में डा० क्षिति मोहन सैन, डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, डा० राम-

कुमार वर्मा, प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, परशुराम चतुर्वेदी, अयोध्यासिंह उपाध्याय, हरिऔध, बाबू ब्रजरतनदास, पं० गणेशप्रसाद द्विवेदी, डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, श्री सरसमाधुरी शरणजी महाराज, श्री रूपमाधुरी शरणजी महाराज, महन्त गंगादासजी, डा० श्याम सुंदर शुक्ल विशेष उल्लेखनीय हैं।

शुक भवन, वृन्दावन

विनीत
प्रेमस्वरूप



॥ श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ॥

श्री सरसमाधुरी जी रचित

ग्रन्थ परिचय

(दोहावली)

श्रीमत शुक मुनिराज वर, व्यासपुत्र भगवान् ।
श्याम चरण के दास जी, जिनके शिष्य महान् ॥१॥
जिनकी वाणी विविध विधि, अद्भुत अनुपम ग्रन्थ ।
नाम भक्तिसागर सरस, प्रेम परा को पन्थ ॥२॥
व्रजचरित्र तामें प्रथम, अमरलोक शुचि नाम ।
रासादिक लीला ललित, अरु महिमा निज धाम ॥३॥
कर्मकाण्ड शुभ अशुभ फल, कथन किये महाराज ।
नाम धर्यो ताको प्रभु, अनुपम धर्मजहाज ॥४॥
योग युक्ति जामें भरी, सब विधि सांगोपांग ।
याही तें याको धर्यो, नाम योग अष्टांग ॥५॥
सागर योग संदेह की, पुस्तक वरनी गूढ़ ।
गुरुमुख ज्ञानी जन विना, अर्थ न समझें मूढ़ ॥६॥
योग स्वरोदय पुनि रच्यो, स्वर को भेद उचार ।
ताहि पढ़े कर प्रेम जो, पावे तत्त्व विचार ॥७॥
वेद अथर्वण की कही, पंच उपनिषद् सार ।
भाषा में वर्णन करी, योग ज्ञान निरधार ॥८॥

भक्तिपदारथ पुनि कथ्यो, श्रुति पुराण को सार।
अगुन सगुन हरि रूप को, कियो तत्त्व निरधार ॥९॥
दत्तात्रेय मुनि ने किये, गुरु चौवीस उदार।
ताकी कथा कथी भली, नाम सु गुटकासार ॥१०॥
ब्रह्म जीव की एकता, कही खोल निराधार।
ब्रह्मज्ञानसागर धरयो, ताको नाम विचार ॥११॥
रची सरस शब्दावली, राग सहित रुचिकार।
ज्ञान योग वैराग पुनि, प्रेम भक्ति भंडार ॥१२॥
पुनि परिशिष्ट सु भाग में, दशम स्कन्धनुसार।
श्रीकृष्ण लीला ललित, अनुपम युगल विहार ॥१३॥
बानी श्रीमहाराज की, सद्ग्रन्थन को सार।
सरसमाधुरी जो पढ़े, मिलें पदारथ चार ॥१४॥



॥ श्री मञ्जिकुञ्जविहारिणे नमः ॥

श्री सरसमाधुरी जी रचित

श्री भक्तिसागर ग्रन्थ की महिमा तथा माहात्म्य

॥ कवित्त ॥

ग्रन्थ भक्तिसागर उजागर सब विश्व बीच, बाँचत हैं जाको कवि कोविद अरु ज्ञानी हैं। साधु सन्त बुद्धिमन्त विद्वज्जन विविध भाँति, मनन करत हिये धरत योगी यति ध्यानी हैं॥ त्यागी वैरागी जन पढ़त ताय चित लगाय, चतुर्वर्ग दायक यह निश्चय कर जानी हैं। कहै सरसमाधुरी सुनाय सब सन्तन को, याके अर्थ समझे होत जीवनमुक्त प्रानी हैं॥१॥

अष्टादश षटरु चार चौदह अरु नव की सार, ऐसी यह अनूप श्याम चरणदास बानी है। भारत अरु गीता पुनि भागवत भरी है यामें, रामायण सार रसिक जनन ने पिछानी है॥ संस्कृत भाषादिक पुस्तक बहु विश्व विदित, उक्ति जुक्ति सारी याके बीच में समानी है। कहै सरसमाधुरी सुनाय सब सन्तन को, एक एक बात याकी अनुभव कर प्रमानी है॥२॥

नाम रूप लीला धाम सेवा श्री श्यामा श्याम, सबही की सुलभ रीति बानी में बखानी है। सन्त अरु महन्त गुणवन्त बुद्धिवन्त सकल, सर्वोपरि रहस्य रीत मानी रससानी है॥ याही को गावें अरु सुनावें सब शिष्यन को, या समान सुलभ

सरल और न जग जानी है। कहै सरसमाधुरी यह सबकी मन हरनहार, महिमा अपार अरु भक्ति मुक्ति दानी है ॥३॥

जलाली जमाली ज़िक्र सुल्तानुल् अज़कार फ़ना, बक़ा सिफ्त सब ग्रन्थ में बखानी हैं। ज़ात अरु सिफ़ात की प्रकाश करी सर्व बात, नूर अरु ज़हूर सब बरनें रहमानी हैं ॥ फ़ना-फ़िल्ला बाद में बक़ा की बुनियाद कही, आबिद मक़बूल खुदा उनही ने जानी हैं। कहै सरसमाधुरी सुनाय सब फ़ुक़रन को इश्क़ है हक़ीक़ी यामें शग़ल सुव्हानी हैं ॥४॥

सम्प्रदाय सर्व धर्म आश्रम अरु वर्ण कर्म, वैष्णवता मुख्य मर्म यामें जनाये हैं। कर्मयोग ज्ञानयोग सांख्ययोग राजयोग, अष्ट अंगयोग भक्तियोग दरसाये हैं ॥ माया जीव ईश्वर ये तीन तत्त्व कहे अनादि, ईश के अधीन माया जीव कहि गाये हैं। कहै सरसमाधुरी कृपाल श्याम चरणदास, शुकमुनि प्रसाद गुप्त भेद प्रगटाये हैं ॥५॥

खण्डन अरु मण्डन की उक्ति युक्ति कथी नाहिं, श्रुति पुराण सार धर्म सबही कहि गायो है। जितने मत पंथ प्रगट देखियत जगत माहिं, ग्रन्थ भक्तिसागर यह सबके मन भायो है ॥ बाँचे कर मन विचार रहस्य रीति हृदय धार, परमानँद सुख प्रत्यक्ष उनही ने पायो है। कहै सरसमाधुरी सुनाय सब भक्तन को, भारत भूमि में प्रताप अतिशय कर छायो है ॥६॥

ज्ञानिन ने परम ज्ञान ध्यानिन ने परम ध्यान, योगिन ने

परम योग याहि पढ़े पायो है। परम वैराग प्राप्त भयो है विरागिन को, अनुरागी भक्तन के प्रेम हाथ आयो है ॥ आरत जिज्ञासू अरु मुमुक्षु अधिकारिन के, इच्छा अनुसार समाधान उर छायो है। कहै सरसमाधुरी यह अति ही उपयोगी ग्रन्थ, सबही मत पंथ याकी बानी सुन लुभायो है ॥७॥

निर्गुन अरु सगुन पुनि सर्वोपरि रहनि यामें, निराकार अरु साकार सुलभ कहि सुनायो है। ओत प्रोत अगुन सगुन सूरज अरु धूप सदृश, भिन्न भेद भाव रूप एक कर दिखायो है ॥ जैसी जाके चाह ताहि तैसी ही प्राप्ति होत, यामें नहिं संशय यह भेद समझायो है। कहै सरसमाधुरी सुनाय सब भक्तन को, रस समुद्र सगुन ब्रह्म पुरुषोत्तम बतायो है ॥८॥

छहों मुक्ति मारग की रहस्य कही याके बीच, प्रेम को परत्व सर्व उत्तम दृढ़ायो है। प्रेम के समान नहीं और कुछ बतायो आन, ज्ञान ध्यान योगादिक तुच्छ दरसायो है ॥ आदि मध्य अन्त भक्तिसागर में भली भाँति, सबको सिरताज प्रभु प्रेम को जनायो है। कहै सरसमाधुरी सुनाय सब रसिकन को, जिनने कुछ पायो एक प्रेम ही से पायो है ॥९॥

बिना पढ़े वेदन के वेदतत्त्व जान परे, बिना शास्त्र श्रवण किये समझे बात सारी है। बिना किये जोग के जुगति सब जान लेवे, बिन विराग त्याग भेद पावत नर नारी है ॥ बिना किये तीरथ के तीरथ फल प्राप्त होत, बिना जाप अजपा की

उक्ति उर विचारी है। कहै सरसमाधुरी सुनाय सब सन्तन को, बाँचे भक्तिसागर होत भवसागर पारी है ॥१०॥

श्रीहरि के सुमिरन में सुरति निरति लगे जाय, नैंनन में बसे आय ध्यान प्रिया श्याम को। अमरलोक लीला को अनुभव हिय माहिं फुरे, दरसन लग जाय तात्काल रूप धाम को॥ रासादिक लीला की ललित रीति जान परे, हिये माहिं भरे आय प्रेम अष्टयाम को। कहै सरसमाधुरी सुनाय सब भक्तन को, ग्रन्थ भक्तिसागर है रसिकन के काम को ॥११॥

सरल और सुगम देश भाषा सों भूषित है, अति ही निरदूषित यह बानी परम पावनी। पढ़ते ही अक्षर के अर्थ ज्ञान परे जान, भर्म भूल सब ही संदेह की नशावनी॥ प्रेम प्रगटावनी रंग भक्ति की बढ़ावनी है, अति ही सुहावनी सन्त भक्तन मनभावनी। हरिरस सरसावनी छवि दम्पति छकावनी, सरसमाधुरी रसामृत को रसिकन को प्यावनी ॥१२॥

गृहस्थ अरु विरक्त वानप्रस्थ संन्यस्त हू की, जुदी जुदी रहनि गहनि जुक्ति कर जनाई है। आश्रम अरु वर्ण धर्म शास्त्रन में सकल कहे, उनहू की करन रीति उत्तम बताई है॥ ऊँच नीच कर्मन के फलन की अनेक गति, जैसी प्राप्त होत तैसी खोल कर दिखाई है। कहै सरसमाधुरी रहस्यभरी बानी यह, बाँचें जो ग्रन्थ तिन्हें सुगम जान पाई है ॥१३॥

ज्ञाता ज्ञेय ज्ञान अरु ध्याता ध्येय ध्यानहू की, त्रिपुटी के

मिटे शुद्ध आतमा बताई है। क्षर और अक्षर निहअक्षर बखान किये, अक्षरा अतीत रीत बानी में गाई है ॥ पदस्थ पिंडस्थ रूपस्थ रूपातीत ध्यान, शून्य में समावन की बात समझाई है। परम है प्रकाशमान पटतर नहिं होत भान, परमतत्त्व को पिछान सरस कहि सुनाई है ॥१४॥

सतयुग अरु त्रेता पुनि द्वापर कलियुग कराल, तिनहूँ की रहनि गहनि रीति सर्व गाई है। जैसी करे करनी ताहि तैसी ही भरनी है, टरनी है नाहिं यही दृढ़कर दरसाई है ॥ जीतन जमराज काल काटन को माया जाल, श्री हरिगुन गान रीति ग्रन्थ में बताई है। कहै सरसमाधुरी सुसाज बाज सहित भजन करे, ताहि मिलें आय राधिका कन्हाई है ॥१५॥

सर्व से सुलभ कलि बीच सार कीरतन है, याही को करके कह्यो हरि को रिझावना। जोग जग्य ज्ञान ध्यान तीरथ के न्हानहूते, उत्तम है यही सही केवल गुण गावना ॥ भजन के किये ते भवसागर तर जात तुरत, निश्चय कर याही तें परम धाम पावना। कहै सरसमाधुरी सु सेवा कर दम्पति की, छवि में नित छके छुटे आवन अरु जावना ॥१६॥



॥ श्री मन्निकुञ्जविहारिणे नमः ॥

श्री सरसमाधुरी जी रचित

श्रीमत् श्याम चरणदासाचार्य चरितामृत

(दोहावली)

श्रीसतगुरु बलदेव प्रभु, चरणन शीस नवाय ।
श्यामचरण के दास को, चरितामृत कहौं गाय ॥१॥
बैठि हिये मम श्री गुरु, करि हैं आय सहाय ।
सरसमाधुरी गुरु कृपा, सबही विधि बन जाय ॥२॥
सम्वत सत्रहसौ गिनो, ऊपर साठ पिछान ।
प्रगटे भार्गव वंश में, कृष्ण अंश प्रभु आन ॥३॥
शोभनजी के कुल विषै, अष्टम पीढ़ी अन्त ।
मुरलीधर घर प्रगट भे, श्यामरूप धर सन्त ॥४॥
स्वप्न माहिं दर्शन दिये, कुंजो को श्री श्याम ।
तुमरे प्रगटूँ पुत्र हो, सुनहु मातु सुखधाम ॥५॥
भादों शुक्ला तीज को, कुंजो कूख मझार ।
बाल नाम रणजीत धर, प्रगटे कृष्ण मुरार ॥६॥
जन्म समय अस्थान में, भयो अधिक उजियार ।
अनहद धुनि बाजे बजे, छई सुगन्धि अपार ॥७॥
नाम ग्राम डहरे विषै, घर घर मंगल चार ।
विविधि बधाई गुनिन मिल, गाई भली प्रकार ॥८॥

पंच वर्ष की वैस में, सरिता तट शुकदेव।
गोद लिये रणजीत को, प्यार कियो गुरुदेव ॥९॥
गये वर्ष उन्नीस में, गंगातट शुकतार।
साक्षात दर्शन दिये, शुक मुनि व्यासकुमार ॥१०॥

गुरुदीक्षा दी विधि सहित, मंत्र सुनायो कान।
योग ज्ञान वैराग दे, किये शिष्य हित मान ॥११॥
श्री तिलक मस्तक रचो, श्रीतुलसी शुचि माल।
गल में बाँधी प्रेम सों, कीन्हें शिष्य निहाल ॥१२॥

नौधा प्रेमा अरु परा, त्रिविधि भक्ति दइ दान।
तारण तरण अनाथ के, कीने आप समान ॥१३॥
आज्ञा दी श्री शुकमुनी, जग में भक्ति प्रचार।
विमुखन हरि सन्मुख करो, निस्तारो संसार ॥१४॥

सतगुर आज्ञा शीस धर, आ दिल्ली अस्थान।
रचि मन्दिर राजे जहाँ, कियो मानसी ध्यान ॥१५॥
योग युक्ति चौदह बरस, करी समाधि लगाय।
रूप अनेकन धार प्रभु, भारत दियो चिताय ॥१६॥

राजा राना छत्रपति, तिनकी करी न चाह।
चरणदास हरि रँग रँगे, सबसों बेपरवाह ॥१७॥
ईश्वरीय परिचय अमित, दिये भक्ति हरि हेत।
किये मनोरथ सबन के, पूरण प्रेम समेत ॥१८॥
बादशाह दिल्ली तखत, ठाड़े रहे हुजूर।

चरणदास के चरण की, मस्तक धारी धूर ॥१६॥
अष्टसिद्धि नवनिद्धि सब, खड़ी रही कर जोर ।
श्यामचरण के दास प्रभु, लखें न तिनकी ओर ॥२०॥
शिष्य अनेकन कर प्रभो, तारन तरन बनाय ।
चार धाम सातों पुरी, तीरथ दिये पठाय ॥२१॥
श्री भगवत की भक्ति को, भानु दियो प्रगटाय ।
भर्म निशा सोते हुए, दीने जीव जगाय ॥२२॥
नर नारी संसार के, करन लगे हरि भक्ति ।
पगे प्रेम प्रीतम प्रिया, नशी वासना जक्त ॥२३॥
कलियुग के कलमप सकल, दीने सबहि मिटाय ।
चरणदास प्रभु कृपा कर, बिगरी दई बनाय ॥२४॥
कलियुग छायो जक्त में, मिटी वेद मरयाद ।
उबरे अनगिन जीव जग, श्री चरणदास प्रसाद ॥२५॥
कलियुग सतयुग सम कियो, दियो नाम हरि दान ।
चरणदास जग जियन को, प्रेम करायो पान ॥२६॥
कलियुग में सत कर्म को, कियो बहुत विस्तार ।
चरणदास गुरु भक्ति दे, निस्तारो संसार ॥२७॥

श्री वृन्दावनगमन वर्णन

सगुण ब्रह्म सर्वज्ञ प्रभु, सर्वव्यापी श्याम ।
पुरुषोतम परमात्मा, श्रीवन जिनको धाम ॥२८॥
सतचितघन आनन्दमय, जिन को अद्भुत रूप ।



वंसीवट की छाँह हेली, लाल लाडली मैं लखे ।।

भक्ति सागर पृष्ठ ४३४

ध्यान धरत विधि शिव सदा, तिन पद पद्म अनूप ॥२९॥
श्यामचरण के दास प्रभु, आचारज अवतार ।
दिल्ली से चल कर गये, वृन्दा विपिन मंझार ॥३०॥
द्दगन चटपटी दरस की, निरखन नन्दकुमार ।
विरह विथा व्याकुल महा, तन की सुधि न सँभार ॥३१॥

पहुँचे सेवाकुंज में, निरखी अनुपम ठौर ।
सब कुंजन तें अति सरस, तेहि समान नहिं और ॥३२॥
सेव्य जहाँ श्री राधिका, सेवक श्री नँदलाल ।
याते नाम प्रसिद्ध जग, सेवाकुंज रसाल ॥३३॥

लता ललित छाई जहाँ, छवि को नाहिं न पार ।
कुसुमित तरु बेली छई, भृंग करत गुंजार ॥३४॥
द्रुम बहु नाना भाँति के, छाई वेलि वितान ।
तिन में पक्षी विविधि विधि, करत युगल गुण गान ॥३५॥

सीतल मन्द सुगन्धमय, रोचक बहत समीर ।
ऋतु वसन्त सन्तत रहत, बोलत कोयल कीर ॥३६॥
रैनि माहिं तहाँ छिप रहे, श्याम चरण के दास ।
निज मन्दिर बारहदरी, जा बैठे जेहि पास ॥३७॥
करन लगे तहाँ भावना, मूँद लिये निज नैन ।
रोमांचित हो पुलक तन, कहे विरह मुख बैन ॥३८॥
हा राधे मम स्वामिनी, हे प्रीतम घनश्याम ।
बेगि दरश दे युगल वर, पूरण कर मन काम ॥३९॥

हा हा छवि दीजे दिखा, दास मोहि निज मान ।
नाहीं तन तज जायगो, तात्काल यह प्रान ॥४०॥
विरह हूक हिय में उठी, भये महा वेहाल ।
दृगन अश्रु धारा वही, तन की सुधि न सँभाल॥४१॥
अन्तरयामी युगलवर, रसिकन के प्रिय प्रान ।
विरह विथा निज दास की, अतिशय निज मन मान ॥४२॥
चरणदास आये यहाँ, हमरे घर महमान ।
प्रगट होय दे निज दरस, करें सन्त सन्मान ॥४३॥
रसिक हमारे प्राणधन, हम रसिकन के प्रान ।
प्रेमिन के समतुल हमें, और न प्रिय जग आन ॥४४॥
अर्ध निशा वीती तबहि, प्रगटे प्यारी लाल ।
भक्तन के मन भावने, करुणासिन्धु कृपाल ॥४५॥
गौर श्याम अभिराम दोउ, अनुपम नवलकिशोर ।
ललितादिक अनगिन अली, संग लिये सिरमौर ॥४६॥
नील पीत पट सोहने, नखशिख सजि शृङ्गार ।
मुकट चन्द्रिका शीस पर, छवि को नाहीं पार ॥४७॥
युगलचन्द्र मुख चन्द्रिका, छाई मध्य निकुंज ।
दमकत चमकत अंग दुति, अनुपम छवि की पुंज ॥४८॥
चंचल चितवनि रसभरी, मन्द मधुर मुसकान ।
अलक कपोलन छुट रही, अधर ललाई पान ॥४९॥
वेसर और वुलाक शुचि, नासा शोभा देत ।
निरखत ही निज जनन को, मन मानिक हरि लेत ॥५०॥

गलबैयाँ दीने दोऊ, मदन मनोहर लाल।
प्रीतम कर वंशी लसी, प्रिय कर कमल रसाल ॥५१॥
युगल चरण वारिज वरण, छवि कुछ कही न जाय।
पायल घुँघरू सजि रहे, छुम छुम शब्द सुनाय ॥५२॥
उठ आतुर चरणन परे, चरणदास तेहि बार।
कृष्ण भुजन भर हिय लगा, कियो प्रेम अति प्यार ॥५३॥
कुँवरि किशोरी करि कृपा, प्रेममंजरी जान।
हस्तकमल मस्तक धरो, दियो प्रेम वरदान ॥५४॥
पुनि दोऊ प्रीतम प्रिया, चरणदास लै संग।
जाय विराजे कुंज में, हिलमिल हर्ष उमंग ॥५५॥
हँसि हँसि रस बतियाँ करन, लागे श्याम सुजान।
चतुर शिरोमणि लाड़िली, नागरि नेह निधान ॥५६॥
कहन लगे मुख मृदु वचन, आये प्रीति पिछान।
कहा करें तुम पहुनई, अरु सेवा सनमान ॥५७॥
चरणदास दोउ जोर कर, या विधि बोले बैन।
सेवा दे निज पदकमल, निकट रखो दिन रैन ॥५८॥
हँसि बोले तब श्रीहरि, मधुर वचन अभिराम।
जग में भेजे जिस लिये, सो न किये कुछ काम ॥५९॥
आचारज वपु दे तुम्हें, भक्ति प्रचारन काज।
भेजा है संसार में, सुनहु भक्त महाराज ॥६०॥
योग ध्यान तज कीजिये, नौधा भक्ति प्रचार।
प्रेम परायण जीव हों, उतरें भवनिधि पार ॥६१॥

प्रेम भक्ति प्रगटाय जग, जीवन को दे दान ।
करो कृतारथ जक्त को, मेरे जीवन प्रान ॥६२॥
कछु इक दिन बीते तुम्हें, लें निज धाम बुलाय ।
रखें निरन्तर निकट नित, सुन प्यारे चित लाय ॥६३॥
वचन कहे श्रीकृष्ण ने, सुने श्याम चरनदास ।
बिछुरन विरह वियोग लखि, अतिशय भये उदास ॥६४॥
गदगद बानी हो गई, नैंन बही जल धार ।
सुबकी ले रोवन लगे, सन्मुख कृष्णमुरार ॥६५॥
हाय हरी कैसी करी, धीर धरी नहिं जाय ।
तुम सब समझत लाड़िले, बिछुरन दुख अधिकाय ॥६६॥
तुमरो श्रीमुख चन्द्रमा, मेरे नयन चकोर ।
बिन दरशन जीवन नहीं, सुनिये नवलकिशोर ॥६७॥
सघन सजल गिरि आप हो, मैं हों तुम्हरा मोर ।
सुखी होउँ सुन साँवरे, वंशी धुनि घनघोर ॥६८॥
चरण कमलवत आप के, मधुकर है मन मोर ।
तहाँ बसन को चित चहै, अन्त नहीं कहिं ठौर ॥६९॥
स्वामी मेरे आप हो, मैं सेवक निज दास ।
उत्कंठा अति रहन की, सदा तुम्हारे पास ॥७०॥
स्वाति बूंद तुम हो हरी, चातक मोहिं पिछान ।
रूपसुधा रस पान बिन, तलफत मेरे प्रान ॥७१॥
आप पारधी प्राणधन, मोहिं मृगा लो मान ।
मारो निस्तारो तुमहि, मोको गति नहिं आन ॥७२॥

गंगाजल सम श्याम तुम, मैं हौं तुम्हरा मीन।
तुम माता मैं पुत्रवत, समझो सत्य प्रवीन ॥७३॥
तुम गैया मैं वत्स सम, मैं पतंग तुम दीप।
यही चाह चित में बसे, निशिदिन रहों समीप ॥७४॥
कहन लगे श्री कृष्ण तब, सुनहु श्याम चरणदास।
तुमरे हिय माहीं रहै, हमरो सदा निवास ॥७५॥
सन्त हमारी आतमा, यामें नहिं संदेह।
रोम रोम में रमि रहै, ज्यों बादर में मेह ॥७६॥
आज्ञा जो हमने दई, लीजे प्यारे मान।
भक्ति प्रचारो जक्त में, करो जियन कल्यान ॥७७॥
जो आज्ञा करि हौं यही, कही चरण ही दास।
देखो चाहूँ साँवरे, सुन्दर रास विलास ॥७८॥
ह्वै प्रसन्न बोले लला, मूंदो अपने नैन।
आज्ञा दूँ तब खोलियो, हे प्रीतम सुख दैन ॥७९॥
मूंदे तब ही नैंन निज, चरणदास तेहि बार।
बोले पुनि श्री श्मामघन, देखो पलक उघार ॥८०॥
दृगन खोल देखन लगे, तेजोमय उजियार।
रत्नजटित अवनी लखी, जगमग जोति अपार ॥८१॥
ऋतु बसंत संतत तहाँ, अनगिन बाग बहार।
फूले फूल अनेक जहाँ, लहरत लता अपार ॥८२॥
फुलवारी क्यारी बनी, न्यारी नाना रंग।
तरुन माहिं बहु बरन के, बोलत विविध विहंग॥८३॥

बीच विविध कुंजस्थली, छाई वेलि वितान ।
तिन में सेवा हित रहैं, सहचरि सखी सुजान॥८४॥
ठौर ठौर सुन्दर सुखद, भरे सरोवर नीर।
कमल खिले वहु रंग के, रोचक वहत समीर ॥८५॥
वँगला अरु वारहदरी, वनी अनेकन और ।
तिन पर सूवा सारिका, क्रीड़त मोरी मोर ॥८६॥
मध्य महा रमनीक इक, रत्नन जटित सुढार ।
वन्यो चौंतरा अति सरस, मंडल गोलाकार ॥८७॥
चौंसठ खम्भा तासु पर, जटित जवाहर लाल ।
पचरँग चुन्नी चमकनी, बूंटा वेलि सुढाल ॥८८॥
चौंसठ खम्भा पर वनो, रंगमहल रस खान ।
मणिमाणिक चहुँ दिशि जड़े, जगमग जोति महान ॥८९॥
चौंसठ कलश सुहावने, ध्वज पताक धजदार ।
लहरत फहरत तड़ित सम, दमकत दुति मनहार ॥९०॥
चौंसठ खम्भा मध्य में, विछी विछायत खूब ।
नरम रेशमी गलीचा, अतिशय सरस अजूब ॥९१॥
गुलदस्ता सुन्दर सजे, सुमन अनेकन रंग ।
महल महक छाई महा, निरखि दृगन गति दंग ॥९२॥
चँदुवा पिछवाई सजी, सुवरन बूंटेदार ।
मुतियन झालर लग रही, जगमग जोति अपार ॥९३॥
सप्त रंग की मणिन के, शोभित सुन्दर झार ।
सजे सुहावन महल में, दमकत दुति सु अपार ॥९४॥

स्वर्ण मई दीवार में, चारों ओर सुढार।
पन्ना हीरा लाल मणि, जड़ रहे विविध प्रकार ॥९५॥
सिंहासन सुन्दर सजो, तापर छत्र सुहान।
मसनद तकिया मनहरन, सुन्दरता की खान ॥९६॥
राज रहे तापर तहाँ, युगलविहारी लाल।
चहों ओर ठाड़ी सखी, मनहुँ प्रेम की माल ॥९७॥
चमर मोरछल अरु छरी, लिये खरी कोइ बाल।
इतरदान लीने कोऊ, कोउ कर लिये रुमाल ॥९८॥
पानदान लेकर कोऊ, कोउ फूलन की माल।
कोउ दरपन अरपन करत, छवि लखि होत निहाल॥९९॥
सनमुख श्यामा श्याम के, खड़े सखिन के वृन्द।
इकटक निरखत युगलको, मनहुँ चकोरी चंद ॥१००॥
सखी रास रस करन को, बजवत बीन मृदंग।
कोउ सितार कोउ सरंगी, कोउ बजात मुहचंग ॥१०१॥
मधुर मजीरा कोउ अली, लिये बजावत संग।
कोऊ अलापत सप्त स्वर, हिय में भरी उमंग ॥१०२॥
कोउ उघटत सांगीत अलि, नृत्तत गति नव ढंग।
भाव बतात नचात दृग, लचकावत कटि अंग ॥१०३॥
जै जै जुगल किशोर कहि, कोऊ रही हरषाय।
गोदन भर अति मोद मन, सुमन रही बरषाय ॥१०४॥
चरणदास तहाँ अपन को, देखे सखी सरूप।
नव यौवन सुकुमार तन, नख सिख सुन्दर रूप ॥१०५॥

सिंहासन के सन्निकट, रही दोऊ कर जोर ।
तब हँसि बोले श्री हरि, चितय चपल दृग कोर ॥१०६॥
अब नीके लखि लीजिये, लीला रास विलास ।
सुखरासी दासी चरन, आव हमारे पास ॥१०७॥
चरणदासि कर गहि उठे, श्रीमत् गोपीनाथ ।
पुनि लालन निरतन लगे, प्राण प्रिया लै साथ ॥१०८॥
वाम अंग श्रीराधिका, दहिने चरणहिदासि ।
मध्य विहारीलाल जू, नृत्तत उमँगि हुलासि ॥१०९॥
चहों ओर आली नचत, मंडल गोल बनाय ।
निरखत छवि रसमाधुरी, हर्ष न हृदय समाय ॥११०॥
लेत स्वल्पगति लाड़लो, बहु विधि भाव बताय ।
नैंन नचा लचकाय कटि, ताथइया मुख गाय ॥१११॥
अंग संग दै अधर रस, प्यावत प्रेम बढ़ाय ।
चरणदासि को श्यामघन, लेत भुजन भर धाय ॥११२॥
मुकट लटक मन को हरत, अलक रही बल खाय ।
छुटी कपोलन लाल के, चित को लेत चुराय ॥११३॥
मकराकृत कुंडल श्रवन, नाक बुलाक सुढार ।
मोती मटकत अधर पर, अजब सुराहीदार ॥११४॥
पाजामा कछनी ललित, पीत रंग मनहार ।
नख सिख लौं भूषण सजे, गल फूलन के हार ॥११५॥
रंग रँगीली लाड़ली, मदन मनोहर लाल ।
नटवर गति ले ले नई, रस बस कीनी बाल ॥११६॥

श्री राधे रासेश्वरी, सखियन की सरदार।
दरसायो चरनदासि को, नित नव रास विहार ॥११७॥
पुनि राजे दम्पति तबहि, सिंहासन पर जाय।
चरणदासि को कर कृपा, लइ निज निकट बुलाय ॥११८॥
हँसि बोले श्री हरि वचन, करके प्रेम अपार।
चरणदासि जा जक्त में, भक्ति करो विस्तार ॥११९॥
तबहि दासि दोउ जोर कर, आज्ञा सिर धर लीन।
परिक्रमा करके बहुरि, चरण प्रणाम सु कीन ॥१२०॥
नैंन मूँदि निज लीजिये, कही कृष्ण भगवान।
दृग मूँदे तब दास ने, ताही समय पिछान ॥१२१॥
पुनि अकाश बानी भई, चक्षु खोल चरनदास।
दृग खोलत ही आ गये, वंशीवट के पास ॥१२२॥
संतरूप आपन लखो, श्याम चरन के दास।
बिछुरन दम्पति मन समझ, अतिशय भये उदास॥१२३॥
धरनि गिरे व्याकुल विरह, देह दशा बिसराय।
नैंनन जल धारा बही, करत हाय हरि हाय ॥१२४॥
इसी भाँति बीतो दिवस, होय गई पुनि रैन।
प्रगट भये शुकदेव मुनि, निज शिष्य को सुख दैन॥१२५॥
श्रीसतगुरु नैंनन निरखि, उठ करि चरण प्रणाम।
व्याकुल हो विलपन लगे, बिन श्री श्यामा श्याम ॥१२६॥
विनय करी कर जोर के, दम्पति दरस कराय।
नाहीं तो तन त्यागि के, जीव निकस यह जाय ॥१२७॥

श्रीशुक मस्तक शिष्य के, धरो कृपा कर हाथ।
वंशीवट नीचे लखे, श्याम राधिका साथ ॥१२८॥
गलबैंयाँ दीने युगल, नवल लाड़िली लाल।
मंद मंद मुसकात मुख, रूपराशि छविजाल ॥१२९॥
श्री दम्पति के दरस कर, छके श्याम चरनदास।
रोम रोम में प्रगट भयो, परमानन्द हुलास ॥१३०॥
शिष्य के मस्तक से तभी, मुनि लियो हाथ उठाय।
दृष्टि परे दम्पति न तब, अचरज भयो अधिकाय॥१३१॥
श्री शुकमुनि चरनन परे, श्यामचरण के दास।
धन्यवाद श्री गुरुन को, कीनो सहित हुलास ॥१३२॥
पुनि गुरु शिष्य दोऊन में, ज्ञानगोष्ठि सम्वाद।
रह्यो रैन में रंग अति, उर उपजो आह्लाद ॥१३३॥
प्रात होत शुकमुनि कही, सुनो श्याम चरनदास।
दिल्ली जाके तुम करो, श्री हरि भक्ति प्रकास ॥१३४॥
शिष्य करी तब दंडवत, श्री गुरु चरनों माहिं।
शीस उठा देखन लगे, शुकमुनि दरसे नाहिं ॥१३५॥
श्रीशुकमुनि धर ध्यान उर, श्यामचरन के दास।
वृन्दावन से गवन कर, दिल्ली कियो निवास ॥१३६॥
रहन लगे आनन्द सों, कृष्ण ध्यान गलतान।
नर नारिन उपदेश दे, भजन करें भगवान ॥१३७॥
दूर देश रामत करन, जावें श्री महाराज।
भक्ति प्रचारें जक्त में, परमारथ के काज ॥१३८॥

रूप अनेकन धार के, भक्तन करी सहाय ।
जल थल देश विदेश में, चरणदास प्रगटाय ॥१३९॥
वैष्णव नागरिदास को, जगन्नाथ निज रूप ।
दरसायो करि के कृपा, सुन्दर अधिक अनूप ॥१४०॥
वैजनाथ विप्रन लखे, श्री महाराज सुजान ।
चरण प्रछाले गंगजल, शिष्य ह्वै गए अस्थान ॥१४१॥
वैष्णव परमानन्द की, मनसा पूरन कीन ।
कृष्णरूप निज ह्वै प्रभो, दर्श दयानिधि दीन ॥१४२॥
जोगजीत गुरुछोन को, दरसायो निज धाम ।
अमरलोक सँग ले गये, जहाँ श्री राधेश्याम ॥१४३॥
रामसखी सह वपु गई, श्यामसुन्दर के संग ।
जा पहुँची निजधाम में, जहाँ रास रस रंग ॥१४४॥
श्रीमति कुंजो मात को, दरस कराये श्याम ।
तन को तज के फिर गई, अमरलोक निजधाम ॥१४५॥
व्यभिचारी जयकरन को, कियो कृतारथ जाय ।
अमरलोक में ले गये, दम्पति दरश कराय ॥१४६॥
स्वर्ग प्रवाही गंगजल, सेवक दिये न्हवाय ।
जय जय श्री महाराज की, सकल उठे सुख गाय ॥१४७॥
साधू परमानंद को, डसो सर्प ने आय ।
श्यामचरण के दास प्रभु, लीनो तुरत जिवाय ॥१४८॥
दो कन्या पैदा हुई, सेवक के घर आन ।
निज प्रभुता सों पुत्र किए, चरणदास भगवान ॥१४९॥

रक्षा कीनी बैल सों, शिष्य प्रेम गलतान ।
घोड़े से लीनो बचा, निरमलदास सुजान ॥१५०॥
जमुना में न्हावत हुते, मुक्तानंद सु संत ।
ग्राह ग्रसे लीने छुड़ा, चरनहिं दास तुरंत ॥१५१॥
दूसर आतमराम को, दीने नर्क दिखाय ।
भय मानो यमदूत लखि, चरण शरण लइ आय ॥१५२॥
बैठे जमुना नाव में, डूबन लागे संत ।
ध्यान धरो महाराज को, दिये उबार तुरंत ॥१५३॥
छै महिने पहिले कह्यो, आवन नादिरशाह ।
परिचय पा चरनन परे, शाह मुहम्मदशाह ॥१५४॥
माना नादिरशाह ने, भक्तराज इर्शाद ।
मुरशद पीर पिछान के, कीना निज दिलशाद ॥१५५॥
गिलचे आये कतल को, कियो तरवार प्रहार ।
हाथ हुए जड़ सबन के, तब मन मानी हार ॥१५६॥
नौधा प्रेमा परा को, निशिदिन बरसे रंग ।
सदा होय हरि कीरतन, बाजत बीन मृदंग ॥१५७॥
सेवक साधू सन्त सब, रहैं ध्यान लवलीन ।
युगल लगन में मग्न नित, प्रेम सिंधु मन मीन ॥१५८॥
भक्ति हरी को कर दियो, श्री महाराज प्रचार ।
भारत में करने लगे, प्रेम भक्ति नर नार ॥१५९॥
सर्परूप श्री हरी ने, पार्षद दिया पठाय ।
आवो प्यारे धाम अब, दियो संकेत जनाय ॥१६०॥

तब निज सन्तन को बुला, बोले श्री महाराज ।
हम जावें हरिधाम को, कर मन वांछित काज॥१६१॥
भक्ति भजन करते रहो, सुमरो श्री हरिनाम ।
हरि गुरु उर विश्वास रख, रहो सदा निष्काम ॥१६२॥
तुम सब तन तजि आय हो, निश्चय मेरे धाम ।
प्रेम प्रीति कर प्यार सों, बोले गुरु गुणग्राम ॥१६३॥
श्री हरि आज्ञा सिर धरी, करी तयारी धाम ।
दशम द्वार निजपुर गये, जहाँ श्री राधेश्याम ॥१६४॥
सम्वत् अठारह सौ हुते, ऊपर उन्तालीस ।
देह त्याग चरनदास प्रभु, गये धाम जगदीस ॥१६५॥
अस्सी वर्ष भूतल विषै, राजे श्री महाराज ।
सरसमाधुरी भक्ति हरि, जक्त प्रचारन काज ॥१६६॥

श्रीमत् श्याम चरणदासाचार्य महिमा

चरणदास के चरण में, जो जन आये धाय ।
सूरज मण्डल वेध कर, वसे अमरपुर जाय ॥१६७॥
भेजे श्यामा श्याम ने, करन जगत उद्धार ।
चरणदास ने कृपा कर, किये पतित भव पार ॥१६८॥
चार पदारथ प्रेम सों, सबको कीने दान ।
चरणदास ने दया कर, कियो जक्त कल्यान ॥१६९॥
नवधा प्रेमा अरु परा, दियो भक्ति उपदेश ।
किये कृतारथ जीव जग, पार न पावत शेश ॥१७०॥

ज्ञान दियो ज्ञानीन को, जोगिन को दियो जोग।
भक्तन को दइ भक्ति हरि, मेटे भव दुख रोग ॥१७१॥
ज्ञानी विज्ञानी बड़े, जोगिन के सिरताज।
रसिकाचारज मुकुटमणि, चरणदास महाराज ॥१७२॥
दयावान दाता बड़े, पर दुख भंजन हार।
पतितन के पावन करन, चरणदास अवतार ॥१७३॥
सब सद्‌गुण सम्पन्न हैं, सब लायक महाराज।
सदा सहायक जनन के, मण्डन सन्त समाज ॥१७४॥
लोक और परलोक के, सुखदायक सिरमौर।
व्यापि रहे सब विश्व में, भीतर बाहर ठौर ॥१७५॥
भक्तन के मन भावने, रसिकन के रिझवार।
प्रेमिन के प्रभु प्राणप्रिय, चरणदास सरकार ॥१७६॥
शिष्यन के संशय हरन, सेवक जन प्रतिपाल।
आश्रितजन रक्षा करन, श्री रणजीत दयाल ॥१७७॥
प्रगट भये संसार में, दूर करन भव भार।
धर्म सनातन भागवत, चहुँ दिशि करन प्रचार॥१७८॥
जिज्ञासू जन मुमुक्षु, चरण शरण लइ आय।
चरणदास प्रभु कृपाकर, श्री हरि दिये मिलाय ॥१७९॥
सेवा में ठाड़ी सदा, अष्टसिद्धि नव निद्धि।
चरणदास दाता बड़े, जग में भये प्रसिद्धि ॥१८०॥
रंकन को राजा किये, दिये मुल्क अरु माल।
चरणदास चरणन परे, सो सब हुवे निहाल ॥१८१॥

भूत भविष्य वर्तमान के, त्रिकालज्ञ महाराज।
चरणदास की दया सों, सुधरे सब के काज ॥१८२॥
दै दै परिचय विविध विधि, कलि जिय किये सचेत।
चरणदास विश्वास दे, प्रगटायो हरि हेत ॥१८३॥
भगवत धर्म प्रचार हित, लियो अवनि अवतार।
चरणदास तारण तरण, अधम उधारण हार ॥१८४॥
चार धाम सातों पुरी, तीरथ क्षेत्र सुठौर।
चरणदास बहु रूप धर, रमें रसिक सिरमौर ॥१८५॥
घर घर सेवा श्याम की, राग भोग रसखान।
चरणदास की दया सों, भक्ति करी भगवान ॥१८६॥
पुरुषोत्तम परमात्मा, अवतारी जगदीश।
चरणदास दृढ़ उपासन, थापी विश्वा वीश ॥१८७॥
रसिक अनन्यन की रहनि, रस उपासना भाव।
चरणदास सबही कहैं, सुन उपजै चित चाव ॥१८८॥
पापी अधम अनेक को, कियो जक्त सों पार।
चरणदास सन्मुख हरी, पहुँचाये कर प्यार ॥१८९॥
बहु जीवन को वपु सहित, कृष्ण ले गये धाम।
चरणदास की दया सों, मिलो महल विश्राम ॥१९०॥
बहुतन को संसार में, श्री हरि दिये मिलाय।
चरणदास ने सबन की, बिगरी दई बनाय ॥१९१॥
आचारज का रूप धर, जग में प्रगटे आय।
चरणदास निज कृष्ण हो, दरसन दिये कराय ॥१९२॥

निर्धन जन को धन दियो, पुत्रहीन सन्तान।
सबको मन वांछित कियो, चरणदास भगवान ॥१६३॥
बंधन में जो जन परे, तिनको दियें छुड़ाय।
मृतक जिवाये बहुत से, महिमा कही न जाय ॥१६४॥
ज्ञान योग वैराग को, जग में कियो प्रचार।
कीनो भगवत धर्म को, चरणदास विस्तार ॥१६५॥
ग्रन्थ भक्तिसागर सरस, वाणी पाँच हजार।
महाराज बरनन करी, प्रेम भक्ति भंडार ॥१६६॥
जोग ज्ञान वैराग को, बरनो विविध प्रकार।
अरु गायो निज धाम को, अनुपम नित्य बिहार ॥१६७॥
खंडन मंडन मतन को, कियो न श्री महाराज।
गीता अरु भागवत मत, विरचो धर्मजहाज ॥१६८॥
जो बाँचें नित नेम सों, बानी परम पुनीत।
पावे परमानन्द सुख, धाम जाय जग जीन ॥१६९॥
सुन समझे दृढ़ उर धरे, करनी करे जु कोय।
लहै पदारथ चार सो, श्री हरि वल्लभ होय ॥२००॥
बानी रससानी सुनत, नास्तिकता होइ दूर।
आस्तिकता उपजे अधिक, हरिगुन हिय भरपूर ॥२०१॥
संप्रदाय शुकदेव मुनि, इष्ट राधिका श्याम।
चरणदास वृन्दा विपिन, बरणन कीनो धाम ॥२०२॥
नव निकुंज व्रज की अमित, लीला के रस भेद।
दिय जनाय निज जनन को, कियो सकल भ्रम छेद ॥२०३॥

दिव्य मानसी महल की, टहल करन की रीत ।
श्यामचरण के दास ने, प्रगट करी सह प्रीत ॥२०४॥
अली मंजरी सहचरी, सखी सहेली वाम ।
ग्रन्थ भक्ति रस मंजरी, कहे तहाँ चित चाव ॥ २०५॥
दम्पति सेवा सुख मई, सब को दई बताय ।
श्यामचरण के दास हो, सहचरि पद लियो पाय॥२०६॥
रंगमहल युग टहल में, पहुँच लह्यो आनन्द ।
चरणदास चरणन परसि, पायो परमानन्द ॥२०७॥
चरणदास के चरण की, लई शरण जिन आय ।
तिनको श्री प्रीतम प्रिया, लीने हैं अपनाय ॥२०८॥
चरणदास के चरण को, जिनके लागो रंग ।
प्रेम पगे प्रीतम प्रिया, तजे न तिनको संग ॥२०९॥
चरणदास के चरण में, जो दृढ़ लगे सनेह ।
रीझति तिन्ह राधे रसिक, महल खवासी देह ॥२१०॥
चरणदास के चरण में, जो नवाय निज माथ ।
कुँवरि किशोरी राधिका, रीझ गहे तिहि हाथ ॥२११॥
श्यामचरण के दास को, जपे प्रेम कर नाम ।
तिनको दम्पति भुजन भर, हँसि भेंटैं सुखधाम ॥२१२॥
चरणदास के ध्यान में, जो जन हो गलतान ।
उज्वल नवल निकुंज रस, करे निरन्तर पान ॥२१३॥
भजे भाव कर जिन्होंने श्याम चरण के दास ।
पहुँचे सोइ निकुंज में, जहाँ नित्य रस रास ॥२१४॥
होत रहत जहाँ परस्पर, दम्पति विविधि विलास ।

7084

रहत निकटवर्ती तहाँ, श्याम चरण के दास ॥२१५॥
गुप्त प्रगट लीला ललित, करत राधिका श्याम ।
चरणदास चरणन परसि, पाय तहाँ विश्राम ॥२१६॥
दृढ़ कर गहे अनन्य व्रत, चरणदास प्रभु इष्ट ।
सरसमाधुरी रस मिले, महा मधुर अति मिष्ट ॥२१७॥
जो जन मन वच कर्म कर, भजे श्याम चरन्दास ।
रिधि सिधि सम्पति प्राप्त हो, अशुभ अमंगल नास ॥२१८॥
लोक और परलोक के, रक्षक श्री महाराज ।
सरसमाधुरी शरण की, सब विधि उनको लाज ॥२१९॥
स्वामी रामहि रूप जी, जोगजीत जी जान ।
दोउन ने अनुपम कह्यो, जीवन चरित वखान ॥२२०॥
तिन दोउन को सार यह, सूक्षम रचना कीन ।
पढ़ो सुनो सब प्रेम सों, साधू रसिक प्रवीन ॥२२१॥
जैसे सुन्दर सुमन की, लई सुगन्धि निकार ।
सरस माधुरी ने रचो, यह चरितामृत सार ॥२२२॥
चरितामृत को प्रीत कर, पठन करे नित जोय ।
सुफल होहिं सब मनोरथ, गुरूभक्ति दृढ़ होय ॥२२३॥
शुभ सम्वत उन्नीससौ, और तिहत्तर जान ।
चैत्र कृष्ण तिथि द्वादशी, भयो समाप्त सुखदान ॥२२४॥
जयपुर शहर सुहावनो, जहाँ दरीबा पान ।
सरसमाधुरी ने कह्यो, चरितामृत रसखान ॥२२५॥

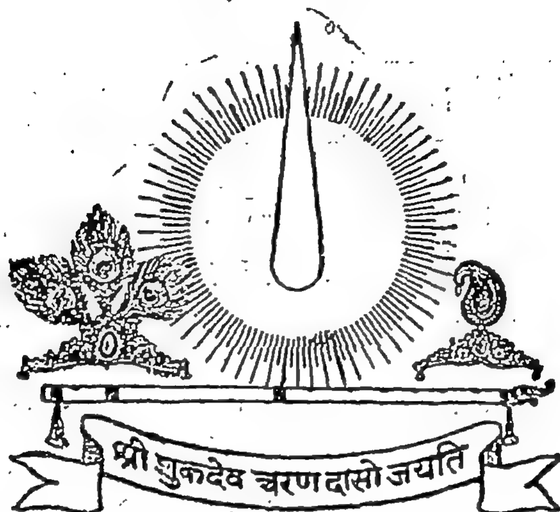
॥ इति ॥

शुद्धाशुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्ध
४६	१४	वाको	व्हाँका
६४	७	चित	नित
१०१	६	सेव	सेव्य
१०४	१६	अस	अरु
१०७	५	निरखि	निरखै
१३८	११	हिये	पिवै
४३२	२१	कछु सुहाय	कछु न सुहाय
५६८	फुटनोट १	सिपही	सिपाही
६०४	७	फो	को
६१२	१	देइ	देह
६२४	२०	तमको	तुमको
६६०	१६	पुत्त्र	पुत्तर
६६२	१६	पुतर	पुत्तर
६६६	१	उवास	उवाच
७०७	अन्तिम	धाटा	घाटा



राधेश्याम शुकदेव। श्यामाश्याम चरणदास ।।



श्री शुक सम्प्रदाय का सिद्धान्त, उपासना, धाम व तीर्थ आदि

सम्प्रदाय शुकदेव मुनि, चरणदास गुरु द्वार।
परम धर्म भागवत मत, भक्ति अनन्य विचार ।।

★ —भक्ति सागर

राधा कृष्ण उपास्य, धर्म भागवत हमारो।
निज वृन्दावन धाम, मुक्ति समीप्य निहारो ।।
तीरथ गंगा जान, व्रत ग्यारस को धारो।
क्षमा शील संतोष दया, निज हिये विचारो ।।

★ —मुक्तिमार्ग

कुन्जबिहारी, श्री शुकदेव।
श्यामचरनदास, जै श्री गुरुदेव ।।

★

॥श्रीमन्निकुञ्जविहारिणे नमः॥





❀ मङ्गलाचरणम् ❀

प्रह्लाद नारद पराशर पुण्डरीक,
व्यासाम्बरीष शुक शौनक भीष्म दालभ्यान्।
रुक्माङ्गदार्जुन वसिष्ठ विभीषणादीन्,
एतानहं परम भागवतान्नमामि॥

❀ षोडशाक्षर महामन्त्रः ❀

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

अथ श्री स्वामी चरणदासजी रचित ग्रन्थ

❀ श्री भक्तिसागर प्रारम्भ ❀

दोहा—मथुरा मण्डल परम शुचि, वृन्दावन रसरास।
रच्यो शुकमुनी शिष्य ने, नाम श्यामचरनदास॥

❀ अथ व्रज चरित्र वर्णन ❀

❋ दोहा ❋

दीनानाथ अनाथ की, विनती यह सुनि लेहु ।
मम हिरदय में आय कै, व्रज गाथा कहि देहु ॥१॥
चार वेद तुम कूँ रटे, शिव शारदा गणेश ।
और न शीश नवाय हूँ, श्री कृष्ण करो उपदेश ॥२॥
कै गुरु कै गोविन्द को, भक्ती कै हरिदास ।
सबहुँन को एकै गिनौ, यथा पुष्प अरु वास ॥३॥
नारद मुनि अरु व्यासजी, करिये कृपा दयाल ।
अक्षर भूलौं जो कहीं, कहौ मोहिं ततकाल ॥४॥
श्री शुकदेव दयाल गुरु, मम मस्तक पर ईश ।
व्रज चरित्र मैं कहत हौं, तुमहिं नवाये शीश ॥५॥
सब साधुन परणाम करि, कर जोरौं शिर नाय ।
चरणदास विनती करै, वाणी देहु बनाय ॥६॥
सदा शम्भु व्रज में रहैं, करि गोपी को रूप ।
सूरति तौ परगट भई, आप रहत हैं गूप ॥७॥
वंशीवट ढिग रहत हैं, करत रहत हैं ध्यान ।
वक्ता वेद पुराण के, परम पुरातन ज्ञान ॥८॥
ब्रह्मादिक कलपत रहैं, वृन्दावन के हेत ।
सुधि आये व्रज भूमि की, विसरि जाय सब वेद ॥९॥

अब व्रज की गति गाय सुनाऊँ । बुद्धि शुद्धि हरिभक्ति जु पाऊँ

चिन्ता मेटन भूमि बखानी । रणजीत मीत जहँ दुम[1] बिनानी[2] ॥
कमलापति को चक्र सुदर्शन । चरणदास ताको करै वन्दन ॥
मथुरा मण्डल तापर रहै । व्यासदेव मुनि ऐसे कहै ॥
वाराह संहिता में जो गायो । सो मैं भाषा बीच बनायो ॥
गोवर्धन महिमा अति भारी । चरणदास ताके बलिहारी ॥
जाकी महिमा सब ने गाई । जहाँ कृष्ण नित गऊ चराई ॥
खरिक[3] बनाय धेनु जहाँ राखी । अजहूँ चिन्ह देत हैं साखी ॥

दो०—गोवर्धन बिनती करूँ, मो बिनती सुनि लेहु ।
जगत फाँस सों काढ़ि करि, भक्ति दान मोहिं देहु ॥१०॥

हाटकरूप[4] अडोल खरारी[5] । जाकी शरण रही व्रज सारी ॥
ता दिन इन्द्र कोप पठाये । सकल मेघ झुकि व्रज पर आये ॥
करपल्लव[6] पर गिरि हरि धारो । तबही शरण रहो व्रज सारो ॥
दिव्य दृष्टि बिन दृष्टि न आवै । कञ्चनरूप पुराण बतावै ॥
मथुरा मण्डल में गिरि सोई । मथुरा मण्डल अब सुनि लोई ॥
चौरासी कोसी परमाना । मथुरा मण्डल व्यास बखाना ॥
हरि के चरण सदा जो परसैं । कृष्णरूप में निशि दिन सरसैं ॥
सखा सङ्ग लीये हरि डोलैं । सखियन के सङ्ग करत किलोलैं ॥

दो०—सदा कृष्ण व्रज में रहैं, मोहिं मिलत हैं नाहिं ।
लहर महर कबहूँ करैं, आनि गहैं मोरी बाहिं ॥११॥

जामें बारह वन बड़भागी । बारह उपवन हैं अनुरागी ॥

१ द्रुम—वृक्ष २ विज्ञानी—ज्ञान स्वरूप ३ गौओं के रहने का स्थान
४ स्वर्णरूप ५ खर राक्षस के शत्रु ६ अंगुली ।

जिन माहीं हरि वेणु बजावैं । मधुर मधुर वाँके सुर गावैं ॥
चौथे[१] पद को है वह स्वामी । सब जीवन को अन्तरयामी ॥
भक्तन हेतु रहैं व्रज माहीं । गुप्त रहैं वृन्दावन ठाहीं ॥
फिरत रहैं सबही वन सुन्दर । अन्तर बन्यो रास को मन्दर ॥
जगत दृष्टि सों रहैं अलोपा । मिलि हैं ताहि ध्यान जिन रोपा ॥
मथुरा मण्डल परगट नाहीं । परगट है सो मथुरा नाहीं ॥
मथुरा मण्डल यही कहावै । दिव्य दृष्टि बिन दृष्टि न आवै ॥
दो०—वन उपवन अब कहत हौं, मथुरा मण्डल माहिं ।
बिना भक्ति व्रजनाथ की, क्योंहूँ दीखत नाहिं ॥१२॥
उपवन कदम मंडत वन दूजा । नंदीसुर नंद वन सूझा ॥
मङ्गल आनँद वन वहि गायो । जहाँ महर[२] जा गाँव बसायो ॥
संकेत वन सो सब जग जानै । बरसानो सब को पहिचानै ॥
भोजन थाली वही कहायो । जहाँ बैठि भात हरि खायो ॥
सुगन्ध वन अब सोइ कहावै । अखण्ड वन पुस्तक दरशावै ॥
खेलन द्रुम वन खेलत रहैं । मोहन वन केती वन कहैं ॥
दधिग्राम वन वही कहायो । लूटि लूटि जहाँ दधि खायो ॥
वत्सहरन वन वही कहायो । ब्रह्मा माया देखि भुलायो ॥
दो०—ग्वाल बाल ब्रह्मा हरे, राखे कहूँ दुराय ।
जानि बूझि टारो दियो, लीन्हें और बनाय ॥१३॥
जब ब्रह्मा समझो करि ज्ञाना । कर्ता कृष्ण सत्य करि जाना ॥
फिरि चेतन ह्वै शीश नवायो । आदिपुरुष पुरुषोत्तम पायो ॥

१ तुरीय पद २ नंदबाबा ।

द्वादश उपवन गाय सुनाये । मथुरा मण्डल मध्य बताये ॥
द्वादश वन की गति सुनि लीजै । जिन माहीं हरि ध्यान करीजे ॥
भद्र वन अति महा सुहायो । श्रीवन लालन के मन भायो ॥
भांडीर वन की महिमा गाऊँ, भिन्न भिन्न कहि तोहि समझाऊँ ॥
लोह वन महिमा कहियत भारी, महा वन सुन्दरता अति धारी ॥
तालर वन वहि दृष्टि निहारो । दानव धेनुक जहँ हरि मारो ॥
दो०—दानौं[1] धेनुक महाबली, भाव भक्ति हरि हेत ।
मुक्ति काज सेवन कियो, तालर वन को खेत ॥१४॥
खिदर वन जानत सब कोई । फूल माल जहँ लालन पोई ॥
बहुला वन घन दुरमन छायो, कुमुद वन तोसों कहि समुझायो ॥
कामा वन लालन सुखदाई । मधु वन लालन भूमि सुहाई ॥
वृन्दावन की शोभा भारी । रास रच्यो जहाँ श्री बनवारी ॥
वन उपवन शोभा गति ईशा । शिव ब्रह्मादिक नायो शीशा ॥
इन्द्र वरुण कुबेर विज्ञानी । इनहूँ गति मति ब्रज की जानी ॥
बलि रावण जहाँ सेवा लाई । ऊँची नव निधि उनहूँ पाई ॥
सप्त ऋषिन[2] मिलि सेवन कीन्हों, ऊँचो आसन ध्रुव को दीन्हों ॥
दो० बहुतक सुर नर तरि गये, तप करि ब्रज के बीच ।
जाति पांति को को गिनै, ऊँचा नीचा नीच ॥१५॥
वृन्दावन सब सों बड़ो, जैसे दूध में घीव ।
सब धर्मन हरि भक्ति ज्यों, जैसे पिण्ड[3] में जीव ॥१६॥
सब तीरथ जग में बड़े, जिनहूँ में है ईश ।

१ दानव २ नारद, वशिष्ठ, भृगु, अंगिरा, कश्यप, विश्वामित्र, पुलस्त्य ३ देह ।

उन तीरथ फल कामना, इहि सेवन जगदीश ॥१७॥
बीस कोस के फेर में, वृन्दावन कूँ जान ।
कुंज गली अति सोहनी, द्रुमबेली[१] पहिचान ॥१८॥
कंचन की जहँ भूमि है, धरे सतोगुण भेप ।
चरणदास बलि बलि गयो, दिव्य दृष्टि करि देख ॥१९॥
फूल जु फूले ऋतु बिना, नाना छवि बहु रङ्ग ।
अलि[२] भुलकत[३] गुञ्जत फिरैं, भँवरी सुत लै सङ्ग ॥२०॥
ऋतु वसन्त जहँ नित रहत, विहरत नन्दकिशोर ।
कुहँकत कोयल मगन होय, बोलत दादुर मोर ॥२१॥
तिहि मधि वृन्दावन महा, निज वृन्दावन जान ।
तिरकोणी वर्णन कियो, जोजन[४] है परमान ॥२२॥

जाकी महिमा सबहुन गाई । रास करैं जहाँ कुँवर कन्हाई ॥
जमुना जहाँ परिक्रमा दीन्ही । गुप्त पिया की लीला चीन्ही ॥
गोप सुता जहाँ नित उठि न्हाई,वर पूरण पायो कुँवर कन्हाई ॥
श्याम रङ्ग निर्मल जल गहरी, वृन्दावन के ढिग ढिग लहरी ॥
आसा मनसा करि कोइ न्हावै, सहस सुरसुरी[५] को फल पावै ॥
दिव्य वृन्दावन दिव्य कालिन्द्री[६] । देखै सो जीतै मन इन्द्री ॥
किनार निकट वृच्छन की छाहीं । आय परी जमुना जल माहीं ॥

दो०—भक्ति बिना पावै नहीं, वृन्दावन की संध ।
बिन पाये निन्दा करै, भोंदू मूरुख अंध ॥२३॥

१ वृक्ष लता २ भ्रमर ३ प्रफुल्लित ४ चार कोस ५ श्रीगङ्गाजी
६ श्री यमुनाजी ।

झिलमिल सुवक्की[1] उठत तरङ्गा, बोलत दादुर अरु सुर[2]भंगा[3]॥
कालीदह महिमा सुनु भ्राता। सहस गंग के फल की दाता॥
विहार घाट वसि भजन करीजै, जेहि सेवनजम ज्वाव न दीजै॥
वंशीवट वसि हठ इमि कीजै। तजै देह जब दर्शन लीजै॥
अब सुनु वृन्दावन की बतियाँ। शीतल करी हमारी छतियाँ॥
वन घन कुञ्ज लता छवि छाई। झुक टहनी धरणी पर आई॥
करत मंद समीर पयाना। वसत सुगन्ध सबै अरघाना[4]॥
वरसत अमृत फुही सुहाई। निकसत कोमल गोभ[5] गुहाई॥

दो०—वृन्दावन में रहत हैं, ज्ञानी गुणी अतीत।
वृन्दावन को ना मिलैं, कोऊ लहत जगजीत॥२४॥

नित वसन्त जहँ सुगन्ध सुरारी। चलत मन्द जहाँ पवन सुखारी॥
पुहुप विकसि रहे रङ्ग विरङ्गा। लेत वास गुंजत सुरभृङ्गा॥
बोलत भँवर महाध्वनि गाजैं। मानो अनहद की गति साजैं॥
जुगुनू दमकि चमकि चकरावैं। समय जानि कर हर्ष बढ़ावैं॥
नाचत मोर करत चतुराई। पंख पसारि मुदित मगनाई॥
कैइक उचक बोल निज बोलैं। कैइक कुञ्जन ऊपर डोलैं॥
युगल नाम लै कीर पुकारैं। वार वार वन ओर निहारैं॥
वृन्दावन चारों युग माहीं। गुप्त रहै शुकदेव बताहीं॥

दो०—वृन्दावन की साधुगति, कापै वरणी जाय।
जैसी जाकी दृष्टि है, तैसो ही दरशाय॥२५॥

---

१ तेज २ स्वर ३ भृङ्गा ४ प्रसन्न करना ५ अंकुरित होना।

जैसे हरि मथुरा गये, सबन विलोके आय।
काल कंस की दृष्टि में, साधुन प्रभू लखाय ॥२६॥
मथुरा में योधा बड़े, जिन्हें मल्ल दरशाय।
नारिन दरशै काम सम, प्रीति रीति अधिकाय ॥२७॥
वृन्दावन सोइ देखि हैं, जिन देखो हरि रूप।
दुर्लभ देवन को भयो, महागूप सों गूप ॥२८॥
वृन्दावन सेवन करै, अमरलोक को जाय।
इन्द्री जीतै हरि भजै, प्रेम प्रीति के भाय ॥२६॥

रसिक केलि वृन्दावन माहीं। अमरलोक की भाँति कराहीं ॥
अमरलोक तिहुँलोक सों न्यारो। मथुरामण्डल अंश विचारो॥
अमरलोक विच है निजधामा। जासु अंश वृन्दावन नामा ॥
पुरुषोत्तम निज धामा माहीं। कारण प्रेम रहै व्रज आई ॥
पुरुषोत्तम प्रभु लीलाधारी। वृन्दावन में सदा विहारी ॥
निज धामा की कहियत शोभा। वृन्दावन में रहै अलोपा[१] ॥
दिव्य दृष्टि विन दृष्टि न आवै। सकल पुराण वेद यों गावै॥
गोल चौंतरो निज वृन्दावन। तापर वारौं अपनो तन मन ॥
रहो चौंतरो छिपि वहि ठाहीं। अग्नी यथा काठ के माहीं ॥
तापर चौंसठि खम्भा सोहैं। कोटिकाम को निज मन मोहैं ॥
तापर रंगमहल अधिकारी। कुन्दन[२] रूप स्वरूप सुखारी ॥
रंगमहल अरु खम्भन माहीं। पन्ना लाल वेलि की नाईं ॥
पन्ना नग लागे जहँ मोती। झलकैं जगमग जगमग ज्योती ॥

१. प्रकट, २ स्वर्ण।

रंगमहल यों छिप्यो गोसाईं । जैसे लाली मेहँदी माईं ॥
नित विहार जहँ करैं विहारी । कृष्ण कुँवर अरु राधाप्यारी ॥
गौर रूप वृषभानु दुलारी । श्याम रूप हैं कृष्ण मुरारी ॥
नीलाम्बर ओढ़े सँग राधा । दिव्य आभूषण रूप अगाधा ॥
भूषण अंग अंग लाजत ऐसे । चन्द निकट लघु तारे जैसे ॥
पीत वसन पहिरे नँदलाला । मोर मुकुट माथे गलमाला ॥
जरद[1] बादले को अंग नीमा । बद्धी गलजिंदे[2] सुख सीमा॥
मोतियन की माला गल सोहै । नाक बुलाक अधर पर जोहै ॥
मकराकृत कुण्डल श्रवनन में । युगल दामिनी मानहु घन में ॥
श्याम भुवंगम जुलफैं प्यारी, बाँकी भौंह कुटिल[3] अनियारी ॥
ललचौहैं[4] अरु नैन ढरारे[5] । रस के माते अरु कजरारे ॥
मोती नासा के बिच लटकै । बोलत बोल होठ पर मटकै ॥
मुरली मुक्ता को रस पीवै । चाहन वारो देखत जीवै ॥
गले धुकधुकी[6] सुन्दर झमकै, तामधि कौस्तुममणि अति दमकै॥
अधिक सुघर[7] पहिरे हियचौकी, वनमाला कहियत नौनिधि की॥
गोल भुजन पर बाजू सोहैं । पहुँची कड़ा कनक कर दो हैं ॥
पहुँची ढिंग पहिरे जहँगीरी[8] । रतनचौक[9] छवि लगी जँजीरी ॥
रतनचौक है पीठ हथेली । लगी जँजीर मुँदरियन भेली ॥
सोहैं छाप छला अरु मुँदरी । तुहसत[10] पहिरे सुन्दर अंगुरी॥
इक्कीस चिन्ह चरणनमें धारे, झुनुक झुनुक पैंजनि झनकारे ॥

---

१ पीला २ गले के आभूषण ३ तीखो ४ लुभाने वाले ५ ढलावदार ६ लटकन
७ सुन्दर ८ हाथ का आभूषण ९ हथफूल १० उंगलियों का आभूषण ।

मन्द मन्द विहँसत मुसकाई, रणजीत मीत छवि कही न जाई॥
नित्यकिशोर अरु नित्यकिशोरी, द्वादश बरस अवस्था भोरी ॥
राधे भूषण छवि कह गाऊँ । नाम लेत मन में शरमाऊँ ॥
हूँ मैं दास नाम रणजीत । भक्ति दान मोहिं दीजै रीत ॥
बहुत सखी जिनके निज संगा । रास केलि खेलैं बहुरंगा ॥
बन के चौसठि खम्भे माहीं । होत अखण्ड रास वहि ठाहीं ॥
झुनुक झुनुक सखियन पग बाजैं। घुँघुरू अधिक महाध्वनि गाजैं॥
दिव्य भूषण पहिरे पिय प्यारी, शशिवदनी[१] तिरगुण ते न्यारी॥
नवल किशोरी गोरी सारी । सुघर[२] सयानी चातुर नारी ॥
दिव्य वस्त्र अरु मधुर शरीरा, अधिक रूप छवि गहर गंभीरा ॥
कजरारी कच[३] लटकैं बेनी । अंजन नैन सैन पिय देनी ॥
चूड़ामणि गहनो छवि नीको । शीशफूल अरु बेनी टीको ॥
नथ बुलाक अरु बन्दी[४] झलकैं । घूंघरवाली लटकैं अलकैं ॥
मुख ऊपर अलकैं छवि ऐसी । चन्द चढ़ी द्वै नागिनि जैसी ॥
करणफूल सँग झुमके मलकैं[५], सब सखियन के भूषण झलकैं॥
चम्पाकली नौलड़ी माला । चन्दनहार सु पहिरे बाला ॥
कठुला जैसे गले जनेऊ । अरु हिय चौकी महा अभेऊ[६] ॥
फूलमाल सखियाँ सब पहरे । गुंजन की माला हिय लहरे ॥
बाँहन में बाजूबँद बाँधे । बंकबला[७] बाँहन पर साधे ॥

१ चन्द्रमा का सा मुख २ सुडोल ३ बाल ४ बेंदी ५ लटकते हैं ६ अद्भुत
७ बलदार भुजा का कड़ा ।

सदा सुहागिनि पहिरे चूरी । सुबक[1] पछेली बँगरी रूरी ॥
कंगनी अरु पहिरे जहँगीरी । रतन चौक आरसी धीरी ॥
छाप छला अरु पहिरे गूंठी । नुहसत पहिरे अजब अनूठी ॥
पाँवन में पग नेवर बाजैं । नखशिख लौं आभूषण साजैं ॥
झुनुक झुनुक नाचैं अरु गावैं, ठुमुक ठुमुक निरतैं अरु धावैं ॥
कबहूँ थेइथेइ थेइथेइ करैं । कबहूँ कर ऊपर कर धरैं ॥
कबहूँ थिनन थिनन अँग मोरैं । भाव बताय तान बहु तोरैं ॥
कबहूँ कर उठाय गति चालैं । सांगोपांग बतावत हालैं ॥
ह्वै अनुराग राग बहु गावैं । घुँघुरू की गति अधिक बजावैं ॥
कोई नाचै कोई गावै । कोइ मृदंग कोइ ताल बजावै ॥
बैनसरू[2] काहू कर राजै । कोउ तँबूरा नारी साजै ॥
उपँग[3] लिये कर कोउ सहेली, अमृतकुण्डली[3] कोउ अलबेली ॥
कोइ बीन कोइ लै मुहचङ्गा । मगन रूप सबही निज सङ्गा ॥
दो०—कहा बुद्धि कहा कहि सकूँ, रासकेलि को साज ।
बाजे हैं बहुभाँति के, वर्णत आवे लाज ॥३०॥
कबहूँ कर सों कर मिला, नृत्यत श्रीगोपाल ।
कबहूँ बैठे साँवरो, नृत्यत सुन्दर बाल ॥३१॥
कबहूँ हँसि करि निकट बुलावैं, कबहुँ फूलमाल पहिरावैं ॥
कबहूँ मन्द मन्द मुसकावैं । बैन सैन दै नृत्य बतावैं ॥
वृन्दावन में ऐसी लीला । चरणदास को जहाँ बसीला ॥
जो कोइ इनको ध्यान लगावै । अमरलोक निश्चय करि पावै ॥

१ सुन्दर २ एक प्रकार का वाद्य ३ वाद्य का नाम ३ एक प्रकार का वाजा ।

सिमिटो मन कबहूँ नहिं फूटै । सोवत जागत ध्यान न छूटै ॥
जो कोइ इनको ध्यान न करिहै, भरमि भरमि चौरासी परिहै॥
सुरनर मुनि सबही मिलि ध्यावैं, शिव ब्रह्मादिक अन्त न पावैं॥
वेद बिना यह भेद न पावै । आप भरमि अरु जग भरमावै॥
वेद पुराण संहिता गावैं । चारों युग हरि भक्ति बतावैं ॥

दो०—इत उत भटको जग फिरै, कीन्हों नाहिं विचार ।
सत्य पुरुष जानो नहीं, कैसे उतरै पार ॥३२॥

द्वापर बीतो कलियुग आयो । राजा को शुकदेव सुनायो ॥
कलियुग की दुर्बुद्धि बताऊँ । सुनहु परीक्षित कहि समुझाऊँ ॥
ओछी बुद्धि मनुज की होगी, सकल विकल अरु मन के रोगी ॥
सूक्षम ज्ञान महा अभिमानी । नहीं मानि हैं वेद पुरानी ॥
परमेश्वर की निन्दा करि हैं । भूत मसानी चित में धरि हैं ॥
खेतरपाल भूमिया मानैं । कृत्रिम को कर्ता करि जानैं ॥
परमेश्वर की बात न भावै । ऐसो उत्तर तुरत बतावै ॥
कहिहैं राम कहाँ है भाई । हमहूँ को तुम देहु दिखाई ॥

दो०—चहूँ ओर हरि को विभव, सात द्वीप नौ खण्ड ।
चरणदास कहै सुनि आँधरे, रच्यो कौन ब्रह्मण्ड ॥३३॥
भक्ति बिना दीखै नहीं, इन नयनन हरिरूप ।
साधुन को परगट भयो, बिना भक्ति हरि गूप ॥३४॥

साधु सन्त की निन्दा करि हैं । भजन करै तासों बहु अरि हैं ॥
करि अभिमान आप में जरि हैं, गुरु को कहो नेक नहिं करि हैं ॥
पंथ खड़े करि हैं छत्तीसा । भरम पूजि तजि हैं हरि ईसा ॥

दम्भ झूठ की सेवा करि हैं। झूठे पंथन में जा रलि हैं ॥
गऊ ब्राह्मण अटल होई। बाप पूत में परि है दोई ॥
विद्या दान कपट व्यवहारा। राजा दुष्ट दुखित संसारा ॥
वेद पढ़े करि हैं अभिमाना। हम पंडित अरु सब अज्ञाना ॥
पढ़ि पुराण भेद नहिं जानैं। साधुन सों झगड़े बहु ठानैं ॥
पंथ पुजाय हरि को बिसरावैं। झूठे वाद विवाद बढ़ावैं ॥
व्यभिचारिणि होइ हैं बहु नारी। बोलैं झूठ बहुत परकारी ॥
शुकदेव कहे राजा सों बैना। सो अब देखे अपने नैना ॥
राजा डाँड़ि[1] बाँधि करि लूटैं। पूजैं भूत राम सों छूटैं ॥
गौ विष्ठा सो खाती जानी। पंडित देखे बहु अभिमानी ॥
दम्भ कपट बहु पूजा दौरी। कलुवा जाहर पूजैं बौरी ॥
पण्डित वेद पढ़े बिसरावैं। स्याने भोपे को शिर नावैं ॥
हरि के साधुन को बिसरावैं। तजैं राम औरन को ध्यावैं ॥
हरि की भक्ति सदा चलि आई। वेद पुराणन में जो गाई ॥
इनको समझि भये जो ज्ञानी। नाभा जिनकी भक्ति बखानी ॥
जिनकी महिमा सब जग जानी। सब जानत हैं चतुरा ज्ञानी ॥
पीपा सदना सैना नाई। धन्ना जाट अरु मीराबाई ॥
नामदेव रैदास चमारा। तुलसी माधो मीर बिचारा ॥
कूबा कुम्हरा फत्तू सक्का। सेऊ सम्मन रङ्का बङ्का ॥
करमैती अरु करमाबाई। दास कबीरा बाणी गाई ॥
जैदेवा अरु नरसी महता। दास मलूक कड़ा[2] में रहता ॥

१ दंड (कर) २ ग्राम का नाम।

अनन्तानन्द कील अरु जंगी। देव मुरारि निपट सरवंगी ॥
नरहरि लालदास हरिवंसा। रंगनाथ बनवारी हंसा ॥
नानक सूरदास अरु दादू। सनक सनन्दन कहिये आदू ॥
ध्रुव प्रह्लाद विभीषण शवरी। हनूमान शङ्कर औ गवरी ॥
वाल्मीकि अँबरीष सुदामा। मोरध्वज राजा संग्रामा ॥
बहुतक भक्त और जो भये। नाम न जानूं जात न कहे ॥
कई कोटि वैष्णव बाँके। सबही गये मुक्ति के नाके ॥
चरणदास हरिभक्ति विचारी। सुमिरि सुमिरि पहुँचो नरनारी ॥
दो०—लिखि पढ़ि समझि विचार करि, सदा करौ हरि ध्यान।
कृष्णभक्ति दृढ़ करि गहौ, मिटै सकल अज्ञान ॥३५॥

॥ कवित्त साङ्गीत ॥

मुकुट जटित शिर अधिक विराजत, गहे बँसुरिया अधर धरणम्
शङ्ख चक्र गदा पद्म विराजत, कोटि मदन की छवि बरणम् ॥
गिरिवर नखधारे असुरन मारे, सन्तन के दुख को हरणम् ॥
जन चरणदास चरणन को चेरो, सदा रहै गिरिधर शरणम् ॥
कुमकुम बिन्दो दीपित भालं, उदधिजात[1] की द्युति हरणम् ॥
मकराकृत कुण्डल अति राजत, झुमक दामिनी छवि धरणम् ॥
कटि किंकिणि पैंजनि पग बाजत, मुक्तमाल सुरसरि बरणम् ॥
जन चरणदास चरणन को चेरो, सदा रहै गिरिधर शरणम् ॥
सुन्दर बाल लाल सँग लीन्हे, रास करत अति मन मगनम् ॥
घुमिरि घुमिरि धुकि धुकि कर निर्तत, खुटर खुटर नाटक बरनम्

१ मोती।

मधुर मधुर ध्वनि बजत गजत वन, झनक झनक झंझा झरनम् ॥
जन चरणदास चरणनको चेरो, सदा रहै गिरिधर शरणम् ॥
रास रचावैं सब सचु पावैं, साँवरे वदन छवि वर्णनम् ॥
धुधक धुधक धृधू करि नृत्यत, तक्रुत तक्रुत ताथिनननन्नम् ॥
झुनुक झुनुक नूपुर झनकारत, झनक झनक झनझन झननम्॥
जन चरणदास चरणन को चेरो, सदा रहै गिरिधर शरणम् ॥

क० नन्दके कुमार हौं तो कहौं बारबार, मोहिं लीजिये उबार ओट आपनी में कीजिये। काम अरु क्रोध को काटो यम वेडा प्रभु, मांगौं एक नाम मोहिं भक्ति दान दीजिये॥ और की छुटावो आस सन्तन को दीजै साथ, वृन्दावन निवास मोहिं फेरिहू पतीजिये। कहै चरणदास मेरी होय नाहिं हास श्याम, कहूँ मैं पुकारि मेरी श्रवन सुनि लीजिये॥ वाही हाथ कुच गहि के पूतना के प्राण सोखे, पाय ऊँची पदवी निज धाम को सिधारी है। वाही हाथ श्रीधर को मुख माड़ो दही सेती, छाती पर पाँव दै मरोरी जीभ डारी है॥ वाही हाथ कूबरी को कूबर काढ़ि सीधो कियो, वाही हाथ मस्तक गज खैंचि मूठि मारी है। वाही हाथ बाँह चरणदास कहैं आय गहो, जाही हाथ यमुना में नाथ्यो नाग कारी है॥

॥ इति श्रीचरणदासजी कृत व्रज चरित्र सम्पूर्णम् ॥



॥ श्रीमन्निकुञ्जविहारिणे नमः ॥





❀ अथ अमरलोक अखण्डधाम वर्णन ❀

दो० परणाम श्री शुकदेव को, सो हैं गुरू दयाल ।
काम क्रोध मद लोभ से, काढ़े मेरे साल[1] ॥१॥
वाणी विमल प्रकाश दी, बुधि निर्मल की तात ।
मो मूरख अज्ञान को, नहिं आवतटीकी बात ॥२॥
अमरलोक वर्णन करौं, वेही करैं सहाय ।
दृष्टि हिये मम खोलिकरि, सबही देहिं दिखाय ॥३॥
भेद लियो गुरुदेव सों, अद्भुत रचौं सुग्रन्थ ।
साखी वेद पुराण मैं, ज्ञानी सुनियो सन्त ॥४॥

भेद अगोचर[2] कोइ कोइ जानै । गुरू दिखावैं तौ पहिचाने ॥
पता कहैं कछु वेद पुराना । ज्यों का त्यों उनहूँ न वखाना ॥
कछु कछु मत मारग हू भाखैं, फिरि भूलैं समुझैं नहिं साखैं[3] ॥
हरि किरपा मैं परगट गाया । किया उजागर खोलि सुनाया ॥

---

१ मार्मिक दुःख २ इन्द्रियातीत ३ साक्षीभाव ।

दो० महा कठिन दुर्लभ हुता, अमरलोक का भेद ।
ताको मैं बीजक कियो, भाषो भेद[1] अभेद ॥५॥
निराकार तो ब्रह्म है, माया है आकार ।
दोनों पद ही को लिये, ऐसा पुरुष निहार ॥६॥
माया जीव दोऊ ते न्यारा । सो निज कहिये पीव हमारा ॥
क्षर अक्षर निहअक्षर तीनो । गीता पढ़ि सुनि इनको चीन्हो ॥
गीता अक्षर जीव बतावै । क्षर माया सोइ दृष्टि दिखावै ॥
निहअक्षर है पुरुष अपारा । ज्ञानी पण्डित लेहु विचारा ॥
जीवातम परमातम दोऊ । परमातम जानत है कोऊ ॥
आतम चीन्हि परमातम चीन्हो । गीता मध्य कृष्ण कहि दीन्हो ॥
माया उपजै विनशै अति ही । चेतन ब्रह्म अमर है नित ही ॥
परब्रह्म पुरुषोत्तम जानो । चरणदास के सो मन मानो ॥
दो० अमरलोक विच पुरुष है, ब्रह्म जु सबके माहिं ।
माया दरशत है सबै, ब्रह्म दीखत है नाहिं ॥७॥
अब सुन अमरलोक की बानी । त्रैगुण रहित परम सुखदानी ॥
तेजपुंज के ऊपर राजै । अहं विराट सों बाहर गाजै ॥
ताको ज्योति कहत नर लोई[2] । तेजपुंज कहियत है सोई ॥
*सूरज मण्डल ताहि बतावैं । योगी योग युक्ति सों पावैं ॥
कोटि भानु को सो उजियारो । तेजपुंज को रूप विचारो ॥
तीन लोक सों बाहर होई । सात भुवन[3] सों बाहर सोई ॥

---

१ तत्व में एकता तथा भाव में भिन्नता २ लोग ३ भूर्भुवः स्वः महर्जन तप सत्य लोक ।

*सूरज मण्डल जैहैं चीरा । वा लोकै कोइ पैहैं वीरा ॥

ताके ऊपर अविचल लोका । पाप पुण्य दुख सुख नहिं शोका
काल न ज्वाल अवधि नहिं होई, रनजीतदास जहँ सुरति समोई[१]
महा अगोचर गुप्त सों गुप्ता । जहाँ विराजत हैं भगवंता ॥
अमरलोक निज लोक कहावै । चौथा पद निर्वान बतावै ॥
अगमपुरी बेगमपुर ठाऊँ । कहा बुद्धि सो सब गति गाऊँ ॥
कछु इक बरणि बताऊँ वाको । ब्रह्मासुत[२] सतयुग में भाषो ॥
पुष्पद्वीप है श्वेत अकारा । सब ब्रह्मण्डन सों है न्यारा ॥
जो कोउ जाय बहुरि नहिं आवै । आवागमन सकल बिसरावै ॥
जो कोउ गयो बहुरि नहिं आयो । देही दिव्यरूप अति पायो
सोलह बरष उमर नित रहै । अजर अमर निधि आनँद लहै॥
बूढ़ा बाला होय न तरुणा । षोड़श भानु रूप जहँ धरणा ॥
तत्त्वस्वरूपी काया पावै । भवसागर में बहुरि न आवै ॥
पाँच तत्त्व बिन है थिरथायो[३]। ना वह बन्यो न कृत्य[४] बनायो ॥
ओर छोर कछु दीखत नाहीं । कब सों है अरु कब सों नाहीं ॥
है अडोल मर्याद न ताकी । बेपरिमाण वेद यों भाषी ॥
वेद पुराण पार नहिं पावैं । कछू कछू धरि ध्यान बतावैं ॥
अनन्त भानु को सो उजियारो । पिण्ड ब्रह्मण्ड दोऊ ते न्यारो॥
लोक मध्य अविचल निज धामा । श्वेत स्वरूप अगमपुर नामा॥
अगमपुरी निरधारा सूँची[५] । हंस लहैं जिनकी मति ऊँची ॥
बेहद लोक बन्यों अति भारी । असंख्य भानु की सी उजियारी॥

१ प्रवेश किया २ सनकादिकों ने सनत्कुमार संहिता में धाम का वर्णन किया है ३ स्थायी ४ कृत्रिम ५ पवित्र ।

दो० हद कहूँ तो है नहीं, बेहद कहूँ तो नाहिं ।
ध्यान स्वरूपी कहत हौं, वैन सैन के माहिं ॥ ८ ॥

अति उज्जवल रवि दृष्टि न ठहरे। मणि हीरा लागे जहँ गहरे॥
कई रंग के हीरा भाखे। कलश कँगूरा स्थिर राखे ॥
ता भीतर द्रुम बहुत अशोका। अक्षय वृक्ष फल लगे निरोगा ॥
कल्प वृक्ष बहु रंग विरंगा। फल अरु पात फूल इक संगा ॥
कोमल दल शोभा अति भारी। अजर पुरुष दर्शन अधिकारी॥
चेतन रूप गहर[1] अति छाहीं।साधु रहत तिनकी परछाहीं ॥
षोडश भानु सम देह स्वरूपा। हरि रस मदमाते निधिरूपा ॥
उन वृक्षन के निच निच मंदिर। अनगिन महल महामठ सुन्दर॥
महल महल पर ध्वजा पताका। पुरुषोत्तम पुरुष नाम लिखि राखा
ध्वजा पताका लहरत ऐसे। खिमत[2] बीजुरी बहुतक जैसे ॥
रतन जटित तिनकी अँगनाई[3]। बैठत उठत चलत हर्षाई ॥
काम क्रोध नहिं लोभ अधीरा। निर्मल दशा शील गुण धीरा ॥
जहाँ न आलस नींद जँभाई। भूख प्यास मलता नहिं भाई ॥
मैल पसीना आँसू नाहीं। दिव्य देह धरि रहे गुसाईं ॥
एक रूप एकै गति पाई। एक वरण एकै सब दांई[4] ॥
संशय शोक रोग नहिं दहै। मगनरूप मन आनन्द लहै ॥
षोडश वर्ष अवस्था जित ही। गुण पौरुष हरिजन के अति ही ॥
दिव्य भूषण दिव्य वस्तर अंगा। श्यामगात सुन्दर छवि अंगा
जुलफैं[5] लटक रहीं कजियारी। कुण्डल छवि सोहत अधिकारी॥

१ गहरी (घनी) २ चमकना ३ आंगन ४ उमर ५ सिर के वाल ।

नासामोती सुभग[१] सुढारा। सुन्दर तिलक लगत अति प्यारा ॥
दीरघ दृग कछूक अरुणाई। माथे मुकुट जटित ललिताई[२] ॥
घर घर दिव्य आसन सिंहासन। और महासुख हैं हरिदासन ॥
दो० भव मेटन अरु तम हरण, तुमहिं नवाऊँ शीस।
चरणदास चरणन परयो, भक्ति करो बकशीस ॥९॥
शुकदेव गुरु कृपा करी, दीनो भेद लखाय।
साधुन के पग पूजते, सकल व्याधि मिटि जाय ॥१०॥
आस पास हरिजन रहैं, मध्य ईश दरबार।
रसिक केलि बहु कुंज हैं, ललित द्वार हैं चार ॥११॥
राजमहल जनपति रहैं, कापै वरण्यो जाय।
गिनत शारदा छवि अधिक, गौरी सुत थकि जाय ॥१२॥
अनन्त भानु को सो उजियारो। वा मण्डल को रूप विचारो॥
समतुल और कासु को लाऊँ। बैन सैन दै ताहि बताऊँ ॥
चन्द सूर वह ठौर न चीन्हो। दृष्टान्त देन को पटतर[३] दीन्हो
आदि अनादि पुरातन धामा। जैसे आदि पुरुष घनश्यामा ॥
श्वेत रूप स्वरूप सुगन्धा। सहज महक जहँ उठत सुगन्धा ॥
चार द्वार बहु बाजन बाजैं। अनहद शब्द महाध्वनि गाजैं ॥
दिव्यरूप जो लगे किवाँरा। तिनके आगे बाग सुढारा ॥
हरो बाग अद्भुत है भाई। दूजे द्वार महा अरुणाई ॥
तीजे द्वार बाग पियराई। चौथे ऊदो[५] है थिरथाई ॥
उन बागन के आसा पासा। बहुत भवन जहँ साधु निवासा ॥

१ सुन्दर २ सौन्दर्य ३ उपमा ४ सुन्दर ५ जामुनी रंग।

मैड़ी[1] मण्डप बहुत सुढारी। श्वेत वरण सुन्दर अधिकारी ॥
साधु सन्त जहँ हरिजन पूरे। दास भाव भावना शूरे ॥
षोड़श भानु की सुन्दरताई। जगत जीति पहुँचै जो जाई ॥
सखा भाव पहुँचत वहि ठाईं। सखी भाव भीतर को जाई ॥
धरैं स्वरूप अनूपम भारी। सदा सुहागिनि हरि पिय प्यारी ॥
परमपुरुष पुरुषोत्तम पावैं। निकट रहैं नित केलि बढ़ावैं ॥
चारौं मुक्ति[2] जहाँ कर जोरैं। भाव बताय तान बहु तोरैं ॥
दरशन कारण[3] की सुखदाई। धरे स्वरूप रहैं हरषाई ॥
रतन जटित जहँ भूमि सुहाई। कोटि भानु छवि रहत लजाई ॥
एक समय नित ऋतु छवि पावत।शीत उष्ण पावस नहिं आवत
ऋतु वसंत पीरी छवि सोहै। वन घन कुंज लता मन मोहै ॥
निज वृंदावन है वह ठाहीं। सदा बसो मेरे मन माहीं ॥
दिव्य फूल फूले बहु रंगा। विन ऋतु फूले रंग विरंगा ॥
सकल सखी विचरत हरि संगा। गौरी सखी श्याम हरि अंगा

दो० पुष्प जु फूले नित रहैं, मोरैं[4] ना कुम्हिलायँ।
कई वरण[5] कइ रंग सों, अति सुगन्ध हरषायँ ॥१३॥

उन पुष्पन को नाम न जानौं। कहा नाम ले ताहि बखानौं ॥
बहुत वृक्ष कुंजन वन छाहीं। फल अरु फूल लगे उन माहीं ॥
काहू द्रुम ना फल नहिं फूला। पुष्प रूप ह्वै आपहि भूला ॥
कोऊ लाल रूप ह्वै छायो। कोऊ श्वेत रूप मन भायो ॥

१ ऊपर की मंजिल का मकान २ सायुज्य, सारूप्य, सामीप्य, सालोक्य ३ करने को ४ मोड़ने पर ५ जाति।

रंग रंग के वृक्ष बखाने । सो पुरुषोत्तम के मन माने ॥
वन के माहिं बहुत जहँ क्यारी । पुष्प रंग छवि न्यारी न्यारी॥
कई भाँति की बास तरंगा । मगन रूप बोलत स्वर भृंगा ॥
वन बिच श्वेतरूप छवि नाना । गोल चौंतरो रूप निधाना ॥
इकरस चेतन परम सुडोला । कोटि भानु छवि अमर अडोला ॥
जहँ परिकर माहिं सखी सहेली । बारह[1] भानु रूप अलबेली ॥
दिव्य दमक जहँ हीरा लागे। सात रंग के झिलमिलता[2] के ॥
ऊदा लाल श्वेत अरु पीरा । हरित श्याम लहरी अति धीरा ॥
तापर चौंसठ खम्भा दमकैं । मानों कोटि भानु छवि झमकैं ॥
खम्भन लगे लाल अरु मुक्ता । पन्ना लगे बेलि की युक्ता ॥
मूँगा लाल पिरोजा भारी । ध्यान धरो ताको नर नारी ॥
ये सब लगे बखानों ऐसे । जैसी युक्ति लगे हैं तैसे ॥
जड़ लालनकी विद्रुम[3] डारी । पन्ना पात वृक्ष गति धारी ॥
चुन्नी[4] पचरँग फूल सुहाये । फल मुक्ताहल[5] झुलक झुकाये ॥
और बनी बहु चित्तरकारी । बेलि बक्क बूटा अधिकारी[6] ॥
हीरा मोती चेतन होई । जानै साधू विरला कोई ॥

दो०—ताकी छवि अति ललित है, शोभा सरस सुजान ।
लगो चँदोवा दिव्य अति, चेतन करौं बखान ॥ १४ ॥

लगे चँदोवा झालर मोती । मानो उडुगण[7] झिलमिल ज्योती॥

---

१ आदित्य, दिवाकर, भास्कर, प्रभाकर, सहस्रांशु, त्रैलोक्यलोचन, हरिदश्व विभावसु, दिनकर, द्वादशात्मक, त्रिमूर्ति, सूर्य २ चमचमाहट ३ मूंगा ४ नगीना ५ मोती ६ बहुत ७ तारे।

झालर बनी चँदोवा केरी । दिव्य दृष्टि करि साधुन हेरी ॥
तापर रंगमहल की शोभा । चेतन आनंद सुख की गोभा ॥
स्थिर इकसर[1] भीत सुढारी । बने झरोखा अद्भुत बारी[2] ॥
अजब कँगूरा सुभग सुढारे । चौंसठ कलश लगैं अति प्यारे ॥
रतन जटित की खिड़की सोहैं । ताके आगे दिनकर[3] को है ॥
सीत झरोखा कलशन माहीं । नग पन्ना लागे सब ठाहीं ॥
दो० मणि हीरा माणिक लगे, रंगमहल के माहिं ।

बिन पहुँचे निज धाम के, क्यों हूँ दीखत नाहिं ॥१५॥
आस पास बहु कुंज हैं, बीच लाल को धाम ।
चरणदास को दीजिए, सखियन में विश्राम ॥१६॥
जैसे चौंसठ खम्भ हैं, तैसे करों बखान ।
छत्र सिंहासन वर्ण हूँ, अरु सखियन की आन[4] ॥१७॥

तीस खम्भ में खम्भा बीस । तामें चौदह खम्भा ईस ॥
परम बिछौना है थिरथाये[5] । मानो सूरज लक्ष बिछाये ॥
तापर सिंहासन बड़ भागी । श्वेतरूप चेतन अनुरागी ॥
सिंहासन पर कछू बिछायो । शोभा ताकी कहत लजायो ॥
धरो गेंदवा[6] तकिया नीके । छत्तर सोहै ऊपर पिय के ॥
पिय की शोभा कहा बखानूँ । आदि अन्त ताको नहिं जानूँ
अजर[7] पुरुष पुरुषोत्तम स्वामी । सब जीवन को अन्तरयामी ॥
पारब्रह्म अविचल अविनाशी । बाँयें अङ्ग रूप की राशी ॥
गोरी राधा कृष्ण श्यामघन । सिंहासन पर ललित मुदित मन ॥

१ एकजैसी २ खिड़की ३ सूर्य ४ मर्यादा ५ स्थिर ६ सिरहाना ७ जो कभी बूढा न हो।

आसीन जहाँ अखिल जगदीशा । मुकुट चन्द्रिका[१] सोहत शीशा
मकराकृत[२] कुण्डल छवि ऐसी । जग में कहा बखानूँ जैसी ॥
जुलफैं श्याम भुवङ्गम[३] कारी । कजरारी अरु घूँघुरवारी ॥
सहज सुगन्ध रहै महकाई । लाँबी चिकनी अरु बलखाई ॥
बाँकी भौंह कुटिल अनियारी । तिरछी पलकैं लागैं प्यारी ॥
रस के माते घूम घुमारे । ललचौंहैं दृग हैं कजरारे ॥
बाँके दीरघ अरु ललचौंहैं । चितवत सखियन के मन मोहैं ॥
सुभग बुलाक नाक में सौहै । ध्यान करत मेरो मन मोहै ॥
बिजुरी सी मुसकान पिया की । मन खैंचन अरु भाल[४] हिया की
वदन श्यामघन कहा बखानूँ । कोटि भानु छवि मुख पर वारूँ
दिव्य नीमो[५] अंग माहीं सोहै । सूरज कोटि कला छवि मोहै॥
कंठी कंठ धुकधुकी[६] झमकै । ता मधि कौस्तुभमणि अति दमकै
मोतियन की माला बनमाला । हुलसैं देखि धाम की बाला ॥
दिव्य बद्धी[७] गलजंद[८] जड़ाऊ । नौरतनन[९] के बाजू बाहू ॥
पहुँची कड़ा कहा छवि गाऊँ । समतुल ताकी कहा बताऊँ ॥
दिव्य जहाँगीरी दोउ कर माहीं।ताकी सम कछु कलि में नाहीं
रतनचौक में लाल विराजैं । शोभा गावत मो मन लाजैं ॥
रतनचौक है पीठ हथेली । लगी जँजीर मुँदरियन भेली[१०]॥

---

१ श्री राधिका जी का शिरोभूषण, २ मछली के से आकार वाले, ३ सर्प ४ भाला-शस्त्र, ५ जामा, ६ दुलरी नामक गले का आभूषण, ७ चार लड़ी जंजीर, ८ गले का हार, ९ हीरा, मोती, पन्ना, माणिक, गोमेद, मूंगा, लहसुनिया, नीलम, पुखराज, १० साथ में ।

चौकी[१] सुघर हिये पर राजै। कटि किंकिणि घुँघुरू ध्वनि बाजै
युगल चरण पैंजनि[२] झनकारें। दिव्य टोरे[३] तिनमें ठनकारें ॥
कोटि चन्द्र दश नख पर वारूँ। तलुअन चिन्ह इकीस[४]निहारूँ
बायें अङ्ग राधिका प्यारी। कोटि चंद्र छबि मुख पर वारी ॥
युगल सखी लिये चँवर ढुरावैं। हिरदय हरषि महा सुख पावैं
खंभ खंभ ढिग सखी सहेली। चौदह खड़ीं ईश[५] अलबेली ॥
और सखी बहुतक बहि ठाऊँ। शोभा जिनकी कहत लजाऊँ॥
नित्य किशोरी गोरी सारी। पांच तत्त्व त्रैगुण ते न्यारी ॥
दिव्य वस्त्र आभूषण जाना। अधिक रूप छबि बारह माना ॥
कजरारी कच लटकैं बैनी। मोतियन माँग भरे छबि पैनी[६] ॥
चूड़ामणि गहनो अति नीको। शीशफूल अरु बेनी टीको ॥
करणफूल सँग बन्दी[७] लागी। झुमके[८] थिरकैं[९] महा सुभागी ॥
अंजन आँजे नैन ढरारे। तीखे अनियारे पिय प्यारे ॥
घूँघुरवारी अलकैं लटकैं। बेसरि[१०] नासा छबि लिए मटकैं ॥
चम्पाकली नौलरी[११] माला। चन्दनहार सु पहिरे बाला ॥
कठुला जैसे गले जनेऊ। अरु हिय चौकी महा अमेऊ ॥
सखी सिंगार हार सब साधैं। बाजूबंद बाहुन पर बाँधैं ॥

---

१ गले का गहना २ पायजेब ३ ठनका-चरण प्रहार ४ पद्म, अंकुश अम्बर, छत्र, कुलिश, यव, ध्वजा, धेनु, शंखचक्र, कलश, सुधाहृद, स्वस्तिक, जंबूफल, अर्द्धचन्द्र, पटकोण, मीन, बूँद, ऊर्ध्व रेखा, अष्टकोण, त्रिकोण, धनुपत्राण, ये इक्कीस चिन्ह भगवान के चरणों में हैं ५ यूथेश्वरी ६ तीखी-सुन्दर ७ सिर का आभूषण ८ कानों का गहना ९ हिलते हैं १० नाक का आभूषण ११ नौलड़की।

सदा सुहागिनि पहिरे चूरी । सुभग पछेली[१] बँगरी रूरी[२] ॥
कँगनी[३] अरु पहिरे जहँगीरी । रतन चौक छवि लगी जंजीरी ॥
छाप छला अरु पहिरें मुँदरी । नुहसत[४] पहिरें सुन्दर अँगुरी ॥
पाँवन में पग नेवरि[५] बाजैं । नख सिख लौं आभूषण साजैं ॥
और सखी विखरी वन माँहीं । सो काहू विधि गिनी न जाहीं ॥
दो० सुन्दर छवि पियरे वसन, झुण्ड सखिन के जान ।
कोउ पुञ्ज ऊदे वसन, सुघर साँवारी आन ॥१८॥
लाल वसन बहुतक सखी, श्वेत वसन बहुनार ।
नील वसन बहु भामिनी, सबको रूप अपार ॥१६॥
हरे वसन नारी घनी, घनी गुलाबी वेष ।
बहुत झुण्ड कइ रंग सों, गाय सकैं नहिं शेष ॥२०॥
निज वन चौंसठ खंभे माहीं । होत अखण्ड रास वहि ठाहीं
झुण्ड सबै यों बनि बनि आवैं । हुलसि हुलसि लालन ढिंग धावैं
रास केलि खेलैं बहु रंगा । सदा विहार करैं पिय संगा ॥
कबहूँ घुमरि घुमरि घुमरावैं । नैन सैन दै भाव बतावैं ॥
कबहूँ थेइ थेइ थेइ थेइ करैं । कबहूँ अँगुली नासा धरैं ॥
कबहूँ कर उठाय गति चालैं । सांगोपांग बतावत हालैं ॥
कबहूँ ठुमुक ठुमुक पग धावैं । घुँघुरू की गति अधिक बजावैं ॥
हो अनुराग रागनी गावैं । बाजे अद्भुत अधिक बजावैं ॥
दो० कहा बुद्धि कहा कहि सकूँ, रास केलि को साज ।
अद्भुत लीला ह्वै रही, वर्णत आवै लाज ॥२१॥

१ हाथ का आभूषण २ सुन्दर ३ छोटा कंकण ४ जुड़वाँ छल्ला
५ पैर का आभूषण ।

अखण्ड धाम लीला अमर, नित वृन्दावन रास ।
नित विहार जहँ होत है, चरणदास को वास ॥२२॥
गौरीसुत[1] नहिं गा सकै, नहीं शारदा वाम[2] ।
चरणदास कह वुद्धि है, वरणि सकै निज धाम ॥२३॥
बड़ी दया मोपै करी, कृष्ण कुँवर सुन लाल ।
वाणी आप वनाय कै, कीन्हों मोहिं निहाल ॥२४॥
मम हिरदय में आय कै, तुमहीं कियो प्रकास ।
जो कछु कहौं सो तुम कहौ, मेरे मुख सों भास ॥२५॥
आदि पुरूष परमातमा, तुमहिं नवाऊँ माथ ।
चरणन पास निवास दै, कीजै मोहिं सनाथ ॥२६॥
तुम्हरी भक्ति न छाँड हूँ, तन मन शिर क्यों न जाव ।
तुम साहिव मैं दास हूँ, भलो वनो है दाव ॥२७॥
गुरु शुकदेव कृपा करी, मूरख भयो प्रवीन ।
मम मस्तक पर कर धर्यो, जानि निपट आधीन ॥२८॥
कोटि नाम को फल लहै, तिरवेणी[3] अस्नान ।
शोभा गावै लोक की, मूरख होय सुज्ञान ॥२९॥
पढ़ै सुनै जो प्रीति सों, पावै भक्ति हुलास ।
नित उठि कर तू पाठ यह, चरणदास कहि भास ॥३०॥
प्रेम वढ़ै अघ सव हरै, कलह कल्पना जाय ।
पाठ करै या लोक को, ध्यान करत दरशाय ॥३१॥

इति श्रीशुकदेवानुदास चरणदास कृत अमरलोक निजधाम निजस्थान पुरुषोत्तमपुरुष विराजमान प्राप्तिर्नरदुर्लभा लीला सम्पूर्ण ॥

१ गणेश २ स्त्री ३ गंगा यमुना सरस्वती का संगम ।

❀ अथ श्री गुरुचेला संवाद धर्मजहाज प्रारम्भ ❀

शिष्य वचन

दो०—ठाढ़ा हो कर जोर के, अरज करै चरणदास।
एहो ! श्री शुकदेवजी, कछु पूँछन की आस ॥१॥

गुरु वचन

पूछो मन को खोल करि, मेटौं सब सन्देह।
अरु तुम्हरे हिरदय विषे, सदा हमारो गेह ॥२॥

शिष्य वचन

मैं तो चरणहिं दास हौं, तुम तो परम दयाल।
एकन पग पनही[1] नहीं, एक चढ़ै सुखपाल[2] ॥३॥
यही जु मोहि बताइये, एक मुक्ति को जाहि।
एक नरक को जाय करि, मार यमों की खाहि ॥४॥
एक दुखी इक अति सुखी, एक भूप इक रंक।
एकन को विद्या बड़ी, एक पढ़े नहिं अङ्क ॥५॥
एकन को मेवा मिले, एकन चने भी नाहिं।
कारण कौन दिखाइये, करि चरणन की छाहिं ॥६॥
यही मोहि समझाइये, मन का धोखा जाइ।
व्है करि निस्संदेह मैं, चरण रहौं लिपटाइ ॥७॥

---

१ जूते २ पालकी।

गुरु वचन

जिन जैसी करणी करी, तैसे ही फल पाय।
भुगतत हैं ये जगत में, ताको बदला आय ॥८॥

शिष्य वचन

कही तुम्हारी हिय धरी, व्यास पुत्र शुकदेव।
सुगति कुगति करणीन को, भिन्न भिन्न कहु भेव[1] ॥९॥

गुरु वचन

अब मैं वर्णन करत हौं, ऐ शिष! धर्म जहाज।
तामें बैठे विधि सहित, रहनी गहनी साज ॥१०॥
जो कोइ करणी[2] ना करै, बहुत करै बकवाद।
रीता जानौ तासु को, छूटै ना जग व्याध ॥११॥
कथनी के पूँजी नहीं, करणी है ततसार।
तामें लाभहि लाभ है, बदला दे कर्तार ॥१२॥
सूरति कीन्ही साधु की, तन मन लागो आग।
बिन करणी कैसे बुझै, हरि सों नाहीं लाग ॥१३॥
कथनी कथि दंभी भये, कहैं दूर की बात।
अन्तर में करणी नहीं, मन ही माहिं लजात ॥१४॥
दंभी उनको जानिये, जग में सिद्ध दिखात।
तन मन वचन न साधिया, तिहुँ विधि रोपी बात॥१५॥
तन मन साधै साधु सो, वचन साधि जो लेय।
उज्जवल करणी के सहित, राम भक्ति चित देय ॥१६॥

---

१ भेद २ कर्तव्य कर्म।

तन सों करणी ही करै, मन सों निश्चय लाय ।
वचन जो ऐसा बोलिये, जो सब ही को सुहाय ॥१७॥
बिन करणी थोथी[1] सब बातें । जैसे बिन चंदा की रातें ॥
ताते समुझि करो तुम करणी । बिन बोए नहिं उपजै धरणी ॥
जैसा बोवै तैसा लुनिये । जानत ज्ञानी पण्डित गुनिये ॥
कीकर[2] नींब बुवै सोइ पावै । अरु मेवा बोवै सोई खावै ॥
पिछली करणी अबकै पावै । ताही को नर करम बतावै ॥
होनहार अरु भाग वही है । परालब्ध[3] सोइ बडौं[4] कही है ॥
खोटी करणी से दुख भारी । होवै रंक पुरुष अरु नारी ॥
कहैं शुकदेव साँच यह जानौ । चरणदास लै मन में आनौ ॥
दो० कोइ कोढ़ी कोइ आँधरा, कोइ रोगी निर्धन्न ।
अंगहीन माँगत फिरै, कोइ भूखा बिन अन्न ॥१८॥
बिना बुद्धि कोइ बावरे, कोइ छोटे तन हान ।
कोइ कर्मों से अति दुखी, जीवै ना सन्तान ॥१९॥
कोइ जगत आधीन है, कोई बिना प्रतीत ।
कोइ सब वस्तू हीन है, यह पापों की रीत ॥२०॥
जन्म मरण बहु भाँति के, नाना भवन[5] निवास ।
करणी ही से होत है, ऊँच नीच घर वास ॥२१॥
पशु पक्षी अरु चर अचर, सो भी छूटैं नाहिं ।
कर्मों ही की चाल सों, भुक्तै जग के माहिं ॥२२॥
भाँति भाँति के कष्ट घने ही । पावत हैं वे कर्म सनेही[6] ॥

१ बेकार २बबूल ३ भाग्य ४ वृद्धों ने ५ चौरासी लाख योनियाँ ६ आसक्त ।

इनहीं आँखिन सों तुम देखौ। अपने मन में करि करि लेखौ ॥
तन छूटै नरके जावे हैं। नाना विधि के त्रास सहैं हैं ॥
नरकन की गति परघट जानौ। शास्त्र माहिं सब कियो बखानौ
अरु इक नरक जगत के माहीं। कोतवाल हाकिम के ठाहीं ॥
खोटे कर्मन सों ह्वाँ जावै। त्रास सहै बहुतै बिरलावै ॥
शुभ कर्मी जो निकसै आगे। उठि हाकिम चरणन सें लागे ॥
कहि शुकदेव साँच है करणी। सुनि रणजीत करै सो भरणी ॥
दो० शुभ करणी पिछली करी, उज्ज्वल पाई देह।
शोभा जिन के भाग की, चरणदास सुनि लेह ॥२३॥
तन सों सुखी और धनधारी। सुत नारी सुन्दर संसारी ॥
नाना विधि के भोग करत हैं। अरु बहुतन के दुःख हरत हैं॥
ऊँचे महल महा सुखदाई। जहाँ विराजत हैं मन लाई ॥
तीनों ऋतु में वे सुख पावैं। बहुतक लोग टहल में आवैं ॥
पिछली करणी करम जु लाये। जैसे जैसे ही सुख पाये ॥
काहू मिली तुरंग[1] सवारी। काहू पालकी झालरदारी ॥
काहू गज[2] पाये बहुतेरे। लाखौं मनुप रहत हैं चेरे ॥
श्री शुकदेव कहैं ये बैना। चरणदास लखि अपने नैना ॥
दो० लाखौं पग सों लगि रहे, रखैं जीविका आस।
ईश्वर तिनके जेइ हैं, वे हैं चरणहिं दास ॥२४॥
ऐसी ईश्वर पदवी पाई। पुण्य प्रताप कहा नहिं जाई ॥
सुनि कै शुभ करमन को कीजो। खोटे कर्म सभी तजि दीजो॥

१ घोड़ा २ हाथी।

इनहीं आँखिन सों सब सूझै। बुद्धिमान प्रत्यत्त जु बूझै ॥
कोई चढ़े जाहिं रथ माहीं। सूरजमुखी तासु को छाहीं ॥
किरोड़पती कोइ लाखन वारा। कोइ हजारन को व्यवहारा ॥
कोई थोड़े में सुख पावै। व्है कर सुखी बहुत हरषावै ॥
पिछली जैसी करी कमाई। तैसी तैसी ही निधि पाई ॥
शुकदेव कहैं यों आलस हरियो। चरणदास शुभ करणी करियो
दो० सुर दानव अरु अप्सरा, मनुष यत्त गण प्रेत।
कर्मों ही से होत हैं, पाप पुण्य का हेत ॥२५॥
नहिं तो हरि द्वै दृष्टा नाहीं। एक दृष्टि सब ऊपर छाहीं ॥
जो जैसी करणी करि लेवै। हरि तैसा ही बदला देवै ॥
अपना किया आप ही पावै। परालब्ध वह नाम कहावै ॥
घटै बढै वह नेक न क्योंहीं। पावै वही जु करणी ज्योंहीं ॥
नारि पुरुष मिलि करि व्यवहारा। करणी सों उपजै संसारा ॥
वाहे बोवे खेत किसाना। भाँति भाँति के उपजैं दाना ॥
बाग लगावै सींचे माली। जब फल लागैं डाली डाली ॥
पत्ती अरु मानुष सुख पावै। चरणदास शुकदेव सुनावै ॥
दो० माली करणी जो तजै, सींचे ना षटमास।
जब वह बाग उदास हो, दिन दिन वाको नास ॥ २६ ॥
दया धर्म पुण्य दान ही, बड़ करणी है साँच।
तीन लोक चौदह भुवन, माहिं न आवै आँच ॥२७॥
तीरथ बरत कछू जो कीजै। अरु काहू को दान जु दीजै ॥
याको भी फल नीको पावै। चरणदास शुकदेव दिखावै ॥

शुभ करणी करि भक्ति उपावै। ताते हरि के निकट रहावै ॥
करणी योग महा बलदाई । ईश्वर ह्वै पावै मुक्ताई ॥
चार मुक्ति करणी सों पावै । मन करणी सों ज्ञान जगावै ॥
दो० उज्जवल कर्म सदा किये, अरपै हित भगवान ।
लही मुक्ति सालोक्य ही, जन्म मरण करि हान ॥ २८ ॥
सेवा करि भगवान की, निकट विराजै जाय ।
सामीप्य मुक्ति पाई तिन्हहुँ, इन्द्रहु से अधिकाय ॥ २९ ॥
ध्यान किया श्री कृष्ण का, भये जु वाके रूप ।
लही मुक्ति सारूप्य ही, तन धरि अधिक अनूप ॥ ३० ॥
पाँचौं[1] मुद्रा योग बल, दशवें[2] काढ़े प्रान ।
मिला ज्योति में ज्योति ही, यह सायुज्य पिछान ॥३१॥
सब ही करणी हैं बड़ी, भक्ति सबन शिरमौर ।
बाँह पकरि हरि हेत करि, राखैं अपनी ठौर ॥ ३२ ॥
अजामील सों भी अधिक, जो कोउ पापी होय ।
नाम जपै हिय शुद्ध सों, पातक जावैं खोय ॥ ३३ ॥
महिमा गुरु के ध्यान की, को करि सकै बखान ।
मेरे मन निश्चय यही, जाय मिलै भगवान ॥ ३४ ॥
करणी सों सत्ती भवै, करणी सों दातार ।
करणी सों शूरा भवै, जावै स्वर्ग मँझार ॥ ३५ ॥
भाँति भाँति के सुख जहाँ, भोगै भोग अपार ।
धर्म पन्थ कोई चलै, शूद्रहि कै नर नार ॥ ३६ ॥

१ खेचरी, भूचरी, चांचरी, अगोचरी, उनमुनी २ दशम द्वार-कपाल ।

चार समय नित नेम करि, सदा रहै निष्पाप ।
गिना जाय हरिजन विषे, होय नहीं जम ताप ॥ ३७ ॥
जिन जैसी करणी करी, सो निष्फल नहिं जाय ।
जाका बदला होयगा, शुकदेवा कहै गाय ॥ ३८ ॥
ब्राह्मण करणी ब्राह्मण होई । क्षत्री कर्म सों क्षत्री सोई ॥
वैश्य कर्म सों वैश्य कहावै । शूद्र कर्म सों शूद्र लखावै ॥
नहीं तो सबकी देह बराबर । पाँच तत्त्व त्रैगुण सों कर कर ॥
कान आँख मुख नासा एकी । शीश हाथ पग काया देखी ॥
एक बाट ह्वै सब ही आवैं । एक हि भाँति सबै बनि धावैं ॥
दो० जाति वर्ण[1] अरु आश्रम[2] ,करणी सों दर्शाय ।
चरणदास निश्चय करो, मूरख भी ले पाय ॥ ३९ ॥
धोबी छीपी आदि दै, ये छत्तीसौं पौंन[3] ।
करणी के सब नाम हैं, जैसी करै सो जौंन ॥ ४० ॥
कर्मों ही से जग यह भासै । कर्मों ही से फिर हो नासै ॥
कर्म प्रलय उतपत्ति करावै । हो निहकर्म ब्रह्म ह्वै जावै ॥
परलय समय कर्म जिय[4] साथा । बुरे भले जो लागै गाथा[5] ॥
संग हि जाय रहै माया में । माया जाय लगत चरणन में ॥
बासा करि हरि चरणन माहीं । होय लीन वह मिटे जु नाहीं ॥
पूँजी कर्म जो माया पासा । फिर उतपति की वाको आसा ॥
परलय काल बदीतै[6] जबही । उतपति करै जगत को तबही ॥

१ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र २ ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास ३ जाति ४ जीवों के साथ ५ सूक्ष्म शरीर ६ व्यतीत होने पर ।

चरणदास तुम ऐसे जानौ । कहै शुकदेव साँच करि मानौ ॥
दो० छः द्रव्य प्रलय में रहैं, इनका नास न होय ।
सो मैं वर्णन करत हौं, बुधि आँखन सों जोय ॥ ४१ ॥
काल, अकाश, जीव अरु माया । पाप, पुण्य प्रत्यक्ष बताया ॥
फिर उतपति इनहीं सों होई । जानै पण्डित विरला कोई ॥
काल न एको करै पुराना । प्रलय होय सो निश्चय जाना[1] ॥
फिर परलय को लागा रहै । करै समाप्त आप ना गहै ॥
उतपति समै और नहिं होई । परलय हुये जो उतपति सोई ॥
कर्म धरे रहैं ज्यों के त्यों हीं । उलटें पलटें नाहीं क्यों हीं ॥
जैसे के तैसे तन धारै । कर्म लगे रहैं उनके लारै ॥
कहैं शुकदेव कर्म गति भारी । चरणदास कोइ छुटै खिलारी ॥

शिष्य वचन

दो० चरणदास यों कहत है, सुनो गुरू शुकदेव ।
ज्यों करि हो निष्कर्म ही, ताको कहिए भेव ॥ ४२ ॥

गुरु वचन

कहैं शुकदेव संदेह मिटाऊँ । ज्यों की त्यों पूरी समझाऊँ ॥
खोटी करणी नरक हि जावै । पाप क्षीण मृतलोक हि आवै ॥
भले कर्म जा स्वर्ग मँझारा । पुण्य क्षीण मृतलोक हि डारा ॥
ऐसे लोक लोक फिरि आवै । कर्म न छूटे दुख सुख पावै ॥
जैसे कर्म छुटै सो कहूँ । तो पै दया करत ही रहूँ ॥
खोटे कर्म सु सकल निवारै । शुभ करणी को नीके धारै ॥

१ जन्म लेगा

जाके फल को मन नहिं लावै । ह्वै निष्कर्म परम पद पावै ॥
फल त्यागै सोई चरणदासा । चरण कमल की राखै आसा ॥
दो० सो पावै निर्वान[१] पद, आवागमन मिट जाय ।
जन्म मरण होवै नहीं, फिर फिर काल न खाय ॥४२क॥

शिष्य वचन

जो जो कहि गुरुदेव जी, सूझ परी प्रत्यक्ष ।
चरणदास को दीजिये, साधु होन की शिक्ष ॥ ४३ ॥

गुरु वचन

वही साधुवा जानिये, निरवारै[२] सब कर्म ।
तन मन वचन सधे रहैं, पालै अपना धर्म ॥ ४४ ॥
पहिले साधै वचन को, दूजे साधै देह ।
तीजे मन को साधिये, गुरु सों राखै नेह ॥ ४५ ॥
जिनहीं के उपदेश को, राखै अपने चित्त ।
ताको मनन सदा करै, भूलै ना नित वृत्त[३] ॥ ४६ ॥

शिष्य वचन

जो जो कही सो जानिया, एहो श्री शुकदेव ।
साधन तन मन वचन को, सबही कहिए भेव ॥ ४७ ॥

गुरु वचन

शिष्य अब तोसों कहत हौं, नीके सुन दे कान ।
ज्यों ज्यों कर्म बचैं दशों, ताकी करि पहिचान ॥ ४८ ॥

१ मोक्ष २ मिटावे ३ नियम ।

॥ वचन के चार दोष ॥

प्रथम वचन के चार सुनाऊँ । तेरे चित में नीके लाऊँ ॥
एक यही जो झूठ न बोले । साँच कहै जब हिरदय तौलै ॥
झूठ कहन को पातक भारी । जो जप करै सो देय उजारी ॥
झूठे का जप लागत नाहीं । सिद्ध होय नहिं निष्फल जाहीं ॥
अरु झूठे की नहिं परतीतैं । झूठे की खोटी सब रीतैं ॥
दूजे निन्दा नाहीं करिये । पर के औगुण चित्त न धरिये ॥
निन्दा का भारी है पाप । या सों भी निष्फल हो जाप ॥
तीजे कडुआ वचन न भाखै । सब जीवन सों हित ही राखै ॥
खोटा वचन महा दुखदाई। जो साधै सो अति बलदाई ॥
खोटा वचन तपस्या खोवै । नरक माँहिं ले जाय समोवै[1] ॥
मीठे वचन बोलि सुख दीजे । उनके मन का शोक हरीजे ॥
कहैं शुकदेवा चौथा सुनिए । चरणदास ले मन में गुनिये ॥
दो० चौथे मौन गहे रहे, लक्षण अधिक अमोल ।
कर्म लगैं जग बात सों, हरि चरचा में खोल ॥ ४६ ॥

॥ तन के तीन दोष ॥

तन सों तीन कर्म जो लागे । सो मैं कहूँ तुम्हारे आगे ॥
चोरी जारी अरु हिंसा है । इन पापन सों भारी भय है ॥
कर्म छुटे जाकी विधि गाऊँ । भिन्न भिन्न तोको समुझाऊँ ॥
तन सों चोरी कबहु न कीजे । काहू की नहिं वस्तु हरीजे ॥
चोरी त्यागै सो सतवादी । ता पर रीझैं राम अनादी ॥

---

१ डाल देता है ।

जारी के कर्म ऐसे भानौ[1] । परतिरिया को माता जानौ ॥
तीजे हिंसा त्यागहि कीजे । दया राखि जीवन सुख दीजे ॥
दया बराबर तप नहिं कोइ । आतम पूजा तासों होई ॥
कर्म छुटन का भारी गैला । ज्यों साबुन उजला पट मैला ॥
शुकदेवा कहै तन के कहे । तीन करम अब मन के रहे ॥

॥ मन के तीन दोष ॥

दो० कहौं जु मन के तीन अब, झीनी जिनकी बात ।
गुरू दिखाये दीखई, और बिधी न दिखात ॥५०॥
खोटी चितवन बैर हो अरु, तीजा अभिमान ।
इन सों कर्म लगैं घने, मेटैं संत सुजान ॥५१॥

खोटी चितवन खोलि दिखाऊँ । जासों कहिये सो समझाऊँ ॥
कबहूँ चितवै परनारी को । कबहूँ चितवै फलवारी को ॥
मनही मन में भोगै भोग । हाथ न आवै उपजै शोग ॥
कबहूँ चितवै वाको मारौं । कबहूँ चितवै फाँसी डारौं ॥
कबहूँ चितवै द्रव्य चुराऊँ । वाका धन अपने घर लाऊँ ॥
कबहूँ चितवै ठगई करौं । माल बिराना[2] छल करि हरौं ॥
भाँति भाँति चितवनि[3] उपजावै । बुरे मनोरथ कर्म लगावै ॥
ताते याका करै उपाऊ । होय जो साधू कर्म छुटाऊ ॥
जो चितवै तो हरि गुरु चरणा । ब्रह्म विचार सदा ही करणा ॥
खोटी चितवनि चितवै नाहीं । सदा रहै थिरता[4] के माहीं ॥
कहि शुकदेव सो हिरदै रहै । इत उत को चित नाहीं बहै ॥

---

१ कहता हूँ २ दूसरे का ३ संकल्प ४ एकाग्रता ।

दो० दूजा कर्म जु वैर है, महा पाप की पोट।
सदा हिया जलता रहै, करै खोट ही खोट ॥५२॥
वैर भाव में अवगुण भारी। तन छूटै जा नरक मँझारी ॥
वैरी याद रहै मन माहीं। हरि सों हेत लगन दे नाहीं ॥
ताते वैर भाव नहिं कीजै। याका कर्म लगन नहिं दीजै ॥
अरु तीजा जानौ अभिमाना। गुरू कृपा सों ताको जाना ॥
हूँ हूँ हूँ हूँ करता रहै। नीचा होय तो अन्तर[1] दहै ॥
कबहूँ फूलै मन के माहीं। मो समान कोउ ऊँचा नाहीं ॥
मैं ही योंकर योंकर करिया। मो बिन कारज कछू न सरिया[2] ॥
अपने को चतुरा बहु जानै। और सबन को मूरख ठानै ॥
अभिमानी ऐसा मन लावै। हरि के गुण किरिया बिसरावै ॥
गर्व भरा खोटी बृत धारै। अपने मन में कबहुँ न हारै ॥
शुकदेव कहै वाहि पापी जानौ। नरक जायगा निश्चय आनौ[3]
रणजीत सुन अभिमान न कीजै। कर्म बचाय परम सुख लीजै ॥
दो० कृत्यवनी बेमुख भवै, गुरु सों विद्या पाय।
उनको जानै तनक ही, आपन को अधिकाय ॥५३॥
जैसे इक दृष्टान्त सुनाऊँ। कथा पुरानी कहि समुझाऊँ ॥
महापुरुष इक स्वामी पूरा। ज्ञान ध्यान में था भरपूरा ॥
लच्छण सभी हुते वा माहीं। आठ पहर हरि ही को ध्याहीं ॥
उनको शिष्य आन इक भयो। वहि उपदेश जु नीको दयो॥
करि कै प्यार निकट जो राखो। प्रीति करी अरु सब कछु भाखो

१ अन्तःकरण २ पूर्ण होना ३ विश्वास करो।

फिरि रामत की आज्ञा लीन्ही। उनहूँ करि कृपा तब दीन्ही ॥
पहुँचा एक नगर अस्थाना। ह्वाँ के नरन सिद्ध बड़ जाना ॥
ठहराया अरु पूजा कीन्ही। बहुत नरन ने कण्ठी लीन्ही ॥
बहुतक प्राणी आवैं जावैं। संध्या भोर शीश बहु नावैं ॥
महिमा देखि फूल मन माहीं। कहा कि हम सम गुरु भी नाहीं॥
दो० गद्दी पर बैठा रहै, तकिया बड़ा लगाय।
बहुत रहैं आज्ञा विषे, शिर पर चँवर ढुराय ॥५४॥

गुरु परताप नहीं वह जानै। अपनी ही बुधि बड़ी जु ठानै ॥
मूरख आगे क्यों नहिं भया। दीन होय करि द्वारे गया ॥
थोड़े ही से वहु इतराना। गुरु की कृपा प्यार ना जाना ॥
बार बार शोचै मन सोई। हमरे गुरु क्या ऐसे होई ॥
उनको तो नर कोइ कोइ जानै। हमको सगरो देश बखानै ॥
दिन दिन बढ़ता दीखै आगे। मेरे भाग बड़े ही जागे ॥
मेरे मन में ऐसी आवै। उनका शिष्य अब कौन कहावै ॥
वहीं अचानक गुरु ह्वाँ आया। बैठे ही शिष्य शीश नवाया ॥
दो० जैसे आते वैष्णव, करता वह दंडौत।
ऐसे ही गुरु से किया, आदर किया न बहौत ॥५५॥

देखि गुरू मन हाँसी ठानी। वाको जाना बहु अभिमानी ॥
मुख सों कहि करि बहु भिड़कारा। कहा कि तू अभिमानी भारा
नीकी बुधि तेरी गइ खोई। बसी मछरता[१] घट में सोई ॥
मेरा सब उपदेश बिसारा। जग मोहन[२] का मन में धारा ॥

---

१ ईर्षा २ मोहित।

दस बीसन को शिष्य करि भूला । गद्दी ऊपर बैठा फूला ॥
शिष्य ने कहा और क्या कीया । वही किया आज्ञा तुम दीया॥
तुमने ही सतसंग बताई । कीजो दीजो जित मनभाई ॥
शिष्य शाखा करि सँगत बढ़ाई । मेरी तुम्हरी भई बड़ाई ॥
देखि ईर्षा[1] तुमको आई । हमरी देखी बहु अधिकाई ॥
फिरि हँसि गुरु कहि तू अज्ञानी । मैं कहि संगति[2] तैं नहिं जानी
मैं कहि भक्तन का सँग कीजो । सतपुरुषन के चरण गहीजो ॥
दिन दिन ज्ञान होय सरसाई[3] । हरि गुरु सों हो प्रीति सवाई ॥
तेरी तौ गति औरै भई । महा अविद्या[4] में मति छई[5] ॥

दो० झरने मुँद गये ज्ञान के, छाय रहा अज्ञान ।
राम रुठावन ही किया, भई मुक्ति की हान ॥५६॥

कहा बात पूँजी कहा, इतने में गयो भूलि ।
मति ओछी[6] घट थोथरा,[7] ता पर बैठा फूलि ॥५७॥

सिद्धी प्रापत भी भवे, देह विसर्जन होय ।
वह भी जो गुरु को तजै, जाय नरक को सोय ॥५८॥

कछू तपस्या ना करी, नाहिं किया कछु योग ॥
ना तो लगी समाधि ही, ले बैठा तू भोग ॥५९॥

रजगुण तमगुण ले लिया, तजा सतोगुण अङ्ग ॥
हरि गुरु को दइ पीठ ही, करि विषयन को सङ्ग ॥६०॥

भक्ति भाव को छोड़ि कै, करी दम्भ की हाट ।
मुक्ति पन्थ को तज दिया, लई नरक की बाट ॥६१॥

---

१ डाह २ सत्संग ३ बढ़ना ४ अज्ञान ५ युक्त हो गई, ६ छोटी ७ खाली ।

इन बातन सों क्या सरै, बहुत भया विख्यात ।
तुम से अधिकी मूढ़ नर, जग में बने दिखात ॥६२॥
हुकुम बड़ा माया बड़ी, नामी बड़े जु भूप ।
नर नारी बहु टहल में, सुन्दर अधिक अनूप ॥६३॥
सन्तन की गति और है, हरि गुरु सों सनमुक्ख ।
मुक्त होय छूटैं सबै, जन्म मरण के दुक्ख ॥६४॥
जगत बड़ाई में फँसे, परी अविद्या छाहिं ।
नरक भुगति यमदण्ड ही, फिरि चौरासी माहिं ॥६५॥
हरि औ गुरु को शिर पर धरिये । सतपुरुषन की सङ्गति करिये॥
रहिये साधुन के सँग माहीं । ध्यान भजन जहाँ छूटै नाहीं ॥
ह्वै परिपक्व[1] जहाँ मन रहो । गुरु मत[2] दया दीनता गहो ॥
सहज सहज उपदेश लगावो । भूले को हरि बाट बतावो ॥
तारन तरन बहुत जन भये । छमा दीनता धारे गये ॥
पै उनको अभिमान न आया । नेक न पड़ी अविद्या छाया ॥
आपा मेटि गुरू ही राखा । जब बोलें तब गुरु लिये भाखा ॥
तू अभिमानी जन्म गँवाया । पाप बोझ शिर घना उठाया ॥
दो० यों ही नभ[3] की ओर सों, वाणी भई जु आय ।
कियो गुरू सों मान तैं, चौरासी[4] को जाय ॥६६॥
ह्वाँ सों गुरु रमते भये, शिष्य हि दै फटकार ।
कहा कि तेरे तन विषे, हूजो बड़ो विकार ॥६७॥
ता पाछे कछु दिनन में, देही भयो विकार ।

१ पूर्ण २ सिद्धांत ३ आकाश ४ चौरासी लाख योनियां ।

निकट न आवैं तासु के, ह्वाँ के कोउ नर नार ॥६८॥
कष्ट भयो अर्द्धङ्ग को, रहो न काहू जोग।
आठ पहर वाको भयो, निरो शोग ही शोग ॥६९॥
तन तजि कै नरकै गयो, फिरि चौरासी माहिं।
जो गुरु सों करे मान ही, ताकी गति हो नाहिं ॥७०॥
कहैं गुरू शुकदेव जी, चरणदास परवीन।
मन सों तजि अभिमान को, शिष्य गुरू सों रहे दीन॥७१॥
मान न काहू सों करै, सब ही सों आधीन।
समरथ हरि की भक्ति में, जगत काज सों हीन ॥७२॥

॥ अगमचेतो दृष्टांत ॥

दश कर्मों को जानिये, महापाप की खानि।
तन मन वचन संभारिये, यही जु अधिक सयानि ॥७३॥
कहूँ एक दृष्टान्त ही, सो परमारथ भेश।
सुनि समुझै हिरदै धरै, तो लागै उपदेश ॥७४॥
रहै सुहावन नगर इक, बसैं लोग सुख मान।
नर नारी सुन्दर सबै, अरु धनवन्ते जान ॥७५॥
नया करैं जहाँ भूप ही, बरस दिना के माहिं।
संवत बीते तासु को, फिर वै राखैं नाहिं ॥७६॥

पकड़ डार दें नदी पारा। जहाँ भयानक अधिक उजारा[1] ॥
पशू आदि ताको भखि[2] जावैं। स्वपना सा देखैं बिनशावैं ॥
नया भूप करि आज्ञा मानैं। ताको अपना ईश्वर जानैं ॥

१ उजाड़, २ खाजायें।

रहैं हुकुम में ही कर जोरैं । वाको वचन न कबहूँ मोरैं[१] ॥
छत्तरधारी हाड़ें डारैं । सो मैं आगे कही उजारैं ॥
कई सैकड़ों ऐसे भये । चेते नाहीं निष्फल गये ॥
राजा नया और इक किया । सो वह समझा चेता हिया ॥
मन ही मन में कहै विचारे । वहुत भूप जंगल में डारे ॥
दो० बरस दिना जब वीति हैं, हम हूँ को दे डारि ।
सरिता ही के पार ही, अधिकी जहाँ उजारि ॥७७॥
याको कछू उपाय विचारौं । ता सेती[२] यह जन्म न हारौं ॥
एक दिना उन यही विचारा । देखन गयो नदी के पारा ॥
जहाँ भूप जा जा करि मरते । तिनके हाड़ हुईं जा गिरते ॥
खड़ा जु होय देखि मन आई । नीकी ठौर बनाऊँ ह्याँई ॥
दृष्टि उठा ऊँची जो कीन्ही । कामदार को आज्ञा दीन्ही ॥
वन काटो आज्ञा दइ एता । फिरवाँ[३] पाँच कोस में जेता ॥
सुन्दर सा इक कोट बनाओ । तामें सुन्दर बाग रचाओ ॥
करौ हवेली[४] ताके माहीं । जैसी भूपन हूँ कै नाहीं ॥
गिलम[५] बिछौने परदे लावो । अरु तय्यारी सबै करावो ॥
होय चुकै जब मोहि सुनावो । बहुत इनाम अधिक तुम पावो ॥
दो० वैसी ही बनने लगी, जैसी आज्ञा दीन ।
बनते बनते बन चुकी, सुन्दर अधिक नवीन ॥७८॥
फिर राजा को आनि सुनाया । राजा सुनि बहुतै सुख पाया ॥
आछी वस्तु सु वहाँ पहुँचाई । ह्याँ जो रही न सुरति लगाई ॥

१ टालें २ जिससे ३ गोलाकार ४ बड़ा भारी मकान ५ कोमल ।

कहा कि एक दिना ह्वाँ जाना। क्षण क्षण होय अवधि की हाना
पाँच ही गाँव कोट के साथा। किये दिये लिखि अपने हाथा ॥
अपना एक हितू मन भाई। भरी कचहरी लिया बुलाई ॥
करि इनाम ताको वह दिया। वाका देखा साँचा हिया ॥
और कही जो राजा होवै। वाहि तलाक[1] याहि जो खोवै ॥
ऊँहीं आठ महीने बीते। करणी करि भये मन के चीते ॥
दो० ह्वै निश्चिंत आनँद भये, चिन्ता भय नहिं कोय।
अपना कारज करि चुके, ह्याँ ह्वाँ एक हि होय ॥७९॥
सुख ही में वह वर्ष बिताया। अवधि बीति फिरि वह दिन आया
सब उमराव[2] जु घिरि कर आये। नया भूप करने को लाये ॥
यहि सिंहासन सों दियो डारी। कहा कि तुम्हरी बीती बारी[3]॥
ऐसे कहि कर गहि लै चाले। पार नदी के जंगल घाले[4] ॥
शुभ करणी को करि वह राजा। अपने महलन जाय विराजा
इत से भी उत सुख बहु भारी। ना कोइ बैरी ना जंजारी ॥
अपनी करणी से सुख पावै। रहै अशोक न चिन्ता आवै ॥
कहि शुकदेव चरणही दासा। शुभ करणी करि पाया वासा ॥
दो० ऐसे मानुष देह को, जानहुँ नगर समान।
राजा या में जीव है, शुभ करणी परमान ॥८०॥
नहिं तो चौरासी जङ्गल हैं। भाँति भाँति का जित ही मे है ॥
पशू पशू को जित भखि जावै। जित भय मानि नहीं सुख पावै
बहु दुख पावै खोटी करनी। जैसी करनी तैसी मरनी ॥

१ सौगन्ध २ अमीर ३ समय ४ डाल दिया।

शुभ करनी को जो नर धावै । बहुत भाँति सुख सुरपुर जावै ॥

दो०—भूप उमरि अपनी किया, अपना पूरण काम ।
ऐसे ही शुभ कर्म्म सों, तुमहूँ पावो धाम ॥८१॥

॥ दूसरी कथा ॥

अरु इक कथा कहौं अति नीकी । जा सुनि जाय अविद्या जी की
इक राजा था बहु परवीना । सो वह पुत्र बिना था हीना ॥
एक समय वाहि रोग जु आया । पुत्र बिना बहुतै कलपाया ॥
कौन राज अब ह्याँको करि है । जो मेरी देही यह मरि है ॥
रामत करत सिद्ध इक आया । राजा ने सब वाहि सुनाया ॥
सिद्ध कही सुत गोद बलावो[1] । बेटा करि तिहि राज बिठावो॥
राजा कही जु ध्यान लगावो । राज भाग में ताहि बतावो ॥
फिरि उन कही जु खोलि दिखाऊँ । साहूकार का पुत्र बताऊँ॥
वाके भाग्य लिखा यह राजा । ताको सुत करि कीजै काजा ॥
फिरि उन वाको गोद जु लीन्हा । वाको राज काज सब दीन्हा
कोइक दिन में उन तन त्यागा । पुत्र राज्य करने तब लागा ॥
राज्य पिता सों नीका कीन्हा । प्रजा आदि को सब सुख दीन्हा

दो० राज करत वर्षों भए, सुख ले अरु सुख दीन ।
नगर मध्य वाके कोऊ, बिना द्रव्य नहिं हीन ॥८२॥

एक दिना भया ऐसा काजा । सोवत चौंकि उठा वह राजा ॥
भोर भये सब फौज बुलाई । हरि की आज्ञा सो समुझाई ॥
कहा जहाँ तक परजा मेरी । ताको लूटो जाय सवेरी[2] ॥

---

१ बैठा लेवो २ शीघ्र ।

आज्ञा ले सब फौज पधारी । परजा लूटी नीकै सारी ॥
दूजे फिर कहि ह्वाँ तुम जावो । जिनकूँ लूटा भवन जलावो ॥
घर परजा के सभी जलाये । नीच ऊँच ने बहु दुख पाये ॥
तीजे वचन भूप यों भाखो । कहा फौज सों खोज न राखो ॥
बड़ों बड़ों पर शस्तर[1] मेलौ[2] । लड़के वाले कोल्हू पेलो ॥
यह सुनि सकल प्रजा घिरि आई । राजा पास पुकार सुनाई ॥
बहुतक राजा भये अनूठा[3] । अपनी परजा को नहिं लूटा ॥

दो० पहिले सबको सुख दिया, अब भये तुम दुखदाय ।
कारण यह कहि दीजिये, सब ही को समझाय ॥८३॥
यह कहि साहूकार ने, जो था बाका बाप ।
कुयश चला संसार में, बहुत लगाये पाप ॥८४॥
साहूकार पण्डित घने, और बड़े ही लोग ।
कोल्हू की सुनि कतल[4] की, बहुतक माना शोग ॥८५॥
आये हैं फरयाद[5] को, सुने बिगड़ते काज ।
सकल प्रजा को मारि कै, किसका करि हो राज ॥८६॥
सकल प्रजा तुब शरण हैं, बकसि देहु महाराज ।
अपनी अपनी भूमि में, फेरि बसैं सब साज ॥८७॥

राजा कही सु मैं नहिं जानूँ । अपने मुख से कहा बखानूँ ॥
कहा पुरुष सो इक तुम आनो[6] । जिनका कहा साँच तुम मानो
यह सुनि ज्वाब सवालहि वारे । आ करि बैठे सबन मँझारे ॥
सो इक नर बहुतै इतबारी । जिनकी साखि हुती बहु भारी ॥

१ हथियार २ चलावो ३ अद्भुत ४ मारना ५ प्रार्थना ६ लाग्रो ।

तिनको लै राजा के पासा । खड़े किये सब चरणन दासा ॥
राजा उठि उनहीं के माहीं । मिलि करि बैठा वाही ठाहीं ॥
राजा कही जु हरि की ओरैं । ध्यान लगाओ मन को मोरैं ॥
घड़ी चारि जब ध्यान लगाया । नभ से शब्द यही जो आया ॥
दो० ढील भूप तैं क्यों करी, इन की कीजै जेल ।
बड़े कतल ही कीजिये, छोटे कोल्हू पेल ॥८८॥
तीन हिं बार लगाया ध्यानी । बारंबार यही भइ बानी ॥
भूप कही कहा दोष हमारा । कोपित[1] भयो जो सिरजन हारा ॥
अब तुम परजा सों कहि देवो । कतल पेलन कल तुम लेवो ॥
आय नरों ने सबमें खोली । सुनि परजा ऐसे उठि बोली ॥
कहन सकल आपस में लागे । हम तो मूरख बड़े अभागे ॥
हम शुभ कर्म कबहुँ नहिं कीन्हे । तिथि पर्वहि केहु दान न दीन्हें
कथा कीर्तन में नहिं गए । कुटुँब जाल में पागे रहे ॥
हरि की भक्ति नहीं चित लाई । ताते अब होती मुकताई ॥
दो० हरि ही को बिसराइया, पूत महल के काज ।
नाम रहैगा जगत में, सो भी रहा न आज ॥८९॥
चले नरक को निश्चय जैहैं । मार यमों की तीक्षण खैहैं ॥
काँपत है सब देह हमारी । आपस में भाषैं नर नारी ॥
ऐसे ही सब रो रो बोलैं । व्याकुल भये धरणि पै डोलैं ॥
होय इकट्ठे मता उपाया । सो राजा को जाय सुनाया ॥
कर जोरे मुख तिणका लीयै । नख शिख तन मन दीन जु कीयै

१ क्रुद्ध ।

इक पट [१] मास जु हमैं बचावो । अपने हरि को अर्ज सुनावो
जामें जप तप धर्म बढ़ावैं । बोलैं साँच, झूठ बिसरावैं ॥
चोरी जारी [२] हिंसा त्यागैं । राति दिना हरि ही सों लागैं ॥
दो० नित प्रति उठि शुभ कर्म करि, लहैं धाम में वास ।
काम क्रोध बिसराय करि, होय चरणही दास ॥६०॥
अब तुम हमैं वेगि बकसावो [३] । मास पटन की छूट दिलावो ॥
हम रय्यत [४] हैं सभी तुम्हारी । एक बार कहो अरज हमारी ॥
और कही तुम्हैं बोझ हमारा । राजा सुनि उन ओर निहारा ॥
कही कि मैं अब कैसे कहूँ । आठ पहर डरता ही रहूँ ॥
अरज करत काँपै तन सारा । तेजवंत है वह दरबारा ॥
पै तुम देखि दया उपजाई । मेरे भी मन ऐसी आई ॥
बैठि अकेला ध्यान धरूँ ही । तुम्हरे कारण अरज करूँ ही ॥
दिन बीता जब निसि ही आई । भूप ध्यान करि अरज सुनाई ॥
दो० अरज करी उन दीन ह्वै, बार बार यह भाखि ।
या परजा को मास पट, क्षमा दृष्टि करि राखि ॥६१॥
जो जो इनके मन विषे, सो सो करैं अघाय [५] ।
छठे मास के ऊपरै, एक द्योस [६] नहिं जाय ॥६२॥
देखि भूप की दीनता, पिघले दीनदयाल ।
नभ से वाणी यह भई, वही समय ततकाल ॥६३॥
यह परजा तुव कारणै, बकसी है पट मास ।
ऊपर जा दिन एक जब, कीजो इनका नास ॥६४॥

१ छः २ व्यभिचार ३ छुड़वावो ४ प्रजा ५ मन भरकर ६ दिन ।

आज्ञा भई भूप कों जबही। सोया पलँग निचिंत ह्वै तबही ॥
भोर भये बाहर को आया। सकल प्रजा को निकट बुलाया ॥
कहा कि षट ही मास बचाया। अपने मन का करिल्यो भाया ॥
यह सुनि परजा सब हरषाई। अपने अपने घर को आई ॥
कोउ सिरकी कोउ छप्पर डारा। पक्का मन्दिर नाहिं विचारा ॥
चोरी जारी सबै बिसारी। ठाले भये सभी ब्योहारी ॥
अरु साधुन की वृत्ती[१] धारी। बालक मरद और सब नारी ॥
रहे नहीं वे खोटे मन के। भये तपस्वी क्रस सब तन के ॥
दो० गड़ा हुता जो द्रव्य ही, करी न ताकी आँट[२]।
राखि लिया षटमास का, अरु सब दीन्हा बाँट ॥९५॥
जिते धनिक तिन सब यह कीन्हा। हते अनाथ तिनहिं दै दीन्हा
कहैं परस्पर धन कहा करि हैं। छठे महीना पाछे मरि हैं ॥
यही समुझि उपजा वैरागा। इन्द्रियन का रस सबही त्यागा ॥
फीके लगे भोग सब जग के। सहज काम सब छूटे अघ के ॥
सब की दशा एक जो भई। मौत जानि करि चिन्ता रही ॥
दिन दिन दुर्बल होते जावैं। हरि ही का जप ध्यान लगावैं ॥
एक एक दिन लागै प्यारा। भजन करैं जगि न्यारा न्यारा ॥
हठ अरु वाद न कोऊ ठानै। इक इक घरी अमोलक जानै ॥
कहैं कि खोवैं तो कित पावैं। कथा कीर्तन सों चित लावैं ॥
कथा कीर्तन[३] जित तित होई। साधु समागम ह्वै गयो सोई ॥
घर घर शुभ कर्मन ब्योहारा। धर्म पकड़ि अधरम सब डारा ॥

१ चाल, २ परवाह ३ नाम व गुणों का गान करना

ज्यों ज्यों दिवस अवधि के आवैं। घने घने शुभ कर्म कमावैं
दो० जाको होवै मौत भय, जग में लगै न चित्त।
झुकै राम की ओर ही, बहुत लगावै हित्त ॥९६॥
उन मनुपन की यह गति भई। जग की चाल डारि सब दई ॥
लाड़ चाव त्यौहार न कोई। व्याह सगाई पुत्र न होई ॥
काम क्रोध नहिं उपजै मोहा। लोभ मान नहिं प्रीति न द्रोहा ॥
ऐसे रहि शुभ कर्म जु करैं। सदा मौत से डरते रहैं ॥
सहज सहज फिर वह दिन आया। डरे नहीं शुभ कर्म कमाया॥
आपस में कहैं हमको क्या है। यम की मार नरक भय ना है ॥
राजा जाना वह दिन आया। अपना सेवक तुरत पठाया ॥
कही कि फौजैं सब बनि आवैं। कतल करन परजा को धावैं ॥
फौजैं सजि करि ठाढ़ी भई। आज्ञा ओर दृष्टि जो दई ॥
राजा के मन ऐसी आई। उन सब मनुपन लेहुँ बुलाई ॥
साँचे सब ही के इतबारी। फेरि बुलावो अब की बारी ॥
यही सोच फिर शीश उठाया। आज्ञाकारी निकट बुलाया ॥
दो० कामदार सों यों कही, वैसो मनुप बुलाय।
जिनमें मिलि बैठा प्रथम, हरि सों ध्यान लगाय ॥९७॥
फिर उनहिंन को लियो बुलाई। मिलि बैठा सबका सुखदाई ॥
कही कि सब मिल सुरति उठावो। राम ओर को ध्यान लगावो
आज्ञा होय सोई तुम मानो। मेरा दोप कछू मत जानो ॥
मोको आज्ञा होय सो करि हौं। अपने हिये नेक नहिं धरिहौं ॥
राजा कहि मिलि ध्यान लगाया। ऐसा शब्द गगन सों आया ॥

राजा मैं अब वकसि दिया है। सब परजा हिया शुद्ध किया है॥
जिन करमों से कोप भया था। तिनके कारण खड्ग लिया था॥
सो परजा वे बातैं डारी। करि सुकर्म हरि भक्ति सँभारी॥
दो० ताते आज्ञा यों दई, रचौ कुटुँब घरबार।
शुभ कर्मन को कीजिये, खोटे कर्म निवार[१] ॥६८॥
राजा कही खोल दृग दीजै। आज्ञा भई सोई अब कीजै॥
खोल आँख कर जोरे भाखे। वकसे गये तुम्हारे राखे॥
जो तुम कहौ सोई अब करैं। वचन तुम्हारे हिरदय धरैं॥
राजा कही यही तुम कीजो। राम नाम को संगी लीजो॥
गुरु का ध्यान धरो मन माहीं। विपति जासु सों आवत नाहीं॥
अपनी त्रिया त्रिया करि जानो। पर तिरिया को माता मानो॥
परधन को पाहन सम देखो। शुभ कर्मन को करो विशेखो॥
बोलो साँच झूठ को नाखो। निन्दा हिंसा नेक न राखो॥
ह्वै रहियो सबके सुखदाई। करुवा वचन न बोलो काही[२] ॥
जो व्यवहार करो सो साँचा। लोक प्रलोक न आवै आँचा॥
दो० भाषत श्री शुकदेवजी, सुनो चरणही दास।
राजा ने उपदेश दे, खोई सबकी त्रास ॥६९॥
फिर वे पुरुष विदा ह्वै आये। हरि राजा के वचन सुनाये॥
जिन चालन सों वकसे सारे। सो रखियो तुम हिये मँझारे॥
उज्जवल कर्म भूलि मति जैयो। हरि की भक्ति माहिं ही रहियो॥
सुनि करि आपस में फैलाई। एक एक ने सुनी सुनाई॥

१ हटाकर २ किसी से।

सब ने मानी निश्चय कीन्ही। प्रकट[1] सु अपनी आँखिन चीन्ही
हाथ कँगन को दर्पण केहा। जैसी करणी भुगतै जेहा ॥
खुशी भये लागे व्यवहारा। राम भक्ति को लिये सँभारा ॥
कहि शुकदेव चरणहीदासा। सकल प्रजा रहै उमँग हुलासा ॥
दो० शुकदेव कहैं चरणदास सुन, मैं उपदेशूँ तोहि।
जो पहिले हरि को भजै, पाछे दुःख न होहि ॥१००॥

॥ दृष्टांत तीसरा ॥

कथा कहौं इक और पुरानी। करणी करै सु समुझै प्रानी ॥
इन्दुनाम इक ब्राह्मण हुता। जाके दश सुत अरु इक सुता ॥
सुता व्याहि दइ घर की हुई। जाके पीछे माता मुई ॥
पिता मुवा दश पुत्र रहे थे। आपस में सब बैठि कहे थे ॥
ऐसी कछू जु करणी कीजे। जग में ऊँची पदवी लीजे ॥
इक ने कही हूजिये भूपा। सुन्दर देही धरो अनूपा ॥
तेज मुल्क में होवे भारी। हुकम जु मानैं नर अरु नारी ॥
और एक ऐसे उठि बोला। सावधान ह्वै अन्तर खोला ॥
दो० राजा ही का हुकम तो, थोरे ही में जोय।
ऐसी करणी कीजिये, भूप चक्कवै[2] होय ॥१०१॥
एक द्वीप नौ खण्ड में, जाको पूरो राज।
एक और उठि बोलिया, यह भी ओछा साज ॥१०२॥
चक्रवर्ति में इन्द्र बड़, देवन हू का भूप।
उम्र बड़ी आनँद बड़े, दुख की लगै न धूप ॥१०३॥

१ जाहिर २ चारों दिशाओं का।

करणी कर इन्द्र ही लोका। होकर राजा कीजे भोगा ॥
जहाँ अप्सरा नृत्य करत हैं। सुन्दर अधिकी रूप धरत हैं ॥
और बड़ा भाई यों भाखा। सुरपतिहू को नाहीं राखा ॥
कहा कि पद्वी ब्रह्मा की सी। और न दीखै काहू ही की ॥
जाके एक दिवस ही माहीं। चौदह इन्दर हो हो जाहीं ॥
सब ब्रह्मण्ड आसरे वाके। बिनशि जायँ मिटि जावैं जाके ॥
तीन लोक का पिता वही है। वेद पुराणन माहिं कही है ॥
करणी करि करि ब्रह्मा हूजे। ऐसी पद्वी क्यों नहिं लीजे ॥

दो० सगरे यों उठि बोलिया, सत्य सत्य यह बात।
ऐसा ही अब कीजिये, ठहराई सब भ्रात ॥१०४॥

दशहू करन तपस्या लागे। पारब्रह्म की ओरी पागे ॥
अधिक तपस्या कीन्ही भारी। मास सूखि गया दीखैं नारी ॥
हाड़ त्वचा[1] चिपटी रह गई। लोहू धातु[2] कछू ना रही ॥
सबही चित्तर से रह गये। कष्ट तपस्या ऐसे सहे ॥
फूल पात जलहू नहिं लीन्हा। ऐसा तप दशहू ने कीन्हा ॥
तन त्यागे दूजे ही जन्मा। दशहू भ्रात हुये जो ब्रह्मा ॥
जिनके दश ब्रह्माण्ड बने हैं। एक एक तिन माहिं ठने[3] हैं ॥
करणी कबहुँ न निष्फल जावै। जो मन धारे सोई पावै ॥

दो० करणी सों इन्दर भवै, करणी ब्रह्मा होय।
करणी सों ईश्वर भये, शुकदेवा कहै सोय ॥१०५॥
दश हजार कै बीस ही, वर्ष तपस्या कीन्ह।

१ खाल २ वीर्य ३ स्थित।

हरि जाको बदलो दियो, माँगो सो वर दीन्ह ॥१०६॥
चारौं युग के माहिं जो, करणी ही परधान[1] ।
गुरु शुकदेवा कहत हैं, चरणदास उर आन ॥१०७॥
उज्जवल कर्मन के किये, दिन दिन उज्जवल होय ।
मन में उपजै भक्ति ही, प्रेम पदारथ सोय ॥१०८॥
चरणदास तुम करणी कीजो । याही में मन नीके दीजो ॥
ऐसा जन्म बहुरि नहिं पैहै । बीति जाय पुनि बहु पछितै है ॥
मनुष देह को दुर्लभ जानो । याको पा शुभ करणी ठानो ॥
या देही में करी कमाई । जाय स्वर्ग में नौ निधि पाई ॥
भक्ति करी देही के माहीं । जा बैकुण्ठ सु आये नाहीं ॥
या देही में ज्ञान भया है । जीव ब्रह्म जो होय गया है ॥
मूरख करणी को नहिं जानै । कथनी कथि कथि बहुत बखानै ॥
थोथी कथनी काम न आवै । थोथा फटकै उड़ि उड़ि जावै ॥
दो० कथनी ही के बीच में, लीजो तत्त्व[2] विचार ।
सार सार गहि लीजियो, दीजो डार असार ॥१०९॥
थोथी कथनी वही जु जानो । बिन करणी जो करै बखानो ॥
लोक अलोक न शोभा पावै । बकि बकि बकि खालो रहि जावै
कथनी के शूरा बहु जाने । करणी में कायर अरु याने ॥
शूरा वही जु करणी करै । दया धर्म ले सम्मुख अरै[4] ॥
पाँव धरै सो नाहिं उठावै । करणी करता चला जु जावै ॥
फिरै जबहि फल लै कर आवै । सो वह शूरा मल्ल कहावै ॥

१ मुख्य २ सार ३ अड़ै ।

कायर बीचहि सों फिरि आवै । सो वह करणी को बिसरावै ॥
आपन खोट न जानै भोंदू । वह तो कथनी ही का गोंदू[१] ॥
दो० ऐसे जग में बहुत हैं, वैसे जग में नाहिं ।
कोइ कोई ही देखिये, सतगुरु के संग माहिं ॥११०॥
होनहार को बहुत बतावैं । पै ताका कछु मर्म न पावैं ॥
कहैं कि होनी होय सु होई । ताको मेटि सकै नहिं कोई ॥
याको समझ उपाय न करिया । श्रद्धा तजि कायर ह्वै परिया ॥
समझि निखट्टू[२] गृही भहे । वेषधारी बिन करणी रहे ॥
जानत नाहिं जु पिछिली करणी । अब के भई जु होनी भरणी ॥
परालब्ध[३] अरु भाग्य कहावै । पिछिले कर्मन से उपजावै ॥
अब के करै सु आगे पावै । कछू कछू फल अभी दिखावै ॥
कै काहू गाली दे देखो । कै काहू को मारि विशेखो ॥
कै काहू को भोजन खवाओ । कै काहू को शीश नवावो ॥
कै करि चोरी द्यूतहि[४] खेलो । कै काहू को गुस्सा झेलो ॥
दोनों का फल आगे आवै । चरणदास शुकदेव बतावै ॥
प्रकट देखिये यही तमाशा । नीच ऊँच करणी परकाशा ॥
दो० कोटि यही उपदेश है, यही जु सगरी बात ।
करणी ही बलवंत है, यों शुकदेव दिखात ॥१११॥
मन की करणी ज्ञान ह्वै, परमातम लखि लै ।
ब्रह्मरूप ह्वै जाय जब, छूटै सबही भै[५] ॥११२॥
भवसागर[६] में भय घने, ताकी लगै न आँच ।

१ बकवादी २ कोई काम न करने वाला ३ प्रारब्ध ४ जुवा ५ भयर ६ संसार ।

झूठे को भय बहुत है, भय नहिं व्यापै साँच ॥११३॥
करणी ही सों पाइये, पारब्रह्म का खोज।
सतगुरु पै चल जाइये, मेटै सबही सोच ॥११४॥
इच्छा ब्रह्म करी सोइ करणी। ईश्वर रूप धरा[1] ले वरणी[2] ॥
महतव् करि अहंकार जु कीये। तीन रूप उसके करि दीये ॥
राजस तामस सात्विक जानो। एही त्रैगुण मन में आनो ॥
राजस सों जग को उपजावै। सात्विक सों पालै सरसावै ॥
तामस सों विनशावै तोड़ै। बहुत सृष्टि नहिं भू पर जोड़ै ॥
जोड़ै तो वह कहाँ समावै। धरती का परमाण कहावै ॥
योजन पचास क्रोड़ बताई। वेद पुराणन में जो गाई ॥
धरती करणी ही सों ठाढ़ी। कछुआ शेष भये जो आडी[3] ॥
करणी ही सों मेह बरसावै। बादल मिलती पवन चलावै ॥
दो० करणी सों कर्तार ही, धरा ब्रह्म का नावँ।
माया भी तो उन करी, खेली बहु विधि दावँ ॥११५॥
कोई निराकार बतलावै। कोई निर्गुण कहि समझावै ॥
कोई कहै दोनों से न्यारा। है जु अकर्ता अलख अपारा ॥
कहैं कि माया क्रिया पसारा। जेता दीखै यह संसारा ॥
तो कहु माया कित सों आई। अन्त यही हरि ने उपजाई ॥
वही सृष्टि का कारण काजा। वाने जगत प्यार करि साजा ॥
देह देह में वह दरशावै। चातुर हो चतुराई पावै ॥
जैसे बरतन गढ़ै कुम्हारा। सब में दीखै सिरजनहारा ॥

१ धारण किया २ इच्छा शक्ति अर्थात् माया ३ आधार।

चित्तर में चित्रामी सूझै। सुरति लगाय लगाय उरूझै[1] ॥
जबही बनी, बनाई नीकै। कहैं शुकदेव जु अपने जीकै ॥
दो० बिना किये कछु होय ना, आपहि लेहु विचार।
करणी देखी दूर लौं, सोचा बारंबार ॥११६॥
चरणदास तोसों कहौं, उठि उद्यम को लाग।
आलस सकल गवाँय कै विषयन में मत पाग ॥११७॥
कारज लोक अलोक के, बिन करणी हों नाहिं।
करणी ही सों होत हैं, करणी सबके माहिं ॥११८॥
खोटे कर्मन सों दुखी, या दुनिया के बीच।
करणी ही सों होत है, नर ऊँचा अरु नीच ॥११९॥
संगति मिलि करने लगै, ऊँचे नीचे कर्म।
बुधि मैली जो होत है, खोवे अपना धर्म ॥१२०॥
सतसंगति से धर्म है, कुसंगति सों जाय।
चरणदास शुकदेव कहि, दोनों दिये दिखाय ॥१२१॥
धर्म गया जब सत गया, भ्रष्ट भई जु बुद्धि।
तब तो पाप अरु पुण्य की, कछू रही ना शुद्धि ॥१२२॥
पाप पुण्य ही सत्य है, ठहरि रहा ब्रह्मण्ड।
इन दोनों के मिटत ही, होय खण्ड ही खण्ड ॥१२३॥
पाप पुण्य व्यवहार है, ताहि देखि प्रत्यक्ष।
जाही सेती प्रेत यम, देवत गण अरु यक्ष ॥१२४॥
चौरासी अरु मनुप सब, चंद सूर लौं जान।

१ स्नेह करे।

पाप पुण्य के फेर में सब ही पड़े पिछान ॥१२५॥
पाप किये नरकै पड़ैं, पावैं दुःख अपार ।
पुण्य किये सुख बहुत हैं, देखो दृष्टि उघार ॥१२६॥
बिरले जन को होत है, पाप पुण्य की सूझ ।
सोइ छुटै जग जाल सों, बहुते रहे अरूझ ॥१२७॥
लाख बात की बात है, कोटि बात की जान ।
पाप पुण्य सों जानिये, लाभ होय कै हान ॥१२८॥
करणी बिन थोथा रहै, कछू न पावै भेव ।
बिभव प्राप्त कहुँ होय ना, कहैं जु यों शुकदेव ॥१२९॥

होनी कहैं जु वे भी सारे । करणी करते दृष्टि निहारे ॥
बिन करणी व्यवहार न चाले । नहीं तो बैठे रह जा ठाले ॥
कृत्य करै सो भी यह करणी । बनिया हाट पाँडिया[1] बरणी[2]॥
करणी ही सों खावै पीवै । योग करै बहुते दिन जीवै ॥
मन माँजे सब ही परकाशै । करणी बिन झूँठी सब आशैं ॥
करणी ही सों सिधि ह्वै जावै । अष्ट सिद्धि करणी सो पावै ॥
जीवन्मुक्ता करणी हेती । सुनले सकल शास्त्र[3] सेती ॥
गुरु सों निश्चय यहै जु कीनी । रणजीता मैं तुम को दीनी ॥

दो० यह तो धर्म जहाज है, मैं तोहि दई निहार ।
भवसागर में डारियो, चढ़ै सो उतरै पार ॥१३०॥
बादवान[4] पुनि खेइयो, दीजो ताहि चलाय ।

१ पंडित २ जप पाठ ३ सांख्ययोग मीमांसा न्याय वैशेषिक आदि धर्मशास्त्र ।
४ जहाज पर बाँधने का पाल ।

पानी पाप निकासियो, नेकहु ना भरि जाय ॥१३१॥
चढ़ि उतरै जो पार ही, पावै सुख का धाम ।
आनँद ही आनँद लहै, करै तहाँ विश्राम ॥१३२॥

शिष्य वचन

दो० धन्य श्री शुकदेव हो, वचन तुम्हारे धन्य ।
सब संदेह मिटाय करि, निश्चल कीन्हो मन्न ॥१३३॥

व्यास पुत्र तुम मम गुरु देवा । करूँ मानसी तुम्हरी सेवा ॥
मन में तुम्हरी पूजा साजूँ । तुमसों पूछि करौं सब काजूँ ॥
मेरे ध्यान शिताबी[1] आये । जो थे सो सन्देह मिटाये ॥
मैं तो ध्यान करत ही रहूँ । तुम्हरी मूरति हिरदय धरूँ ॥
मेरे जीवन प्राण अधारा । मैं नहिं रहौं चरण से न्यारा ॥
तुम्हरा ही चरणदास कहाऊँ । बार बार तुम पै बलि जाऊँ ॥
तुमही को ईश्वर करि मानूँ । पारब्रह्म तुम ही को जानूँ ॥
और न कोई दूजो आसा । मो हिरदय में राखो बासा ॥

दो० अपने चरणहिं दास को, सब विधि दिया अघाय ।
स्तुति करूँ तो क्या करूँ, मोपै कही न जाय ॥१३४॥

इति श्री गुरु शिष्य संवाद धर्मजहाज सम्पूर्णम् ॥



१ शीघ्र ।

❀ अथ श्री गुरु शिष्य संवाद अष्टांग योग प्रारम्भ ❀

शिष्य वचन

दो० व्यास पुत्र धन धन तुम्हीं, धन धन यह अस्थान ।
मम आशा पूरी करी, धन धन वह भगवान ॥१॥
तुम दर्शन दुर्लभ महा, भये जु मोको आज ।
चरण लगो आपा दियो, हुए जु पूरण काज ॥२॥
चरणदास अपनो कियो, चरणन लियो लगाय ।
शिर कर धरि सब कछु दियो, भक्ति दई समझाय ॥३॥
बालपने दरशन दिये, तब ही सब कछु दीन ।
बीज जु बोया भक्ति का, अब भया वृक्ष नवीन ॥४॥
दिन दिन बढ़ता जायगा, तुम किरपा के नीर ।
जब लग माली ना मिला, तब लग हुता अधीर ॥५॥
अरु समुझाये योग ही, बहु भाँती बहु अंग ।
ऊरधरेता[1] ही कही, जीतन बिंद[2] अनंग[3] ॥६॥
अरु आसन सिखलाइया, तिनकी सारी विद्धि[4] ।
तुम्हरी कृपा सों होहिंगे, सब ही साधन सिद्धि ॥७॥
इक अभिलाषा और है, कहि न सकूँ सकुचाय ।
हिये उठै मुख आय करि, फिरि उलटी ही जाय ॥८॥

---

१ अखंड ब्रह्मचर्य २ वीर्य ३ कामदेव ४ प्रकार ।

गुरु वचन

दो० सतगुरु से नहिं सकुचिये, एहो चरणहिदास।
जो अभिलाषा मन विषे, खोलि कहो अब तास ॥९॥

शिष्य वचन

सतगुरु तुम आज्ञा दई, कहूँ आपनी बात।
अष्टांग योग समझाइये, जाते हियो सिरात ॥१०॥
मोहिं योग बतलाइये, जो है वह अष्टांग।
रहनी गहनी विधि सहित, जाके आठों अंग ॥११॥
मत मारग देखे घने, ह्याँ सियरे भये प्रान।
जो कुछ चाहो तुम करो, मैं हौं निपट अयान ॥१२॥

गुरु वचन

अष्टांग योग समझाय हूँ, भिन्न भिन्न सब अंग।
पहिले संयम सीखिये, जाते होय न भंग ॥१३॥

शिष्य वचन

संयम काको कहत हैं, कहो गुरू शुकदेव।
सो सब ही समुझाइये, ताको पाऊँ भेव ॥१४॥

गुरु वचन

॥ योगियों के आवश्यक कर्त्तव्य ॥

प्रथम सूक्ष्म भोजन खावै। क्षुधा मिटै आलस नहिं आवै॥
थोड़ा सा जल पीवन लीजै। सूक्ष्म बोलै वाद न कीजै॥
बहुत नींद भर सोवै नाहीं। दूजा मनुष न राखै पाहीं॥
खट्टा चरपरा खार न खावै। वीरज क्षीण होन नहिं पावै॥

करै न काहू वैरी मिता । जगत वस्तु की रखे न चिंता ॥
निश्चल ह्वै मन को ठहरावै । इन्द्रिन के रस सब बिसरावै ॥
त्रिया तेल नहिं देह छुवावै । अष्ट सुगन्ध[1] अङ्ग नहिं लावै ॥
मनुपन की राखै नहिं आसा । गुरु का रहै चरण ही दासा ॥
दो० काम क्रोध मद लोभ अरु, राखै ना अभिमान ।
रहै दीनता ही लिये, लगै न माया बान ॥१५॥
छल नहिं करै न छल में आवै । दम्भ[2] झूठ के निकट न जावै
टोना यंत्र भूत नहिं ध्यावै । झूठ जान के सब बिसरावै ॥
धातु रसायन मन नहिं लीजै । झूठ जानि याहू तजि दीजै ॥
स्वाँग तमाशे बाग न जैये । आसन ऊपर बैठा रहिये ॥
दृढ़ ह्वै लगै युक्ति के माहीं । ताते विघ्न होय कछु नाहीं ॥
रूठा रहै जगत लोगन सों । न्यारा रहै सभी भोगन सों ॥
इन्द्र आदि लौं सुख संसारी । नेक न चाहै चित्त मँझारी ॥
सिमिट रहै हिय माहिं समावै । ऐसे योग सधे सिधि पावै ॥
दो० ऋद्धि सिद्धि अरु कामना, तिनकी रखै न आस ।
मान बड़ाई चपलता, त्यागै चरणहिदास ॥१६॥
गहि संतोष क्षमा हिय धारै । संयम करि करि रोग निवारै ॥
अहङ्कार को छोटा करिये । कुटिल मनोरथ मन नहिं धरिये ॥
बसिये जितहि देश सुस्थान । निर उपाधि धरती अस्थान ॥
भली भूमि लखि गुफा बनावै । नीची ऊँची रहन न पावै ॥

[1] तेल, फुलेल, चोवा, चन्दन, कपूर; इत्र, केसर, कस्तुरी ये अष्ट सुगन्ध कहलाते हैं [2] पाखंड ।

जमीं बराबर चौरस होई । होय लदाव[१] कि मधरी सोई ॥
सकड़ा द्वार कपाट[२] लगावे । कहूँ छिद्र रहने नहिं पावे ॥
तामें बैठ योग तप कीजे । दूजो मनुष न भीतर लीजे ॥
कहि शुकदेव चरण ही दासा । जग सों रहिये सदा उदासा ॥
दो० यह सब निश्चय ही करै, योग युक्ति के आदि ।
पहिले ऐसा होय करि, पीछे साधन साधि ॥१७॥

॥ योग के आठ अंग ॥

आठ अंग कहुँ योग के, सुनो चरणही दास ।
मेरे वचनन के विषे, चित दै करो निवास ॥१८॥
यम के अंग प्रथम सुनि लीजै । दूजे नियम कहूँ चित दीजै ॥
तीजे आसन हित करि साधो । प्राणायाम चौथे आराधो ॥
प्रत्याहार पाँचवा जानो । छठे धारणा को पहिचानो ॥
सतवें ध्यान मिटै सब बाधा । कहूँ आठवाँ अंग समाधा ॥

शिष्य वचन

धन्य धन्य तुम श्री गुरुदेवा । मेरे प्राण पति श्री शुकदेवा ॥
व्यास पुत्र तुम दीन दयाल । मो अनाथ को कियो निहाल ॥
आठ अंग मोहि दिये सुनाई । अब कहो भिन्न भिन्न समझाई ॥
एक एक को जुदा बखानो । जासों जाय दास पै जान्यो ॥

गुरु वचन

दो० एक एक का कहत हौं, जुदा जुदा विस्तार ।
श्रवणन सुनो विचारि कै, लै लै हिय में धार ॥१९॥

१ एक प्रकार की छत्त की बिना पट्टियों की बनावट २ ऐसा किवाड़ जिसमें वायु न जा सके ।

॥ अथ पहला यम अंग वर्णन ॥

१ अहिंसा

पहले यम के दश कहुँ अंगा । समझे योग न होवे भंगा ॥
प्रथम अहिंसा ही सुन लीजे । मन करि काहू दोष न कीजे ॥
कड़वा वचन कठोर न कहिये । जीव घात तन सों नहिं दहिये[1]॥
तन मन वचन न कर्म लगावै । यही अहिंसा धर्म कहावै ॥

२ सत्य

दूजे सत्य सत्य ही बोलै । हिरदै तौलि वचन मुख खोलै ॥

३ अस्तेय

तीजे अस्तेय[2] त्याग सुनीजै । तन मन सों कछु नाहिं हरीजै ॥
तन चोरी के लच्छण नाखै । मन की चोरी को नहिं राखै ॥

४ ब्रह्मचर्य

चौथा ब्रह्मचर्य बतलाऊँ । भिन्न भिन्न करि ताहि सुनाऊँ ॥

अष्ट प्रकार के मैथुन

दो० ब्रह्मचर्य या सों कहैं, सुनहु चरणही दास ।
आठ अंग सों नारि की, नेक न राखै आस ॥२०॥

यती होय दृढ़ काछ[3] गहीजै । वीर्य छीण नहिं होने दीजै ॥
मैथुन कहूँ अष्ट परकारा । ब्रह्मचर्य रहै इनसे न्यारा ॥
सुमिरण तिरिया का नहिं करिये । श्रवणन सुरति रूप नहिं धरिये॥
रस शृङ्गार पढ़ै नहिं गावै । नारिन सों नहिं हँसै हसावै ॥
दृष्टि न देखै विष नहिं दौरै । मुख देखै मन हो जा औरै ॥

१ काटिए २ चोरी ३ लंगोट ।

बात इकन्त करै नहिं कबही । मिलन उपाय जु त्यागै सबही ॥
अष्टम स्पर्श निकट नहिं जावै । काम जीत योगी सुख पावै ॥
अष्ट प्रकार के मैथुन जानों । इन्हैं तजे ब्रह्मचर्य पिछानों ॥
कहैं शुकदेव चरणहीदासा । ब्रह्म सत्य में करै निवासा ॥

५ क्षमा

दो० पँचवीं सुखदाई क्षमा, जलन बुझावै सोय ।
जो दुक आवै घट विषे, पातक डारै खोय ॥२१॥

कोई दुष्ट कड़वा कहि जावो । गाली देकर कोइ खिझावो ॥
कै कोइ शिर पर कूड़ा डारो । कै कोइ दुख देवो अरु मारो ॥
वाकी कछू न मन में लावै । उलटा उनको शीश नवावै ॥
ऐसी क्षमा हिये में लावो । बोलो शीतल अग्नि बुझावो ॥

६ धीरज

छठा अंग धीरज का जानो । धीरज ही हिरदय में आनो ॥
योग युक्ति धीरज सों कीजै । सब कारज धीरज सों लीजै ॥
धीरज सों बैठे अरु डोलै । धीरज राखि समुझि कर बोलै ॥
आनि परे दुख ना अकुलावै । धीरज सों दृढ़ता गहि लावै ॥
दो० धीरज रहा तो सब रहा, काहू से न डराय ।
सिंह प्रेत अरु कालका, धीरज सों डर जाय ॥२२॥

७ दया

दया सातवीं अब सुनि लीजै । सब जीवन की रक्षा कीजै ॥
लख चौरासी का सुखदाई । सब के हित की कहै बनाई ॥
रहिये तन मन वचन दयाला । सबही सों निर्वैर कृपाला ॥

८ आर्जव

अठवैं कहूँ आर्जव खोलैं। हिरदय कोमल कोमल बोलैं॥
सब को कोमल दृष्टि निहारै। कोमलता तन मन में धारैं॥
कोमल धरती बीज बवावै। बढ़ै बेगि फूलै फल लावै॥
ऐसे कोमल हिया बनावै। योग सिद्धि करि पद पहुँचावै॥
यही आर्जव लक्षण जानो। शुकदेव कहैं रणजीत पिछानो॥

९ मिताहार

दो० मिताहार जो नवम है, समझ लेहु मन माहिं।
सतगुन भोजन खाइये, ऐसा वैसा नाहिं॥२३॥
खावै अन्न विचारि कै, खोटा खरा सँभार।
तैसा ही मन होत है, जैसा करै अहार॥२४॥

सूक्ष्म चिकना हलका खावै। चौथा भाग छोड़ि करि पावै॥
वानप्रस्थ कै हो संन्यासी। भोजन सोलह ग्रास गिरासी॥
अरु गृहस्थ बत्तीस गिरासा। आवे नींद बहुत न श्वासा॥
ब्रह्मचारी भोजन करे इतना। पठन माहिं धीरज रहे जितना॥

१० शौच

दशवाँ शौच पवित्तर रहिये। कर दातौन हमेश नहइये॥
जो शरीर में होवै रोगा। रहै न तन जल छूवन योगा॥
तो तन माटी से शुधि कीजे। अब अंतर की शुचि सुन लीजे॥
राग द्वेष हिरदय सों टारे। मन सों खोटे कर्म निवारे॥

दो० दश प्रकार का यम कहा, पहिल योग की नीव।
नेम कहूँ अब दूसरा, सो है साधन सीव॥२५॥

॥ अथ दूसरा नियम अंग वर्णन ॥

१ इन्द्रिय वश

दूजा अंग नियम का गाऊँ । भिन्न भिन्न सब अंग सुनाऊँ ॥
पहला तप इन्द्री वश कीजे । इनके स्वाद सभी तजि दीजे ॥
खाते पीते सोवत जागत । योगी इन्द्रिन कूँ वश राखत ॥
तन कूँ वश कर मन कूँ मारे । ऐसी विधि तप का अँग धारे ॥

२ संतोष

दूजा अंग कहूँ संतोषा । हानि भये नहिं माने शोका ॥
लाभ भये नाहीं हरषावे । ऐसी समता हिये में लावे ॥
परारब्ध तन होय सु होई । सँकलप विकलप रखै न कोई ॥

३ आस्तिकता

दो० तीजा आस्तिक अंग है, जाका सुनो विचार ।
समझ समझ मन में धरो, ताको गहो संचार ॥२६॥
शास्त्र सुने परतीत जो कीजे । सत्त ब्रह्म निश्चय करि लीजे ॥
बुधि निश्चय आतम के माहीं । जगत साँच करि मानै नाहीं ॥

४ दान

चौथा दान अंग विधि दोई । पात्र कुपात्र विचारे सोई ॥
एक दान उपदेश जु दीजे । भवसागर सों पार करीजे ॥
दूजा दान अन्न अरु पानी । दीजे कीजे बहु सनमानी ॥
और पराये दुख की बूझे । सुखदानी परमारथ सूझे ॥

५ ईश्वराराधन

पंचम ईश्वर पूजा करिये । तन मन बुद्धि जहाँ ले धरिये ॥

ह्वै निष्काम तजे सब आसा। सेवा करे होय निज दासा॥
दो० पाती फूल जु भाव सों, सह सुगन्ध करि धूप।
शुकदेव कहैं यों कीजिये, पूजा अधिक अनूप॥२७॥

६ श्रवण

छठे सिद्धान्त श्रवण सुनि बानी। करि विचार गहिये मन मानी॥
सार असार विचार जु कीजे। पानी को तजि पय[1] को पीजे॥
अरु सतगुरु सों निश्चय करिये। परखि सँभारि हिये में धरिये॥
करणी करे तिन्हौं से मिलना। वचन अयोगी के नहिं सुनना॥

७ लज्जा

सतवाँ वही जु कहिये लाजा। सो वह सकल सँवारन काजा॥
साधु गुरू से लाज करीजे। तन मन डोलन नाहीं दीजे॥
करम विवर्जित[2] सब परिहरिये। हिय आँखिन में लज्जा भरिये॥
शुकदेव कहैं सुनि चरणहिदासा। लज्जा भवन माहिं करि वासा॥
दो० कुटुँब मित्र जग लोग ही, सब सूँ कीजे लाज।
बड़ी लाज हरि सूँ करो, नीके सुधरे काज॥२८॥

८ दृढ़ता

अष्टम हूँ मति दृढ़ जो कहिये। सो विशेष साधन कूँ चहिये॥
शुभ करमन की इच्छा करनी। हो न सकै तो भी हिय धरनी॥
बहँकै ना काहू बहँकाये। कैसे हू नहिं हलैं हलाये॥
जग सुख देखि न मन में आने। स्वर्ग आदि सुख तुच्छ हि जानै॥
कोइ अस्तुति आदर करि सेवे। कोइ कुभाव करि गाली देवे॥

---

१ दूध २ शास्त्र विरुद्ध।

दोनों में निश्चल रहै जोई। शुकदेव कहैं दृढ़ मति है सोई ॥

९ जाप

नौवें जाप करे गहि मौना। मनजिह्वा[1] सू कीजे जौना[2] ॥
होय सके मन पवन गहीजे। गुरु मन्तर जप तामें कीजे ॥

दो० हरि गुरु की अस्तुति पढ़ै, सो भी कहिये जाप।
शुकदेव कहैं रणजीत सुनि, त्रैविधि नाशैं ताप ॥२९॥
दशवें समझो होम ही, कीजै दोय प्रकार।
अगनि माहिं साकिल्ल[3] कूँ, वेद कहै ज्यों डार ॥३०॥
दूजे पावक ज्ञान की, तामें इन्द्री होम।
वाकूँ परगट भूमि है, याकूँ हिरदा भौम ॥३१॥

यम का अंग सभी कह दीन्हा। नेम कहा सो भी तुम चीन्हा ॥
निरे[4] योग ही के मत जानो। सब के कारज को पहिचानो ॥
औपै[5] योग पहल ये चहिये। शुभ करमन के मारग कहिये ॥
जो ये होय तो होवै योग। नाहीं वहै जगत के भोग ॥
जिज्ञासू कूँ पहल सुनीजै। पाछे भेद योग का दीजै ॥
यम अरु नियम दोऊ बतलाये। अच्छी नीकी भाँति सुनाये ॥
अब तीजै आसन समझाऊँ। जुदे जुदे कहि सबै सुनाऊँ ॥
योग पहिल आसन ही साधै। आसन बिना योग बस्बादै ॥

॥ अथ तीसरा आसन वर्णन ॥

दो० चरणदास निश्चय करो, बिन आसन नहिं योग।
जो आसन दृढ़ होय तो, योग सबै भजि रोग ॥३२॥

---

१ मानसिक जप २ जिनको ३ तिल जो आदि हवन सामग्री ४ केवल ५ परन्तु योग मार्ग में इनकी प्राथमिकता है।

चौरासी लख[1] आसन जानो । योनिन की बैठक पहिचानो ॥
तिनमें चौरासी चुग[2] लीन्हें । दुरलभ भेद सुगम सो कीन्हें ॥
सो तुम कूँ पहिले बतलाये । जिनकूँ साधोगे चित लाये ॥
तिनमें दोय अधिक परधानैं[3] । तिनकूँ सब योगेश्वर जानैं ॥
आसन सिद्ध पदम कहलावै । इनकूँ करि निश्चल ठहरावै ॥
अरु आसन सब रोग भजावैं । ये दो आसन योग सधावैं ॥
इन कूँ साधै जो जन कोई । ध्यान समाधि लगावै सोई ॥
चरणदास शुकदेव कहैं यों । आसन दोनों वरणौं हैं ज्यों ॥

॥ अथ पद्मासन विधि

पहले आसन पदम बताऊँ । ज्यों की त्यों मूरति दिखलाऊँ ॥
पहिले बावाँ पाँव उठावै । दहिनी जंघा ऊपर लावै ॥
दहिना पाँव फेरि यों लाकै । बाँईं साथल[4] ऊपर राखै ॥
बावाँ कर पीछे सों लावे । वाम अगूँठा गहि तन तावे ॥
ऐसे हाथ दाहिना लावै । दहिन अँगूठा पकड़ दढ़ावै ॥
ग्रीवा लटक चिबुक हिये आवै । नासा आगे दीठि लगावै ॥
दिव्य दृष्टि हो कौतुक दरशै । कहै शुकदेव अभै पद परशै ॥

दो० कै हिरदै राखै चिबुक, कै सम राखै देह ।
कै पीठों दोउ हाथ रखि, कै अगुँठा गहि लेह ॥२३॥

॥ अथ सिद्धासन विधि ॥

दूजा आसन सिद्ध जु कीजै । बावाँ पाँव गुदा ढिंग दीजै ॥

---

१ नवलक्ष जलचर दशलक्ष नभचर ग्यारहलक्ष कृमि बारहलक्ष वनचर चारिलक्ष मनुष्य तीसलक्ष पशुयोनि इत्यादि चौरासीलक्ष योनि हैं २ छांट लेना ३ मुख्य ४ जंघा ।

दाहिन पाँव लिंग पर आवै। दृष्टि सु भृकुटी पै ठहरावै॥
अचरज जहाँ अधिक दरशावै। खुले कपाट मोक्ष गति पावै॥
आसन साधि व्याधि परिहरै। भूख नींद जोपै वश करै॥

दो० एड़ी बावैं पाँव की, सीवन मध्ये राख॥
लिंग गुदा के मध्य में, मूल बोलिये साख॥३४॥
संयम सूँ इन्द्री गहै, राखै सरल शरीर।
दृष्टि उठा भृकुटी धरै, मिटै जु दोनों पीर॥३५॥
दहिनी लावैं लिंग पर, भाग बराबर राख॥
बारी बारी कीजिये, शुकदेवा कहै भाख॥३६॥

॥ अथ चौथा प्राणायाम अंग वर्णन ॥

चौथे प्राणायाम ही, कहूँ सुनो चित लाय।
जा बल जीतै पवन कूँ, चढै गगन कूँ धाय॥३७॥
षट चक्कर कूँ छेदि करि, सुखमन ही की राह।
दल सहस्र के कमल में, पहुँचे करे उछाह॥३८॥
हिरदै में अस्थान है, प्रान वायु का जान।
याके रोके सब रुकै, वायुन में परधान॥३९॥
जैसे गंगा एक ही, घाट घाट के नावँ।
ऐसे प्राणहि वायु के, नावँ कहे बहु ठावँ॥४०॥
चौरासी अस्थान पर, चौरासी ही वायु।
तामें दश ये मुख्य हैं, बरणों सुनिये ताय॥४१॥
प्राण अपान समान ही, और व्यान उदान।
नाग धनंजय देवदत्त, कूरम किरकल जान॥४२॥

दश वायू जो एक ही, तिनमें दीरघ दोय।
सो वे प्राण अपान हैं, तिन्हें पिछाने कोय ॥४३॥
अपान जाय प्राणैं मिले, रहे प्राण की प्रान।
शुकदेव कहैं वर्णन करूँ, अव इनके अस्थान ॥४४॥

प्राण वायु हिरदै के ठाहीं। वसे अपान गुदा के माहीं॥
वायु समान नाभि अस्थाना। कंठ माहिं वायु उदाना॥
व्यान जु व्यापक है तन सारे। नाग वायु सों उठें डकारें॥
पलक उघाड़े कूरम वाई[१]। देवदत्त सूँ होय जँभाई॥
किरकल वायु जु भूख लगावे। मुए धनंजय देह फुलावे॥
सव में प्राण वायु मुख[२] जानो। सो हिरदै के मध्य पिछानो॥
हिरदा ही देही के माहीं। जो कुछ है सो ह्याँहीं ह्याँहीं॥
योगेश्वर ह्याँईं फल पावैं। ह्याँ सूँ अनहद नाद जगावैं॥

॥ अथ चक्र वर्णन ॥

दो० अव चक्कर वरणन करूँ, पाछे प्राणायाम।
वरणूँ नाड़ी सुषुमना, सुधरैं सव ही काम ॥४५॥
हैं वे सूरत कमल की, छोटे और विशाल।
मूल से लेकर शीश लौं, एकहि जिनकी नाल ॥४६॥

कुं० लाल रंग पहिला कहूँ आधार[३] चक्र तिहि नावँ।
चार पँखरी[४] तासु की है जु गुदा के ठावँ॥
है जु गुदा के ठावँ देह ताही पर साजे।
चारों अक्षर तहाँ देव गन्नेश विराजे॥

१ वायु २ प्रवाह–मुख्य ३ मूलाधार ४ पंखड़ी।

पवन सुरत ह्वाँ ले धरे खोजि कहैं शुकदेव ।
दूजा लिंग स्थान ही जाको सुन अब भेव ॥
पीत वरण षट पैंखरी नाम जु स्वाधिष्ठान ।
षट अक्षर जापे दिपैं[1] ब्रह्मा दैवत जान ॥
ब्रह्मा दैवत जान संग सावित्री दासा ।
इन्द्र सहित सब देव तहाँ सबही का बासा ॥
मणिपूरक चक्कर कहूँ तीजा नाभि स्थान ।
नील वरण दश पैंखरी दश अक्षर परमान ॥

दो० विष्णु जहाँ का देवता, महालक्ष्मी संग ।
चरणदास अब कहत हूँ, चौथे को परसंग ॥४७॥
अनाहद चक्र हिरदय विषे, द्वादश दल अरु श्वेत ।
शिव शक्ती जहाँ देवता, द्वादश अक्षर भेद ॥४८॥
पचवाँ चक्कर कंठ में, विशुद्धि नाम जिहि केर ।
षोड़श दल जीव देवता, षोड़श अक्षर हेर ॥४९॥
छठवाँ भौंहन बीच में, आज्ञा चक्कर सोय ।
ज्योति देवता जानिये, दो दल अक्षर होय ॥५०॥

शिष्य वचन

कमलों पर अक्षर कहे, समझ न आई मोहि ।
कौन कौन अक्षर तहाँ, सतगुरु कहिये सोहि ॥५१॥

गुरु वचन

पहिल कमल आधार सुनाऊँ । व श ष स अक्षर वरण बताऊँ ॥

१ प्रकाशित है ।

दूजा कमल जु स्वाधिष्ठाना। बा[1] भा मा या र ल जु बखाना॥
तृतिये मणिपूरक जो कहिये। डा ढा णा ता था ही लहिये॥
दा धा ना पा फा जो गाये। ये दश अक्षर वरण बताये॥
चौथे चक्र अनाहद माहीं। द्वादश अक्षर वरण बताहीं॥
का खा गा घा ङा जो जान। चा छा जा झा ञ ट ठ जु मान॥
पचवाँ षोड़श विशुद्ध जो आछे। आदि[2] अकार अकार सु पाछे॥
छठा जो आज्ञा चक्कर मानो। हं स वरण दो अक्षर जानो॥

दो० भवँर गुफा मंडल अखंड, तिरवेणी जहँ न्हान।
नित परबी जहाँ होत है, करै पाप की हान॥५२॥
उलट पवन बेधै पटन, ऊपर पहुँचे जाय।
शुकदेव कहैं चरणदास तू, सुषुमन सहज समाय॥५३॥
कमल सहसदल सातवाँ, शीश मध्य ही बास।
तहाँ देवता सतगुरु, पूरी करैं जो आस॥५४॥
ह्याँ तक सुषुमन का सिरा, सो सातों की नाल।
हैं वे उलटे पट कमल, तलै अपान बयाल[3]॥५५॥
अपान वायु कूँ साधि करि, ऊपर लावे मोड़।
जब होवैं सुलटे कमल, मुख अकाश की ओड़[4]॥५६॥
अपान वायु ज्यों ज्यों चढ़ै, चक्र चक्र के पास।
त्यों त्यों सीधे होयँ सब, पूरा जान अभ्यास॥५७॥

---

१ इस प्रष्ठ में जो कमल के अक्षर का खा आदि हैं उनको क, ख पढ़ें मात्रा केवल चौपाई की मात्रा पूरी करने को लगाई गई है। २ विशुद्धि चक्र के ऊपर सोलह अक्षर अकारादि सोलह स्वर हैं ३ वायु ४ तरफ।

अपान वायु आवै जबे, चक्र अनाहद माहिं।
दश प्रकार के नाद ही, शनैः शनैः खुलि जाहिं ॥५८॥
पहिले नाद सुने जो ऐसा। चिड़ी चीकला बोले जैसा ॥
एकहि बार कहै यों चिन्न। दूजी बार खुले चिन चिन्न ॥
क्षुद्रघंट[१] ज्यों तीजी जानो। चौथी नाद शङ्ख पहिचानो ॥
पचवीं नाद बीन ज्यों गाजे। छठवीं उपज ताल ज्यों बाजे ॥
सतवीं नाद मुरलिया ऐसी। अठवीं उठे पखावज जैसी ॥
नवैं नफीरी नाद सुनावे। दशवें सिंधु गरज उपजावे ॥
नौ तजि दशवें सूँ हित लावे। अनदह सुनि अनहद हो जावे ॥
होय जीव सों ब्रह्म अगाधा। जो कोइ सुने सु अनहद नादा ॥
दो० खुले जो अनहद नाद ज्यों, सो साधन सुन लेहु।
जासों पहुँचे सिद्धि को, या करणी चित देहु ॥५६॥
चक्राधार सों खैंचि करि, अपान वायु सज लेय।
स्वाधिष्ठान के पास ही, तीन लपेटे देय ॥६०॥
याकी विधि सब तोहि सुनाऊँ। जैसे है तैसे समुझाऊँ ॥
पहिले मूल द्वार को शोधे। बंध लगाय अपान निरोधे ॥
पहिले चक्कर में ठहरावे। खैंचि दूसरे के ढिंग लावे ॥
वाके आसौ पास फिरावे। दहिने तीनि लपेट लगावे ॥
फिरि मणिपूरक में पहुँचावे। फेरि अनाहद में ले जावे ॥
अनहद खुलै सुने सुख पावे। फिरि ह्वाँ प्राण अपान मिलावे ॥
हिरदय कंठ मध्य ठहरावे। संयम सों ताको परचावे[२] ॥

१ किंकिणी २ जगावे।

बंध दूसरो तहाँ लगावे । चरणदास शुकदेव बतावे ॥

॥ अष्टपदी ॥

पहिले अनहद नाद खुलैं हिय ऊपरे ।
कंठ सुँ नीचे रोकि ध्यान ह्वाँई धरे ॥
जहाँ अपरबल होय जु अनहद शब्द ही ।
फिरि यों जानो जाय कंठ के मध्य ही ॥
तहाँ किये अभ्यास ध्यान राखे घना ।
होवे अधिकी नाद सुने साधू जना ॥
केतक द्योसन माहिं ब्रह्म रन्धर कने[1] ।
जाय खुले जहँ नाद सुरति दै ह्वाँ सुने ॥
शनै शनै यों होय जानें कोइ साध ही ।
हिरदय अरु ब्रह्मलोक लौं एकै नाद ही ॥
मीठी और सवाद बहुत ही पाइये ।
सतगुरु के परताप जहाँ मन लाइये ॥
ब्रह्मलोक की बात सुने होवे जु ह्वाँ ।
सबही सूझैं वस्तु जु कछु होवैं तहाँ ॥

दो० अनहद के सम और ना, फल बरणे नहिं जाहिं ।
पटतर[2] कछू न देसकूँ, सब कछु है या माहिं ॥६१॥
पाँच[3] थके आनँद बढ़ै, अरु मनुआ वश होय ।
शुकदेव कहि चरणदास सुनि, आप अपन जा खोय ॥६२॥
नाड़िन में सुपुमन बड़ी, सो अनहद की मात ।

१ पास में २ बराबरी ३ पाँच ज्ञानेन्द्रियां ।

कुम्भक में केवल बड़ा, सो वाही का तात ॥६३॥
मुद्रौ बड़ी जु खेचरी, वाकी बहिनी जान।
अनहद सा बाजा नहीं, और न या सम ध्यान ॥६४॥
सेवक से स्वामी भवे, सुने जु अनहद नाद।
जीव ब्रह्म ह्वै जात हैं, पावे अपनी आद ॥६५॥
चरणदास अब कहत हूँ, वही जु प्राणायाम।
शुकदेव कहैं ताके किये, पावे मन विश्राम ॥६६॥

बहत्तर हजार आठ सौ चौंसठ नारी। सब की जड़ है नाभि मँझारी
तिन महँ दश नाड़ी शिरमौरी। पँच बायें पँच दहनी ओरी ॥
जिनमें तीनि अधिक परधान। इड़ा पिंगला सुषमन जान ॥
उनमें सुषमन अधिक अनूप। सो वह कहिये अग्नि स्वरूप ॥
दश नाड़ी अस्थान बताऊँ। ठौर ठौर तोहि कहि समुझाऊँ।

दो० नाड़ि शङ्खिनी गुदा में, किरकल लिङ्ग स्थान।
पोषा सरवन दाहिने, जस्वनी बायें कान ॥६७॥
गंधारी दृग वाम ही, हस्तिनी दहिने नैन।
नारि लंबका जीभ में, सब सवाद सुख देन ॥६८॥
नासा दहिने अंग है, पिंगल सूरज वास।
इड़ा सु बायें ओर है, जहँ ससियर परकास ॥६९॥
दोऊ मध्य में सुषुमना, अद्भुत वाको भेव।
ब्रह्म नाड़ि हू कहत हैं, यों कह सो शुकदेव ॥७०॥
इड़ा ब्रह्मा जमुना जहाँ, सुषुमन विष्णु निवास।
और सरस्वती जानिये, ये हो चरणहि दास ॥७१॥

शिव पिङ्गल गंगा सहित, सो वह दहिने अंग ।
तिरवेणी याते भई, मिली जु तीनो संग ॥७२॥
कबहु इड़ा स्वर चलत है, कबहू पिङ्गल माहिं ।
मध्य सुषमंना बहत है, गुरु बिन जाने नाहि ॥७३॥
सो वह अग्नि स्वरूप है, बड़ी योग सरदार ।
याही ते कारज सरे, ऐसी सुषुमन नार ॥७४॥
इन सों प्राणायाम करीजे । पूरक कुंभक रेच कहीजे ॥
इड़ा पिंगला मारग थाकै । उलटि सुषुमना चालन लागै ॥
वायु खैंचना पूरक जानो । ठहरावन को कुंभक मानो ॥
फेरि उतारै रेचक बोई । प्राणायाम कहावै सोई ॥
दो० इड़ा पवन पूरक करै, कुंभक राखै रोक ।
रेचक पिंगल सों करै, मिटैं पाप के थोक ॥७५॥
पिंगल रोकै पवन न जावै । इड़ा ओर सों वायु चढ़ावै ॥
कुम्भक करि हिय चिबुक[1] लगावै । जितका तित मन को ठहरावै
सोलह मात्रा[2] पूरक लीजे । चौंसठ कुम्भक में जप कीजे ॥
रेचक फिरि बतीस उतारै । धीरे धीरे ताहि निवारै ॥
पहिल पहिल ही कीजै आधे । तीनि महीने ऐसे साधे ॥
यासे आगे फेरि बढ़ावै । दोय आठ अरु चारि चढ़ावै ॥
चढ़त बढ़त ऐसे ही बढ़ै । यों हीं चौंसठ ताईं चढ़ै ॥
इड़ा वायु सों पूरक कीजे । पिंगल सों रेचक तजि दीजे ॥
फिरि पिंगल सों पूरक धारै । बहुरि इड़ा ही सों निरवारै ॥

१ दाढ़ी २ प्रणव अर्थात् ॐकार बिन्दी सहित ।

ऐसे वारी वारी करिये । जीते प्राण वायु अघ हरिये ॥
होय सकै कुम्भक सरकावै । चौंसठ से भी परै बढ़ावै ॥

शिष्य वचन

दो० चरणदास कर जोरि कहि, सुनौ गुरू शुकदेव ।
कोन समै याको करै, राति दिना कहि देव ॥७६॥
मात्रा कासों कहत हैं, जो बतलायो जाप ।
केतो करे अहार ही, जाको कहिये नाप ॥७७॥

गुरु वचन

ॐ बिन्दी के सहित ही, ताहि मात्रा जान ।
बीज मन्त्र तासों कहत, प्रणव को पहिचान ॥७८॥
कोमल भोजन कीजिये, आधी रखिये भूख ।
पवन बसै सुख सों जहाँ, तन नहिं पावै दूख ॥७९॥
साठ घड़ी दिन रात की, आठ तासु के याम ।
लीजै चौथा भाग ही, कीजै प्राणायाम ॥८०॥
चार भाग ताके करे, चार समै ठहराय ।
चार चार घटिका[१] करे, दृढ़ ब्रत चित्त लगाय ॥८१॥

और दूसरी भाँति सुनीजे । हो न सके तो याको कीजे ॥
बारह ॐ पवन चढ़ावे । कुम्भक माहिं बीस ठहरावे ॥
बारह पिंगल पवन उतारे । राति दिना में चार हि बारे ॥
फेरि बढ़ावे कुम्भक दुगुनी । केते द्यौसन में फिर तिगुनी ॥
फिर पिंगल सों पूरक लीजे । इड़ा वायु रेचक ही कीजे ॥

१ घड़ी ।

बिरिया एक इड़ा सों खैंचे । पिंगल दूजी बार जु ऐंचे ॥
कबहूँ यासूँ कबहूँ बासों । रेचक करे जो पूरक जासों ॥
कुंभक तिगुनी सों अधिकावे । होय सके जितनी सरकावे ॥
दो० भांति दूसरी और सुनि, साधन अधिक अनूप ।
गुरु बिन भेद न पाइये, महा गुप्त सों गूप ॥८२॥

अष्टपदी

प्राण वायु की युक्ति कहौं जेहि बात हैं ।
द्वादश अंगुल नासिका आगे जात हैं ॥
संयम ही सों सहज जु उलट घटाइये ।
शनै शनै ही साधि जु ताहि समाइये ॥
अपान वायु को खैंचि प्राण घर लाइये ।
फिरि बाहर सों रोकि जु तिन्हैं मिलाइये ॥
तीनि कर्म पूरक के कुम्भक के कहे ।
रेचक ही के कर्म दोय निश्चय भये ॥
दो रेचक के कर्म पूरक के तीन ही ।
ये सब ही रहि जायँ होय जब छीन ही ॥
पूरक रेचक छुटे केवल कुम्भक बही ।
ठौर[1] समै का बंधन राखे ना सही ॥
या किरिया को अन्त जानो तुम ह्वाँ तईं ।
प्राणवायु को रोके काया के महीं ॥
दो० साठ हजार इकीस लक्ष[2], सबके श्वास परमान ।

[1] देश [2] इक्कीस लाख ।

यह तो रोके देह में, जब लग एक हि प्रान ॥८३॥
याके हुए सौ दिना, साधन भवै जु सिद्ध ।
केवल कुम्भक जानिये, पूरी ह्वै[१] जु विद्ध ॥८४॥

अष्टपदी

इतनी होवै शक्ति रुकन जब श्वास की ।
रहै नहीं परमाण जु गिनती मास की ॥
द्वादश कै सौ वरप सहस कै लाख ही ।
चाहे जब लग रखे साँच यह साख ही ॥
गुप्त महा यह ज्ञान कठिन है साधना ।
कोटिन में कोइ एक करे आराधना ॥
देखा देखी बहुत मनुप याकूँ लगैं ।
कोई चढ़ै परमान घने मग में थकैं ॥
चरणदास यह समुझि कहैं शुकदेव ही ।
शनै शनै सों करै पाय या भेव ही ॥

दो० मूल बंध अरु खेचरी, मुद्रा ही को जान ।
दोनों के साधे बिना, अपान न होवे प्रान ॥८५॥

खेचरी मुद्रा

खेचरि मुद्रा कहूँ बखाने । जाको कोटिन में कोइ जाने ॥
सकल शिरोमणि योग मँझारी । ज्यों मनुषों में छत्तर धारी ॥
शीश फूल ज्यों गहनों माहीं । या बिन ताड़ी[२] लागै नाहीं ॥
साधन कर कर जीभ बढ़ावै । सो ब्रह्मरंध्र ताईं लावै ॥

१ होवे २ समाधि ।

उर[1] तालवा ठौर कहावे । रसना सूँ ह्वाँ बंध लगावे ॥
जासूँ पवन न सरकन पावै । श्रवण नैन जू बाट रुकावै ॥
प्राणवायु बाहर नहिं आवे । मुख नासा हो निकस न जावै ॥
शुकदेव कहे चरणदास बताऊँ । आगे मूलबन्ध समझाऊँ ॥

मूल बन्ध

दो० मूल बन्ध जानो यही, एडी गुदा लगाय ।
थक दहनी बावीं कभी, सिध आसन ठहराय ॥८६॥

मूलबन्ध जा कारण दीजे । सो मैं कहूँ सबै सुनि लीजे ॥
आधार चक्र सूँ पवन उठावे । स्वाधिष्ठान हि के ढिंग लावे ॥
दहिनी ओर कूँ ताहि फिरावे । ऐसे तीन लपेट लगावे ॥
सीधी हो ऊपर कूँ धावे । मणिपूरक चक्कर में आवे ॥
शनई शनई ताहि चढ़ावे । चक्कर चक्कर में पहुँचावे ॥
भ्रू चक्कर के ऊपर ताईं । ब्रह्मरंध्र के लावे ठाईं ॥
ऐसे षट चक्कर कूँ शोधे । प्राण वायु को यों परबोधे ॥
अपान वायु जो ह्याँ तक आवे । प्राण वायु ह्वै सहज समावे ॥
शुकदेव कहै सुन चरणहि दासा । सहज शून्य में करे निवासा ॥

॥ अथ अष्ट प्रकार के कुम्भक वर्णन ॥

शिष्य वचन

दो० प्राणायाम की विधि सबै, गुरु तुम दई सुनाय ।
सो ले करि हिरदे धरी, ताहि न देऊँ भुलाय ॥८७॥
चरणदास के शीश पर, तुम ही गुरु शुकदेव ।

१ पहिले ।

कुम्भक अष्ट प्रकार के, तिनको कहिये भेव ॥८८॥
लक्षण नाम स्वभाव गुण, जुदे जुदे समुझाव ।
चरणदास के मन विषे, सुनवे को अति चाव ॥८९॥

गुरु वचन

अब आठों कुम्भक कहूँ, नावँ भेद गुण रूप ।
शुकदेव कहैं परसिद्ध हैं, योग हि माहिं अनूप ॥९०॥
प्रथमैं कुम्भक ही कहूँ, नावँ जु सूरज भेद ।
दूजे ऊज्जाई सुनो, साधे छूटैं खेद ॥९१॥
शीतकार अरु शीतली, पँचवीं भस्त्रिक जान ।
छठी जु भ्रमरी नाम है, नीके समझि पिछान ॥९२॥
नावँ मूर्च्छा सातवीं, अठवीं केवल होय ।
रणजीता सबसे बड़ी, आयु बढ़ावै सोय ॥९३॥

पवन पूर पूरक ही कीजे । पाछे बन्ध जलन्धर दीजे ॥
कुंभक रेचक के मधि जानो । ह्याईं बन्ध उड्यान पिछानो ॥
पवन जोर[1] ही सूँ गहि[2] लीजे । अर्ध उर्ध्व संकोचन कीजे ॥
मध्ये कीजे पश्चिम ताने । ब्रह्म नाड़ी के माहिं समाने ॥
नाड़ी पवन खैंचिये ऐसे । भरिये सब संधान[3] जु जैसे ॥
अपान वायु कूँ ऊपर लावे । प्राण वायु नीचे ले जावे ॥
जो पै यह साधन बनि आवे । योगी बूढ़ा होन न पावे ॥
तरुण अवस्था दीखे ऐसी । नित ही रहै जानिये जैसी ॥

(१) अथ सूर्य भेदन

कुं० कुम्भक सूरज भेद ही, पहिले देहुँ सुनाय ।

१ बलपूर्वक २ खींचना ३ जोड़

सुख आसन कै कीजिये, अथवा वज्र लगाय ॥
अथवा वज्र लगाय, पूरक दहिने स्वर कीजै ।
नख शिख सेती रोकि, वायु कूँ बन्ध करीजै ॥
बायें सेती रेचिये, हौरे[1] हौरे जान ।
कपाल सोधनी[2] जानिये, चरणदास पहिचान ॥
दो० वायु किरम पीड़ा हरै, कीजे बारंबार ।
कुम्भक सूरज भेदनी, शुकदेव कहै हिय धार ॥९४॥

(२) अथ ऊज्जाई

अब ऊज्जाई कुम्भक सुनिये । समझ सीख मन माहीं गुनिये ॥
दोउ सुर सम कर पवन चढ़ावै । पेट कण्ठ लौं ताहि भरावै ॥
ताको रोके दृढ़ करि राखै । सहज इड़ा सों रेचक नाखै ॥
ऐसे जो कोइ साधन करै । रोग सलेपम[3] के सब हरै ॥
हिरदय कण्ठ माहिं जो होई । कफ का रोग रहै नहीं कोई ॥
रोग जलन्धर ही का भागे । भजे वायुदुख पावक जागे ॥
बैठत चलत पवन को भरै । यही उज्जाई कुम्भक करै ॥
चरणदास शुकदेव बतावे । तीजी शीतकार समझावे ॥

(३) अथ शीतकार

दो० ओड़ जँभाई नासिका, लीजै खिंचै जु पौन ।
ताहि कछू ठहराय के, छोड़े मुख सों जौन ॥९५॥
धीरे धीरे रेचिये, सीसी शब्द उचार ।
सुन्दर होवे तेजवंत, अधिक रूप को धार ॥९६॥

१ धीरे धीरे २ शुद्ध करने वाली ३ श्लेष्मा (कफ) ।

भूख प्यास व्यापै नहीं, आलस नींद न होय ।
तन चेतन ही होत है, रहे उपाधि न कोय ॥९७॥
यहि विधि साधत ही रहे, होय योगिन में भूप ।
चरणदास शुकदेव कहि, कुम्भक यही अनूप ॥९८॥

(४) अथ शीतली

कहूँ शीतली कुम्भक आगे । जो कोइ करै भाग तिहि जागे ॥
तालु मूल जिह्वा बल सेती । प्राण वायु पीवे कर हेती ॥
कुम्भक राखै सब तन माहीं । ढीला गात रमावे ह्वांहीं ॥
नासा सेती रेचक कीजे । एक मास सिध हो सुख लीजे ॥
पीवे पवन जीभ को मोड़ । सहजे छोड़े नासा ओड़[1] ॥
दोनों रंधर से तजि दीजे । यों अभ्यास पूरा करि लीजे ॥
ताप तिली गोला ज्वर होई । वाके तन में रहे न कोई ॥
देह पुरानी नूतन होय । तीनि बरष साधै जो कोय ॥
जैसे साँप केंचुली मोई[2] । श्वेत बाल तजि काले होई ॥
काहू भाँति का दुख नहिं व्यापे । भूख प्यास पित भाजे आपे

(५) अथ भस्त्रिका

दो० अब कहुँ कुम्भक भस्त्रिका, पित कफ वायु नशाय ।
अग्नि बढ़े अभ्यास सों, तीन गाँठ खुल जाय ॥९९॥

आसन पद्म सु या विधि करे । बाम जंघ दहिनो पग धरे ॥
बावों पग दहनी पर लावे । जांघन सों दोउ हाथ मिलावे ॥
ग्रीवा पेट बराबर राखे । आगे सुन शुकदेवा भाखे ॥

१ द्वारा २ त्यागना ।

मुख मूँदे रेचे नासा सूँ । पूरक चपल करे श्वासा सूँ ॥
रेचक पूरक ऐसे कीजे । वारंवार तजे अरु लीजे ॥
जैसे खाल लोहारा भरे । रेचक पूरक आतुर करे ॥
करत करत जबही थकि जावे । नेक ठहर दूजी विधि लावे ॥
फिर पूरक सूरज सों करे । पवन उदर के माहीं भरे ॥
तर्जनि अँगुली सों दृढ़ रोके । नासा मध्य धार कर जोखे ॥

दो० कुम्भक पिछली भाँति करि, रेच इड़ा सों वाय ।
कफ पित वायु नशाय के, लेवे अग्नि बढ़ाय ॥१००॥
कुण्डलनी देवे जगा, यह कुम्भक सुखदाय ।
करे जु हित व्रत धारि के, चरणदास चित लाय ॥१०१॥
कुण्डलनी सरकाय के, वेधे तीनों गाँठ ।
ऐसी पँचवीं भस्त्रिका, रहे न कोई आँठ ॥१०२॥

ब्रह्मनाड़ी के छिद्र माहीं । रोकि रही मुख दे रहि ह्वाँहीं ॥
लाय लपेटे नाभी ठाहीं । दृढ़ ह्वै बैठी सरके नाहीं ॥
सवा बिलस्त की जाकी देही । तामें स्थित जीव सनेही ॥
शक्ति नागिनी यही जु कहिये । याका भेद गुरू सों लहिये ॥
महा अपरबल जागे नाहीं । ताते नर सब मरि मरि जाहीं ॥
कोइ इक योगी ताहि इलावै । सुषमन बाट गगन लै जावे ॥
ब्रह्मरंध्र में जाय समावे । लगे समाधि बहुत सुख पावें ॥
जो कछु होय सो कहा न जावे । चरणदास शुकदेव सुनावे ॥

दो० शिव शक्ती मेला[1] भवे[2] , रहै न द्वितिया भाव ।

१-२ मिल जाते हैं ।

कुण्डलनी परबोध का, जो कोइ करे उपाव ॥१०३॥

शिष्य वचन

व्यास पुत्र शुकदेवजी, किरपा करी दयाल।
चरणदास आधीन ही, समझो भयो निहाल ॥१०४॥
एक बार फिर खोलि के, कुण्डलनी समुझाव।
याके सबही भेद को, सुनबे को अति चाव ॥१०५॥

गुरु वचन

फिर भी तोसों कहत हों, कुण्डलनी विस्तार।
ताके सगरे भेद ही, सुनि के हिय में धार ॥१०६॥
नाभि स्थान नागिनि रहे, कुण्डल[१] शशी[२] अकार[३]।
प्राण पियारा वही है, आगे सुनो विचार ॥१०७॥
कुंभक कर्म कोई करे, देवे शक्ति जगाय।
जैसे लागी लष्टिका[४], नागन शीश उठाय ॥१०८॥

सीखि गुरू सों कुंभक साधे। नीकी विधि ताको अवराधे[५] ॥
पवन ठबक[६] लग ताहि जगावे। तब ऊरध को शीश उठावे ॥
नाभि ठौर ताका है वासा। पद्मराग मणि ज्यों परकासा ॥
सात लपेटे बायें जानो। ताते शक्ति कुण्डली मानो ॥
नाड़ी सहस लगी हैं वासों। एपर छुटी जानिये ताको ॥
जिनमें तीन नाड़ी अधिकाई। इड़ा पिंगला सुषमन गाई ॥
तिनके माहिं शिरोमणि सुषमन। नाल कमल जानत योगी जन॥
जा पहुँची ब्रह्मरंधर ताईं। ऊरध कमल सातवें माहीं ॥

१ गोलाकार २ चन्द्रमा ३ आकार ४ लाठी ५ अभ्यास करे ६ धक्का।

आवन जान पवन की वाटा । शक्ति चढ़न ऊरध का घाटा[1] ॥
कहि शुकदेव चरणही दासा । आगे कहूँ जु हो परकासा ॥
दो० नागिनि सूक्षम जानिये, बाल सहसवाँ भाग ।
शुकदेव कहैं आकार ही, रक्त वरण ज्यों नाग ॥१०९॥
कुंभक हो अत्यन्त जब, तब ऊरध को जाय ।
ब्रह्मरंध्र में आय कर, घड़ी दोय ठहराय ॥११०॥
अमृत का करै पान ही, पूरण हो अभ्यास ।
उड़ते दीखैं सिद्ध तब, वाको माहिं अकास ॥१११॥
पै दीखत हैं नैन बिनाहीं । चहै करै लीला उन माहीं ॥
खेचर मिलि खेचर ह्वै जावै । यह भी शक्ति उड़न की पावै ॥
अधिकी ठहरै लगे समाधा । यह तो कहिये खेल अगाधा ॥
शिव शक्ती जहँ मेला होई । होय लीन मन उनमन[2] सोई ॥
योग युक्ति करि याको पावे ! पराशक्ति अपने बस लावे ॥
चाहे अद्ध[3] ठौर ले आवे । जब चाहे ऊरध लै जावे ॥
कबहू हिरदय के मधि आनै । याही को आपनपौ[4] जाने ॥
इच्छा करै सिद्धि की जैसी । होय प्राप्त सो बेगिहि तैसी ॥
चहै स्थूल सूक्ष्म तन धारूँ । वैसा ही होय जाय सबारूँ[5] ॥
शुकदेव कहैं सुन चरणहिदासै । जो कुंडलनी हृदय प्रकासै ॥
दो० कुंडलनी परकाश ही, भौंरा एक अनूप ।
सोउ प्रकाशत है तहाँ, सुवरण को सो रूप ॥११२॥
हिरदय में उजियार ही, होत चपल यहि भाँति ।

१ मार्ग २ मन का लीन होना ३ नीचे को ४ अपना स्वरूप ५ तुरन्त ।

जैसे धूमर[1] मेघ में, बिजली ही दमकाति ॥११३॥
शुकदेव कहैं चरणदास बताऊँ । और अनूठी सिद्धि सुनाऊँ ॥
चाहे पर देही में बरूँ । अपनी काया को परिहरूँ ॥
रेचक प्राणायाम प्रतापे । कुण्डलनी जो अपनी आपै ॥
रेचक किये बाहरे आवे । परकाया में जाय समावे ॥
स्थित होय जाय यों जानो । सदा विराजत ऐसे मानो ॥
ऐसे पहिली देह गिरावे । ज्यों मणिको[2] डोरा तजि जावै ॥
जब चाहै अपने घट माहीं । परासक्ति ही आवै ह्वांहीं ॥
काया पलट कहत हैं याको । कोइक योगी जानत ताको ॥

दो० चाहे तन को छोड़ करि, देह कलप[3] धरि और ।
मनमानै जहँ गवन करि, फिर आवे अप ठौर ॥११४॥

(६) अथ भ्रामरी कुंभक

छठी जु कुम्भक भ्रामरी, सुनिये चरणहिदास ।
शुकदेवा हो कहत हूँ, तामें करो विलास ॥११५॥
जैसे भृंगी[4] धुनि करै, यों उपजे हिय माहिं ।
दोनों स्वर सों कीजिये, परगट सुनिये नाहिं ॥११६॥
बल सेती पूरक करै, यही शब्द ले साथ ।
भृंगी की सी धुनि सहित, रेचे मन्द सुहात ॥११७॥
या अभ्यास के किये से, चित चंचल रहै नाहिं ।
योगेश्वर लीला करे, चिदानन्द के माहिं ॥११८॥

१ धुएँ में २ मणियों को ३ ब्रह्माजी का एक दिन ४ भौंरा ।

(७) अथ मूर्छा

सतवीं कुम्भक मूरछा, पूरक ऐसे होय ।
खैंचत होवे शोर[१] सा, मेघ धार[२] ज्यों जोय[३] ॥११९॥
बन्ध जलन्धर दीजिये, सहज कण्ठ तल जान ।
रेचत बाई[४] मूरछित, होय यही पहिचान ॥१२०॥
सुखदायी सुख की करन, कही सोइ शुकदेव ।
केवल कुम्भक आठवीं, गुरु सों पावे भेव ॥१२१॥
पूरक रेचक ही सहित, ये कुम्भक करि लेहि ।
केवल कुम्भक ना सधै, जब लग ह्याँ चित देहि ॥१२२॥
केवल कुम्भक आश धरि, येहू साधत लोग ।
बल पावै वश पौन हो, और भजैं तन रोग ॥१२३॥

(८) अथ केवल कुम्भक

आयु बढ़ावे सिद्धि दे, लागै और समाधि ।
केवल कुम्भक गुण भरी, बिन परमाण अगाधि ॥१२४॥
केवल कुम्भक जब सधै, तब ये सब रहि जाहिं ।
जैसे सूरज उदय ते, तारे सब लुकि जाहिं ॥१२५॥
केवल कुम्भक योग में, ज्यों नगरी में भूप ।
रेचक पूरक के बिना, जैसे बँधा जु कूप ॥१२६॥
सो तुम सों पहिले कही, विधि गति सब समझाय।
सो सुनि तुम हिरदय धरी, देहो ना बिसराय ॥१२७॥
प्राणायाम बड़ा तप सोई। प्राणायाम सा बल नहिं कोई ॥

१ शब्द २ वर्षा की धारा गिरने के समान ३ जानो ४ वायु ।

प्राण वायु को यह वश लावै। मन को निश्चल करि ठहरावै ॥
आयुर्दा[१] को यही बढ़ावै। तन में रोग रहन नहिं पावै ॥
पाप जलावै निर्मल करै। उपजै ज्ञान तिमिर सब हरै ॥
योग युक्ति की जड़ यह जानो। याहि टेक गहि करना ठानो ॥
अडिग[२] आसन सों याको कीजै। नवों द्वार पट नीके दीजै ॥
पाँचौं इन्द्री के रस पेलो। इड़ा पिंगला सुषुमन खेलो ॥
कहि शुकदेव चरण ही दासा। प्रत्याहार सुनि विषै निरासा ॥

॥ इति चौथा प्राणायाम अंग सम्पूर्णम् ॥

अथ पाँचवाँ प्रत्याहार अंग वर्णन

दो० प्रत्याहार जो पाँचवाँ, समझाऊँ चरणदास।
शुकदेव कहै कहुँ खोल करि, नीके समझो तास ॥१२८॥

प्रत्याहार पाँचवाँ कहिये। सो योगी को निश्चय चहिये ॥
विषय ओर इन्द्री जो जावै। अपने स्वादन को ललचावै ॥
तिनकी ओर न जाने देई। प्रत्याहार कहावै एई ॥
रोकि रोकि इन्द्रिन को लावै। ध्यान आतमा माहिं लगावै ॥
जैसे कछुआ अंग समेटै। रंक जु शीतकाल में लेटै ॥
जैसे माता पूत खिलावै। बालक वस्तू को ललचावै ॥
सरप आग अरु शस्तर कोई। कछू और दुखदायी होई ॥

---

१ उम्र २ स्थिर।

तिनको बालक नाहीं जाने। पकड़न को दौड़े मन आने ॥

दो० बालक जानत है नहीं, दुखदायी सब एह।
जो पकरूँगा हाथ से, दुख पावैगी देह ॥१२९॥
माता जानत है सबै, खोटी खरी विकार।
राखे सुत को खैंचि करि, बारंबार निहार ॥१३०॥
ऐसे ही बुधि ज्ञान सों, पाँचों इन्द्री रोक।
विषय ओर सों फेरिये, लहै न अपना भोग ॥१३१॥
ज्यों ज्यों इनको भोग दे, परबल होती जाहिं।
बिना भोग होहीं नहीं, वह बल रहे जु नाहिं ॥१३२॥
नैन जु भोगें रूप को, और गन्ध को घ्रान।
षटरस भोगे जीभ ही, शब्दहि भोगे कान ॥१३३॥
सपरस भोगे त्वचा ही, बाढ़े अधिक विकार।
पाँचौं इन्द्री जानि ले, इनका यही अहार ॥१३४॥
इनसे मिलि मिलि मन बिगड़ि, होय गया कछु और।
इन्द्री रोके मन रुके, रहे जु अपनी ठौर ॥१३५॥
ज्यों ज्यों होवे प्राण वश, त्यों त्यों मन वश होय।
ज्यों ज्यों इन्द्री थिर रहैं, विषय जाय सब खोय ॥१३६॥
ताते प्राणायाम करि, प्राणायामहि सार।
पहिले प्राणायाम कर, पीछे प्रत्याहार ॥१३७॥

॥ इति प्रत्याहार अंग सम्पूर्णम् ॥

अथ छठवां धारणा अंग वर्णन



दो० तत्त्वनकी कहुँ धारणा, तिनमें करे प्रवेश ।
शनई शनई[1] साधि करि, पहुँचे निर्भय देश ॥१३८॥
पहिले भूमि धारणा कीजे । ठौर कालजे[2] में चित दीजे ॥
पीतवरण चौकोर अकारो । विधि[3] दैवत है तहाँ विचारो ॥
प्राण लीन करि पाँच घड़ी ही । चित्त स्थिर होवेगा जबही ॥
यासों पृथवी को वश करिये । यही धारणा जो चित धरिये ॥
हिरदे से ऊपर जल जानो । कण्ठ तईं[4] ताको पहिचानो ॥
चन्द फाँक अरु श्वेत अकारो । हृषीकेश[5] तहँ देव निहारो ॥
ह्याँ हू पाँच घरी स्थापै । प्राण लीन करि चित दे आपै ॥
व्यापै ना विष काहू विधि को शुकदेव कहैं फल जलकी सिधि को
दो० कण्ठ से ऊपर तालुका[6], लौं[7] पावक स्थान ।
लाल रंग तिरकोन है, रुद्र देवता मान ॥१३९॥
तहाँ लीन करि प्राण को, पाँच घड़ी परमान ।
भय व्यापे नहिं ज्वाल को, अग्नि धारणा जान ॥१४०॥
जाके आगे वायु है, भृकुटी लौं मर्याद ।
मेघ वरण षटकोन है, ईश्वर देवत साध ॥१४१॥
प्राण लीन जहँ कीजिये, पाँच घड़ी रे तात ।
पैहै खेचर सिद्धि ही, ततपद[8] ही ह्वै जात ॥१४२॥
ब्रह्मरंध्र आकाश है, वड़ा जु तत्त्वन माहिं ।

१ धीरे धीरे २ हृदय ३ ब्रह्मा ४ तक ५ विष्णु ६ तालू ७ तक ८ ब्रह्मरूप ।

श्याम वरण ब्रह्म देवता, योगी जहाँ सिराहिं ॥१४३॥
प्राण लीन घड़ी पाँच करि, पावे मुक्ति अनूप।
व्योम[1] तत्व की धारणा, जहाँ छाहँ नहिं धूप ॥१४४॥
पृथ्वी संग 'ल' कार ही, जल के संग 'व' कार।
पावक संग 'र' कार है, मारुत संग 'म' कार ॥१४५॥
पंचम तत्त्व आकाश ही, सब के ऊपर जान।
अक्षर जहाँ 'ह' कार ही, शुकदेव कहे बखान ॥१४६॥
पहिलि धारणा थंभनी, दूजी द्रावणि होय।
तीजी दहनी जानिये, चौथी भ्रामनी सोय ॥१४७॥
पँचवीं नाम जु सोपनी, इनको लेवो जान।
शुकदेवा अब कहत हैं आगे और विधान ॥१४८॥
गुरु की प्रथम धारणा लीजे, अपना रूप उन्हीं सा कीजे॥
ऐसे ध्यान सभी सिद्ध पावे। जैसी धारै सो होय जावे॥
वेगिहि सब साधन सधि आवे। आलस कायरता भजि जावे॥
लोक प्रलोक सभी सुख लेवे। जो गुरु को ऐसा व्रत सेवे॥
दूजे परमातम की धारण। मुक्ति देन अरु बंध निवारण॥
धारन सों चित घना लगावे। सिमिट सभी ओरन सों आवे॥
जो कछु होय सो आगेहि आगे। टेक पकरि मारग में लागे॥
चरणदास शुकदेव बतावे। सती शूरिमा ज्यों मन लावे॥
दो० प्राण वायु की धारणा, परमेश्वर पहिचान।
परमातम ह्वै जात हैं, जोपै रोके प्रान ॥१४९॥

---

१ आकाश।

बारह मात्रा सों चढ़े, ह्वाँ तक पहुँचे जाय ।
बारह सै अरु छानवे, कुम्भक में ठहराय ॥१५०॥
यही धारणा अंग है, शनै शनै कर ध्याव ।
याते दुगुनी ध्यान में, प्राणवायु परचाव ॥१५१॥
दूना जानि समाधि लौं, ध्यानहि सेती एहु ।
पाँच सहस अरु एकसौ, चौरासी गिनि लेहु ॥१५२॥

॥ इति धारणा अंग सम्पूर्णम् ॥

अथ सातवां ध्यान अंग वर्णन

शिष्य वचन

दो० अंग धारणा का कहा, सो धारा चित माहिं ।
ध्यान अंग वरणन करो, मैं रहुँ चरणन छाहिं ॥१५३॥

गुरु वचन

चरणदास अब ध्यान सुन, कहूँ तोहि समुझाय ।
शुकदेव कहै सुनि सुनि समझि, करो ताहि चित लाय ॥१५४॥
ध्यान जु चार प्रकार के, कहूँ जु उनकी रीत ।
पदस्थ, पिंड, रूपस्थ है, चौथा रूपातीत ॥१५५॥

अथ पदस्थ ध्यान

हिय पद पंकज ध्यान करि; फिर करि सारी देह ।
नख शिख लौं छवि निरखि कै, चरणन में चित देह ॥१५६॥

ॐ कुंभक ही कीजिये, यहाँ प्रणव[1] का जाप।
मन निश्चल हो सहज में, भाजैं त्रैविधि[2] ताप ॥१५७॥
पदस्थ ध्यान याको कहैं, करै सो जानै भेव।
पिंडस्थ ध्यान वर्णन करैं, खोलि खोलि शुकदेव ॥१५८॥

अथ पिंडस्थ ध्यान

ब्रह्मण्ड सोई यह पिंड है, यामें करि करि वास।
कमलन के लखि देवता, लहो परापत तास ॥१५९॥
शोधै सगरे पिंड को, षट्चक्रहु को ध्यान।
शोधत शोधत आ चढ़ै, भवँर गुफा अस्थान ॥१६०॥
तिरवेणी संगम वहै, ज्योति जहाँ दरशाय।
सात जन्म सुधि होय जब, ध्यान करै मन लाय ॥१६१॥
आगे कमल हजार दल, सतगुरु ध्यान प्रधान।
अमृत द्रवै बहि चलै, हंस करै जहँ न्हान ॥१६२॥
ऊपर तेजहिपुंज[3] है, कोटि भानु परकास।
शून्यशिखर ता ऊपरै, योगी करै विलास ॥१६३॥

अथ रूपस्थ ध्यान

रूपस्थ ध्यान को भेद सुनि, कीजै मन ठहराय।
देखै त्रिकुटी मध्य ह्वै, निश्चल दृष्टि लगाय ॥ १६४॥
ध्यान किये पहिले जहाँ, अगनि फूल दरसाय।
केते योगन माहि हो, दीप ज्योति प्रकटाय ॥१६५॥

१ ओंकार २ आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक ३ अनन्त सूर्य का प्रकाश जिसके ऊपर अमरलोक धाम है।

शनै शनै आगे जहाँ, दीपमाल दरशाय।
फिरि तारों की माल सी[1], दामिनि बहु दमकाय ॥१६६॥
बहुत चन्द सूरज घने, देखे कोटि अनन्त।
अणु ज्यों करि स्रमर[2] भरे, ध्यान माहिं दरशन्त॥१६७॥
झिलमिल झिलमिल तेजमय, भासै सब संसार।
तन मन उपजै सुख घना, आनँद अधिक अपार॥ १६८॥
जल अथाह में डूब ज्यों, देखे दृष्टि उघार।
जो दीखै तो नीर ही, दश दिशि अपरम्पार॥१६९॥
यही ध्यान प्रत्यच्छ है, गुरू कृपा सों होय।
कहि शुकदेव चरणदास करि, तन मन आलस खोय॥

अथ रूपातीत ध्यान

रूपातीत शून्य ध्यानहि जानो। शून्यहि को परब्रह्म पिछानो॥
त्रिकुटी परै शून्य अस्थान। सो वह कहिये पद निर्वान॥
चिदानन्द ताको हिय आनो। वाही में मन ही को सानो॥
आठ पहर जहँ चित्त लगावो। याके कीन्हे सों लय पावो॥
ज्यों आकाश में पच्छी धावै। धावत धावत दृष्टि न आवै॥
बहुरि अचानक दीखै आई। वह ध्यानी ऐसा ह्वै जाई॥
इस परम शून्य का अधिकी ध्याना। सब ध्यानन में है परधाना॥
सो योगी यह लहै ठिकाना। सायुज्यमुक्ति होइ जाय निदाना॥
दो० यासों लगै समाधि ही, निद्रा कहिये योग।
ध्याता होवै लीन ही, रहै न त्रिपुटी रोग॥ १७१॥

१ माला के समान २ लवालब (पूर्णरूपेण)।

सतवाँ कहा जु ध्यान ही, अठवीं कहूँ समाधि।
ज्ञान ध्यान जहँ वीसरै, तहाँ न विद्यावाद[1] ॥१७२॥

॥ इति ध्यान अङ्ग सम्पूर्णम् ॥

अथ आठवाँ समाधिअंग वर्णन

अष्टपदी छन्द

अठवीं कहूँ समाधि लच्छण वर्णन करूँ।
तोको सब समुझाय तेरी दुविधा हरूँ॥
जब ही लगे समाधि योगी आनँद लहै।
योग भया सिध जानि क्रिया कोइ ना रहै॥
मिलि ध्याता अरु ध्यान एक होवै जहाँ।
दूजा रहै न भाव मुक्ति वर्तै तहाँ॥
निरउपाधि निर्खेद ऐसा वह देश है।
करम भरम अरु धरम नहीं कोइ लेश है॥
आपा[2] रहै न कोय सकल आशा गरै।
चिन्ता का दुख नाहिं वासना सब जरै॥
पंच विषय जहँ नाहिं नहीं गुण तीन ही।
होवै ब्रह्मस्वरूप जीवता छीन ही॥
जाग्रत स्वप्न सुषोप्ति जहाँ होवै नहीं।

१ शास्त्रार्थ-वाद विवाद २ अहंकार।

चौथे पद को पाय होय जहँ लीन ही ॥
ऐसे कहैं शुकदेव सुनो चरणदास ही ।
यह निर्द्वन्द्व[१] समाधि करो जहाँ वास ही ॥
दो० जहाँ कछू गम[२] ना रहै, विद्या वेद न वाद ।
ऋधि सिधि मिटि आनँद लहै, ऐसी शून्य समाधि॥१७३॥

अष्टपदी छन्द

तहाँ किये परवेश रहै न आकार ही ।
रूप नाम गुण क्रिया यही साकार ही ॥
पाप पुण्य सुख दुःख जहाँ नहिं पाइये ।
मत मारग कुल धर्म न देत दिखाइये ॥
भूख प्यास अरु उष्ण जहाँ नहिं शीत है ।
हर्ष शोक नहिं नेक बैर नहिं प्रीत है ॥
इन्द्री मन नहिं रहत गलित ह्वै जात है ।
सिध साधक गुरु शिष्य न भाव रहात है ॥
उडुगन चन्द्र न सूर न दिवस न रात है ।
त्वंपद[३] ईश्वर ब्रह्म न जान्यो जात है ॥
जैसे जल में नीर चीर में चीर ही ।
असिपद[४] में यों जीव नीर में नीर ही ॥
अहं मिटै मिटि जाय जु आपा थोक[५] ही ।
ना परमातम आतम बंध न मोष[६] ही ॥

१ शीत, उष्ण, सुख, दुख, आदि से रहित २ देह का स्मरण ३ जीव ४ ब्रह्म पद ५ समूह ६ मोक्ष ।

ऐसे कह शुकदेव यों होय समाधि में ।
वैसा ही ह्वै जाय सोई था आदि में ॥

दो० हुता आदि परमातमा, बिच उठि लगा विकार ।
मिलि समाधि निर्मल भवै, लहै रूप ततसार ॥१७४॥

अष्टपदी छन्द

जहँ आतमदेव अभेव सेवक नहिं सेव है ।
स्वामी भी ह्वाँ नाहिं पूजा नहिं देव है ॥
नौधा[१] नेम न प्रेम ज्ञान नहिं ध्यान है ।
जड़ चेतन कछु नाहिं सुरति नहिं ज्ञान है ॥
विधि निषेध नहिं भेद अन्वय व्यतिरेक ना ।
निश्चय अरु व्यवहार कछू तामें न ह्वाँ ॥
उत्तम मध्यम भाव न शुभ ना अशुभ है ।
सिंह सर्प डर नाहिं औ शस्तर को न भै ॥
पावक दग्ध न करै बहावै जल नहीं ।
ह्वाँ नहिं पहुँचै काल न ज्वाला है तहीं ॥
ऐसा भवन समाधि भाग्य सों पाइये ।
तजि कै जक्त उपाधि तहाँ मठ छाइये ॥
यतन करै लख माहिं और सब भेष ही ।
कोटिन में कोइ होय समाधी एक ही ॥
ह्वाँ तक पहुँचै जाय सोई सिध साध है ।
कहै शुकदेव पुकारि जु कठिन समाधि है ॥

१ श्रवण कीर्त्तन स्मरण पादसेवन अर्चन वंदन दास्य सख्य आत्मनिवेदन ।

दो० भक्ति योग अरु ज्ञान की, त्रै विधि कहूँ समाधि ।
गुरू मिलै तो सुगम है, नाहीं कठिन अगाधि ॥१७५॥

अथ भक्ति समाधि

सब इंद्रिन को रोकि कै, करि हरि चरणन ध्यान ।
बुद्धि रहै सुरतिहु रहै, तो समाधि मत मान ॥१७६॥
ध्याता बिसरै ध्यान में, ध्यान होय लय ध्येय ।
बुद्धि लीन सुरति न रहै, पद समाधि लखि लेय ॥१७७॥

अथ योग समाधि

आसन प्राणायाम करि, पवन पंथ गहि लेहि ।
षट चक्कर को छेद करि, ध्यान शून्य मन देहि ॥१७८॥
आपा बिसरै ध्यान में, रहे सुरति नहिं नाद[1] ।
लीन होय किरिया रहित, लागे योग समाध ॥१७९॥

अथज्ञान समाधि

जब लग तत्त्व विचारि करि, कहै एक अरु दोय ।
ब्रह्मवृत्ति[2] बाँधे रहै, ह्याँ लग ध्यानहि होय ॥१८०॥
मैं तू यह वह भूलि करि, रहे जु सहज स्वभाव ।
आपा देहि उठाय करि, ज्ञान समाधि लगाव ॥१८१॥
ज्ञान रहित ज्ञाता रहित, और रहित ज्ञेय जान ।
लगी कभी छूटे नहीं, यह समाधि विज्ञान ॥१८२॥
पूछे आठों अंग तें, योग पंथ की बात ।
शुकदेव कहैं तामें चलो, गुरू कृपा ले साथ ॥१८३॥

॥ इति अष्टाँगयोग सम्पूर्णम् ॥

१ अनहद शब्द २ अहं ब्रह्मास्मि

अथ छहों कर्म हठयोग वर्णन

शिष्य वचन

दो० अष्टांग योग वर्णन कियो, मोको भइ पहिचान ।
छहौं कर्म हठयोग के, वरणो कृपा निधान ॥१८४॥

गुरु वचन

पहिले ये सब साधिये, काया होवे शुद्धि ।
रोग न लागे देह को, उज्ज्वल होवे बुद्धि ॥१८५॥

अरु साधै षटकर्म बताऊँ । तिनके तोको नाम सुनाऊँ ॥
नेती धोती, बसती, करिये । कुंजर करम, रोग सब हरिये ॥
न्योली किये भजैं तन बाधा । देखि देखि जिन गुरु सों साधा ॥
त्राटक कर्म, दृष्टि ठहरावे । पलक पलक सों लगन न पावे ॥

(१) अथ नेती कर्म

कुं० मिहीं जु सूत मँगाय के, मोटी बाँटे डोर ।
ऊपर मोम रमाय के, साधे उठ कर भोर ॥
साधे उठ कर भोर, डेढ़ बालिश्त की कीजे ।
ताको सीधी करे, हाथ अपने में लीजे ॥
नासारंध्र में मेल कर, खींचे अँगुली दोय ।
फेरि त्रिलोचन कीजिये, नेती कहिये सोय ॥

दो० कान नाक अरु दाँत को, रोग न व्यापे कोय ।
उज्ज्वल होवे नैंन ही, नित नेती करि सोय ॥१८६॥

(२) अथ धोती कर्म

धोती कर्म यासों कहैं, पट्टी सोलह हाथ।
कोढ़ अठारह ना भवैं, करै जु नित परभात ॥१८७॥

कु० चौड़ी अंगुल चारि की, मिहीं वस्त्र की होय।
जल में भेय निचोय करि, निगल कंठ सों सोय ॥
निगल कंठ सों सोय, सिरा बाहर रहि जावे।
फेरि निकासै ताहि, पित्त कफ दोऊ लावे ॥
काया होवे शुद्ध ही, भजैं पित्त कफ रोग।
शुकदेव कहै धोती करम, साधें योगी लोग ॥

(३) अथ वस्ती कर्म

तीजे वस्ती कर्म ही, कहूँ सुनो चितलाय।
क्रिया करै गन्नेस ही, कुंजी तहाँ लगाय ॥
कुंजी तहाँ लगाय, मूल को धोवन कीजे।
पसारन[1] संकोच[2] सुरति दे, यह कर लीजे ॥
नीर गुदा सों खैंच करि, थांभे उदर मँझार।
कछू डोल अस बैठ कर, फिरि दे ताहि उतार ॥

दो० यही जु वस्ती कर्म है, गुरु बिन पावे नाहिं।
लिंग गुदा के रोग जो, गर्मी के नशि जाहिं ॥१८८॥

(४) अथ गज कर्म

गज कर्म याही जानिये, पिये पेट भरि नीर।
फेरि युक्ति सों काढ़िये, रोग न होय शरीर ॥१८९॥

१ छोड़ना २ खींचना

(५) अथ न्योली कर्म

न्योली पद्मासन सों करे। दोनों कर घुटनों पर धरे ॥
पेटरु पीठ बराबर होय। दहने बायें नले बिलोय ॥
मैल पेट में रहन न पावे। अपान वायु तासों वश आवे ॥
ताप तिली अरु गोला शूल। होन न पावे नेक न मूल ॥
जो गुरु करि के ताहि दिखावे। न्योली कर्म सुगम करि पावे ॥
और उदर के रोग कहावैं। सो भी वे रहने नहिं पावैं ॥

(६) अथ त्राटक कर्म

त्राटक कर्म टकटकी लागे। पलक पलक सों मिले न ताके ॥
नैन उघारे ही नित रहै। होय दृष्टि थिर शुकदेव कहै ॥
आँख उलटि त्रिकुटी में आनो। यह भी त्राटक कर्म पिछानो ॥
जेते ध्यान नैन के होई। चरणदास पूरण हों सोई ॥
दो० कपालभाति अरु धौंकनी, बावी शंखपखाल।
चारि कर्म ये और हैं, इनहिं छहौं के नाल[1] ॥१६०॥

॥ इति त्राटक कर्म ॥

अथ खेचरी आदि मुद्रा

शिष्य वचन

दो० एक बार फिर भी कहो, मुद्रा पाँच दयाल।
मो से रंक अधीन पर, होकर बहुत कृपाल ॥१६१॥

---

१ साथ

गुरु वचन

आगे मुद्रा तोहि कही समुझाइया।
फिर भी कहूँ अब खोलि सुनो चित लाइया ॥

(१) अथ खेचरी मुद्रा

पहिले मुद्रा खेचरी को साधन भनूँ।
जैसे आगे करी सभी ऋषि मुनि जनूँ ॥
ताते जल के कुरले करि जु बगाइये।
ता पाछे चौबस्तु[१] को चूर्ण लगाइये ॥
जिह्वा हाथ में पकरि मर्दन छीलन करे।
दोहन तानन करै बहुरि दशनन धरे ॥
फिरि करि चालन ताहि छेदन[२] ही कीजिये।
तातू[३] ज्यों कटि जाय यत्न सोइ लीजिये ॥
ब्रह्मरंध्र को धोय के मैल निवारिये।
बायें अँगूठे ऊपर काग को धारिये ॥
सहज सहज सरकाय के आगे लाइये।
यह सब साधन कठिन गुरू से पाइये ॥
दो अँगुली की कूँची सूँ करि मेलना।
जिह्वा उलटी राख जु नित प्रति खेलना ॥
यह उपाय षट मास करै तजि मान ही।
रसना यों बढ़ि जाय चढ़े अस्थान ही ॥
दो० चार काज यासूँ सरैं, फलदायक बहु भाँति।

१ सूँठ, मिरच, पीपल, मधु २ काटना ३ जीभ के नीचे का तंतु।

योग माहिं बड़ भूप है, अधिकी जाकी कांति ॥१९२॥

अष्टपदी

एक जु प्राणायाम जीभ सूँ कीजिये ।
दूजे बन्ध उड्यान यही सूँ दीजिये ॥
तीजे करि करि ध्यान निरखि जहँ ज्योत ही ।
चौथे अमृत पिवे खुले तहँ स्रोत ही ॥
खैंचे त्रिकुटी पाट सहज अरु फेरिये ।
द्रवै सुधा[1] रस नीर जहाँ मन घेरिये ॥
अमृत ही के स्वाद को कौन बखानई ।
जो कोइ अँचवै हंस सोई पुनि जानई ॥
दिन दिन पलटे देह रक्त दूधा भवे ।
बीस बरस अरु चार माहिं ऐसा हवे ॥
इच्छाचारी होय बरस छत्तीस में ।
सब लोकन में जाय आपनी शक्ति तें ॥

दो० जेते विष व्यापैं नहीं, रोग न दहै शरीर ।
जो कोइ पीवै युक्ति सूँ, कामधेनु को चीर ॥१९३॥
भूख प्यास अरु नींद के, रहैं न तीनों लेव ।
नाद[2] बिन्दु[3] गुटका[4] बँधे, कहै यही शुकदेव ॥१९४॥
तीन महीने चार का, बालक गोदी माय ।
ना वह पीवे नीर ही, अन्न नहीं वह खाय ॥१९५॥
वह तो जीवे दूध सूँ, वाकूँ यही जु काम ।

---

१ अमृत २ अनहद ३ वीर्य ४ मिश्रित ।

लगो रहै माता कुचन, निसरै[1] एक न याम ॥१९६॥
अमृत पीवै योगिया, ऐसे चरणहि दास।
पहर हु वह छाँड़ै नहीं, कामधेनु[2] का पास ॥१९७॥
ऐसे धारे तो बने, सुधा रसीला संत।
दिव्यकाय हो जाय जब, धनि कहैं कमला कंत ॥१९८॥
आठ पहर लागा रहै, पीवै कै[3] करि ध्यान।
मैं कहा जैसा ही बने, परसे पद निरबान ॥१९९॥
भेद गुरू से ये लहै, और छिपावे वाहि।
जो जो फल याके अधिक, होय परापत ताहि ॥२००॥
योगेश्वर अरु देवता, मुनी ऋषीश्वर जान।
रखवारे याके बने, करन न देवैं ध्यान ॥२०१॥
टेक गहै तो जा पियै, और करे ह्वाँ ध्यान।
यती सती अरु गुरुमुखी, जाकी ऐसी आन ॥२०२॥
बड़ी जु मुद्रा खेचरी, मुख में याका वास।
जो कहि मैं शुकदेव ही, जान लेहु चरणदास ॥२०३॥

(२) अथ भूचरी मुद्रा

दूजी मुद्रा भूचरी, नासा जाको वास।
प्राण अपान जुदी जुदी, एक करै चरणदास ॥२०४॥
जितकी तित रख प्राण को, वा घर लाय अपान।
ताहि मिलावे युक्ति सूँ, करि करि संयम ध्यान ॥२०५॥
जब वह जीते पवन कूँ, मन चंचल ठहराय।

१ छोड़ना २ अमृत का स्थान ३ अथवा।

गगन चढ़न की आश हो, कहैं शुकदेव सुनाय ॥२०६॥
गुदा द्वार बंध दीजिये, एड़ी पाँव लगाय ।
आसन सिद्ध जु कीजिये, मन पवना वश लाय ॥२०७॥
अपान वायु जब वश भवै, ऊरध खैंच चलाय ।
सनई सनई जा चढ़ै, प्राण वायु ह्वै जाय ॥२०८॥

(३) अथ चाँचरी मुद्रा

तीजी मुद्रा चाँचरी, जाको नैनन वास ।
नासा आगे दृष्टि कूँ, राखै मन धर आस ॥२०९॥

अंगुल चार नासिका आगे । चित स्थिर कर देखन लागे ॥
खुले पाँच तत करे जु कोई । मन अरु पवन जहाँ थिर होई ॥
फिर ह्वाँ सूँ नासा परि आवै । अचल टकटकी तहाँ लगावै ॥
जहँ बहुतक अचरज दरशावैं । त्रिभव स्वर्ग के आगे आवैं ॥
जिस सूँ पलट तिरकुटी माहीं । ध्यान करै कहुँ अन्त न जाई ॥
दीरघ तारा सा परकासे । उदय होय सूरज ज्यों भासे ॥
चित चेतन दोउ मेला करे । लै उपजै अरु दुविधा हरे ॥
यही चाँचरी मुद्रा जानो । चरणदास याकूँ पहिचानो ॥

(४) अथ अगोचरी मुद्रा

कहूँ अगोचरी चौथी मुद्रा । तामें सुख पावै योगिंद्रा ॥
यां मुद्रा का सरवन वासा । शुकदेव कहैं सुन चरणहिदासा ॥

दो० ज्ञान सुरति दोउ एक ह्वै, पलट अगोचर जाय ।
शब्द अनाहद में रतै, मन इन्द्री थिर पाय ॥२१०॥

(५) अथ उनमनी मुद्रा

पँचवीं मुद्रा उनमनी, दशवें द्वारे वास।
सिद्ध समाधि मिलै जहाँ, दग्ध होय सब आस ॥२११॥
आनन्द ही आनन्द जहाँ, तहाँ न काल कलेश।
तीनों गुन नहि पाइये, ह्वाँ नहिं माया लेश ॥२१२॥
जीवातम परमात्मा, होय जाय वा ठौर।
ध्याता ध्यान न ध्येय जहाँ, तहाँ न किरिया और ॥२१३॥

अथ महाबन्ध आदि साधन विधि

महाबन्ध तोहि पहल बताऊँ। पाछे मूलबन्ध समझाऊँ॥
बायाँ पाँव सीवन[१] गहि दीजै। मूल द्वार[२] एडी बँध कीजै॥
दहिनी जंघ जंघ पर लावै। गउमुख आसन नाम कहावै॥
राखै चिबुक हृदय पर लाय। पवन राह पूरब को जाय॥
ध्यान त्रिकुटी संयम करे। प्राण वायु हिरदै में धरे॥
महाबन्ध ऐसे करि साधै। गुरू प्रताप याहि आराधै॥
बिना पुरुष तिरिया कूँ जानो। बन्ध बिना मुद्रा पहिचानो॥
निरफल जाय पुरुष बिन नारी। महाबन्ध बिन मुद्राधारी॥
माहिं कण्ठ के ध्यान लगावै। सुरत निरत ह्वाईं ठहरावै॥
दो० महाबंध जो स्थित करै, सो योगी ह्वै जाय।
पवन पंथ मुंदित करै, ध्यान कण्ठ में लाय ॥२१४॥
शशियर कूँ सूरज घर लावै। रेचक पूरक पवन फिरावै॥
महाबन्ध करै अभ्यास। अमृत अचवै बुझै पियास॥

१ गुदा और लिंग के बीच की जगह २ गुदा द्वार।

जरा मृत्यु देही नहिं आवै । महाबन्ध तीनों गुन पावै ॥
जठर अग्नि परचै बहु भारी । निशि दिन माहिं करै अठ[1]वारी ॥
पहर पहर में पवन भरीजै । प्रथम अल्प अभ्यास करीजै ॥
तिय सेवन तापन नहिं करै । काम अग्नि काया नहिं जरै ॥
दो० ऐसी विधि साधै पवन, योग पंथ धरि पाय ।
पहर पीछला बनत[2] जन, आयुरदा बढ़ि जाय ॥२१५॥

अथ मूल बंध

मूलबंध अब कहत हूँ, अपान वायु वश होय ।
ऊपर कूँ खैंचन करै, मिलै प्राण में सोय ॥२१६॥
कमल कमल सीधे भवैं, नाभि तले हो राह ।
आगे मारग सुगम हो, पहुँचै योगीनाह[3] ॥२१७॥
मूलबंध गुण ऐसा होई । वायु अधोगति जाय न कोई ॥
रेता ऊरध यासूँ सधे । दिन दिन आयु सवाई बधे ॥
यासूँ कारज सब बनि आवे । रोग रक्त को सभी नशावे ॥
योगी पहिले यह आराधे । अपान वायु कूँ नीके साधे ॥
अब मैं मूलबंध बतलाऊँ । ज्यों का त्यों साधन दिखलाऊँ ॥
गुदा वास याका तुम जानो । गुदा द्वार बँध देना ठानो ॥
बायें पाँव कि एड़ी सेती । मूल द्वार रोकै करि हेती ॥
ऊरध[4] ही कूँ खैंचन कीजे । शुकदेव कहै नीके सुन लीजे ॥
अरु कबहूँ मन ऐसी धरे । आसन पदम करन कूँ करे ॥

---

१ आठ २ उपरोक्त साधन ब्राह्ममुहूर्त में बन जाने से । ३ श्रेष्ठ योगी
४ ऊपर को ।

कपड़े की इक गेंद बनावे । गुदा मध्य कस बंध लगावे ॥
यों भी वायु सधे वा भाँती । जो पै लगा रहै दिन राती ॥
पवन तले की ऊपर जावे । प्राण अपान सहज मिल जावे ॥
नाद बिंद रल मिलजा दोई । एक बरस साधे जो कोई ॥
योग माहिं यह भी परधान । बूढ़ी देह पलट हो ज्वान ॥
जठर अगनि बाढ़ै अधिकाय । जो चाहे तो बहुतै खाय ॥
सुन चरणदास कहै शुकदेव । जो गुरु पूरा देवे भेव ॥

अथ जलंधर बंध

दो० मूलबंध तोसूँ कहा, गुण कहे सब समझाय ।
बंध जलंधर कहत हूँ, सुन सरवन करि चाय ॥२१८॥
तीजा बंध जलंधर जानो । कंठ वास ताका पहिचानो ॥
ग्रीवा लटक चिबुक हिय लावे । कंठ पवन रोके परचावे ॥
हिरदे प्राण पूर करि रहिये । बंध जलंधर यासूँ कहिये ॥
ऊरध पवन नीचे को जाय । अरध पवन ऊरध कूँ लाय ॥
उदर मध्य ले ताहि विलोय । ब्रह्मरंधर जा पहुँचे सोय ॥
इह विधि ब्रह्मपंथ कूँ धावे । सहजे सहजे मध्य समावे ॥
जरा मरण जहँ भय नहिं व्यापे । लहे अमरपद हो रहे आपे ॥
चरणदास शुकदेव बतावे । जो पै बंध उड्यान लगावे ॥

अथ उड्यान बंध

दो० बंध उड्यान आगे कहा, जिह्वा उलट लगाव ।
कान आँखमुख नाक के, स्वॅर सब बंध कराव ॥२१९॥
इह सुबंध महिमा अधिक, लागे वजर किवाँर ।

सात द्वार की बाट हो, निकसे नाहिं बयार ॥२२०॥
पाँचौं मुद्रा बंध सब, दिखलाया यह देश ।
शुकदेव कहै रणजीत सुन, और कहूँ उपदेश ॥२२१॥

अष्टपदी छन्द

चौरासी ही जानि जु आसन योग के ।
सिद्ध पदम तिन माहिं बड़े ही थोक के ॥
बहु नारिन के माहिं जु नौ नारी भनी ।
तिन में सुषुमन जान बड़ी गुरु सूँ सुनी ॥
तीनि बंध के माहिं मूल कूँ जानिये ।
मुद्रों ही में बड़ी खेचरी मानिये ॥
वायुन में परधान प्राण कूँ देखिये ।
सब कुंभक हूँ माहिं केवल बड़ि लेखिये ॥
बानी चारौं मध्य परा ही गाइये ।
चार अवस्था माहिं तुर्या बड़ि पाइये ॥
परम शून्य को ध्यान परे सूँ है परे ।
याकी सम कोइ नाहिं ध्यान तिनको धरे ॥
अजपा ही के जाप बराबर और ना ।
शील दया से मीत न कोई देह मा ॥
पूजन में बड़ि जान जु आतम की करे ।
ज्ञान समान न दान सकल विपता हरे ॥
गुरु सा रचक और नहीं कोइ लोक में ।
योग युक्ति सा स्वाद नहीं कोइ भोग में ॥

कहै गुरू शुकदेवजी सुनो रणजीत ही ।
बड़ी बड़ी जो गांस खोल तुम कूँ जु दी ॥

छन्द

अमरी[१] करतैं वजरी[२] रोके वजरी करतैं वाई[३] ।
रोके छींक साधना करिके नासा लेहु जँभाई ॥
जल संयम सूँ नभ कूँ देखे संयम नाद सु ज्योती ।
संयम पवन होय थिर काया सो वश राखे मौती[४] ॥
जिया बिछावै मृत्यक ओढ़ै बूढ़ी होय न काया ।
संयम नींद बिंद नहिं जावे यह शुकदेव बताया ॥
दहिने स्वर में भोजन कीजे बायें स्वर में पानी ।
दहिने स्वर में अमरी रेचे देह न होय पुरानी ॥
दहिने स्वर में जल सूँ न्हावे बायें स्वर में लंबी[५] ।
शव आसन सूँ सोवन कीजे नारि न कीजे सङ्गी ॥
पावक सूँ तापन नहिं कीजे जो तापे तो नैना ।
भोजन गरम न खट्टा खावे फटे झिरे[६] नहिं मैना[७] ॥

दो० गरमी ही के रोग में, चन्द चला रवि वन्द ।
शीत रोग सूरज चला, शशियर राखे चन्द ॥२२३॥
तीन रोज कै पाँच दिन, कै दिन राखै सात ।
रोग देख जैसी करै, होय निरोगा गात ॥२२३॥
सूरज रात चलाइये, द्योस चलावे चन्द ।

१ टट्टी २ पेशाव ३ अपान वायु ४ मृत्यु ५ पेशाव करना ६ निकलना ७ वीर्य

पवन फिरे ऊपा[1] बधै, श्वास चले जो मन्द ॥२२४॥
कान आँख अरु दाँत के, सब ही रोग भजाहिं ।
श्यामबाल, नहिं श्वेत हों, करैं जु नीकी दाइं[2] ॥२२५॥
रुई पुरानी बहुत ही, दिन कूँ दाहिने राखि ।
बायें राखै रैनि कूँ, खोली साधन भाखि ॥२२६॥
शीत उष्ण व्यापे नहीं, विष नहिं व्यापक होय ।
बीस बरस साधन किये, रहै विकार न कोय ॥२२७॥
बासी गरिष्ठ न खाइये, सूछम करै अहार ।
जल बहुतै पीवे नहीं, सपरस करे न नारि ॥२२८॥
तन मन साधे बचन ही, पाप न लगने देय ।
शुकदेव कहैं चरणदास सुनि, अविकी साधन येह ॥२२९॥
सब जीवन सुख दीजिये, सब सों मीठा बोल ।
आतम पूजा कीजिये, पूजा यही अतोल ॥२३०॥
दया पुष्प चन्दन नवन, धूप दीप दे मन्न ।
भाँति भाँति नैवेद्य सूँ, करैं देव परसन्न ॥२३१॥
जो कोइ आवे राजसी, देहु बड़ाई ताहि ।
जाकूं देखो तामसी, करो नमन्ता वाहि ॥२३२॥
जो कोइ होवे सात्त्विकी, मिले ताहि तजि मान ।
गुढ़ी[3] खोल चर्चा करो, लीजे तत मत छान ॥२३३॥
सब ही कूँ परसन्न करि, आप रहो परसन्न ।
वास लहो हरि धाम ही, ह्याँ कहँ सब धन धन्न ॥२३४॥

१ आयु २ प्रकार ३ हृदय की गांठ (संकोच) ।

राजस तामस सात्त्विकी, क्षेत्तर तीनहिं भांति ।
क्षेत्रज्ञ आतमदेव है, सबकी सहिये क्रांति ॥२३५॥
सब में देखै आप कूँ, सब कूँ अपने माहिं ।
पावे जीवन मुक्ति को, यामें संशय नाहिं ॥२३६॥
सब में देखे आतमा, आपन में करि ध्यान ।
यही ज्ञान ब्रह्मज्ञान है, यही जु है विज्ञान ॥२३७॥
अहंकार मिटि ब्रह्म हो, परमातम निरवान ।
शुकदेवा हो कहत हूँ, चरणदास हिय आन ॥२३८॥
जो तैं पूँछा सो कहा, भेद कहा सब खोल ।
अरु तेरे हिय में कछू, सकुच खोल कर बोल ॥२३९॥

शिष्य वचन

अपना लखि किरपा करी, समझाया बहु भाँति ।
योग ओर तें गुरूजी, हिय में आई शांति ॥२४०॥
तुम्हरी कहा अस्तुति करूँ, मोपै कही न जाय ।
इतनी शक्ति न जीभ की, महिमाँ कहै बनाय ॥२४१॥
किरपा करी अनाथ पर, तुम हो दीनानाथ ।
हाथ जोड़ि माँगौं यही, मम शिर तुम्हरा हाथ ॥२४२॥
मोसे रंक गरीब की, तुम गहि पकरी बाहँ ।
भव बूड़त राखा मुझे, चरण कमल की छाहँ ॥२४३॥
आपहि तुम किरपा करी, मैं कित लहता तोहि ।
तुमको पाऊँ ढूँढ़ि करि, इतनी शक्ति न मोहिं ॥२४४॥
व्यास पुत्र शुकदेव तुम, जगत माहिं विख्यात ।

तुम दर्शन दुर्लभ महा, मनुपन को न दिखात ॥२४५॥
बड़े भाग मेरे जगे, पूरबले परताप ।
किरपा श्री गोपाल की, आय मिले तुम आप ॥२४६॥
चरणदास अपनो कियो, दियो परम सन्तोष ।
बैठि करूँगो ध्यान ही, अब कुछ रह्यो न शोक ॥२४७॥
चलत फिरत ह्याँ आइया, तुम भरि दीन्हो मोहि ।
नैन प्राण तन मन सभी, देखत अरपे तोहि ॥२४८॥
चाह मिटी सब सुख भये, रहा न दुख का मूल ।
चाहूँ तो चाहूँ यही, तुम चरणन की धूल ॥२४९॥

॥ गुरु वचन ॥

योग तपस्या कीजियो, सकल कामना त्याग ।
ताका फल मत चाहियो, तजो द्वेष अरु राग ॥२५०॥
अष्टसिद्धि जो पै मिले, नेक न कीजे नेह ।
धरि हिरदय परमात्मा, त्यागे रहियो देह ॥२५१॥
जेती जग की वस्तु हैं, तामें चित्त न लाय ।
सावधान रहियो सदा, दियो तोहिं समुझाय ॥२५२॥
बार बार तोसे कहूँ, ह्याँ मत दीजो चित्त ।
सिद्धि स्वर्ग फल कामना, तजि कीजो हरि मित्त ॥२५३॥
जो कीजे हरि हेत ही, एहो चरणहि दास ।
भक्ति योग अरु शुभ करम, नीकी ठौर निवास ॥२५४॥

शिष्यवचन

ऐसे ही अब करूँगो, तुम चरणन परताप ।

अष्टसिद्धि समझो चहौं, वर्णन कीजे आप ॥२५५॥
समझौं तो त्यागूँ उन्हें, करवाओ पहिचान।
कहा नाम लच्छण कहा, कौन रहै अस्थान ॥२५६॥

गुरु वचन

शुकदेव कहैं वर्णन करूँ, अष्टसिद्धि के नांव।
लच्छण गुण सबही सहित, नीके तोहि समझांव ॥२५७॥

अथ अष्टसिद्धि के नाम

प्रथमै अणिमा सिद्धि कहावै। चाहे तो छोटा ह्वै जावे॥
अणु समान छिपि जावे सोई। ऐसी कला जु पावे कोई॥
दूजी महिमा लच्छण एता। चाहे बड़ा होय वह जेता॥
तीजी लघिमा वह कहलावे। पुष्प तुल्य हलका ह्वै जावे॥
चौथी गरिमा कहूँ विचारी। चाहे जितना होवे भारी॥
पँचवीं प्रापति सिद्धि कहावे। जित चाहे तित ही ह्वै आवे॥
छटवीं पराक्राम्य गुण धरे। शक्ति पाय चाहे सो करे॥
सतवीं सिद्धि ईशिता रानी। सबको आज्ञा माहिं चलानी॥
दो० वशीकरण सिधि आठवीं, कहैं श्री शुकदेव।
चाहे जिसको वश करे, अपना ही करि लेव ॥२५८॥
चरणदास सिद्धैं कही, समझ लेहि मन माहिं।
जो हैं जन वे राम के, इनमें उरझैं नाहिं ॥२५९॥
योग किये आठों सिधि पावे। कै भोगे कै चित न लगावे॥
योग किये मन जीता जावे। पलटे जीव ब्रह्मगति पावे॥
योगेश्वर चाहे सो करे। भरी रितावे रीती भरे॥

योगेश्वर ईश्वर ह्वै जाई। दिन दिन बाढ़े कला सवाई ॥
तजिये भोग योग ही करिये। तिरगुण परै ध्यान ही धरिये ॥
चौथे पद में करे निवासा। काहू विधि का रहे न साँसा ॥
योग करे सोई परवीना। शुकदेव कहैं प्रकट कहि दीना ॥

दो० पोथी माहीं देखि करि, करे जु कोई योग।
तन छीजे सिधि ना भवे, देही आवे रोग ॥२६०॥
देखि देखि गुरु सों करे, ले आज्ञा रहु संग।
सिद्ध होय साधन सबै, कछू न आवे भंग ॥२६१॥
योग तपस्या में बड़ा, पहुँचावे हरि पास।
जन्म मरण विपता मिटे, रहैं न कोई आस ॥२६२॥

शिष्य वचन

मैं समझी जानी सभी, सूझ भई हिय माहिं।
किरपा करि जो जो कहा, ताको विसरूँ नाहिं ॥२६३॥
व्यासदेव श्री जनक जै, जै जै श्री शुकदेव।
जै जै यह शुकतार है, समुझायो करि हेव ॥ २६४॥
हिय हुलसो आनँद भयो, रोम रोम भयो चैन।
भये पवित्तर कान ये, सुनि सुनि तुम्हरे वैन ॥२६५॥

छप्पै

गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु गुरू देवन के देवा।
सर्व सिद्धि फल देन गुरू तुम मुक्ति करेवा ॥
गुरु केवट तुम होय करो भवसागर पारी।
जीव ब्रह्म करि देत हरो तुम व्याधा सारी ॥

श्री शुकदेव दयाल गुरु चरणदास के शीश पर ।
किरपा करि अपनो कियो सबही बिधि सों हाथ धर ॥

॥ इति श्री गुरु चेला संवाद अष्टाङ्ग योग सम्पूर्णम् ॥



अथ श्री चरणदासजीकृत योगसन्देहसागर प्रारंभ



दो० अर्थ बतावो पण्डिता, ज्ञानी गुणी महन्त।
जो तुम पूरे साधु हो, भक्त हरि के सन्त ॥१॥
चरणदास पूछे अरथ, भेदी होय कहो।
समझो तो चर्चा करो, नाहीं मौन गहो ॥२॥
ब्रह्मण्डे सो पिण्डे जानो। ठौर ठौर घट में पहिचानो ॥
सात समुंदर घट में कहाँ। कछुवा रहै बतावो जहाँ ॥
शेषनाग केहि ठौर विराजै। रूप वराह कौन छवि छाजै ॥
कहाँ चार काया में खान। चौरासी लख योनि बखान ॥
षट चक्कर को जो तुम जानो। नाम सहित सब भेद बखानो ॥
नाभि कुण्डली का परमान। कैसे जागै कहो बखान ॥
सहज सहज वह कहां समावे। योगी होय सो भेद बतावे ॥
चरणदास का गुरु शुकदेव। सो तो जाने सबही भेव ॥
दो० कहाँ जु वासा पवन का, मन कौनी अस्थान।
कहाँ हिये की आँखि है, कैसे करे पिछान ॥३॥
प्राणपुरुष अन्तर्गत[1] कैसे। क्यों करि भेद बताओ जैसे ॥
इड़ा पिंगला सुषुमन नारी। कैसे पलटैं बारी बारी ॥
आठ प्रकार के कुम्भक जाने। सो युक्ता[2] मेरे मन माने ॥

---

१ भीतर प्राप्त २ योगी।

चार अवस्था[1] चार शरीरा[2] । वाणी[3] चारि नाम कहा वीरा ॥
कै प्रकार अजपा का जाप । कै अंगुल श्वासा का नाप ॥
क्यों आवे अरु क्यों वह जाय । याको ज्ञानी करो लखाय ॥
परा पश्यन्ती मध्यमाँ कहा । कहा वैपरी देह बता ॥
रणजीता का गुरु शुकदेव । सो तो जाने सब ही भेव ॥

दो० पद तीनों कहु विष्णु के, स्वप्ना जाग्रत भेद ।
बावन अक्षर देह में, पुष्पद्वीप कहाँ स्वेत ॥४॥

कहाँ इकीस काया में लोक । इन्दर करे कहाँ नित भोग ॥
ब्रह्मादिक शिव कहाँ त्रिदेवा । का विधि उनको पावै भेवा ॥
षोड़श चन्द कहाँ परकाशा । बारह सूर्य्यन का कित वासा ॥
तारामण्डल कैसे दरशैं । त्रिकुटी संयम कैसे परशैं ॥
त्रिवेणी को कैसे पावै । ररंकार कहाँ शब्द जगावै ॥
वर्णों अक्षर ॐकारा । तासे भयो सकल संसारा ॥
जाका कीजे कैसे ध्यान । कौन दिशा अरु को अस्थान ॥
चरणदास का गुरु शुकदेव । सो तो जाने सबही भेव ॥

दो० निर्गम सुर्गम भेद कहु, श्वास उसास बताव ।
काया में त्रिप कहाँ है, बिन्दु कुण्ड दर्शाव ॥५॥

जीव ब्रह्म में केता बीच । कौन कौन काया में नीच ॥
अमृतकुण्ड कौन अस्थान । बङ्क नाल की कहु पहिचान ॥
ब्रह्मरन्ध्र का भेद लखाव । कामधेनु का बरण बताव ॥

---

१ जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तुर्या २ स्थूल सूक्ष्म कारण तुरीय ३ परा पश्यन्ती मध्यमा वैखरी ।

मानसरोवर ताल बताय । तामें हंसा कैसे न्हाय ॥
बिना सीप कहाँ उपजै मोती । बिना दीव कहाँ जगमग ज्योती ॥
बिन सूरज कहाँ नितही धूप । भँवर गुफा का कैसा रूप ॥
शून्य शिखर का कौधर द्वारा । कै खिरकी अरु कहा अकारा ॥
चरणदास का गुरु शुकदेव । सो तो जानै सबही भेव ॥
दो० कहाँ दशों दिगपाल हैं, कहाँ इन्द्रिन के देव ।
अहार बास पँचतत्त्व को, बरणि बताओ भेव ॥६॥
काशी अरु मथुरा हैं दोय । कहाँ देह में कहिये सोय ॥
अड़सठ तीरथ घट में ज्यों कर । सबका गुरु पुष्कर है क्यों कर
कहाँ बसे वाई उद्यान । कहाँ बन्ध लागे उड्यान ॥
कहँ कपाट का कुन्जी ताला । द्वादश कला कौन मतवाला ॥
कण्ठ कूप उलटा है कौन । नेजू कहा बताओ जौन ॥
पनिहारी कहा कैसे भरैं । घड़िया कहा कहाँ भरि धरैं ॥
कै प्रकार अमृत का स्वाद । कौन ठौर सों अनहद नाद ॥
अग्र डोर कैसे करि पावे । मकर तारका भेद बतावे ॥
चरणदास का गुरु शुकदेव । सो तो जानै सब ही भेव ॥
दो० घण्ट ताल का लम्ब का, और अम्ब का बोल ।
चारि वस्तु ये कौन हैं, इन्हें बताओ खोल ॥७॥
कौन कमल पर गुरू बिराजें । कै प्रकार अनहद धुनि बाजें ॥
कै बाणी हैं अनहद तूरा । जानैगा कोइ साधू पूरा ॥
तेजपुंज के योजन आगे । अमरलोक कब सूझन लागे ॥
तीन शून्य कहाँ चौथा शून्न । जितही भूले पढ़ि अरु गुन्य ॥

कै कहिये काया के द्वारे। भिन्न भिन्न कहु मेरे प्यारे ॥
बहत्तर हजार आठ सै चौंसठनारी। इनका भेद बहुत है भारी ॥
बहत्तर कोठे कहाँ कहाँ। नाम बतावो जहाँ जहाँ ॥
चरणदास का गुरु शुकदेव। सो तो जाने सब ही भेव ॥
दो० सात द्वीप नौ खण्ड को, भिन्न भिन्न कहु भेद।
काया में केहि ठौर हैं, कहा नाम किस हेत ॥८॥
चौरासी बाई का नावँ। कहाँ कहाँ है कैसी दावँ ॥
जल का कोठा कीधर होय। कहाँ अग्नि का कहिये सोय ॥
ब्रह्म ज्वाल कहु कैसे जागे। किस आसन से निद्रा भागे ॥
किस आसन से बीरज जीते। दश मुद्रा कैसे कर नीते ॥
नाम रूप मुद्रों का जान। तीन बंध का नाम बखान ॥
चौरासी आसन का नावँ। और बतावो मन के पावँ॥
स्वर्ग मर्त्य अरु कहाँ पताल। कहा सत्य अरु कहा तिताल ॥
चरणदास का गुरु शुकदेव। सो तो जाने सबही भेव ॥
दो० कै प्रकार का योग है, कै प्रकार की भक्ति।
पाँच भूमिका ज्ञान की, सात कला का अर्थ ॥९॥
को नगरी का राज करै। को जीवे अरु कौन मरे ॥
पेट बड़ा किसका है जान। पूजा बड़ी ताहि पहिचान ॥
सब में बड़ा कौन आहार। ताको सुरता लेहु निहार ॥
ता बिन एक घड़ी नहिं रहे। भेदी होय सो भेद कहे ॥
सबमें बड़ी कहा जो पूजा। जाकी सम दीखे नहिं दूजा ॥
कहा सो सब को लग्गम लग्गा। कौन पुरुष सो भग्गम भग्गा ॥

कहा घटे सो घटेई घटे। कहा बढ़े सो बढ़ई बढ़े ॥
घटे न बढ़े सो वस्तु कहा। घटे बढ़े भी ताहि बता ॥
चरणदास का गुरु शुकदेव। सो तो जाने सबही भेव ॥
दो० त्तर के कहा जु अर्थ हैं, अत्तर देहु दिखाय।
निअ्त्तर के रूप को, भिन्न भिन्न समझाय ॥१०॥
ॐ कार का अर्थ बतावो। महत्तत्त्व का रूप दिखावो ॥
मणिचकर का कैसा रंग। मन मनसा दोउ कैसे संग ॥
कौन बाट हो लगे समाध। कित जा देखे खेल अगाध ॥
चौबीस शून्य हैं जहाँ जहाँ। बज्जर ताला लागे कहाँ ॥
वज्र द्वार बिन पावे कहा। बिन पाये उरले घर रहा ॥
आठ महल का करो बखान। कासों कहिये पद निर्वान ॥
जो तुम जानो ऊरधरेता। तो तुम भेद कहो अब केता ॥
दीप मुद्रा अरु मुद्रा राज। जासों सुधरे काया काज ॥
काया महल के जो तुम भेदी। ठौर ठौर कहु घट में जेती ॥
पांच तत्त्व[1] की इन्द्री दस। यही बतावो आगे बस ॥
चरणदास का गुरु शुकदेव। सो तो जाने सबही भेव ॥
दो० चार दूध चौदह चौबारें, भेदी होय सो जानं।
चरणदास शुकदेव का बालक, सो यह भेद बखाने ॥११॥

छप्पय

चंद कला कित छिपै बढ़ै जब कितसों आवे।
बादर कित सों होय फटे जब कहाँ समावे ॥

१ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश।

दीप लोय बुझि जाय जाय कित मोहिं बतावो।
रात दिना कित जाय धुवाँ केहि ठौर लखावो ॥
चरणदास शुकदेव सों पूछत है शिर नाय के।
तन छूटै जी जाय कित आवत है किहि ठौर ते ॥

कवित्त

देखो है तमाशा देह समुझि के विचारि लेहु,
मूरख नर होय जो या बात में हँसैगो ॥
चीते को मारि मृग नख शिख सुखाय गयो,
बाघनी को मारि बोक[1] सिंह को ग्रसैगो ॥
बिल्ली को मारि चूहे प्रेम को नगारा दियो,
दादुर हू पाँच सर्प मारि के बसैगो ॥
कहै चरणदास ऐसे खेल सों लगाई आस,
चिरिया के शीस टोरो बाज को लसैगो ॥

दो० पग लागूँ शुकदेव के, और वारने जावँ।
गुप्त भेद मोसों कह्यो, सबै नावँ अरु ठावँ ॥१२॥
सो तुम सों पूँछन करौं, हौं परखन[2] के दाय[3]।
या सागर संदेह को, दीजै अर्थ बताय ॥१३॥

इति श्री महाराज साहिब श्री चरणदास जी कृत संदेहसागर संपूर्णम्



१ बकरा २ परीक्षा ३ लिए

अथ श्रीचरणदासजी कृत ज्ञानस्वरोदय प्रारंभ

दो० नमो नमो शुकदेव जी, परणाम करौं अनन्त ।
तुम प्रसाद स्वर भेद को, चरणदास वर्णन्त ॥१॥
पुरुषोत्तम परमातमा, पूरण बिस्वाबीस ।
आदिपुरुष अविचल तुही, तोहि नवाऊँ शीश ॥२॥

कुं० क्षर ॐ सों कहत हैं अक्षर सोहं जान ।
निअक्षर श्वासा रहित ताही को मन आन ॥
ताही को मन आन रात दिन सुरति लगावो ।
आपा आप विचारि और ना शीश नवावो ॥
चरणदास मथि कहत है अगम[1] निगम[2] की सीख ।
यही वचन ब्रह्मज्ञान का मानो बिस्वा बीस ॥
ॐ सों काया भई सोहं सों मन होय ।
निअक्षर सूँ श्वासा भई चरणदास भल जोय ॥
चरणदास भल जोय खैंचि मनवा तहँ राखो ।
क्षर अक्षर निअक्षर एकै दुविधा नाखो ॥
जब दरशे एक ही एक वेप यह सभी तिहारो ।
डार पात फल फूल मूल सो सभी निहारो ॥
श्वासा सों सोहं भयो सोहं ॐकार ।

---

१ पुराण २ वेद ॥

ॐ सों ररो भयो साधो करो विचार ॥
साधो करो विचार उलटि घर अपने आवो ।
घट घट ब्रह्म अनूप सिमट करि तहाँ समावो ॥
चारि वेद का भेद है गीता का है जीव ।
चरणदास लखि आपको तो में तेरा पीव ॥

दो० सब योगन को योग है, सब ज्ञानन को ज्ञान ।
सर्व सिद्धि की सिद्धि है, तत्त्व स्वरन को ध्यान ॥ ३ ॥
ब्रह्मज्ञान को जाप है, अजपा सोहं साध ।
परमहंस कोइ जानि है, ताको मतो अगाध ॥ ४ ॥
भेद स्वरोदय सो लहै, समझै श्वास उसास ।
बुरी भली तामें लखे, पवन सुरति मन गाँस ॥ ५ ॥
शुकदेव गुरू कृपा करी, दियो स्वरोदय ज्ञान ।
जब सों यह जानी परी, लाभ होय कै हान ॥ ६ ॥
इड़ा[1] पिंगला[2] सुषुमना[3] , नाड़ी तीन विचार ।
दहिने बायें स्वर चलै, लखे धारणा धार ॥ ७ ॥
पिंगल दहिने अंग है, इड़ा सो बायें होय ।
सुषुमन इनके बीच है, जब स्वर चालैं दोय ॥ ८ ॥
जब स्वर चालै पिंगला, तेहि मधि सूरज बास ।
इड़ा सो बायें अंग है, चन्द्र करत परकास ॥ ९ ॥

---

१ बाईं ओर की नाडी को कहते हैं २ दाहिनी ओर की नाड़ी को कहते हैं, ३ दोनों के मध्य की नाड़ी को कहते हैं ~~बंद होना~~ ।

उदय[1] अस्त[2] तिनकी लखे, निर्गम[3] सुर्गम[4] विद्धि[5] ।
अरु पावै तत वरण को, जब वह होवे सिद्धि ॥१०॥
शुकदेव कहि चरणदास सों, थिर चर स्वर पहिचान ।
थिर कारज को चन्द्रमा, चर कारज को भान ॥११॥
कृष्णपक्ष जबही लगै, जाय मिलत है भान ।
शुक्लपक्ष है चन्द्र को, यह निश्चय करि जान ॥१२॥
मंगल अरु इतवार दिन, और शनीचर लीन ।
शुभ कारज को मिलत हैं, सूरज के दिन तीन ॥१३॥
सोमवार शुक्कर भलो, दिन वृहस्पति को देखि ।
चंद योग में सुफल हैं, कहै चरणदास विशेखि ॥१४॥
तिथि अरु वार विचार करि, दहिनो बावों अंग ।
चरणदास स्वर जो मिलै, शुभ कारज परसंग ॥१५॥
कृष्णपक्ष के आदि ही, तीनि तिथ्य तक भान ।
फिरि चंदा फिरि भान है, फिरि चंदा फिरि भान ॥१६॥
शुक्ल पक्ष के आदि ही, तीनि तिथ्य लग चन्द ।
फिरि सूरज फिरि चन्द है, फिरि सूरज फिरि चन्द॥१७॥
सूरज की तिथि में चले, जो सूरज परकास ।
सुख देही को करत है, लाहा लाभ हुलास ॥१८॥
शुक्लपक्ष चन्दा चले, परिवा लेहि निहार ।
फल आनँद मंगल करे, देही को सुख सार ॥१९॥
शुक्लपक्ष तिथि में चले, जो परिवा को भान ।

१-२ स्वर का प्रारम्भ और बन्द होना ३ जाना ४ आना ५ विधि ।

होय क्लेश पीड़ा कछू, कै दुख कै कछु हान ॥२०॥
सूरज की तिथि में चले, जो परिवा को चन्द ।
कलह करे पीड़ा करे, हानि ताप कै द्वन्द ॥२१॥
ऊपर बायें सामने, स्वर बायें के संग ।
जो पूछै शशि योग में, तो नीको परसंग ॥२२॥
नीचे पीछे दाहिने, स्वर सूरज को राज ।
जो कोइ पूछे आय करि, तो समझे शुभ काज ॥२३॥
दहिनो स्वर जब चलत है, पूछे बायें अंग ।
शुक्लपक्ष नहिं वार है, तो निर्फल परसंग ॥२४॥
जो कोइ पूछे आय करि, बैठि दाहिनी ओर ।
चन्द चलै सूरज नहीं, नहिं कारज विधि कोर ॥२५॥
जो सूरज में स्वर चले, कहे दाहिने आय ।
लग्न वार अरु तिथि मिले, कहु कारज होइ जाय ॥२६॥
जो चन्दा में स्वर चले, बायें पूछे काज ।
तिथि अरु अक्षर वार मिलि, शुभ कारज को साज ॥२७॥
सात पाँच नव तीन गिन, पन्द्रह अरु पच्चीस ।
काज वचन अक्षर गिने, भानु योग को ईश ॥२८॥
चार आठ द्वादश गिने, चौदह सोलह मीत ।
चन्द योग के संग हैं, चरणदास रणजीत ॥२९॥
कर्क मेष तुला मकर, चारों चरती राश ।
सूरज सों चारों मिलत, चर कारज परकाश ॥३०॥
मीन मिथुन कन्या कही, चौथी अरु धन मीत ।

द्वि स्वभाव की सुषुमना, मुरलीसुत रणजीत ॥३१॥
वृश्चिक सिंह वृष कुम्भ पुनि, बायें स्वर के संग ।
चन्द योग को मिलत हैं, थिर कारज परसंग ॥३२॥
चित्त आपनो स्थिर करे, नासा आगे नैन ।
श्वासा देखे दृष्टि सों, जब पावे स्वर बैन ॥३३॥
पाँच घड़ी पाँचौ चलैं, फिरिवाँ[1] चार हि वार ।
पाँच तत्त्व चालैं मिले, स्वर बिच लेह निहार ॥३४॥
धरती अरु आकाश है, और तीसरी पौन ।
पानी पावक पाँच यों, करत श्वास में गौन ॥३५॥
धरती तो सोहीं[2] चले, अरु पीरो रँग देख ।
बारह अंगुल श्वास में, सुरत निरत कर पेख ॥३६॥
ऊपर को पावक चले, लाल वरण है वेप ।
चारि सु अंगुल श्वास में, चरणदास औरेप[3] ॥३७॥
नीचे को पानी चले, श्वेत रंग है तास ।
सोलह अंगुल श्वास में, चरणदास कहे भास ॥३८॥
हरो रंग है वायु को, तिरछी चाले सोय ।
आठ सु अंगुल श्वास में, रणजीत मीत करि जोय ॥३९॥
स्वर दोनों पूरण चलैं, बाहर ना परकाश ।
श्याम रंग है तासु को, सोई तत्त्व अकाश ॥४०॥
जल पृथ्वी के योग में, जो कोइ पूछे बात ।
शशियर में जो स्वर चले, कहु कारज ह्वै जात ॥४१॥

१ बदलते हुए २ सीधी ३ पहिचानों ।

पावक अरु आकाश पुनि, वायु कभी जो होय।
जो कोइ पूछे आय करि, शुभ कारज नहिं होय ॥४२॥
जल पृथ्वी थिर काज को, चर कारज को नाहिं।
अग्नि वायु चर काज को, दहिने स्वर के माहिं ॥४३॥
रोगी की पूछे कोऊ, बैठि चन्द की ओर।
धरती बायें स्वर चले, मरै नहीं विधि ओर ॥४४॥
रोगी को परसंग जो, बायें पूछे आन।
चन्द बंध सूरज चले, जीवै ना वह जान ॥४५॥
बहते स्वर सों आय करि, शून्य ओर जो जाय।
जो पूछे परसंग वह, रोगी ना ठहराय ॥४६॥
शून्य ओर सों आय कर, पूछे बहते श्वास।
यह निश्चय करि जानिये, रोगी को नहिं नास ॥४७॥
शून्य ओर सों आय कै, पूछे बहते पत्त।
जेते कारज जगत के, सुफल होयँ यों सत्त ॥४८॥
बहते स्वर से आय करि, जो पूछे सुन्न ओर।
जेते कारज जगत के, उलटे हों विधि ओर ॥४९॥
कै बायें कै दाहिने, जो कोइ पूरण होय।
पूछे पूरण ओर ही, कारज पूरण सोय ॥५०॥
बरस एक को फल कहै, तत सत जानै सोय।
काल समौ सोई लखे, बुरो भलो जग होय ॥५१॥
संक्रायत पुनि मेप विचारै। ता दिन लगे सु घड़ी निहारै॥
तब ही स्वर में करे विचारा। चले कौन सो तत्त्व नियारा॥

जो वायें स्वर पिरथी होई। नीको तत्त्व कहावे सोई ॥
देश वृद्धि अरु समै बतावे। परजा सुखी मेह बरसावे ॥
चारा बहुत ढोर को उपजे। नर देही को अन्न बहु निपजे ॥
जल चाले बायें स्वर माहीं। धरती फले मेह बरसाहीं ॥
आनंद मंगल सों जग रहे। आपतत्त्व[1] चन्दा में बहे ॥
जल धरती दोनों शुभ भाई। चरणदास शुकदेव बताई ॥
तीन तत्त्व का कहौं विचारा। स्वर में जाको भेद निहारा ॥
लगे मेष संक्रायत तबहीं। लगती घड़ी विचारे जबहीं ॥
अग्नि तत्त्व स्वर में जब चाले। रोग दोष में परजा हाले ॥
काल पड़े थोड़ो सो बरसे। देश भंग जो पावक दरसे ॥
वायु तत्त्व चाले स्वर संगा। जग भय मान होय कछु दंगा ॥
अर्द्ध काल थोड़ो सो बरसे। वायु तत्त्व जो स्वर में दरसे ॥
तत्त्व आकाश चाले स्वर दोई। मेह न बरसे अन्न न होई ॥
काल पड़े तृण उपजे नाहीं। तत आकाश जो हो स्वर माहीं ॥
दो० चैत महीना मध्य में, जबही परिवा होय।
शुक्ल पक्ष ता दिन लगे, प्रात स्वास में जोय ॥५२॥
भोरहि परिवा को लखै, पृथ्वी होय सुथान।
होय समौ[2] परजा सुखी, राजा सुखी निदान ॥५३॥
नीर चले जो चन्द में, यही समै की जीत।
घन बरसे परजा सुखी, संवत नीको मीत ॥५४॥
पृथ्वी पानी समौ जो, बहे चन्द अस्थान।

---

१ जल तत्त्व २ अन्न तृण जल आदि की बहुलता।

दहिने स्वर में जो वहे, समौ सु मध्यम जान ॥५५॥
भोरहि जो सुषुमन चले, राज होय उतपात।
देखनवारो विनशि है, और काल पड़ि जात ॥५६॥
राज होय उत्पात पुनि, पड़े काल विसवास।
मेह नहीं परजा दुखी, जो हो तत्त्व अकास ॥५७॥
श्वासा में पावक चले, परै काल जब जान।
रोग होय परजा दुखी, घटे राज को मान ॥५८॥
भय कलेश को देश में, विग्रह फैले अत्त[1]।
परै काल परजा दुखी, चलै वायु को तत्त ॥५९॥
संक्रायत अरु चैत को, दीन्हों भेद लखाय।
जगत काज अब कहत हूँ, चन्द सूर को न्याय ॥६०॥
ब्याह दान तीरथ जो करै। बस्तर भूषण घर पग धरै ॥
बायें स्वर में ये सब कीजै। पोथी पुस्तक जो लिखि लीजै ॥
योगाभ्यासरु कीजै प्रीत। औषधि बाड़ी[2] कीजै मीत ॥
दिक्षा[3] मंतर बोवै नाज। चन्द्र योग थिर बैठे राज ॥
चन्द्र योग में स्थिर जु जानो। थिर कारज सबही पहिचानो ॥
करै हवेली छप्पर छावै। बाग बगीचा गुफा बनावै ॥
हाकिम जाय कोट में वरै। चन्द्र योग आसन पग धरै ॥
चरणदास शुकदेव बतावै। चन्द्र योग थिर काज कहावै ॥
दो० बायें स्वर के काज ये, सो मैं दिये बताय।
दहिने स्वर के कहत हौं, ज्ञान स्वरोदय गाय ॥६१॥

१ अत्यन्त २ खेती करना ३ गुरुमंत्र लेना।

जो खाँड़ो कर लीयो चाहै। जाकर वैरी ऊपर वाहै[1] ॥
युद्ध वाद रण जीते सोई। दहिने स्वर में चाले कोई ॥
भोजन करे करे असनाना। मैथुन कर्म भानु परधाना ॥
बही लिखे कीजे व्यवहारा। गज घोड़ा वाहन हथियारा ॥
विद्या पढ़े नई जो साधे। मंतर सिद्धि ध्यान आराधे ॥
वैरी भवन गवन जो कीजे। अरु काहू को ऋण जो दीजे ॥
ऋण काहू पै जो तू मांगै। विष अरु भूत उतारन लागै ॥
चरणदास शुकदेव बिचारी। ये चर कर्म भानु की नारी ॥
दो०–चर कारज को भानु है, थिर कारज को चन्द।
सुषुमन चलत न चालिये, तहाँ होय कुछ द्वन्द ॥६२॥
गाँव परगने खेत पुनि, ईधर ऊधर मीत।
सुषुमन चलत न चालिये, वरजत हैं रणजीत ॥६३॥
छण बायें छण दाहिने, सोई सुषुमन जानि।
ढील लगे कै ना मिले, कै कारज की हानि ॥६४॥
होय क्लेश पीड़ा कछू, जो कोई कहिं जाय।
सुषुमन चलत न चालिये, दीन्हों तोहि बताय ॥६५॥
योग करो सुषुमन चले, कै आतम को ध्यान।
और काज कोई करे, तो कुछ आवे हान ॥६६॥
पूरब उत्तर मत चलो, बायें स्वर परकाश।
हानि होय बहुरै[2] नहीं, आवन की नहिं आश ॥६७॥
दहिने चलत न चालिये, दच्छिण पश्चिम जानि।

१ चलावे २ वापिस आना।

जोर[1] जाय वहुरै नहीं, तहाँ होय कछु हानि ॥६८॥
दहिने स्वर में जाइये, पूरब उत्तर राज ।
सुख संपति आनँद करे, सभी होय शुभ काज ॥६९॥
बायें स्वर में जाइये, दक्षिण पश्चिम देश ।
सुख आनँद मंगल करे, जोर जाइ परदेश ॥७०॥
बायें सेती आय करि, दहिने पूछे धाय ।
जो दहिने स्वर बंध है, कारज अफल बताय ॥७१॥
दहिने सेती आय करि, बायें पूछे कोय ।
जो बावों स्वर बंध है, सुफल काज नहिं होय ॥७२॥
जब स्वर भीतर को चले, कारज पूछे कोय ।
पैज[2] बाँधि वासों कहो, मनसा पूरण होय ॥७३॥
जब स्वर बाहर को चले, तब कोइ पूछे तोर ।
वाको ऐसे भाषिये, नहीं काज विधि कोर ॥७४॥
बाईं करवट सोइये, जल बायें स्वर पीव ।
दहिने स्वर भोजन करे, तो सुख पावे जीव ॥७५॥
बायें स्वर भोजन करे, दहिने पीवे नीर ।
दश दिन भूलो यों करे, आवे रोग शरीर ॥७६॥
दहिने स्वर झाड़े[3] फिरे, बायें लघुशंकाय[4] ।
युक्ती ऐसे साधिये, दीन्हों भेद बताय ॥७७॥
चन्द चलावे द्योस को, रैनि चलावे सूर ।
नित साधन ऐसे करे, होय उमर भरपूर ॥७८॥

१ यदि २ प्रण ३ टट्टी करना ४ पेशाब करना ।

जितनो ही बावों चले, सोई दहिनो होय ।
दश श्वासा सुषमन चले, ताहि विचारो लोय ॥७६॥
आठ पहर दहिनो चले, बदले नहीं जु पौन ।
तीन बरस काया रहे, जीव करे फिरि गौन ॥८०॥
सोलह पहर चले जभी, श्वास पिंगला माहिं ।
युगल बरष काया रहे, पीछे रहनो नाहिं ॥८१॥
तीन रात अरु तीन दिन, चले दाहिनो श्वास ।
संवत भर काया रहे, पाछे होवे नास ॥८२॥
सोलह दिन निशि दिन चलै, श्वास भानु की ओर ।
आयु जान इक मास की, जीव जाय तन छोर ॥८३॥
नौ भृकुटी सप्तै श्रवण, पाँच तारका जान ।
तीन नाक जिह्वा इकै, काल भेद पहिचान ॥८४॥
भेद गुरू सों पाइये, गुरु बिन लहै न ज्ञान ।
चरणदास यों कहत है, गुरु पर वारों प्रान ॥८५॥
एक मास जो रैनि दिन, भानु दाहिनो होय ।
चरणदास यों कहत है, नर जीवे दिन दोय ॥८६॥
नाड़ी जो सुषुमन चले, पाँच घड़ी ठहराय ।
पाँच घड़ी सुषमन बहे, तब ही नर मरि जाय ॥८७॥
नहीं चंद्र नहिं सूर है, नहीं सुषुमना बाल ।
मुख सेती श्वासा चले, घड़ी चार में काल ॥८८॥
चारि दिना कै आठ दिन, बारह कै दिन बीश ।
ऐसे जो चन्दा चले, आयु जान बड़ ईश ॥८९॥

तीन रात अरु तीन दिन, चाले तत्त्व अकाश ।
एक बरस काया रहे, फेर काल विसवाश[1] ॥६०॥
दिन को तो चन्दा चले, चले रात को सूर ।
यह निश्चय करि जानिये, प्राण गमन बहु दूर ॥६१॥
रात चले स्वर चन्द में, दिन को सूरज चाल ।
एक महीना यों चले, छठे महीने काल ॥६२॥
जब साधू ऐसी लखे, छटे महीने काल ।
आगे ही साधन करे, बैठि गुफा ततकाल ॥६३॥
ऊपर खैंचि अपान को, प्राण अपान मिलाय ।
उत्तम करे समाधि को, ताको काल न खाय ॥६४॥
पवन हिये ज्वाला पचे, नाभि तले करि राह ।
मेरुदण्ड[2] को फोरि के, बसे अमरपुर जाय ॥६५॥
जहाँ काल पहुँचे नहीं, यम की होय न त्रास ।
गगनमण्डल[3] को जाय करि, करे उनमनी वास ॥६६॥
जहाँ काल नहिं ज्वाल है, छुटे सकल सन्ताप ।
होय उनमनी लीन मन, बिसरे आपा आप ॥६७॥
तीनों बन्ध लगाय के, पञ्च वायु को साध ।
सुषुमन मारग ह्वै चले, देखे खेल अगाध ॥६८॥
शक्ति जाय शिव में मिले, जहाँ होय मन लीन ।
महा खेचरी जो लगे, जाने ज्ञानप्रवीन ॥६९॥
आसन पदम लगाय करि, मूल बन्ध को बाँधि ।

१ निश्चय पूर्वक २ रीढ़ की हड्डी ३ सहस्रदल कमल ।

मेरुदण्ड सीधो करे, सुरति गगन को साधि ॥१००॥
चन्द सूर दोउ सम करे, ठोढ़ी हिये लगाय।
षट चक्र को बेधि करि, शून्य शिखर को जाय ॥१०१॥
इड़ा पिंगला साधि करि, सुषमन में करि वास।
परम ज्योति झिलमिल तहाँ, पूजै मन विश्वास ॥१०२॥
जिन साधन आगे करी, तासों सब कुछ होय।
जब चाहे जब ही तभी, काल बचावे सोय ॥१०३॥
तरुण अवस्था योग करि, बैठि रहे मन जीत।
काल बचावे साध वह, अन्त समय रणजीत ॥१०४॥
सदा आप में लीन रहु, करिके योगाभ्यास।
आवत देखे काल जब, गगनमण्डल कर वास॥१०५॥
शनै शनै सों साधि करि, राखे प्राण चढ़ाय।
पूरो योगी जानिये, ताको काल न खाय ॥१०६॥
पहिले साधन ना कियो, गगनमण्डल को जान।
आवत जाने काल जब, कहा करे अज्ञान ॥१०७॥
योग ध्यान कीन्हों नहीं, ज्वान अवस्था मीत।
आगम देखे काल को, कहा सके वह जीत ॥१०८॥
काल जीति हरि सों मिले, शून्य महल अस्थान।
आगे जिन साधन करी, तरुण अवस्था जान ॥१०९॥
काल अवधि बीते तभी, जबै बीति सब जाय।
योगी प्राण उतारिये, लेहि समाधि जगाय ॥११०॥
काल जीति जग में रहे, मौत न व्यापे ताहि।

दशम द्वार को फोरिकै, जब चाहे तब जाहिं ॥१११॥
सूरज मण्डल चीरि के, योगी त्यागे प्रान।
सायुज मुक्ति सोई लहै, पावे पद निर्वान ॥११२॥
कृष्णपक्ष के मध्य में, दक्षिण होय जु भान।
योगी वपु नहिं छाँड़िये, राजा होय फिरि आन ॥११३॥
राज पाय हरि भक्ति करि, पूरबली पहिचान।
योग युक्ति पावे बहुरि, दूसर मुक्ति निदान ॥११४॥
उतरायण सूरज लखे, शुक्लपक्ष के माहिं।
योगी काया त्यागिये, यामें संशय नाहिं ॥११५॥
मुक्ति होय बहुरै नहीं, जीव खोज मिटि जाय।
बुन्द समुन्दर मिलि रहे, दुतिया ना ठहराय ॥११६॥
दक्षिणायन सूरज रहे, रहे मास षट जानि।
फिर उतरायण जाय करि, रहे मास षट मानि ॥११७॥
दोनों स्वर को शुद्ध करि, श्वासा में मन राखि।
भेद स्वरोदय पाय करि, तब काहू सों भाखि ॥११८॥
जो रण ऊपर जाइये, दहिने स्वर परकाश।
जीत होय हारे नहीं, करे शत्रु को नाश ॥११९॥
दुर्जन को स्वर दाहिनो, तेरो दहिनो होय।
जो कोई पहिले चढ़ै, खेत जीति है सोय ॥१२०॥
सुषुमन चलत न चालिये, युद्ध करन सुन मीत।
शीश कटावे कै फँसै, दुर्जन की होय जीत ॥१२१॥
जो बायें पृथ्वी चले, चढ़ि आवे कोई भूप।

आप बैठि दल पेलिये, बात कहत हौं भूप ॥१२२॥
जल पृथ्वी स्वर में चले, सुनो कान दे वीर।
सुफल काज दोनों करैं, कै धरती कै नीर ॥१२३॥
पावक अरु आकाश तत, वायु तत्त्व जो होहिं।
कछू काज नहिं कीजिये, इन में बरजौं तोहिं ॥१२४॥
दहिनो स्वर जब चलत है, कहीं जाय जो कोय।
तीन पावँ आगे धरे, सूरज को दिन होय ॥१२५॥
बायें स्वर में जाइये, बायें पग धरि चार।
बावों डग पहिले धरे, होय चन्द्र को वार ॥१२६॥
दहिने स्वर में जाइये, दहिने डग धरि तीन।
बायें स्वर में चारि डग, बावों कर परवीन ॥१२७॥
गर्भवती के गर्भ को, जो कोइ पूछे आय।
बालक होय कै बालकी, जीवे कै मरि जाय ॥१२८॥
प्रच्या[1] बालक होन की, जो कोउ पूछे तोहिं।
बायें कहिये छोकरी, दहिने बेटा होहिं ॥१२९॥
दहिने स्वर के चलत ही, जो वह पूछे आय।
वाको बावां स्वर चलै, बालक हो मरि जाय ॥१३०॥
दहिने स्वर के चलत ही, जो वह पूछै बैन।
वाहू को दहिना चले, लरिका हो सुख चैन ॥१३१॥
बायें स्वर के चलत ही, आय कहै जो कोय।
बेटी ह्वै जीवे नहीं, वाको दहिनो होय ॥१३२॥

१ परीक्षा।

वायें स्वर के चलत ही, जो वह पूछै बात।
वाहू को बावों चलै, बेटी हो कुशलात ॥१३३॥
तत अकाश के चलत ही, कहै गर्भ की आय।
होय नपुंसक हीजड़ा, कै सतवांसो[1] जाय ॥१३४॥
लेन परीक्षा गर्भ की, जो कोइ पूछै आय।
अग्नि होय जो ता समै, ओछा ही गिरि जाय ॥१३५॥
क्षण वायें क्षण दाहिने, दो स्वर सुषमन होय।
पूछन वारे सों कहो, बालक उपजै दोय ॥१३६॥
वायु तत्त्व के चलत ही, जो कोइ पूछै आय।
छाया हो बाढ़ै नहीं, पेटहि माहिं बिलाय ॥१३७॥
जो कोइ पूछै आय कै, याको गर्भ कि नाहिं।
दहिनो बावों स्वर लखे, साधि श्वास के माहिं ॥१३८॥
बन्ध ओर जो आय करि, है पूछे जो कोय।
बन्ध ओर तो गर्भ है, बहते[2] स्वर नहिं होय ॥१३९॥
इड़ा पिंगला सुषुमना, नाड़ी कहिये तीन।
सूरज चन्द बिचारि कै, रहै श्वास लवलीन ॥१४०॥
जैसे कछुआ सिमिटि करि, आपहि माहिं समाय।
ऐसे ज्ञानी श्वास में, रहै सुरति लव लाय ॥१४१॥
श्वास बाणवें कोड़[3] की, आयु जान नर लोय।
बीत जाय श्वासा सबै, तब ही मृत्यक होय ॥१४२॥
इक्कीस हजार छःसौ चले, रात दिना जो श्वास।

१ सात माह का २ चलतेहुए ३.९२ करोड़।

बीसासौ[1] जीवै वरष, होय अघन को नास ॥१४३॥
अकाल मृत्यु कोई मरै, हो करि भुक्तै भूत ।
श्वास जहाँ बीते सभी, जब आवै यमदूत ॥१४४॥
चारौं संयम साधि करि, श्वासा युक्ति चलाय ।
अकाल मृत्यु आवे नहीं, जीवे पूरी आय ॥१४५॥
सूक्ष्म भोजन कीजिये, रहिये ना पड़ि सोय ।
जल थोरो सो पीजिये, बहुत बोल मत खोय ॥१४६॥
कुं० मोक्ष मुक्ति तुम चहत हो तजो कामना काम ।
मन की इच्छा मेटि करि भजो निरञ्जन नाम ॥
भजो निरञ्जन नाम तत्त्व देह अध्यास मिटावो ।
पञ्चन के तजि स्वाद आप में आप समावो ॥
जब छूटै भूटी देह जैसे के तैसे रहिया ।
चरणदास यहि मुक्ति गुरू ने हम सों कहिया ॥
दो० देह मरै तू है अमर, पारब्रह्म है सोय ।
अज्ञानी भटकत फिरे, लखे सो ज्ञानी होय ॥१४७॥
देह नहीं तू ब्रह्म है, अविनाशी निर्वान ।
नित न्यारो तू देह सों, देह कर्म सब जान ॥१४८॥
डोलन बोलन सो बनो, भक्षण करन अहार ।
दुख सुख मैथुन रोग सब, गरमी शीत निहार ॥१४९॥
जाति वरण कुल देह की, सूरति मूरति नाम ।
उपजै विनशै देह सो, पाँच तत्त्व को गाम ॥१५०॥

---

१ एक सौ वीस ।

पावक पानी वायु है, धरती और आकास ।
पाँच तत्त्व के कोट में, आय कियो तैं वास ॥१५१॥
पाँच पचीसौं देह सँग, गुण तीनों हैं साथ ।
घट उपाधि सों जानिये, करत रहैं उतपात ॥१५२॥
जिह्वा इन्द्री नीर की, नभ की इन्द्री कान ।
नासा इन्द्री धरणि की, करि विचार पहिचान ॥१५३॥
त्वचा सु इन्द्री वायु की, पावक इन्द्री नैन ।
इनको साधै साधु जो, पद पावे सुख चैन ॥१५४॥
निद्रा संगम आलकस, भूख प्यास जो होय ।
चरणदास पाँचौं कही, अग्नि तत्त्व सों जोय ॥१५५॥
रक्त बिन्द कफ तीसरो, मेद मूत्र को जान ।
चरणदास है प्रकृति ये, पानी सों पहिचान ॥१५६॥
चाम हाड़ नाड़ी कहूँ, रोम जान अरु मांस ।
पृथ्वी की है प्रकृति ये, अन्त सबन को नास ॥१५७॥
बल करना अरु धावना, उठना अरु संकोच ।
देह बढ़े सो जानिये, वायु तत्त्व है सोच ॥१५८॥
काम क्रोध मोह लोभ भय, तत अकाश को भाग ।
नभ की पाँचों जानिये, नित न्यारो तू जाग ॥१५९॥
पाँच पचीसौं एक ही, इनके सकल स्वभाव ।
निर्विकार तू ब्रह्म है, आप आपको पाव ॥१६०॥
निराकार निर्लिप्त तू, देही जान आकार ।
आपनि देही मान मत, यही ज्ञान ततसार ॥१६१॥

शस्त्र छेदि सकै नहीं, पावक सकै न जारि ।
मरे मिटे सो तू नहीं, गुरु गम भेद निहारि ॥१६२॥
जले कटे काया यही, बने मिटे फिरि होय ।
जीवऽविनाशी नित्य है, जाने विरला कोय ॥१६३॥
आँख नाक जिह्वा कहूँ, त्वचा जान अरु कान ।
पाँचौं इन्द्री ज्ञान ये, जाने जान[1] सुजान ॥१६४॥
गुदा लिंग मुख तीसरो, हाथ पाँव लखि लेहि ।
पाँचों इन्द्री कर्म है, यह भी कहिये देह ॥१६५॥
पृथ्वी कलेजे ठौर है, मुखे जानिये द्वार ।
पीलो रँग पहिचानिये, पीवन खान अहार ॥१६६॥
पित्त में पावक रहै, नैन जानिये द्वार ।
लालरंग है अग्नि को, मोह लोभ आहार ॥१६७॥
जल को वासा भाल है, लिंग जानिये द्वार ।
मैथुन कर्म अहार है, धोलो रंग निहार ॥१६८॥
पवन नाभि में रहत है, नासा जानि दुआर ।
हरो रंग है वायु को, गन्ध सुगन्ध अहार ॥१६९॥
अकाश शीश में वास है, श्रवण दुआरो जान ।
शब्द कुशब्द आहार है, ताको श्याम पिछान ॥१७०॥
कारण सूक्ष्म लिंग है, अरु कहियत अस्थूल ।
शरीर तीन सों जानिये, में मेरी जड़ मूल ॥१७१॥
चित बुद्धि मन अहंकार जो, अन्तः करण सु चार ।

---

१ ज्ञान ।

ज्ञान अग्नि सों जारिये, करि करि मीत विचार ॥१७२॥
शब्द स्पर्शरु गन्ध है, अरु कहियत रस रूप ।
देह कर्म तनमात्रा, तू कहियत निहरूप ॥१७३॥
निराकार अद्वै अचल, निरबासी तू जीव ।
निरालम्ब निर्वैर सो, अज अविनाशी सीव ॥१७४॥
बावों कोठा अग्नि को, दहिने जल परकास ।
मन हिरदय अस्थान है, पवन नाभि में वास ॥१७५॥
मूल कमल दल चारको, लाल पैंखरी रङ्ग ।
गौरीसुत बासो कियो, छः सौ जाप इकङ्ग ॥१७६॥
षट दल कमल पियरे वरण, नाभी तले संभाल ।
षट सहस्र जपि जाप ले, ब्रह्मा सावित्री नाल ॥१७७॥
दशम पैंखरी कमल है, नील वरण सो नाभ ।
विष्णु लच्मी वास कियो, षट सहस्र जो जाप ॥१७८॥
अनाहद चक्र हृदय रहै, द्वादश दल अरु श्वेत ।
षट सहस्र जपि जाप ले, शिव शक्ति जहाँ हेत ॥१७९॥
षोड़श दल को कमल है, कण्ठ वास शशि रूप ।
जाप सहस्र जहाँ जपे, भेद लहे अति गूप ॥१८०॥
अग्निचक्र दो दल कमल, त्रिकुटी धाम अनूप ।
जाप सहस्र जहाँ जपे, पावे ज्योति स्वरूप ॥१८१॥
दल हजार को कमल है, गगन मण्डल में वास ।
जाप सहस्र जहाँ जपे, तेज पुंज परकास ॥१८२॥
योग युक्ति करि खोज ले, सुरत निरत कर चीन ।

दश प्रकार अनहद बजें, होय जहाँ लयलीन ॥१८३॥

कुं० एक भँवर गुंजार सी दूजे घुंघुरू होय।
तीजे शब्द जु शंख का चौथे घण्टा सोय॥
चौथे घण्टा सोय पाँचवें ताल जु बाजे।
छठे सु मुरली नाद सातवें भेरि जु गाजे॥
अठवें शब्द मृदंग का नाद नफीरी नोय[1]।
दशवें गरजनि सिंधुसी चरणदास सुनि लोय॥

दो० दश प्रकार अनहद घुरैं[2] जित योगी होय लीन।
इन्द्री थकि मनुआँ थके, चरणदास कहि दीन ॥१८४॥
तीन बन्ध नौ नाटिका,[3] दशबाई[4] को जान।
प्राण अपान समान हैं, अरु कहियत जु उदान ॥१८५॥
व्यान वायु अरु किरकिरा, कूरम बाई जीत।
नाग धनंजय देवदत्त, दश बाई रणजीत ॥१८६॥
नवों द्वार को बन्द करि, उत्तम नाड़ी तीन।
इड़ा पिंगला सुषमना, केलि करैं परवीन ॥१८७॥
करते प्राणायाम के, तरि गये पतित अनेक।
अनहद ध्वनि के बीच में, देखे शब्द अलेख ॥१८८॥
पूरक करि कुम्भक करे, रेचक पवन उतार।
ऐसे प्राणायाम करि, सूक्ष्म करे अहार ॥१८९॥
धरती बन्ध लगाय के, दशों वायु को रोक।
मस्तक प्राण चढ़ाय करि, करे अमरपुर भोग ॥१९०॥

१ नवां २ बजते हैं ३ नाड़ी ४ दसवायु

पाँचौं मुद्रा साधि कै, पावे घट को भेद।
नाड़ी शक्ति चढ़ाइये, षट चक्कर को छेद ॥१६१॥
योग युक्ति कै कीजिये, कै अजपा को ध्यान।
आपा आप विचारिये, परम तत्त्व को ज्ञान ॥१६२॥
शूद्ररु वैश्य शरीर है, ब्राह्मण औ रजपूत।
बूढ़ा बाला तू नहीं, चरणदास औधूत ॥१६३॥
काया माया जानिये, जीव ब्रह्म है मित्त।
काया छुटि सूरत मिटे, तू परमातम नित्त ॥१६४॥
पाप पुण्य आशा तजो, तजो मान अरु थाप।
काया मोह विकार तजि, जपे सु अजपा जाप ॥१६५॥
आप भुलानो आप में, वँधो आप ही आप।
जाको ढूँढ़त फिरत है, सो तू आप हि आप ॥१६६॥
इच्छा दुई विसारि के, होय क्यों न निर्वास।
तू तो जीवनमुक्त है, तजो मुक्ति की आस ॥१६७॥
पवन भई आकाश सों, अग्नि वायु सों होय।
पावक सों पानी भयो, पानी धरती सोय ॥१६८॥
धरती मीठे स्वाद है, खारी स्वाद सु नीर।
अग्नि चरपरो स्वाद है, खट्टो स्वाद समीर ॥१६९॥
खट्टा मीठा चरपरा, खारी पर मन होय।
जब ही तत्त्व विचारिये, पाँच तत्त्व में कोय ॥२००॥
स्वाद नाप अरु रंग है, और बताई चाल।
पाँच तत्त्व की परख यह, साधि पाव ततकाल ॥२०१॥

तिरकोनी पावक चले, धरती तो चौकोर ।
शून्य स्वभाव अकाश को, पानी लांबो गोल ॥२०२॥
अग्नितत्त्व गुण तामसी, कही रजोगुण वाय ।
पृथ्वी नीर सतोगुणी, नभ है अस्थिर[1] भाय ॥२०३॥
नीर चले जब श्वास में, रण ऊपर चढ़ि मीत ।
वैरी को शिर काट करि, घर आवे रणजीत ॥२०४॥
पृथ्वी के परकास में, युद्ध करे जो कोय ।
दोउ दल रहैं बराबरी, हारि वायु में होय ॥२०५॥
अग्नितत्त्व के बहत ही, युद्ध करन मति जाव ।
हारि होय जीते नहीं, अरु आवे तन घाव ॥२०६॥
तत आकाश में जो चले, तो हाई रहि जाय ।
रण माहीं काया छुटे, घर नहिं देखे आय ॥२०७॥
जल पृथ्वी के योग में, गर्भ रहे सो पूत ।
वायुतत्त्व में छोकरी[2], आंबर[3] सूत[4] कुसूत[5] ॥२०८॥
पृथ्वीतत्त्व में गर्भ जो, बालक होवे भूप ।
धनवन्ता सोइ जानिये, सुन्दर होय स्वरूप ॥२०९॥
अग्नितत्त्व जब चलत है, कभी गरभ रहि जाय ।
गर्भ गिरे माता दुखी, हो माता मरि जाय ॥२१०॥
वायुतत्त्व स्वर दाहिने, करे पुरुष जब भोग ।
गर्भ रहे जो ता समै, देही आवे रोग ॥२११॥
आसन संयम साधि करि, दृष्टि श्वास के माहिं ।

१ न चल सके २ लड़की ३ आकाशतत्त्व ४ पुत्र ५ कुपुत्र ।

तत्त्व भेद यों पाइये, बिन साधे कुछ नाहिं ॥२१२॥
आसन पद्म लगाय के, एक बरत[1] नित साध।
बैठे लेटे डोलते, श्वासा ही आराध ॥२१३॥
नाभि नासिका माहिं करि, सोहं सोहं जाप।
सोई अजपा जाप है, छुटै पुण्य अरु पाप ॥२१४॥
भेद स्वरोदय बहुत है, सूक्षम कह्यो बनाय।
ताको समझि बिचारि ले, अपनो चित मन लाय ॥२१५॥
धरणि टरे गिरिवर टरे, ध्रुव टरे सुन मीत।
वचन स्वरोदय ना टरे, कहैं दास रणजीत ॥२१६॥
शुकदेव गुरु की दया सों, साधु दया सों जान।
चरणदास रणजीत ने, कह्यो स्वरोदय ज्ञान ॥२१७॥
छप्पै—डहरे[2] में मेरो जनम नाम रणजीत पिछानो।
मुरली को सुत जान जात दूसर पहिचानो ॥
बाल अवस्था माहिं बहुरि दिल्ली में आयो।
रमत मिले शुकदेव नाम चरणदास बतायो ॥
योगयुक्ति हरिभक्ति कर ब्रह्मज्ञान दृढ़ कर गह्यो।
आतम तत्त्व बिचारि कै अजपा में सनि[3] मन रह्यो ॥

इति श्री चरणदासजी कृत ज्ञान स्वरोदय संम्पूर्णम्

---

१ व्रत २ एक ग्राम का नाम है जो राजस्थान के अलवर जिले में है
३ लगा हुआ।

अथ श्री चरणदासजी कृत
पंच उपनिषद् अथर्वणवेद भाषा
प्रथम हंसनाद उपनिषद्

दो० वन्दत श्री शुकदेव को, उनको हिय में लाय ।
छिप्यो भेद परगट कियो, परमारथ के दाय ॥१॥
संस्कृत सों भाषा करी, ताको यह दृष्टान्त ।
खोलि खोलि सबही कही, समझे छूटै भ्रान्त ॥२॥
ज्यों कूए सों नीर लै, बाहर दियो भराय ।
बिना यतन कोई पियो, तिरपावन्त अघाय ॥३॥
यौं दीन्ही शुकदेव ने, मैं जल काढ़नहार ।
प्यासा कोइ न जाइयो, टेरों बारंबार ॥४॥
ब्राह्मण क्षत्री वैश्य जो, अरु शुद्रहु जो होय ।
वह पीवैगा हेत करि, वहु प्यासा जो कोय ॥५॥
मुक्ति नीरकी प्यास जो, काहू ही को होय ।
और मनुप जग प्यास में, रहे जु मृत्यक होय ॥६॥
यह जग ऐसो जानियें, मृगतृष्णा को नीर ।
निकट जाय प्यासा कोई, कभी न भागे पीर ॥७॥
उनकी प्यास बुझै नहीं, होय नहीं हित चैन ।
ज्ञान सुधा तजि जात है, धोखे को जल लैन ॥८॥
ज्ञान नीर तिरपत भये, निश्चल बैठे दास ।

संसारी प्यासे गये, पूरी भई न आस ॥९॥
संस्कृत था जो कूप सम, भाषा नीर निकास।
प्याऊँ जिज्ञासून को, तिनकी भगै पियास ॥१०॥

॥ अष्टपदी ॥

वेदहि की उपनिषद जु मैं भाषा करी।
जो कुछ था वहि माहिं सोई जैसे धरी ॥
सुनि समझै मन माहिं और करनी करै।
आवागमन मिटजाय नहीं देही धरै ॥
जग की व्याधा छूटि मुक्तिपद पावई।
जाग्रत पहुँचै ठौर स्वप्न बिसरावई ॥
तिमिर सभी भजि जाय उजारा होय है।
सूझै आतम रूप द्वैतता खोय है ॥
उपजे अति आनन्द द्वन्द्व दुख जाय है।
तिरपति निर्मल ज्ञान विज्ञान अघाय है ॥
जो पै करे विचार और गुरु सों लहै।
वाकी गहनी गहै और रहनी रहै ॥
गुरु शुकदेव प्रताप सों चित दे गाइया।
चरणहिदासा होय सबन शिर नाइया ॥

दो० पूजे ऋषि मुनि देवता, पूजे इन्द्रहु भूप।
पूजा सबही सृष्टि को, देखा हरि के रूप ॥११॥
सर्वत्रहि प्रभु देखि करि, सब को शीस नवाय।
उपनिषदें जो वेद की, परगट कही बनाय ॥१२॥

॥ अष्टपदी ॥

प्रथम प्रगट करी छिपे ही भेद्की ।
हंस नाद्ऽहंनाम अथर्वण वेद की ॥
गौतम ऋषि करि चाव ऋषीश्वर पै गये ।
संत सुजात जु नाम बहुत आदर किये ॥
गौतम अस्तुति करी बहुत ही प्रीति सों ।
फिरि पूछी यह बात जु लघुता रीति सों ॥
परमेश्वर पहिचान मोहि समुझाइये ।
मुक्त होन के पन्थ सबै जु दिखाइये ॥
ह्वै कर बहुत प्रसन्न ऋषीश्वर बोलिया ।
गौरा अरु महादेव की चरचा खोलिया ॥
सब देवन के देव महादेव हैं सही ।
उपनिषदें जो वेद की गौरा सों कही ॥
सो मैं तुम सों कहौं प्रीति के भाव सों ।
तुम हू नीके सुनौ अधिक ही चाव सों ॥
गुप्त महा यह भेद हिये में राखिये ।
जो जड़ मूरुख होय तासु नहिं भाखिये ॥

दो० हरि भक्ता अरु गुरु मुखी, तप करने की आस ।
सतसंगी साँचा यती, ताहि देहु चरनदास ॥१३॥

॥ अष्टपदी ॥

अब मैं कहौं सँभाल सुरत ह्याँ दीजिये ।
यह तौ अचरज कथा श्रवण सुनि लीजिये ॥

यही श्वास कहि हंस आय अरु जाय है।
पूरा सतगुरु मिले तो भेद लखाय है॥
जो कोउ याको समझि करे अरु ध्यानही।
ऋद्धि सिद्धि सुख होहिं जु उपजे ज्ञानही॥
अन्त मुक्ति ही होय अभैपद में रहै।
बहुरौ जन्म न होय परम आनँद लहै॥
अब मैं चरणों हंस और परमहंस ही।
जो समझे ह्वै ब्रह्म जाय सब संश ही॥
हंस हंस जो मंत्र अर्थ पहिचानिये।
"वह मैं हूँ" यों कहै निश्चय करि जानिये॥
यह मंतर सब माहिं सदा ही भरि रह्यो।
कोटिन में कोइ जानै ध्यान सोइ धरि रह्यो॥
जैसे काठ में आगि तिलों में तेल है।
तैसे सब घट माहिं इसी का मेल है॥

दो० दूध मध्य ज्यों घीव है, मेहँदी माहीं रंग।
यतन बिना निकसे नहीं, चरणदास सो ढंग॥१४॥
जो जाने या भेद को, और करे परवेश।
सो अविनाशी होत है, छूटे सकल कलेश॥१५॥

॥ अष्टपदी ॥

तन मथने को यतन कहूँ अब जानिये।
ज्यों निकसे ततसार बिलोवन ठानिये॥
पहिले चक्कर जानि मूल द्वारे विषे।

जित ही पावँ की एँडी सूँ वन्ध दे रखे ॥
मूल चक्र सों खैंचि अपान चलाइये ।
दूजे चक्कर पास जु आनि फिराइये ॥
दहिनी ओर सों तीनि लपेटे दीजिये ।
तीजे चक्कर माहिं गमन फिरि कीजिये ॥
चौथे चक्कर माहिं पवन जो लाइये ।
बहुरो पँचवें चक्र में जु पहुँचाइये ॥
षष्ठम चक्कर माहिं जु ताहि चढ़ाइये ।
सो त्रिकुटी के मध्य तहाँ ठहराइये ॥
रोके त्रिकुटी माहिं आनि के वायु कूँ ।
षट् चक्कर को छेदि चढ़ै जब धाय हूँ ॥
अपान वायु चढ़ि जाय वही अस्थान है ।
प्रान वायु ह्वै जाय साधु कोइ जान है ॥
रोके प्रानहि वायु त्रिकुटी मध्य ही ।
ॐ का करै ध्यान शीश में गद्य[1] ही ॥
यह तौ ऊँचा ध्यान जु अधिक अनूप ही ।
चरणहिदासा होय जु ब्रह्मस्वरूप ही ॥
दो० नाम ब्रह्म का है नहीं, है तो यह ॐकार ।
जाने आपन को वही, मैं हौं तत्त्व अपार ॥१६॥

॥ अष्टपदी ॥

अनहद शब्द अपार दूर सों दूर है ।

१ [illegible] में ।

चेतन निर्मल शुद्ध देह भरपूर है ॥
ताहि निअच्छर जानि और निष्कर्म है ।
परमातम तेहि मान वही परब्रह्म है ॥
हृदयकमल के माहिं ध्यान सोहं करे ।
वाहि को अजपा जान सुरति मन ले धरे ॥
बिनहिं जपे जप होय सु साँची बात ही ।
सहस इकीस अरु छस्सै जहाँ दिन रात ही ॥
याको कीये ध्यान होत है ब्रह्म ही ।
धारे तेज अपार जाहि सब भर्म ही ॥
वा पटतर कोइ नाहिं जु यों ही जानिये ।
चन्द्र सूर्य अरु सृष्टि के माहिं पिछानिये ॥
सो वह तेज अपार आपकूँ मानिये ।
निश्चय अरु वहि साँच जु मन में आनिये ॥
जब लग याही भेद जो जाना था नहीं ।
जीवातम अरु हंस हो रहा था तहीं ॥
जभी अगोचर भेद जु मन माहीं लहा ।
परमातम परमहंस रूप निश्चय भया ॥

दो० जो जीवातम सों भया, परमातम अरु ब्रह्म ।
वाकी सरवरि को करै, पाई परै न गम्म ॥१७॥
पहुँचै ना वा तेज को, कोटि कोटि ही भान ।
चरणदास कोइ जानि है ताको निर्मल ज्ञान ॥१८॥

॥ अष्टपदी ॥

परम ज्योति को प्रापत सो नर होत है ।
जिन मन जीता होय लगाया गोत है ॥
जिन मन जीता नाहिं त्रिपय आशा बहे ।
हृदय कमलदल आठ ह्वाँइं फिरता रहे ॥
अष्ट पैंखरी जान जु आठौं अंग ही ।
वे ही दिशा हैं आठ करैं मन भंग ही ॥
पँखरी पूरब दिशा जबै मन जात है ।
तब इच्छा हिय पुण्य करन की आत है ॥
अग्नेय दिशा पैंखरी पै जब जावे मना ।
ऊँघ नींद अरु आलस जित आवै घना ॥
दक्षिणहि जु दिशा पैखरी मन राजई ।
उपजै बहुत किरोध कठोरता साजई ॥
दिशा जु नैऋत पैंखरी पै मन रंग ही ।
पाप करन की उपजै हिये तरंग ही ॥
पश्चिम दिशा जु पँखरी पै मन आ रहै ।
होय खुशी परफुल्ल जु लीला को चहै ॥

दो० वायव दिशा जु पँखरी, जब मन पहुँचै जाय ।
हलन चलन उपजै हिये, बैठे देहि उठाय ॥१९॥

॥ अष्टपदी ॥

उत्तर दिशा जु पंखरी पै मन आवई ।

मैथुन करन की चाह हिये उपजावई ॥
ईशान दिशा पंखरी पर मन आवै जभी ।
दान करन की चाह अधिक उपजै तभी ॥
हृदय कमल के बीच जबै मन जा रहै ।
उपजै त्याग वैराग तजन जग को कहै ॥
हृदय कमल को छेद बाहर मन फिरत ही ।
आसे पासे जानि होय जाग्रत ही ॥
हृदय कमल के घेरे के मध्य जात ही ।
जब आवत है स्वप्न जहाँ बहु भाँति ही ॥
धान बराबर छेदि तहाँ मन जात है ।
होहि सबै गुण लीन सुषुप्ती आत है ॥
हृदय कमल को छोड़ि होत जब न्यार ही ।
तुरिया में मन जात जु तत्त्व अपार ही ॥
यों जीवातम जान जु अनहद लीन हो ।
सो परमातम होय जीवता जाय खो ॥

दो० अजपा ही के जाप को, सिद्ध भयो जब जान ।
पहुँचै या अस्थान ही, रहै न दूजा ज्ञान ॥२०॥
यह जो सब कुछ मैं कहो, हिरदै जाना जाय ।
ताही को पहिचानिये, चरणदास चितलाय ॥२१॥

॥ अष्टपदी ॥

कैसे अनहद उठे हिये अस्थान सों ।
यह जीवातम सुनै हृदय बल ध्यान सों ॥
दश प्रकार के नाद कहूँ भिन्न भिन्न ही ।

सो उपनिपद् ही माहिं कहे सब चिह्न ही ॥
पहली ऐसे होय चिड़िया ज्यों चीकला ।
एक बार कहै चिह्न सुनो सोइ सुरति ला ॥
ऐसे ही दो बार जु दूजी जानिये ।
चिह्न चिह्न ही होत ताहि पहिचानिये ॥
क्षुद्रघंटिका तीसरि चौथी शंख ज्यों ।
पंचम ऐसी जान बजत है बीन त्यों ॥
छठी बजै ज्यों ताल सातवीं बाँसुरी ।
अठवें शब्द मृदङ्ग लगे मन गाँसुरी[1] ॥
नवें नफीरी नाद जु दशवें सिंधु है ।
बादर कीसी गरज दद्द दहंद है ॥
करते में अभ्यास जु नादैं सब खुलैं ।
जैसे बटाऊ[2] चलत नगर नौ मग मिलैं ॥
दशवें पहुँचे जाय नवों बिसराइया ।
रहन किया वा देश जहाँ घर छाइया ॥
ऐसे ही नौ छोड़ नाद दशवाँ गहै ।
बादल कीसी गर्ज जहाँ मन दे रहै ॥
वाको छोड़े नाहिं सदा रहै लीन ही ।
यही जु अनहद सार जानै परवीन ही ॥
याकी प्रापत कहूँ जो मन में आनिये ।

१ तल्लीनता २ पथिक ।

गोरा सों शिव कह्यो साँच करि जानिये ॥

दो० चरणदास ने अब कही, जुदी जुदी दश नाद ।
वही परापत को लहै, जो कोइ साधै साध ॥२२॥

॥ अनाहत नाद की परीक्षा ॥

॥ अष्टपदी ॥

पहिलि परीछा जान जु अनहद नाद की ।
सबै रोमावलि उठै जु वाके गात की ॥
अरु दूजी जब सुनै नाद चित लावई ।
सब तन अंगन माहिं आलकस छावई ॥
तीजी अनहद नाद सुनै जित ही जुटै ।
सब अंगन हिय माहिं प्रेम पीड़ा उठै ॥
चौथी सुनै जब नाद परीछा पावई ।
तब शिर घूमन लगै अमल[1] ज्यों खावई ॥
पचवीं उठै जो नाद सुनै तामें पगै ।
वाके शीश सों जानि अमी[2] उतरन लगै ॥
छठी उठै जब नाद सुरति वामें धरै ।
कण्ठ सों नीचे उतरि अमी पीवन करै ॥
सतवीं खुलै जो नाद बिना श्रवणन सुनै ।
अन्तर्यामी होय लखै सब के मनै[3] ॥
दूर दूर के वचन सुने कोई कहे ।
होय परे की दृष्टि छिप्यो कछु ना रहे ॥

१ अफीम २ अमृत प्राप्त हो जाय ३ मनकी बात ।

अठवीं परीक्षा जानि परापत जो बने ।
सब माहीं सब ठौर नाद अनहद सुने ॥
है सबही के माहिं वे ना समझें सुनें ।
यह समझे अरु सुने ताहि नीके गुनें ॥

दो० खुले नवीं जब नाद ही, लक्षण यह पहिचान ।
सूक्ष्म होय जित तित गमन, करे धरे जो ध्यान ॥२३॥
काहू ही की दृष्टि सों, चहै अगोचर होन ।
होय सके दीखे नहीं,वह सब देखे जौन ॥२४॥
जैसे सुर सबको लखें, उन्हे न देखे कोय ।
रणजीत कहै अस्थूल हो, चाहे सूक्ष्म होय ॥२५॥

॥ अष्टपदी ॥

दशवीं खुले जब नाद परै सो है परै ।
पारब्रह्म होइ जाय ध्यान ताको करै ॥
ध्यानी को मन लीन होय अनहद सुनै ।
आप अनाहद होय वासना सब भुनै ॥
पाप पुण्य छुटि जाय दोऊ फल ना रहैं ।
होय परम कल्याण जु त्रैगुण ना गहैं ॥
होवे बोध स्वरूप तेज ह्वै जात है ।
अटक रहे नहिं कोय सबै ठाँ समात है ॥
अज अविनाशी शुद्ध पवित्तर सत्त ही ।
होवे आनँदरूप परम जो तत्त्व ही ॥

निर्विकार निर्लेप और निर्वानहीं ।
आनँद सब को देत आपको जानई ॥
या ध्यानी को नाम जु ॐकार है ।
सब नामन में बड़ा किया जु विचार है ॥
याको ऐसे मानै कि वह जो मैं ही हूँ ।
रूप नाम गुण जान कि यह सब वाही सूँ ॥

दो० करते अनहद ध्यान ही, ब्रह्मरूप ह्वै जाय ।
चरणदास यों कहत है, बाधा सब मिटि जाय ॥२६॥

॥ इति हंसनाद उपनिषद् सम्पूर्णम् ॥

अथ द्वितीय सर्वोपनिषद् प्रारम्भ

दो० दूसरी जो उपनिषद् है, ताको कहौं बनाय ।
सर्व नाम तिहि जानिये, ताहि देहुँ प्रकटाय ॥१॥

॥ अष्टपदी ॥

परजापति[1] के शिष्य जो पूछी आय के ।
बन्ध मुक्ति का भेद देहु समझाय के ॥
कासों कहत हैं बन्ध मोक्ष कासों कहैं ।

---

१ ब्रह्मा ।

विद्याऽविद्या भेद कहो कैसे लहैं ॥
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति मोहि बतलाइये ।
अरु तुरिया को भेद सभी जु सुनाइये ॥
कोठे पाँच को भेद गुरू वर्णन करो ।
जुदा जुदा समझाय तिमिर दुविधा हरो ॥
पहला अन्न सों भरा दूजा भरा प्रान सों ।
तीजा मन सों भरा चौथा बुधि रानि सों ॥
पँचवाँ आनँद भरा मोहि कहि दीजिये ।
हौं तौ चरणहिदास कृपा जो कीजिये ॥
आतम को जो अकर्ता कैसे के कहैं ।
किन अर्थन सों जीव जु याही कोठ है ॥
अरु कहैं याको देह का जाननहार है ।
देह का साक्षी कहैं सो कौन विचार है ॥

दो० ऐसो यह बन्धन बँधो, कहैं तज्ञ[1] निर्बन्ध ।
अन्तर्यामी क्यों कहैं, मोहि बताओ सन्ध[2] ॥२॥
आतम ही को क्यों कहैं, जीव आतमा मान ।
माया यासों कहत हैं, दूरि करो अज्ञान ॥३॥

॥ अष्टपदी ॥

परजापति सब सुन के यह उत्तर दिया ।
आतम ही का ज्ञान सभी परगट किया ॥
जीव आतमा देह को मान के मैं कहैं ।

१ तत्त्वज्ञ २ भेद ।

तातें परो अज्ञान सबै दुख सुख सहैं ॥
आपको लम्बा जान कि ठिंगना जानई ।
कबहू दुबला जान कि मोटा मानई ॥
आपको जाने वृद्ध कि बालक तरुन है ।
जानत नारी पुरुष जु मानत बरन[१] है ॥
देह संग ह्वै देह करे जु विहार है ।
आपन को गयो भूलि रहे न विचार है ॥
वाको बन्धन यही सुनो चित में धरो ।
देह भाव छुटि जाय मुक्ति निश्चय करो ॥
जाही वस्तु सों उपजे तन अभिमान है ।
वही अविद्या जान वही अज्ञान है ॥
यही भरम उठ जाय जिसी जु बिचार सों ।
वाही विद्या जानि वाहि को ज्ञान हू ॥

दो० चौदह इन्द्री देवता, मिलि जो करैं व्योहार ।
चरणदास यों कहत हैं, जाग्रत यही निहार ॥४॥
जीव जु अंतःकरण के, चारों देवत संग ।
सूक्षम देही साथ ही, देखे स्वपना रंग ॥५॥
चौदह ही सब लीन ह्वै, जीव आतमा माहिं ।
यही सुषोपति जानिये, कछु भी सूझै नाहिं ॥६॥

॥ अष्टपदी ॥

तीन अवस्था मिटैं मिटैऽहंकार है ।
तुरियाही रहिजाय जु तत्त्व अपार है ॥

१ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ।

परमातम जो पुरुष सदा निर्लेव[1] है।
केवल ज्ञान स्वरूप जु ब्रह्म अभेव[2] है॥

॥ पंच कोष वर्णन ॥

अब कोठों की बात कहूँ चित दीजिये।
जुदा जुदा विस्तार सबै सुनि लीजिये॥
पहला कोठा कहूँ अन्नसेती भरो।
छह कोठे तेहि माहिं सोइ श्रवणन धरो॥
तीन पिता की ओर सों लाया संग ही।
बीरज मींगी हाड़ सफेद जु रंग ही॥
अब माता के अंश तीन ही जानिये।
लोह त्वचा अरु माँस अरुण पहिचानिये॥
प्रान से कोठा भरा दशौं जहाँ वायु हैं।
अगले भी छः कहे जु रहे समाय हैं॥
तीजा कोठा जानि धरो तहँ शुद्धि ही।
मन चित अरु अहंकार भरी जहँ बुद्धि ही॥
चौथा कोठा देख इन्हीं का जानना।
तामें भरो है ज्ञान सभी को पिछानना॥
पँचवाँ कोठा जानि जो आनंद सों भरा।
जैसे सगरो वृक्ष बीज माहीं धरा॥
दो० चारों कोठे जो कहे, अरु कारण को देखि।
जहाँ सभी ये रहत हैं, वा ठौरी को पेखि॥७॥

१ निर्लिप्त २ अभेद।

वा ठौरी को जानिये, ज्यों तरुवर का वीज ।
डाल पात फल फूल ही, रहे जु वाके वीच ॥८॥
ऐसे याको समझि कै, रहेजु आनँद आहि[१] ।
आनँद ही आनँद भरा, पँचवें कोठे माहिं ॥९॥

॥ अष्टपदी ॥

आतम करता जान जु जामें वुधि रहे ।
दुख सुख वाही माहिं सभी आशा धरे ॥
इच्छा पूरी भये होत मन मोद है ।
जव पूरी नहिं होय घना दुख होत है ॥
दुख सुख दोनों होत जो पाँचन के विषे ।
सो वे इन्द्री जान विना इनके कसे ॥
सरवन सों सुनि शब्द वुरा भल कोय ही ।
और त्वचा सों जान स्पर्श किये होय ही ॥
आँखन सों लखि होय जु रूप कुरूप सों ।
अरु जिह्वा सों होय जु षटरस[२] स्वाद सों ॥
नासा सेती होय वुरी भलि गंध ले ।
इनसे उतपति होय जु दुख सुख भै अभै ॥
आतम को जीवातम इस कारण कहैं ।
सूक्ष्म अरु अस्थूल देह संग ही रहैं ॥
वुरे भले जो करमन के फल में वँधा ।

१ युक्त २ खट्टा, खारा, मीठा, करुवा, चरपरा और कषैला ।

बीच हि लिया लगाय नहीं धुरसों फँधा ॥
ज्यों कञ्चन के संग जु टाँका जानिये ।
धोले वस्तर साथ जु मैल पिछानिये ॥
शोधे से ह्वै दूर शुद्ध ह्वै जात है ।
अपनेहिं अञ्जन आय जु श्वेत दिखात है ॥
जीवातम इहि भाँति फलन त्यागन करे ।
आतम ही रहिजाय जीवता ना रहे ॥
खोटे कर्म जु त्यागि भले सहजे करे ।
तिनका फल जो होय नहीं आशा धरे ॥
दो० जीव ब्रह्म यों होत है, रहे न कछू लगाव ।
चरणदास यों कहत हैं, ऐसा किये उपाव ॥१०॥

॥ अष्टपदी ॥

देह को जाननहारा ऐसे मानई ।
सूक्षम अरु अस्थूल को अपनी जानई ॥
कबहुँ कहै मम शीश आँख मुख हाथ है ।
कभी बतावै पाँव कहै मेरा गात है ॥
मन बुधि चितऽहङ्कार समझ ये चार हैं ।
अरु पाँचौं हैं वायु जु कोइ निहार है ॥
प्राण अपानहि व्यान उदान समान हैं ।
सात्त्विक राजस तामस तीनों जानि हैं ॥
वैर प्रीति अरु तीसरि इनकी हूँढ़ है ।
चौथा मनोरथ तीन का सब मिलि झुंड है ॥

भले बुरे जो कर्म और मन आनिये।
सूक्ष्म शरीर के मूल ये सब पहिचानिये ॥
अरु यह सूक्ष्म शरीर आतमा साथ जो।
ताते भासत सत्य सत्य है बात सो ॥
जब आतम पहिचान हिये में आवई।
तब सूक्षम को साँच सबै उठि जावई ॥

दो० सूक्ष्म शरीररु आतमा, भिन्न लखै नहिं कोय।
यही जु मन की गाँठ है, खुले मुक्ति ही होय ॥११॥
जानी[1] जाननहार[2] ही, और तीसरी जान[3]।
इन तीनों को जो लखे, सो साक्षी परधान ॥१२॥
उपजे तीनों द्वैत सों, मिटे एकता होय।
उपजन मिटना तीनका, जाने न्यारा सोय ॥१३॥
अपने ही परकाश में, आप रहा परकास।
सोई साक्षी जानिये, कहै चरणहीदास ॥१४॥
यद्यपि बन्धन में बँधा, कहै जु निर्बंध दूर।
चींटी ब्रह्मा आदि लौं, हिरदय में भरपूर ॥१५॥
सबही हिरदय के मिटे, वही एक ठहराय।
ना कुछ आया ना गया, ज्यों का त्यों रहि जाय॥१६॥
बन्धन में आवे सही, लीला करन दयाल।
निरबँध का निरबँध रहै, अज अबिनाशि अकाल॥१७॥

१ आत्मा या परमात्मा २ जाननेवाला ३ जानने का साधन ।

अंतर्यामी के अरथ, सब घट रहो समाय ।
जैसे डोरे के विषे, भाँति भाँति मणिकाय*॥१८॥
सब ही के भीतर बसे, सबका जाननहार ।
वाही ते परगट भई, नाना वस्तु अपार ॥१९॥
घने रूप किरिया घनी, घने नाम दृष्टान्त ।
सूझै ज्ञान प्रकाश सूँ, जब गुरु मेटैं भ्रान्त[1] ॥२०॥
रूप नाम किरिया लगी, जब लग याके साथ ।
याही ते जीवातमा, कहलावै यह बात ॥२१॥
जैसे कञ्चन मृत्तिका, भाँड़े किये सँचार ।
नाम रूप क्रिरिया भई, देखो दृष्टि निहार ॥२२॥
रूप नाम क्रिरिया मिटे, रहै न कछू विचार ।
जो था सोई रह गया, परमातम ततसार ॥२३॥
आतम अरु जीवातमा, देह धरे से दोय ।
ताते बड़ी उपाधि ही, मैं तू तू मैं होय ॥२४॥
तत्वमसी[2] जो यह कहा, ताको येही अर्थ ।
"वह तूही है" जानले, परम तत्व है सत्य ॥२५॥

॥ अष्टपदी ॥

अरु वह ज्ञान स्वरूप आनन्द अनन्त है ।
उपजावन सब सृष्टि को जीवन कन्द[3] है॥
वस्तु काल अस्थान तीनों मिटि जात हैं ।
वह इकरस सतरूप ब्रह्म रह जात हैं ॥

---

१ हृदय का संदेह २ वेदान्त का महावाक्य ३ मूल-जड़ *मणिसमूह ।

सब को जाननहार मिटै उपजै नहीं ।
तासूँ कहैं वहि ज्ञान अर्थ जानो तहीं ॥
और कहैं जु अनन्त सो यासूँ जानिये ।
सब भाँड़ों में इक माटी जु पिछानिये ॥
कनक के बरतन बहुत जु सोना एकिये[१] ।
सब बसनन के माहिं जु सूतहि देखिये ॥
ऐसेहि आदिरु अन्त ब्रह्म सब माहिं है ।
कहिये याहि अनन्त भेद कछु नाहिं है ॥
अरु जो आनँद कहै समुझ लीजै वही ।
वाही को अंश पिछान जु आनँद हो कहीं ॥
ऐसे हि मोहि समझायो गुरु शुकदेव ने ।
चरणहिंदासा होय लखो या भेव ने ॥

॥ ब्रह्म का स्वरूप ॥

दो० चार पते ये ब्रह्म के, सत आनन्द अनन्त ।
चौथा ज्ञानस्वरूप है, कहैं वेद अरु सन्त ॥२६॥

॥ अष्टपदी ॥

सर्व समै सब ठौर जु इकरस नित्त है ।
तत्त्वमसी के अर्थ वही तू सत्य है ॥
जब तू करिकै ज्ञान होय परब्रह्म ही ।
आपन ही कूँ पाय, जाय सब भर्म ही ॥
मैं तू वह उठि जाय दूसरी वास ही ।
आप कूँ व्यापक जान ज्यों शुद्ध अकाश ही ॥

१ एक ही है ।

अरु जानै निर्लेप सत्त अरु एक ही ।
जब परमातम होय, रूप नहिं रेख ही ॥
माया याते कहैं भरम अरु अन्त है ।
ज्ञान भयें उठि जाय कछू न रहन्त है ॥
ज्यों रसरी को साँप भरम सूँ मानिये ।
समझ लखा जब झूठ यों माया जानिये ॥
साँच सो लागै झूठ, झूठ सच जान है ।
माया यही सुभाव भरम अज्ञान है ॥
रसरी कूँ कहैं सर्प्प जु अपने भरम सूँ ।
ऐसे ही जड़ कहत सनातन ब्रह्म कूँ ॥

दो० झूठ जगत दीखत रहै, दीखै ना सत ब्रह्म ।
यही जु माया जानिये, यही तिमिर यहि भर्म ॥२७॥
गुरु शुकदेव प्रताप सूँ, कही चरणहीदास ।
यह जु अथर्वणवेद की, सर्व उपनिषद भास ॥२८॥

॥ इति दूसरी सर्वोपनिषद् सम्पूर्णम् ॥

अथ तृतीय तत्त्वयोग उपनिषद् प्रारम्भ

॥ अष्टपदी ॥

तीजी अरु जो कहूँ अथर्वण वेद की ।
तत्त्वयोग जिहि नाम गुपत[1] ही भेद की ॥

---

१ छिपाहुआ ।

अपने शिष सूँ कहा जु परजापत्ति[१] ने ।
योगसार मैं कहूँ जु पावे तत्त्व ने ॥
योगेश्वर कूँ लाभ होय जाके किये ।
पढ़े पाप भजि जाय सुने राखे हिये ॥
निश्चय होवे मुक्त यही तू जानियो ।
चौथेपद लहै वास साँच करि मानियो ॥
बड़ा योगेश्वर विष्णु अधिक तप ज्ञान है ।
जाकी माया गढ्ढ[२] नहीं परमान है ॥
योगी करिके योग सु ज्योति निहार ही ।
दीपक की सी लोय लखे होय पार ही ॥
सो वह विष्णु सरूप सबन के माहिं है ।
घट घट में भरपूर खाली कोइ नाहिं है ॥
ऐसी ज्योति कूँ छोड़ि और मन लावई ।
वे नर भोंदू जान जु कूर कहावई ॥
दो० दूध पिया जिन कुचन सूँ, उनकूँ मल सुख लेत ।
जन्म खोय खाली चले, नारिन सूँ करि हेत ॥१॥

॥ अष्टपदी ॥

जिस द्वारे सूँ निकस जन्म जग में लिया ।
ताही में परवेश करन फिर मन किया ॥
वही नारि को रूप जु तासूँ मा कही ।
लगे भार्य्या कहन जु अपने सँग लई ॥

१ ब्रह्मा २ गहन ।

जाही पुरुष स्वरूप कूँ कहते बाप ही ।
फिर लगे पुत्तर कहन वाही कूँ आप ही ॥
वही पुत्र जो जगत में पिता कहावई ।
सोई पुत्तर भया बड़ो अति चावई ॥
जैसे कूप का रहँट लौट रीते[1] भरे ।
वस्तु एक ही जान कभी ऊपर तरे ॥
याही भरम अज्ञान सूँ आशा ही दहै ।
वहु लोकन के माहिं सदा भरमत रहै ॥
अब कहूँ वही उपाय जगत सूँ ज्यों छुटे ।
आवागमन का फंद शिताबी[2] ही कटे ॥
जासूँ भरमें नाहिं रहे थिर होय के ।
पावे निज अस्थान विपति सब खोय के ॥

॥ ॐकार वर्णन ॥

दो० ॐकार बड़ नाम है, हिरदे ध्यान करे ।
शुकदेव कहे चरणदास सूँ, सब ही व्याधि टरे ॥२॥

॥ अष्टपदी ॥

ॐकार के अक्षर कहिये तीन हैं ।
अकार उकार मकार जाने परवीन हैं ॥
तीनों अक्षर माहिं तीनों हैं थोक ही ।

---

१ खाली हो जाते है २ जलदी ।

पहले अत्तर में जु रहै भूलोक ही ॥
दूजे अत्तर बीच जानो आकाश ही ।
तीजे अत्तर माहिं वैकुंठ निवास ही ॥
तीनों अत्तर माहिं जो तीनों वेद हैं ।
ऋग् यजुवेदरु साम तिहूँ जो भेव हैं ॥
तीनों अत्तर माहिं तिहूँ जो देव हैं ।
ब्रह्मा विष्णु महेश बड़े जो अभेव हैं ॥
तीन प्रकार की अग्नि तीन अत्तर महीं ।
एक अग्नि यह जान दिखै प्रत्यत्त ही ॥
दूजी अग्नि प्रचंड सूर्य की भासई ।
तृतिय अग्नि सब माहिं जठर परकासई ॥
तीनों गुण तिन माहिं समझ जानो यही ।
रजगुण सतगुण और तमोगुण है सही ॥
दो० अत्तर ॐकार के, जिन का चौथा भाग ।
अर्द्ध मात्रा बोलिये, ऊपर बिन्दी लाग ॥३॥

॥ अष्टपदी ॥

जो कोउ याको जपे समझ अरु ध्याय है ।
ऊपर कही जो वस्तु सबन को पाय है ॥
अत्तर साढ़े तीन प्रणव के माहिं हैं ।
सब वस्तू वा माहिं बाहर कछु नाहिं हैं ॥
ऐसे रह वा माहिं पुष्प में गंध ज्यों ।
जैसे तिल में तेल दूध में घीव त्यों ॥

जैसे पाहन माहिं जु कनक बताइये ।
ऐसे ही ॐकार में सबको पाइये ॥
वाही को किये ध्यान परमपद को लहै ।
वेद पुराणन माहिं साखि यों ही कहै ॥

॥ प्रणव का ध्यान ॥

अब परणव का ध्यान जु देहुँ बताय के ।
सब ही याकी सूक्ष कहूँ समझाय के ॥
हिरदय ही के माहिं जु कमल पिछानिये ।
ऊपर को है नाल नीचे मुख जानिये ॥
वाही के छिद्र बीच रहत मन भूप है ।
कहैं चरणहीदास जु भेद अनूप है ॥

दो० अक्षर ॐकार के, पहिला है जु अकार ।
ताहि कहे सों होत है, हिरदा शुद्ध विचार ॥४॥

॥ अष्टपदी ॥

दूजा जपे उकार कमल विकसैं कली ।
शनै शनै खुलि जाय बसे तामें अली[1] ॥
तीजा जपे मकार प्रकट हो नाद ही ।
सुनि सुनि आनँद होहि जु परम अगाध ही ॥
अर्द्ध मात्रा विन्दु सदा थिर जानिये ।
हलन चलन कछु नाहिं यही चित आनिये ॥

१ भ्रमर ।

वामें मन ह्वै लीन ज्योति ह्वै जाति है ।
निर्मल सो अरु शुद्ध बिलौर[1] की भाँति है ॥
सूरज की सी किरण महा उज्ज्वल वही ।
जोई करै यह ध्यान पुरुष पावै सही ॥
सब में ज्योति स्वरूप सकल भरपूर है ।
निकट निकट सों निकट दूर सों दूर है ॥
जो इसका ही ध्यान हृदय किया जाय ना ।
तौ करै मस्तक माहिं होय पारायना ॥
शीश में जब सिद्ध होय रोक नौ द्वार ही ।
निकसन देवे वायु न काहू बार[2] ही ॥
दो० दो पग एड़ी बाँधिये, नीचे के दो द्वार ।
दोउ अँगूठे हाथ के, रोको सरवन बार ॥५॥

॥ अष्टपदी ॥

तर्जनि[3] अँगुली दोऊ दृगन पर दीजिये ।
मध्यम से दोउ नाक छेद बंद कीजिये ॥
अनामिका[4] दोउ हाथ कि और कनिष्ठिका[5]।
होंठन को बंद करै जु नीके पुष्ट[6] का ॥
नासा के दोउ छेद एक ही जित भये ।
दोउ भौंहन के बीच चरणदासा कहे ॥
निश्चय ताहि बनारस देह की जानिये ।

१ पारदर्शी पत्थर २ मार्ग ३ अँगूठे के पास की अंगुली ४ चौथी अंगुली
५ पांचवीं सबसे छोटी अंगुली ६ मजबूती से ।

ताही की तो ओर दृष्टि को तानिये ॥
महाकुम्भक इहि नाम इसी विधि साधिये ।
ध्यान किये होय मुक्ति यही अवराधिये[1] ॥
इन्द्रिन हू के मारग को जो बंद करे ।
वायु विना घट[2] माहिं यथा दीपक बरै ॥
होय घना परकाश इसी जो देह में ।
इस ही ध्यान प्रताप मिलै जा गेह में ॥
पावे शुद्ध चैतन्य किये इस योग ही ।
कर्मन को ह्वै नाश मिटै मन रोग ही ॥

दो० उपनिषद पूरी भई, नाम योग ही तत्त्व ।
अंग अथर्वण वेद की, चरणदास कहि सत्त ॥६॥

॥ इति तृतीय तत्त्वयोग उपनिषद् सम्पूर्णम् ॥

अथ चतुर्थ योगशिखा उपनिषद् प्रारम्भ

दो० योगशिखा चौथी कहूँ, तामें अद्भुत ध्यान ।
परजापति ऐसे कही, शिष्य सुनो दे कान ॥१॥

॥ अष्टपदी ॥

यामें अद्भुत राह बड़े ही ज्ञान की ।

---

१ सेइये २ हृदय ।

काँपन लागे देह कठिन सुनि ध्यान की ॥
जब आवे मन माहिं मोह तन ना रहै ।
पाँचन[१] ही की आग नहीं हिय में दहै ॥
वाकी विधि अब कहूँ सभी सुन लीजिये ।
बैठि इकांतहि ठौर जु आसन कीजिये ॥
आसन पद्म लगाय या सुख आसन करो ।
सीधो राखो मेरु[२] नैंन नासा धरो ॥
दोउ पाँवन के साथ जु हाथ मिलाइये ।
सब स्वादन सूँ रोकि जो मन को लाइये ॥
प्रणव[३] ही का जाप जु मन में राखिये ।
इस बिन और उपाय सबन को नाखिये ॥
जाका है ॐ नाम ध्यान ताका करे ।
आठ पहर संग्राम बिना खाँड़े[४] लरे ॥
देह यही अस्थूल बड़ा घर जानिये ।
तामें दीरघ थंभ एक पहिचानिये ॥
दो० अरु यामें नौ द्वार हैं, छोट थंभ हैं तीन ।
पाँच देवता तेहि विषे, लहैं साधु परवीन ॥२॥
यह घर जो मैंने कहा, सोइ मनुष की देह ।
कहैं गुरू शुकदेवजी, चरणदास सुनि लेह ॥३॥

॥ अष्टपदी ॥

एक बड़ा जो थंभ मेरु ही दण्ड है ।

१ शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध २ रीढ़ की हड्डी ३ ॐकार ४ तलवार ।

सोइ पीठ का हाड़ जासु सब मंड[1] है ॥
अरु वाही के बीच नाड़ि सुषुमन भली ।
सब नाड़िन शिरमौर योगी मानैं रली ॥
नौ द्वारे अब कहूँ तिन्हें पहिचानिये ।
दो सरवन दो आँख भली विधि जानिये ॥
नासा छिद्र दोय जु मुख का एक है ।
लिंग गुदा दो जान नवों का लेख है ॥
तीन जु छोटे थम्भ तीन गुण ही कहे ।
सतगुण तमगुण और रजोगुण ही लहे ॥
पाँच देवता कहे सो पाँचों प्रान हैं ।
प्राणापानरु व्यान उदान समान हैं ॥
ऐसे मन्दिर माहिं हृदय में छेद है ।
तामें सूरजमण्डल अचरज भेद है ॥
ताकी बड़ि ही ज्योति किरण उजियारि है ।
पूरा योगी होय सो ताहि निहारि है ॥

दो० ज्योतिमयी मण्डल लखे, हृदय कमल में होय ।
तामें दीखे और इक, दीवे की सी लोय[2] ॥४॥

॥ अष्टपदी ॥

दीपक की सी ज्योति मनों ऊपर चले ।
रहै अपनि ही ठौर भाँति ऐसे हिले ॥
याही ज्योति को जाने ब्रह्मस्वरूप ही ।

१ जो सब शरीर का आधार है २ ज्योति—लौ ।

यही समझि के ध्यान करे जु अनूप ही ॥
योगी करे जो ध्यान यही हिय माहिं ही ।
अन्त समय तन छूटि ऊपर को जाहिं ही ॥
सूरज ही का मंडल जावे बेध ही ।
सुषुमन मारग जाय शीस को छेद ही ॥
सायुज मुक्ति को जाय परापत होय ही ।
कोटिन माहीं लहै जु बिरला कोय ही ॥
सब ज्योतिन की ज्योति बड़ी जो ज्योति है ।
ताको पाये होय एक ही गोत[१] है ॥
आलस सों दुर्भागि ध्यान करि ना सके ।
तो दिन में तिरकाल पाठ करने लगे ॥

दो० प्रात काल अरु मध्य में, संध्या ही की बार ।
उपनिषद तीनों समै, पढ़े विचार विचार ॥५॥
करम कटे यम ही डटे, चौरासी हट जाय ।
देही पावे मनुष की, पूरा गुरु मिल जाय ॥६॥
फिर पावे यह ध्यान ही, पीछे कहा जु खोल ।
जावे परमहि धाम कूँ, छूटैं सब झकझोल[२] ॥७॥
थोड़ा सा यह ध्यान ही, मैं समझाया तोहि ।
परजापति शिष सों कहै, बड़ा जो निश्चय मोहि ॥८॥
यह पदवी मोकूँ मिली, इसी ध्यान परताप ।
जीवनमुक्ता ही रहूँ, छुटै आप अरु थाप ॥९॥

१ खानदान २ आवागमन का बखेड़ा ।

निश्चल हो या ध्यान कूँ, करे जो कोई और ।
जगत छुटे आपा मिटे, पावे निरभय ठौर ॥१०॥
आनंदहि आनंद जहाँ, अवधि न काल कलेश ।
चरणदास या ध्यान सों, पावे ऐसा देश ॥११॥
बहु लोकन में जन्म धरि, पाप मिटा नहिं मूर[1] ।
चरणदास इस ध्यानसों, सबै होत है दूर ॥१२॥
दूर करन दुख जगत के, आन उपाव न होय ।
योगी कूँ या ध्यान सम, और वस्तु नहिं कोय ॥१३॥
उपनिषद चौथी यही, भई समापत येह ।
चरणदास कहैं पाँचवीं, हित चितदै सुनि लेह ॥१४॥

॥ इति योगशिखा चौथी उपनिषद् सम्पूर्णम् ॥

अथ पांचवीं तेजबिन्दु उपनिषद् प्रारम्भ

दो० उपनिषद् जो पाँचवीं, वेद अथर्वण माहिं ।
तेजबिन्दु जिहि नाम है, समझ मुक्ति हो जाहिं ॥१॥

॥ अष्टपदी ॥

तेजबिन्दु के अर्थ यही हिय गूंध[2] है ।
बड़े ध्यान के तेजहि की यह बूँद है ॥
उसका है यह ध्यान जो सबसे ऊँच है ।

---

१ पाप की जड़ २ समझना चाहिये ।

सब सूँ पर निहरूप शुद्ध अरु शूच[1] है ॥
हिरदय ही के मध्य और सूक्षम महा ।
अरु केवल आनन्द किन्हीं ज्ञानी लहा ॥
अनंत शक्ति तिहि माहिं निरा अस्थूल है ।
वहुत पिण्ड ब्रह्मांड सबन का मूल है ॥
बड़ा बिना परमान गहा नहिं जात है ।
वाकी तपस्या ध्यान कठिन जु दिखात है ॥
वाका देखन दुर्लभ सुलभ नहिं जानना ।
वह तो समुद अथाह कछू परमान ना ॥
ज्ञानी पण्डित और सबै बुद्धिवान ही ।
पावैं आदि न अन्त और मध्य व्हाँ नहीं ॥
कै बाँधै ब्रह्मवृत्त करै कै ध्यान ही ।
वाही के हो रूप पावे तब ज्ञान ही ॥

दो० जीते पहिल अहार ही, दूजे और क्रिरोध ।
बहु मनुषों का संग तज, छाँड़े प्रीति विरोध ॥२॥

॥ अष्टपदी ॥

परवल इन्द्री जान सबन कूँ वश करे ।
शीत उष्ण दुख सुख अस्तुति निन्दा हरे ॥
छोड़े ही अहंकार वासना आस ही ।
अपने कारण वस्तु रखै नहिं पास ही ॥
पूरी राखे पैज धारणा धारि के ।

१ पवित्र ।

गुरु आज्ञा गुरु सेव करे जु विचारि के ॥
सकल मनोरथ कामना कूँ करे छीन ही।
ऐसे जिज्ञासू कूँ चहिये द्वारे तीन ही ॥
एक जो द्वारा त्याग दूजा जो उपाव ही।
तीजा गुरु की निश्चय ऐसा सुभाव ही ॥
इन द्वारों में राह जु आगे की खुले।
लुटे थके वह नाहिं सुखाला[१] ही चले ॥
जीवातम जो हंस कहावत है यही।
याके हैं अस्थान जो तीनों ही सही ॥
जाग्रत स्वपन सुषोपत परगट जानिये।
तुरिया निज अस्थान गुप्त पहिचानिये ॥
दो० इन तीनों से वड़ा है, तुरिया कूँ नित जान।
चरणदास पोषण[२] जगत, वाके ना अस्थान ॥३॥

॥ अष्टपदी ॥

जैसे भूत अकाश यों व्यापक ह्वै रहो।
सब इन्द्रिन के माहिं जो सूक्षम जो रहो ॥
वाकी सत्ता सेती चेतन ही रही।
वही बड़ा पद जान विष्णु का है सही ॥
वाके नेत्र हैं तीन जो तीनों वेद ही।
अरु वाके गुण[३] तीन जो किया न खेद ही ॥
है सबका आधार त्रिलोकी धारई।

१ सुखी २ पालन करने वाला ३ सत, रज और तम।

आप रहै निरधार जो अपरंपारई ॥
है निहरूप अडोल अखंड अगाध ही ।
है तो निस्सन्देह पहुँचे न उपाध ही ॥
करि न सकै परवेश वरण गुण रूप ही ।
अरु सब गुण वा माहिं जु अधिक अनूप ही ॥
पावे केवल ज्ञान सूँ आप में आपही ।
बावन[१] अच्छर माहिं नाम नहिं थापही ॥
वह तो निरा आनन्द काहु से है नहीं ।
कठिन परापत होय दुर्लभ देखे नहीं ॥

दो० वह उपजे विनशे नहीं, अज[२] अविनाशी सोय ।
बिन इच्छा थिर ही रहै, चरणदास नित जोय ॥४॥

॥ अष्टपदी ॥

वह सब ही जो विराट पिण्ड अरु जीव है ।
नाना कौतुक होयँ अन्त वहि सीव[३] है ॥
ज्ञान से जुदा न जान निरा वह ज्ञान है ।
वही महा आकाश नहीं परमान है ॥
सब माहीं परवेश जो आतम सत्त है ।
आप में पूरण आप परम ही तत है ॥
अज्ञानी जानै झूठ झूठ पहुँचे नहीं ।
वह तो सदा नित जान कभी विनशे नहीं ॥
वाकूँ कहा नहिं जाय जाप जापक कभी ।

१ सोलह स्वर और छत्तीस व्यंजन ये बावन होते हैं २ अजन्मा ३ ब्रह्म ।

अरु सारे हैं जाप उसी माहीं सभी ॥
और जपा भी गया जाप जापक वही ।
सब कुछ उसकूँ जान गुप्त परगट सही ॥
वह निर्गुण निर्लिप्त कोई गुण नाहिंनै ।
पर सूँ पर ता परै जानि ले वाहिनै ॥
वासूँ पर नहिं और विचारा जाय ना ।
कहैं चरणहींदास कछू वा माहिं ना ॥
दो० वाकूँ जाग्रत है नहीं, वाकूँ स्वपन न कोय ।
सोवन स्वप्ना है नहीं, जाग्रत कैसे होय ॥५॥

॥ अष्टपदी ॥

दोऊ से न्यारा जान जाग्रत अरु स्वप्न सूँ ।
ऐसा कोई नाहिं न जाने सत्त हूँ ॥
सबका जानत मूल जु ज्ञानी लोय ही ।
दीरघ अरु परकाशी जाने सबको यही ॥
जाकूँ लोभ न होय अविद्या होय ना ।
भय अभिमान कुकर्म वासना कोय ना ॥
गरमी जाड़ा भूख प्यास व्यापे नहीं ।
पड़ये क्रोध न मोह नेक वामें कहीं ॥
वाहि न इच्छा होय न पूरी चाह ही ।
कुल विद्या अभिमान न उनके माहिं ही ॥
मान नहीं अपमान न मन में लावई ।
सब सूँ होय निवृत्त ब्रह्म कूँ पावई ॥

तेजबिन्दु उपनिषद् सँपूरण ही भई ।
गुरु शुकदेव के दास चरणदासा कही ॥
ताहि सुने मन राखि विचारा ही करे ।
निश्चय होवे मुक्ति जगत में ना परे ॥

दो० कही गुरू शुकदेव ने, मेरी कछू न बुद्धि ।
पढ़ो नहीं मूरख महा, मोकूँ नेक न शुद्धि ॥६॥

मेरे हिरदय के विषे, भवन कियो गुरु आय ।
वेई विराजत हैं सदा, मेरी देह दिखाय ॥७॥

जब सूँ गुरु किरपा करी, दर्शन दीन्हे मोय ।
रोम रोम में वे रमे, चरणदास नहिं कोय ॥८॥

जाति वरण कुल मन गया, गया देह अभिमान ।
अपने मुख सों कहा कहौं, जग ही करे बखान ॥९॥

रहे गुरू शुकदेवजी, में मैं गई नशाय ।
मैं तैं तैं मैं वही है, नख सिख रहो समाय ॥१०॥

॥ इति तेजबिन्दु पाँचवीं उपनिषद् सम्पूर्णम् ॥

॥ इति पंचोपनिषद् ॥



अथ श्री स्वामी चरणदासजी कृत भक्तिपदार्थ प्रारम्भ

गुरु महिमा

दो० प्रणवों श्री मुनि व्यासजी, मम हिरदय में आय ।
भक्ति पदारथ कहत हूँ, तुम ही करो सहाय ॥१॥
प्रेम पगावन ज्ञान दे, योग जितावन हार ।
चरणदास की वीनती, सुनियो बारंबार ॥२॥
तुम दाता हम मंगता, श्री शुकदेव दयाल ।
भक्ति दई व्याधा गई, मेटे जग जंजाल ॥३॥
किसू काम के थे नहीं, कोउ न कोड़ी देह ।
गुरु शुकदेव कृपा करी, भई अमोलक देह ॥४॥
को है कोई न जानता, गिनती में नहिं नावँ ।
गुरु शुकदेव कृपा करी, पूजन लागे पावँ ॥५॥
सीधी पलक न देखते, छूते नाहीं छाहिं ।
गुरु शुकदेव कृपा करी, चरणोदक ले जाहिं ॥६॥
दूसर के बालक हुते, भक्ति बिना कंगाल ।
गुरु शुकदेव दया करी, हरि धन किये निहाल ॥७॥
जा धन कूँ ठग ना लगे, धारी सके न लूट ।
चोर चुराय सके नहीं, गाँठ गिरे नहिं छूट ॥८॥
बलिहारी गुरु आपने, तन मन सदके जावँ ।

जीव ब्रह्म च्छण में कियो, पाई भूली ठांवँ ॥९॥
हरि सेवा सोलह बरष, गुरु सेवा पल चार।
तो भी नहीं बराबरी, वेदन कियो विचार ॥१०॥
गुरु की सेवा साधू जाने। गुरु सेवा कहा मूढ़ पिछाने॥
गुरु सेवा सबहुन पर भारी। समझ करो सोई नर नारी॥
गुरु सेवा सों विघन विनाशे। दुरमति भाजे पातक नाशे॥
गुरु सेवा चौरासी छूटे। आवागमन का डोरा टूटे॥
गुरु सेवा यमदण्ड न लागे। ममता मरै भक्ति में जागे॥
गुरु सेवा सूँ प्रेम प्रकाशे। उनमत होय मिटे जग आशे॥
गुरु सेवा परमातम दरशे। त्रैगुण तजि चौथा पद परशे॥
श्री शुकदेव बतायो भेवा। चरणदास कर गुरु की सेवा॥
दो० गुरु सेवा जाने नहीं, पाँव न पूजे धाय।
योग दान जप तप कियो, सभी अफल ह्वै जाय ॥११॥
योग दान जप तीरथ न्हाना। गुरु सेवा बिन निष्फल जाना॥
गुरु सेवा बिन बहु पछितैहो। फिर फिर यम के द्वारे जैहो॥
गुरु सेवा बिन अति दुख पैहो। जग में पशु दारिद्री ह्वैहो॥
गुरु सेवा बिन कौन उतारे। भवसागर सूँ बाहर डारे॥
गुरु सेवा बिन जड़ कहा करि हैं। काकी नाव बैठि करि तरि हैं॥
गुरु सेवा बिन कछु नहिं सरि है। महाअंध कूप में परि है॥
गुरु सेवा बिन घट अँधियारा। कैसे प्रकटै ज्ञान उज्यारा॥
नरक निवारण गुरु शुकदेवा। चरणदास करि तिनकी सेवा॥
दो० इन्द्रीजित निरवैरता, निरमोही निरबंध।

ऐसे गुरु की शरण सूँ, मिटे सकल दुख द्वन्द ॥१२॥
राग द्वेष दोनों से न्यारे। ऐसे गुरू शिष्य कूँ तारे॥
आशा तृष्णा कुबुधि जलाई। तन मन बचन सबन सुखदाई॥
निरालम्ब[1] निर्भरम उदासी। निरविकार जानो निरबासी॥
निरमोहत निरबन्ध निशंका। सावधान निरवाण अशंका॥
सारग्राही और सरबंगी[2]। संतोषी ज्ञानी सतसंगी॥
अयाचीक यति निरअभिमानी। पक्ष रहित स्थिर शुध बानी॥
निहतरंग नाहीं परपंचा। निहकरम निरलिप्त जो संचा[3]॥
शीतल तासु मती शुकदेवा। चरणदास कियो सो गुरुदेवा॥

दो० सतवादी अरु शीलवंत, सुहृदै अरु योगीश।
निश्चल ध्यान समाधि में, सो गुरु बिस्वेबीश ॥१३॥
भरम निवारण भय हरण, दूर करण सन्देह।
गुठिया[4] खोलै ज्ञान की, सो सतगुरु कर लेह ॥१४॥
सतगुरु के लक्षण कहे, ताकूँ ले पहिचान।
निरख परख कर दीजिये, तन मन धन अरु प्राण ॥१५॥
ऐसा सतगुरु कीजिये, जीवत डारै मार[5]।
जनम जनम की वासना, ताकूँ देवै जार ॥१६॥
सतगुरु के ढिग जाइ के, सन्मुख खावे चोट।
चकमक लग पथरी झड़ै, सकल जरावे खोट ॥१७॥
सतगुरु मेरा शूरमा, करे शब्द की चोट।

१ आश्रय रहित २ सर्वांग पूर्ण ३ सच्चा ४ गाँठ-गुह्य तत्व ५ अहंकार को मिटा देना।

मारै गोला प्रेम का, ढहे भरम का कोट ॥१८॥
मुख सेती बोलन थका, सुननें थका जु कान ।
पाँवन सूँ फिरवा थका, सतगुरु मारा बान ॥१९॥
मैं मिरगा गुरु पारधी[1] , शब्द लगायो बाण ।
चरणदास घायल गिरे, तन मन बींधे प्राण ॥२०॥
शब्द बाण मोहि मारियो, लगी कलेजे माहिं ।
मार हँसे शुकदेवजी, बाकी छोड़ी नाहिं ॥२१॥
सतगुरु शब्दी तेग[2] है, लागत दो कर देहि ।
पीठ फेर कायर भजे, शूरा सन्मुख लेहि ॥२२॥
सतगुरु शब्दी सेल है[3] , सहे धमूका[4] साध ।
कायर ऊपर जो चले, तो जावे बरबाद ॥२३॥
सतगुरु शब्दी तीर है, तन मन कीयो छेद ।
बेदरदी[5] समझै नहीं, विरही पावे भेद ॥२४॥
सतगुरु शब्दी लागिया, नावक[6] का सा तीर ।
कसकत है निकसत नहीं, होत प्रेमकी पीर ॥२५॥
सतगुरु शब्दी बाण है अँग अँग डारा तोड़ ।
प्रेम खेत घायल गिरे, टाँका लगे न जोड़ ॥२६॥
सतगुरु शब्दी मारिया, पूरा आया वार ।
प्रेमी जूझे खेत में, लगा न राखा तार[7] ॥२७॥
ऐसी मारी खैंच कर, लगी वार गइ पार ।

१ शिकारी २ कटारी ३ भाला ४ चोट ५ बिना पीड़ा वाला ६ शिकारी
७ संबंध ।

जिनका आपा ना रहा, भये रूप ततसार[1] ॥२८॥
सतगुरु के मारे मुये, बहुरि न उपजे आय।
चौरासी बन्धन छुटे, हरिपद पहुँचे जाय ॥२९॥
सतगुरु के वचनों मुये, धन्य जिन्हों के भाग।
त्रैगुण ते ऊपर गये, जहाँ द्वेष नहिं राग ॥३०॥
बचन लगा गुरुदेव का, छुटे राज के साज।
हीरा मोती नारि सुत, गज घोड़ा अरु बाज[2] ॥३१॥
बचन लगा गुरु ज्ञान का, रूखे लागे भोग।
इन्द्र पदवी लौं उन्हैं, चरणदास सब रोग ॥३२॥
सतगुरु ढूँढ़ा पाइये, नहीं सुहेला[3] होय।
शिष्य भी पूरा कोइ है, सानी[4] माटी मोय ॥३३॥
जाति बरन कुल आश्रम, मान बड़ाई खोय।
जब सतगुरु के पग लगै, साँच शिष्य है सोय ॥३४॥
गुरु के आगे राखे माथा। कहे पाप दुख मेटो नाथा ॥
मैं आधीन तुम्हारो दासा। देहु आपने चरणन बासा ॥
यह तन मन ले भेंट चढ़ायो। अपनी इच्छा कुछ न रहायो ॥
जो चाहो सो तुमहीं करो। या भाँड़े[5] में जो कुछ भरो ॥
भावे धूप छाँहिं में डारो। भावे बोरो भावे तारो ॥
गुण पौरुष कुछ बुद्धि नहिं मेरी। सब विधि सरण गही प्रभु तेरी ॥
मैं चकई अरु तुम किये डोरा। मैं जो फिरूँ सब तुम्हरे जोरा ॥
मैं आ बैठा नाव तुम्हारी। आशा नदी सुँ करिये पारी ॥

१ तत्त्वरूप २ श्रेष्ठ अश्व ३ सुलभ ४ सनी हुई ५ शरीर।

अमर जाल जग सूँ मोहि काढ़ो । हाथ जोरि चरणदासा ठाढ़ो ॥
दो० गुरु के आगे जाय करि, ऐसे बोलै बोल ।
कछू कपट राखै नहीं, अर्ज करै मन खोल ॥३५॥
यह आपा तुमकूँ दिया, जित चाहो तित राख ।
चरणदास द्वारे परो, भावे झिड़को लाख ॥३६॥
ऋद्धि सिद्धि फल कछू न चाहूँ । जगत कामना को नहिं लाऊँ ॥
और कामना मैं नहिं राखूँ । रसना नाम तुम्हारो भाखूँ ॥
राज भोग का मोहि न साँसा[1] । नहीं इन्द्र पदवी लौं आसा ॥
चौरासी में बहु दुख पायो । ताते शरण तिहारी आयो ॥
मुक्त होन की मन में आवे । आवागमन सों जीव डरावे ॥
रामभक्ति की चाह हमारे । याते पकड़े चरण तुम्हारे ॥
प्रेम प्रीति में हिरदा भीजे । यही दान दाता मोहि दीजे ॥
अपना कीजे गहिये बाहीं । धरिये शिरपर हाथ गुसाईं ॥
चरणदास को लेहु उबारे । मैं अंडा तुम सेवनहारे ॥
दो० अंडा ज्यों आगे गिरे, तब गुरु लेवें सेय[2] ।
करैं बराबर आपनी, शिष्य को निससन्देह ॥३७॥
अपना करि सेवन करैं, तीन[3] भाँति गुरुदेव ।
पंजा पच्छी, कुंज मन, कछुवा दृष्टि जु भेव ॥३८॥
जो वे बिसरैं घड़ी भी, तो गंदा होइ जाय ।

१ इच्छा २ पोषण करना ३ पक्षी पंजे के द्वारा, कुंज मन के द्वारा और कछुवा दृष्टि के द्वारा अंडों का पोषण करता है ऐसे ही तीन प्रकार गुरु शिष्य का पोषण करते हैं ।

चरणदास यों कहत है, गुरु को राखि रिझाय ॥३६॥
पितु सों माता सौ गुना, सुत को राखे प्यार।
मन सेती सेवन करे, तन सों डाटरगार[1] ॥४०॥
जो देवें दुरशीस भी, होहो लगे अशीस।
सेवन करि समरथ कियो, उन पर वारों शीस ॥४१॥
माता सों हरि सौगुना, जिनसे सौ गुरुदेव।
प्यार करें औगुण हरें, चरणदास शुकदेव ॥४२॥
काचे भाँड़े सों रहे, ज्यों कुम्हार को नेह।
भीतर सों रक्षा करे, बाहर चोटैं देह ॥४३॥
दृष्टि पड़े गुरुदेव की, देखत करें निहाल।
औरे गति पलटे तबै, कागा होत मराल ॥४४॥
दया होय गुरुदेव की, भजे मान अरु मैन[2]।
भोग वासना सब छुटे, पावे अति ही चैन ॥४५॥
जब सतगुरु किरपा करे, खोलि दिखावें नैन।
जग झूठा दीखन लगे, देहिं परे[3] की सैन ॥४६॥

॥ अष्टपदी ॥

गुरु बिन और न जान मान मेरो कहो।
चरणदास उपदेश विचारत ही रहो ॥
वेद रूप गुरु होय कि कथा सुनावई।
पण्डित को धरि रूप कि अरथ बतावई ॥
गुरु ह्वै शेश महेश तोहि चेतन करैं।

१ गाली देना २ कामदेव ३ उधर की—भगवान की।

गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु होय खाली भरैं ॥
कल्पवृक्ष गुरुदेव मनोरथ सब सरैं ।
कामधेनु गुरु होय क्षुधा तृष्णा हरैं ॥
गंगा सम गुरु होय पाप सब धोवई ।
शशियर सम गुरु होय तपत सब खोवई ॥
सूरज सम गुरु होय तिमिर सब लेवई ।
पारब्रह्म गुरु होय मुक्ति पद देवई ॥
गुरु ही को करि ध्यान नाम गुरु को जपो ।
आपा दीजे भेंट पूजन गुरु ही थपो ॥
समरथ श्रीशुकदेव कहा महिमा करौं ।
अस्तुति कही न जाय शीस चरणन धरौं ॥

दो० हरि रूठे कुछ डर नहीं, तू भी दे छुटकाय ।
गुरु को राखो शीश पर, सब विधि करैं सहाय ॥४७॥

॥ अष्टपदी ॥

गुरु को तजि हरि सेव कभी नहिं कीजिये ।
बेमुख को नहिं ठौर नरक में दीजिये ॥
गुरु निंदक नहिं मुक्त गर्भ फिरि आवई ।
चौरासी लाख भुक्ति महा दुख पावई ॥
प्रथम करे गुरु देख परखि चरणों परै ।
उनकी धारण ध्यान टेक उर में धरै ॥
गुरु को रामहि जान कृष्ण सम जानिये ।
गुरु नृसिंह अवतार जु वामन मानिये ॥

गुरु को पूरण जान जु ईश्वर रूप ही।
सब कुछ गुरु को जान ये बात अनूप ही॥
हरि गुरु एकहि जानि यह निश्चय लाइये।
दुविधा ही का बोझ जु वेग बगाइये॥
धर्म पिता गुरु जान जु दृढ़ता राखिये।
लाज सकुच करि कान ढीठता नाखिये॥
मेरा यह उपदेश हिये में धारियो।
गुरु चरणन मन राखि सेव तन गारियो॥
जो गुरु झिड़कें लाख तो मुख नहिं मोड़ियो।
गुरु सों नेह लगाय सबन सों तोड़ियो॥
जो शिष्य साँचा होय तो आपा दीजियो।
चरणदास की सीख समझ कर लीजियो॥
मोकों श्रीशुकदेव यही समझाइया।
वेद पुराणन माहिं जु यों ही गाइया॥

दो० गुरु अस्तुति कहा कहि सकूँ, चरणदास कहा बुद्धि।
भक्तों की अब कहत हों, जो वे देवें शुद्धि॥४८॥
भक्तन की अस्तुति किये, तन मन हियो सिराय।
कलि का मैल रहै नहीं, बुधि उज्ज्वल ह्वै जाय॥४९॥
साधुन की सेवा करो, चरणदास चित लाय।
जनम मरण बन्धन कटैं, जगत व्याधि छुटि जाय॥५०॥

जो भक्तों की सेवा करै। यम के फंदे नाहीं परै॥
जिन साधों का दरशन देखा। तिनका यम सों रहा न लेखा॥

जो भक्तन को शीश नवावै । तन छूटै जब दुख नहिं पावै ॥
जो कोइ साध संग में रलै[१] । जठर अग्नि में नाहीं जलै ॥
जो साधों की अस्तुति भाखै । पावै भक्ति प्रेम रस चाखै ॥
जो भक्तन सों प्रीति लगावे । वह निश्चय हरि को अपनावे ॥
जो भक्तन की वाणी गावे । समझै अर्थ परमपद पावे ॥
साधु संग बिन गति नहिं होनी । क्या तपसी अरु क्या भयो मौनी ॥
चरणदास भक्तों की शरना । ह्वाँई जीवन ह्वाँई मरना ॥

—: भक्त लक्षण :—

दो० भक्तिवान निर्मल दशा, संतोषी निर्वास ।
मन राखै नवधा विषे, और न दूजी आस ॥५१॥
दयावान दाता गुण पूरे । पैज[२] धारणा बचनों शूरे ॥
मुक्ति कामना फल नहिं चाहैं । रिद्धि सिद्धि अरु त्यागैं लाहैं[३] ॥
हानि लाभ जिनके नहिं टोटा । वैरी मित्र खरा नहिं खोटा ॥
मान अपमान कछू नहिं तिनके । दुख सुख एक बराबर जिनके ॥
शुभ अरु अशुभ कछू नहिं जानें । राव रंक को ना पहिचानें ॥
कंचन काँच बराबर देखें । जग व्योहार कछू नहिं लेखें ॥
हार जीत नहिं वाद विवादा । सदा पवित्तर समझ अगाधा[४] ॥
हरष शोक जिनके नहिं कबही । लख चौरासी प्यारे सबही ॥
हिंसा अकस भाव नहिं दूजा । सब जीवन की राखे पूजा ॥
चरणदास शुकदेव बतावे । ऐसे लच्छण साधु कहावे ॥
दो० भक्तन की पदवी बड़ी, इन्द्रहु से अधिकाय ।

१ मिले २ टेक ३ लाभ ४ अथाह ।

तीन लोक के सुख तजे, लीन्हे हरि अपनाय ॥५२॥
अनन्य भक्ति निष्काम जो, करे सोई चरणदास ।
चारि मुक्ति[1] बैकुण्ठ लौं, सबसे रहै निरास ॥५३॥

—: साधु माहात्म्य :—

प्रभु अपने मुख से कही, साधू मेरी देह ।
उनके चरणन की मुझे, प्यारी लागै खेह ॥५४॥
आठ सिद्धि वे लें नहीं, कनक कामिनी नाहिं ।
मेरे सँग लागे रहैं, कभी न छोड़ैं बाहिं ॥५५॥
सब तज कर मोको भजें, मोही सेती प्रीति ।
मैं भी उनके कर बिक्यो, यही जु मेरी रीति ॥५६॥
साधु हमारी आतमा, सबसे प्यारे मोहि ।
नारद निश्चय कीजिये, साँच कहत हौं तोहि ॥५७॥
जिनके कारण मैं रच्यौ, अद्भुत यह संसार ।
उनही की इच्छा धरूँ, हर युग में अवतार ॥५८॥
प्रेमी को ऋणियाँ रहूँ, यही हमारो सूल[2] ।
चार मुक्ति दई ब्याज में, दे न सकौं अब मूल ॥५९॥
सर्बस दीन्हों भक्त को, देख हमारो नेह ।
निर्गुण सों सगुण भयो, धरी पशू की देह ॥६०॥
मेरे जन मो में रहैं, मैं भक्तन के माहिं ।
मेरे अरु मम सन्त के, कछु भी अन्तर नाहिं ॥६१॥
साध सोवै तहाँ सोय रहुँ, भोजन सँग ही जेवँ ।

१ सारूप्य, सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य २ शूल ।

जो वह गावै प्रेम सों, मैं हूँ ताली देवँ ॥६२॥
मम भक्ता जित जित फिरैं, गवनै[१] लागा जावँ ।
जहाँ तहाँ रच्छा करौं, भक्तवछल मेरो नावँ ॥६३॥
भक्त हमारो पग धरै, जहाँ धरूँ मैं हाथ ।
लारे लागो ही फिरौं, कबहुँ न छोड़ूँ साथ ॥६४॥
मोको वश कियो जो चहै, भक्तन की करि सेव ।
उनमें ह्वै कर मैं मिलौं, करौं बहुतही हेव[२] ॥६५॥
पृथ्वी पावन होत है, सब ही तीरथ आदि ।
चरणदास हरि यों कहैं, चरण धरैं जब साध ॥६६॥
जिनकी महिमा प्रभु करैं, अपने मुख सों भाख ।
तिनकी कौन बराबरी, वेद भरत हैं साख[३] ॥६७॥
जिनकी आशा करत हैं, स्वर्ग माहिं सब देव ।
कबहूँ दरशन पाय हैं, चरण कमल की सेव ॥६८॥
अपने अपने लोक में, सभी करैं उत्साह ।
साधू काया छोड़ि करि, गमन करैं किस राह ॥६९॥
धनि नगरी धनि देश है, धनि पुर पट्टन[४] गावँ ।
जहँ साधू जन उपजियो, ताके बलि बलि जावँ ॥७०॥
भगत जु आवैं जगत में, परमारथ के हेत ।
आप तरैं तारैं परा, मँडैं[५] भजन के खेत ॥७१॥
भवसागर सों तारि करि, लै जावैं बहु जीव ।
साधू केवट[६] राम के, पार मिलावैं पीव ॥७२॥

१ पीछे पीछे २ स्नेह ३ गवाही ४ शहर ५ नाव खेने वाला मल्लाह ६ लगजाय ।

काम क्रोध मोह लोभ हनि, गर्व तजै जो साध।
राम नाम हिरदै धरै, रोम रोम औराध* ॥७३॥
साधु महिमा को कहिसकै, शोभा अधिक अपार।
रसना[1] दोय हजार सों, शेषहु जावैं हार ॥७४॥
अनन्य भक्ति करि प्रेमसों, जीति लिये गोविन्द।
चरणदास हो वश किये, पूरण परमानन्द ॥७५॥

—: सत्संग महिमा :—

तप के बरष हजार हू, सतसंगत घड़ि एक।
तौ भी सरवर[2] ना करै, शुकदेव किया विवेक ॥७६॥
सतसंगति महिमा बड भाई। स्मृति अरु वेद पुराणन गाई॥
मुनि वशिष्ठ कह्यो यहि भेवा। साधु संग को तरसैं देवा॥
साधु संग को नारद जानै। सो वह पिछलो जन्म पिछानै॥
देखो संगति की अधिकाई। बालमीकि अरु शबरी गाई॥
अजामील सतसंगति परिया। अनगिन पाप किये सब जरिया॥
सतसंगति बहु पतित उधारे। अधम सरीखे मुक्ति पधारे॥
जात जुलाहा अरु रैदासा। संगति साधु हुआ परकासा॥
साधुन की संगति मुकताई। चरणदास शुकदेव बताई॥
दो० जब जब दरशन राम दें, तब मांगौं सतसंग।
चाहौं पदवी भक्त की, चढ़ै सु नवधा रंग ॥७७॥
कूबा सदना सैना नाई। बहुतक नीच भये उँचयाई॥
जैसे ठौर ठौर को पानी। सुरसरि मिलि भयो गंगारानी॥

---

१ जीभ २ बराबरी *स्मरण करे।

जैसे काठ लोह को तारै। ऐसे संगति मिलि भया पारै ॥
जैसे पारस लोहा लागा। सो वह कंचन भयो सुभागा[१] ॥
देवल तीरथ वहु मग धावै। साधुसंग बिन गति नहिं पावै ॥
ढाका[२] पात पान के साथा। संगति मिलि गयो भूपन हाथा ॥
ज्यों गोविन्द सँग गाई कुबरी। सूवा के सँग गणिका उबरी ॥
हरि भगतन में दीजै बासा। जन्म जन्म माँगै चरणदासा ॥
दो० ऊँची पदवी साधु की, महिमा कही न जाय।
सुर नर मुनि जग भूप ही, देखत रहे लजाय ॥७८॥

॥ राग सारंग ॥

करौ नर हरि भक्तन को संग।
दुख बिसरै सुख होय घने ही तन मन पलटै अंग ॥
ह्वै निष्काम मिलो संतन सों नाम पदारथ मंग।
जिहि पाये सब पातक नाशैं उपजै ज्ञान तरंग ॥
जो वे दया करैं तेरे पर प्रेम पिलावैं भंग।
जाके अमल दरश ह्वै हरि को नैनन आवे रंग ॥
उनके चरण शरण ही लागो सेवा करो उमंग।
चरणदास तिनके पग परसन आस करत है गंग ॥

—: भगवत महिमा :—

दो० बिन होनी हरि करि सकैं, होनी देहिं मिटाय।
चरणदास करु भक्ति ही, आपा देहु उठाय ॥७९॥
हरि चितवै सो साँची बाता। औरन सों नहिं टूटै पाता ॥

१ सुन्दर २ टेसू-छीला।

जो कछु चाहा सो उन करई । अब चाहै सो भी सब सरई ॥
अग्नि माहिं तृण घास बचावै । घट में सगरो सिंधु समावै ॥
पावक राखै पानी माहीं । जल राखै जहँ धरती नाहीं ॥
गिरिवर सागर माहिं तरावै । चाहै हलका काठ डुबावै ॥
सुई के नाके हस्ती[1] काढ़ै । मूल[2] पात बिन लकड़ी बाढ़ै ॥
नरकी छाती दूध निकासै । उपजावै वह खेत अकासै ॥
चाहै गूंगे वेद पढ़ावै । अँधरे आँखें खोलि दिखावै ॥
सब लायक सामरथ गुसाईं । चरणदास शुकदेव बताई ॥
दो० प्रभु चाहै सोई करै, ताकूँ टोकै कौन ।
देखि देखि अचरज रहा, चरणदास गहि मौन ॥८०॥
महल पवन पर रचै मुरारी । अग्नि के माहिं करै फुलवारी ॥
चाहै बिन बादल बरसावै । बिन सूरज दिन करि दिखलावै ॥
खाली भरै भरे निघटावै[4] । जो चाहै सोई प्रगटावै ॥
पाथर पानी करै बहावै । छिन में सगरो सिंधु सुखावै ॥
चाहै जल का थल करि डारै । राई कूँ परबत करै भारै ॥
रंकन[3] कूँ करै छत्तरधारी । चाहै भूपन देह उजारी ॥
जो चाहै सो आपहि करै । औरन के शिर झूठे धरै ॥
चरणदास शुकदेव जनावै । साँचे गुणाबाद जो गावै ॥
दो० यह अस्तुति करतार की, जिन रचिया संसार ।
अद्भुत कौतुक[5] करि रह्यो, लीला अगम अपार ॥८१॥
उपजावे पाले विनशावे । अनगिन चन्द सूर दरशावे ॥

१ हाथी २ जड़ ३ दरिद्री ४ खाली करे ५ खेल ।

कोटिक अंड पलक में करे। जब चाहे तब कछु ना रहे॥
जब फैले तब रूप अनेका। जब समिटे तब एक हि एका॥
बटक[1] बीज का खेल निहारा। एक बीज का सकल पसारा॥
तामें बीज अनंतहि देखा। गिनूँ कहाँ लौं रहा न लेखा॥
ऐसे हरि आपा विस्तारा। कहत सुनत देखत हू हारा॥
अपरमपार पार नहिं पाऊँ। अस्तुति करता मैं सकुचाऊँ॥
समझि समझि मन में रहि जाऊँ। चरणदास हो शीस नवाऊँ॥

दो० लीलासिन्धु अगाध गति, मो पै कही न जाय।
चरणदास यों कहत है, सोचत गयो हिराय॥८२॥

कोटिक ब्रह्मा अस्तुति करही। वेद कहत प्रभु परे परे ही॥
कोटिक शम्भू करैं समाधा। जानि पड़ै नहिं रूप अगाधा॥
कोटिक नारद से यश गावें। गुण अगाध[2] कछु अंत न पावें॥
कोटिक ध्यानी ध्यान लगावें। हरि कैसो कछु रूप न पावें॥
ज्ञानी कोटि कथैं वह ज्ञाना। समझ थकी उनहूँ नहिं जाना॥
कोटिक शारद करैं विचारा। बुद्धि थकी जब कह्य अपारा॥
सुरनरमुनि वा भेद न लहिया। शोचिशोचिचकिचकिथकिरहिया॥
निरगुण सरगुण कहा न जावे। चरणदास शुकदेव सुनावे॥

दो० चरणदास वा रूप की, पटतर[3] दई न जाहि।
राम सरीखे राम हैं, और बतावों काहि॥८३॥

वाकी अस्तुति कहा बखानूँ। जैसा वह तैसा नहिं जानूँ॥
बुधि विचार करि हारा ज्ञाना। अनभै थकी नाहिं पहिचाना॥

१ बट का वृक्ष २ अथाह ३ बराबरी।

आदि न अंत मध्य नहिं जाका । दहिना बावाँ पीठ न आगा ॥
हरा पीत श्वेत नहिं काला । नारी पुरुष न वृद्ध बाला ॥
रूप न रंग सिहीं नहिं मोटा । नया पुराना बड़ा न छोटा ॥
नाम रूप किरिया सूँ न्यारा । नहिं हलका नहिं कहिये भारा ॥
बानी चार परे निरबाना । काहू विधि वह जाय न जाना ॥
पुष्प गंध नादन ते झीना । गुरु शुकदेव सुनाय जु दीना ॥

दो० कौन लखे को कहि सके, अचरज अलख अभेव ।
ज्ञान ध्यान पहुँचे नहीं, निर्विकार निर्लेव ॥८४॥

सुनत अचम्भा मोकूँ आया । जाके बचन रूप नहिं काया ॥
निराकार नहिं, ना आकारा । नहिं अडोल,नहिं डोलन हारा ॥
पाँच तत्त्व त्रैगुण ते आगे । अद्भुत अजरज ध्यान न लागे ॥
नहिं परगट नहिं गूप न ठाऊँ[१]। समझ सकों नहिं थकि थकि जाऊँ
जैसो आगे में कहि आयो । फिर समझो वैसो नहिं पायो ॥
जो कुछ कहिया नाहीं नाहीं । सो सब देखा वाके माहीं ॥
सकल सर्वदा व्हाँ पहिचानी । चरणदास शुकदेव बखानी ॥

दो० वा में गुण अनगिनत हैं, अपरमपार अगाध ।
देखो परगट ही भये, रूप नाम अरु नाद[२] ॥८५॥

वृक्ष बीज का भेद बताऊँ । भिन्न भिन्न परगट दिखलाऊँ ॥
जो कोइ निरा[३] बीज कूँ बूझे । ताकूँ वह निरगुण ही सूझे ॥
जब समझै तब सब गुण माहीं । तामें डाल मूल फल छाहीं ॥
ऐसे पूरणब्रह्म पिछानो । निराकार निरगुण मत जानो ॥

१ सीमित स्थान २ शब्द ३ केवल ।

वे निरगुण सरगुण ते न्यारे । निरगुण सरगुण नामविचारे ॥
अकथ कथा कछु कथिय न जाई । जो भाषूँ सोई मुरखाई ॥
कोई कहो सुनो मन आनो । वैसा नहिं निश्चय करि जानो ॥
बड़ बड़ ऋषि मुनि पण्डित भारे । चरणदास सब खोजत हारे ॥

दो० वहि निरगुण सरगुण वही, वहि दोनों से न्यार ।
जो था सो जाना नहीं, सोचा बारंबार ॥८६॥
अनंत शक्ति लीला अनंत, गुण अनंत बहु भाव ।
कौतुक रूप अनंत हैं, चरणदास बलि जाव ॥८७॥
नाम भेद किरिया अनंत, अनंत धरे अवतार ।
बीस चार तिनमें अधिक, कहैं शुकदेव विचार ॥८८॥
राम कृष्ण पूरण कला, चौबीसों में दोय ।
निरगुण से सरगुण वही, भक्तों कारण होय ॥८९॥

॥ रागबिलावल ।

अलख निरंजन अगम अपार ।
एक अनेक भेष बहु कीन्हे सुन्दर रचना रची सँवार ॥
निरगुण हरि सरगुण हो खेलो अचरज लीला करि विस्तार ।
अपनो चरित आप ही देखे ऐसो अद्भुत कौतुकधार ॥
रूप वाराह पकरि हिरण्याक्षहि धरती लाये ताहि संहार ।
यज्ञपुरुष अरु दत्तात्रेयी अरु श्री बद्रीपति हि विचार ॥
सनत्कुमार ऋषभ अरु ध्रुववर पृथू मच्छ अरु कूर्म उदार ।
हयग्रीव अरु हंसरूप ही महाबली नरसिंह बलधार ॥
हरि परगट ह्वै गजै छुटायो वामन कपिल सरस गुणसार ।

मन्वन्तर धन्वन्तर प्रगटे परशुराम रामचन्द्र मुरार ॥
पूरणकला ईश तिहुँपुर को कृष्ण प्रगट हो कंस पछार ।
वेद्व्यास अरु बोध कलंकी ये सब भये चौबीस अवतार ॥
युग युग माहिं आप परगट ह्वै दुष्टदलन सन्तन रखवार ।
चरणदास शुकदेव श्याम की बाँकी गति को वार न पार ॥
दो० एक एक सों आगरो,[१] महिमा कही न जाय ।
अनंत रँगीले महल में, आपहि बैठे आय ॥६०॥
अनन्त रँगीले महल बनाये । तामें आप राम ही आये ॥
नाम रूप गुण न्यारे न्यारे । गिनत शारदा गणपति हारे ॥
मन्दिर रूप बहुत छवि सोहैं । जहाँ तहाँ मेरो मन मोहैं ॥
हरे श्वेत पीत अरु लाले । पिसताकी[२] ऊदे[३] अरु काले ॥
बेलदार लहरा छवि बूटे । चीतमताले[४] और तिखूटे ॥
बूंद बूंद अरु गंडे दारे । जानौ चित्तर हाथ सँवारे ॥
रँगा रंग बहु चित्तरकारी । कहूँ कहाँ लौं मो बुधि हारी ॥
दो पाये अरु पुनि चौपाये । बहु पाये कछु कहे न जाये ॥
वृक्ष रूप अरु पक्षी नाना कीट पतंगा थिर चर जाना ॥
जल में मीन बहुत परकारे । चरणदास शुकदेव विचारे ॥
दो० थावर जंगम चर अचर, बहुत छबीली भांति ।
राजस तामस सात्विकी, बहु अधीन[५] बहु क्रांति[६] ॥६१॥
वानर नर असुरा सुरा, यक्षगण गन्धर्व प्रेत ।

१ उत्तम २ पिस्ता के रंग का हरा ३ जामून का सा रंग ४ चित कबरे ५ शीतल स्वभाव वाले ६ तेज स्वभाव वाले ।

सबही महल[१] बराबरी, सबही सेती हेत ॥९२॥
खिरकी नैन चावसों खोले । मुख द्वारे नाना विधि बोले ॥
बहुत भाँति की नाना बानी । चतुर कूड़[२] भोली अरु यानी[३] ॥
कहिं अबोल कहिं बोल न आवे । पै सब महलन वह दरशावे ॥
साक्षात हरि ही कूँ जानो । भवन भवन में ताहि पिछानो ॥
काया क्षेत्तर ज्ञानी जाने । क्षेत्रग आतम रूप बखाने ॥
देही क्षर गीता में गायो । अक्षर जीव खोल दिखलायो ॥
काया मन्दिर आप रमायो । ताते राम नाम धरवायो ॥
देह सँयोग राम कहलायो । चरणदास शुकदेव बतायो ॥
दो० सूरज चींटी आदि दै, लघु दीरघ के माहिं ।
सब में पोई आतमा, बाहर कोई नाहिं ॥९३॥
छोटे भाँड़े[४] में करै, छोटा ही परकाश ।
बड़े जु भाँड़े में करै, जेता होय उकाश[५] ॥९४॥
ज्ञानवन्त कूँ मैं दियो, दीपक को दृष्टान्त ।
जो वह समझै चाव सूँ, मिटै तिमिर अरु भ्रान्त[६] ॥९५॥
जैसे ही है पिण्ड में, तैसे ही ब्रह्मण्ड ।
भीतर बाहर रमि रह्यो, सात द्वीप नव खण्ड ॥९६॥

—: ज्ञानदशा :—

आप लखे ते वाकूँ पावे । जो पै सतगुरु भेद बतावे ॥
ज्ञान दृष्टि सेती दरशावे । आपा मिटे ब्रह्म ठहरावे ॥
ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय जहँ नाहीं । ध्याता ध्यान ध्येय मिटि जाहीं ॥

१ शरीर २ मूर्ख ३ ज्ञानवान ४ शरीर ५ जगह ६ भ्रम ।

जब हो एक दूसरा नासे । बन्ध मुकत के रहैं न साँसे ॥
मृतक अवस्था जीवत आवे । करम रहित वह स्थिर गति पावे ॥
तब कोइ मिन्तर वैरी नाहीं । पाप पुण्य की परैं न छाहीं ॥
हरष शोक सम होजा दोऊ । रच्छा करो कि मारो कोऊ ॥
कोऊ हाथ में भोजन देजा । कोऊ छीन कर यों ही लेजा ॥
दोनों एक बराबर वाके । जग व्योहार कछू नाहिं जाके ॥
हरि बिन और पिछान न कोई । तिनके इच्छा रही न दोई ॥
ज्ञान दशा ऐसे करि गाई । चरणदास शुकदेव बताई ॥
दो० ज्ञान दशा आवन कठिन, बिरला जानै कोय ।
ज्ञान दशा जब जानिये, जीवत मृत्यक होय ॥६७॥

—: वाचक ज्ञानी :—

वाचक ज्ञानी बहुतक देखे । लच्छज्ञानी[1] कोइ लेखे[2] लेखे ॥
ज्ञानी बिगड़े विषयी होई । कथे एक अरु चाले दोई ॥
बुरे करम औगुण चितलावे । भले करम गुण सब बिसरावे ॥
विषय वासना के रँगराते । झूँठ कपट छल बल मदमाते ॥
इन्द्री वश मन हाथ न आवे । पाप करन सों नाहिं डरावे ॥
ज्ञान कथे अरु वाद बढ़ावे । रहन गहन का भेद न पावे ॥
ब्रह्मवृत्ति का आवन भारी । चरणदास शुकदेव बिचारी ॥
दो० उनतीसों[3] लच्छण लिये, भक्ति सहित हो ज्ञान ।
ज्ञान दशा जब आय है, करे आतमा ध्यान ॥६८॥

१ ब्रह्मज्ञान में स्थित २ गिने-चुने ¶ लक्ष्य ज्ञानी के ~~उन्तीस~~ लक्षण इसी पुस्तक में ब्रह्म ज्ञानसागर प्रसंग के अन्त में दिये हैं ।

३ भक्तों के २६ लक्षण पृष्ठ १६६ पर देखें ।

—: नवधा भक्ति :—

भक्ति दशा अब कहत हौं, बिसरे आपा आप।
चरणदास यों कहत है, छूटैं तीनों[1] ताप ॥६६॥

॥ अष्टपदी ॥

नवधा भक्ति सँभारि अंग नौ जानि ले।
शरवण चितवन और कीर्त्तन मानि ले ॥
सुमिरण बन्दन ध्यान और पूजा करो।
प्रभु सों प्रीति लगाय सुरति चरणन धरो ॥
होकर दासहि भाव साध संगति रलो।
भक्तन की कर सेव यही मत है भलो ॥
आपा अर्पण देय धैर्य्य दृढ़ता गहो।
क्षमा शील सन्तोष दया धारे रहो ॥
यह जो मैंने कहा वेद का फूल है।
योग ज्ञान वैराग्य सबन का मूल है ॥
प्रेम भक्ति का तात[2] ताप तीनों नसैं।
अर्थ धर्म काम मोक्ष सकल तामें बसैं ॥
जो राखे मन माहिं विवेक विचार सों।
पावे पद निर्वाण बचे जग भार सों ॥
कहैं गुरू शुकदेव मया[3] के भाव सों।
चरणहि दासा होय सुनो बहु चाव सों ॥

१ दैहिक, दैविक, भौतिक २ पिता अर्थात ऊपर वर्णन की गई नवधा भक्ति एवं सन्तसेवा करने से तथा क्षमा शील आदि धारण करने से प्रेमा भक्ति उदय होती है ३ दया

॥ राग सोरठ, गौरी व आसावरी ॥

साधो नवधा भक्ति करो रे।

कलियुग में यह बड़ो पदारथ गहि गहि ताहि तरो रे ॥
जेजे यासों भये शिरोमणि तिन को नाम सुनाऊँ।
बड़ै कथा विस्तार कहूँ तो याते सूक्ष्म गाऊँ ॥
जन प्रहलाद तरो सुमिरण ते वन्दन सों अक्रूर।
चरणकमल की सेवा सेती लक्ष्मी रहत हजूर ॥
चन्दन चर्चतहू पृथुराजा उतरो भवजल पार।
बलि राजा तन अर्पण कीन्हों सदा रहैं हरि द्वार ॥
परमदास हनुमत हू उबरो उत्तम पदवी पाई।
सखा सुभाव तरो है अर्जुन ताकी महिमा गाई ॥
मुक्त भयो है परीक्षित राजा सुनि भागवत पुराना।
श्री शुकदेव मुनी से वक्ता हुये रूप भगवाना ॥
ज्ञान योग वैराग्य सबन सों प्रेम प्रीति है न्यारी।
चरणदास ने गुरु क्रिपा सों साँची बात विचारी ॥

॥ प्रेमा भक्ति ॥

दो० नवों अङ्ग के साधते, उपजे प्रेम अनूप।
रणजीता यों जानिये, सब धर्मन का भूप ॥१००॥

सब मत अधिकी प्रेम बतावैं। योग युगत[1] सूँ बड़ा दिखावैं ॥
प्रेमहि सूँ उपजे वैराग। प्रेमहि सूँ उपजे मन त्याग ॥
प्रेमभक्ति सूँ उपजे ज्ञाना। होय चाँदना मिटे अज्ञाना ॥

---

१ युक्ति।

दुरलभ प्रेम जु हाथ न आवे। हरि किरपा करिदें तो पावे ॥
प्रेम प्रीति के वश भगवाना। सकल शास्तर कियो बखाना ॥
किसी भक्त हिय प्रेम जु जागे। तो हरि दरशत रहैं जु आगे ॥
प्रेमहि सूँ जग कूँ उपजावे। निरगुन सरगुन हो हो आवे ॥
सकल शिरोमणि प्रेमहि जानो। चरणदास निहचै मन आनो ॥

दो० प्रेम बराबर योग ना, प्रेम बराबर ज्ञान।
प्रेम भक्ति बिन साधबा, सब ही थोथा ध्यान ॥१०१॥
प्रेम छुटावै जगत कूँ, प्रेम मिलावै राम।
प्रेम करै गति और ही, लै पहुँचै हरिधाम ॥१०२॥

॥ अष्टपदी ॥

वह करै काग सूँ हंसा। एक रहै पिया का संसा[१] ॥
वह जात बरन कुल खोवे। अरु बीज बिरह का बोवे ॥
जो प्रेम तनक चित आवे। वह औगुण सबै नशावै ॥
प्रेमलता जब लहरै। मन बिना योग ही ठहरै ॥
कोइ चतुर खिलारी खेलै। वह प्रेम पियाला झेलै ॥
जो धड़ पै शीस न राखै। सोई प्रेम पियाला चाखै ॥
तन मन सूँ जा बौराई। वह रहै ध्यान लौ लाई ॥
वह पहुँचे हरि के पासा। यों कहैं चरण ही दासा ॥

दो० प्रेमी जन हरि आप हो, आपा[२] निकसे नाहिं।
गुरु शुकदेव दिखावई, समझ देखि मन माहिं ॥१०३॥
हिरदे माहीं प्रेम जो, नैनों झलके आय।

१ चाह २ अहंकार।

सोइ छका हरि रस पगा, वा पग परसो धाय ॥१०४॥
गदगद वाणी कंठ में, आँसू टपकें नैन।
वह तो विरहिनि राम की, तलफत है दिन रैन ॥१०५॥
हाय हाय हरि कब मिलैं, छाती फाटी जाय।
ऐसा दिन कब होयगा, दरशन करै अघाय ॥१०६॥
बिन दरशन कल[1] ना पड़े, मनुआँ धरे न धीर।
चरणदास की श्याम बिन, कौन मिटावै पीर ॥१०७॥
पीव बिना तो जीवना, जग में भारी जान।
पिया मिले तो जीवना, नहीं तो छूटो प्रान ॥१०८॥
मुख पियरो सूखें अधर[2], आँखें खरी उदास।
आह जु निकसे दुःख भरी, गहरे लेत उसास ॥१०९॥
वह विरहिनि बौरी भई, जानत ना कोइ भेद।
अगिनि बरै हियरा जरै, भये कलेजे छेद ॥११०॥
अपने वश वह ना रही, फँसी विरह के जाल।
चरणदास रोवत रहै, सुमिरि सुमिरि गुण ख्याल ॥१११॥
वा तन को विरहा लगो, ज्यों घुन लागो दार[3]।
दिन दिन पीरी होत है, पिया न बूझैं सार[4] ॥११२॥
वै नहिं बूझैं सार ही, विरहिनि कौन हवाल।
जब सुधि आवे लाल की, चुभत कलेजे भाल ॥११३॥
पीव चहो कै मत चहो, वह तो पी की दास।
पिय के रँगराती रहे, जग सों होय उदास ॥११४॥

---

१ चैन २ ओंठ ३ काष्ठ ४ सँभाल।

पीपी करते दिन गया, रैनि गई पिय ध्यान ।
बिरहिनि के सहजे सधै, भक्ति योग अरु ज्ञान ॥११५॥
बिरहिनि के इक राम बिन, और न कोई मीत ।
आठ पहर साठौं घड़ी, पिया मिलन की चीत ॥११६॥
जाप करै तौ पीव का, ध्यान करै तौ पीव ।
पीव बिरहिनि का जीव है, जी बिरहिनि का पीव ॥११७॥

अथ चारों युग वर्णन

—: कुण्डलियाँ :—

॥ सतयुग ॥

सतयुग साँचा बोलते परमहंस को ध्यान ।
सतवादी सत राखते सत नहिं देते जान ॥
सत नहिं देते जान प्रान जोपै तजि देई ।
निश्चय होती मुक्ति दरशते राम सनेही ॥
शुकदेव कहि चरणदास सों अब ही सतयुग जान ।
सत बोलो सत सों रहो सत की गहिये आन ॥

॥ त्रेतायुग ॥

त्रेता में तप साधते आसन संयम धार ।
पाँचौं इन्द्री रोकते जब मन जाता हार ॥
जब मन जाता हार खैंचि अनहद में धरते ।
कै अपनो ही इष्ट ध्यान ताही को करते ॥

आप विसर्जन होय मुक्ति निश्चय करि पाते।
चरणदास शुकदेव तपस्या चाल दिखाते ॥

॥ द्वापरयुग ॥

द्वापर पूजा वंदना प्रेम सहित जो होय।
कहा राजसी मानसी पूजा कहिये दोय ॥
पूजा कहिये दोय जैसी जाके मन भावै।
धरै नेम आचार अंत ना चित्त डुलावै ॥
हित करि पूजा कीजिये द्वापर को यह भेव।
चरणदास निश्चय करौ कहिया गुरु शुकदेव ॥

॥ कलियुग ॥

कलियुग हरि गुण गाइये गुणावाद ही सार।
भजन करो मन मगन ह्वै भय अरु सकुच निवार ॥
भय अरु सकुच निवार जाति कुल गर्व बहावो।
साज बाज लै संग राम को गाय रिझावो ॥
कथा कीर्त्तन सों तरैं कलियुग ही के माहिं।
शुकदेव कहि चरणदास सों तारो गहि गहि बाहिं ॥
॥ इति श्री चारों युग वर्णन सम्पूर्णम् ॥

❀ अथ नाम अंग वर्णन ❀

—: नाम महिमा :—

दो० प्रणऊँ श्री शुकदेव कूँ, वाणी कहूँ अगाध।

महिमा गाऊँ नाम की, सब मिलि सुनियो साध ॥१॥
ज्यों की त्योंही कहत हूँ, कछू न राखूँ भेद।
निश्चय आवे नाम की, छूटे सब ही खेद[1] ॥२॥
जनम मरन जम दंड के, गर्भवास की त्रास।
नाम रटे सबही छुटे, लख चौरासी गाँस[2] ॥३॥
कई बार जो यज्ञ करि, योग करे चित लाय।
चरणदास कहैं नाम बिन, सभी अफल हो जाय ॥४॥
आठ धातु में गुण नहीं, जो पारस के माहिं।
तप तीरथ व्रत साधना, राम नाम सम नाहिं ॥५॥
ज्यों सेमर[3] का सेवना, ज्यों लोभी का धर्म्म।
अन्न बिना भुस कूटना, नाम बिना यों कर्म्म ॥६॥
छोड़े सब ही वासना, हो बैठे निष्काम।
चरण कमल में चित धरे, सुमिरे रामहिं राम ॥७॥
ऐसा हो जब संत हो, तब रीझै करतार।
दरशन दे अपना करें, कभी न छोड़ै लार[4] ॥८॥
चार वेद किये व्यास ने, अर्थ बिचार विचार।
तामें निकसी भक्ति ही, राम नाम ततसार ॥९॥
जिन कहिया शुकदेव कूँ, सुनिया प्रेम प्रतीति।
तिन जग में परगट कियो, जैसी चहिये रीति ॥१०॥
ब्रह्महत्या अरु नारि की, बालक हत्या होय।

१ दुख २ गाँठ, बंधन ३ एक प्रकार के फूल की कली जिसमें रुई होती है ४ संग।

राम नाम जो मन बसे, सब कूँ डारे खोय ॥११॥
हिय आवत जग दुख टरे, कंठ आय अघ जाय ।
मुख सूँ बोले आय करि, ताकी कौन चलाय ॥१२॥
ऐसा है हरि नाम ही, मोहिं राम की सौं[1] ।
जाकूँ होवे परख ही, सो समझे ह्याँ लौं[2] ॥१३॥
बिन समझे पातक नशैं, समझ जपे हो मुक्त ।
चरणदास यों कहत हैं, जो कोइ जाने युक्त ॥१४॥
नामहि ले जल पीजिये, नामहि लेकर खाह[3] ।
नामहि लेकरि बैठिये, नामहि ले चल राह ॥१५॥
जब लग जागे राम कहु, तन मन सूँ यहि चींत ।
चरणदास यों कहत हैं, हरि बिन और न मींत ॥१६॥
तेरा तो कोई है नहीं, मात पिता सुत नार ।
ताते सुमिरो राम कूँ, हे मन बारंबार ॥१७॥
जिहि कारण भटकत फिरे, घर घर करत सलाम ।
तेरे तो वे हैं नहीं, ऐ मन सुमिरो राम ॥१८॥
जीवत ही स्वारथ लगे, मूये देह जराय ।
ऐ मन सुमिरो राम कूँ, धोखे काहि पराय ॥१९॥
हाथी घोड़े धन घना, चंदमुखी बहु नार ।
नाम बिना यमलोक में, पावे दुःख अपार ॥२०॥
जब लग जीवे राम कहु, रामहिं सेती नेह ।
जीव मिलेगो राम में, पड़ी रहेगी देह ॥२१॥

१ सौगंध २ तक ३ खाय ।

अचरज साधन नामका, भक्ति योग का जीव ।
जैसे दूध जमाय के, मथि करि काढ़ा घीव ॥२२॥

—: नाम जप के प्रकार :—

॥ कुंडलिया ॥

आठ मास मुख सूँ जपै सोलह मास कंठ जाप ।
बत्तीस मास हिरदै जपै तन में रहै न पाप ॥
तन में रहे न पाप भक्ति का उपजे पौधा ।
मन रुक जावे जहाँ अपरबल कहिये योधा ॥
शुकदेव कही चरणदास सूँ यही भेद तत सार ।
बहुरू आवै नाभि में ताका कहूँ विचार ॥

दो० पाँच बरष जप नाभिसों, रग रग बोले राम ।
देह जीव निज भक्त हो, पहुँचे हरि के धाम ॥२३॥
त्रिकुटी में जप राम कूँ, जहाँ उजाला होय ।
श्वासा माहीं जपे ते, द्विविधा[1] रहे न कोय ॥२४॥
गगन मँडल में जाप करि, जित है दशवाँ द्वार ।
चरणदास यों कहत हैं, पहुँचे हरि दरबार ॥२५॥
नासा अग्रे जाप करि, देखे नूर अगाध ।
बहुतक अचरज अरु खुलैं, चरणदास कहै साध ॥२६॥
नाम उठा कर नाभि सूँ, गगन माहिं ले जाय ।
जहाँ होय परकाश ही, शुकदेव दिया बताय ॥२७॥
मन ही मन में जाप करि, दरपण उज्ज्वल होय ।

१ द्वैत ।

दरशन होवै राम का, तिमिर जाय सब खोय ॥२८॥
कूक कूक कर नाम जप, छुटै सात[1] अरु पाँच[2] ।
जासों मन ठहरा रहे, चरणदास कहैं साँच ॥२६॥
सुरति माहिं जो जप करे, तन सूँ न्यारा जौन ।
मिले सच्चिदानन्द में, गहे रहे जो मौन ॥३०॥

—: अनन्य भक्ति :—

सकल शिरोमणि नाम है, सब धर्मन के माहिं ।
अनन्य भक्त वहि जानिये, सुमिरण भूले नाहिं ॥३१॥
आन धरम माने नहीं, आन देव नहिं ध्यान ।
ऐसे भक्त अनन्य कूँ, कोई पावै जान ॥३२॥
पतिव्रता यह जानिये, आज्ञा करै न भंग ।
पिय अपने के रँग रतै, औरन सूँ बेढंग ॥३३॥
अपने पियकूँ सेइये, आन पुरुष तजि देह ।
पर घर नेह निवारिये, रहिये अपने गेह ॥३४॥
आज्ञाकारी पीव की, रहे पिया के संग ।
तन मन सूँ सेवा करे, और न दूजो रंग ॥३५॥
रंग होय तो पीव को, आन पुरुष विष रूप ।
छाहँ बुरी परधर्म की, अपनी भली जु धूप ॥३६॥
अपने घर का दुःख भला, पर घर का सुख छार ।
ऐसे जाने कुल वधू, सो सतवन्ती नार ॥३७॥

---

१ काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, अहंकार २ पँच इन्द्रियों के विषय ।

पति की ओर निहारिये, औरन से कह काम ।
सबै देवता छोड़ करि, जपिये हरि का नाम ॥३८॥
खसम तुम्हारो राम है, इत उत झख मत मार ।
चरणदास यों कहत हैं, यही धारणा धार ॥३९॥
यह शिर नवै तो राम कूँ, नाहीं गिरियो टूट ।
आन देव नहिं परसिये, यह तन जावो छूट ॥४०॥
पतिव्रता को व्रत गहो, व्यभिचारिणि अँग टार ।
पति पावे सब दुख नशैं, पावै सुक्ख अपार ॥४१॥
जब तू जानै पीव ही, वह अपनों करि लेहि ।
परमधाम में राखि करि, बाँह पकरि सुख देहि ॥४२॥

—: नाम माहात्म्य :—

यही सिखायें देतहूँ, धारो हिरदय माहिं ।
ऐसा पौधा बोइये, ताकी बैठो छाहिं ॥४३॥
सतवादी सत सूँ रहो, सत ही मुख सूँ बोल ।
एक ओर हरि नाम रख, एक ओर जग तोल ॥४४॥
सभी निचोरे कहत हूँ, भक्ति करो निष्काम ।
कोटि तपस्या यही है, मुख सूँ कहिये राम ॥४५॥
राम नाम मुख सूँ कहो, राम नाम सुन कान ।
रोम रोम हरि कूँ रटो, ऐसी गहिये बान ॥४६॥
विद्या माहीं वाद है, तप के माहीं ऋद्धि ।
राम नाम में मुक्ति है, योग माहिं यों सिद्धि ॥४७॥
तातें त्यागो वासना, राखो रामहि नाम ।

कोटि बन्ध छुटि जायँगे, पहुँचो हरि के धाम ॥४८
राम नाम में ये सबै, ऋद्धि सिद्धि अरु मोक्ष ।
ऐसा इष्ट सँभारिये, चरणदास कहि सोक्ष[1] ॥४९॥
जाका कीया सब बना, सातद्वीप नवखण्ड ।
चरणदास यों कहत हैं, तीनलोक ब्रह्मण्ड ॥५०
तब कारण सब कुछ किया, नाना विधि सुख दीन ।
तैं वाकूँ जाना नहीं, नाम न कबहूँ लीन ॥५१
अबके औसर फिरि बन्यो, पाई मानुष देह ।
चरणदास यों कहत हैं, राम नाम ही लेह ॥५२

॥ राग केदारा ॥

सुनो भाई नाम की महिमा ।
मुक्ति चारों सिद्धि आठों बसत हैं तेहि माँ ॥
बालमीकि सो बन के वासी किये थे जिन पाप ।
भयो है सब ऋषि शिरोमणि जपे उलटे जाप ॥
गणिका सी अति महा पापी सो पढ़ावत कीर ।
नाम के परताप सेती[2] कियो हरिपुर[3] सीर[4] ॥
अजामील से पतित कामी वेश्या सों रति कीन ।
चढ़ि विमानै गयो सुरपुर नाम सुत हित लीन ॥
और बहुतै पतित तारे गिनै कापै जाहिं ।
दान जप तप योग संयम नाम सम तुल नाहिं ॥
व्यास नारद शिव ब्रह्मादिक रटत जाकूँ शेश ।

---

१ थोड़े शब्दों में कथन किया है २ से ३ भगवत धाम ४ निवास ।

गुरू शुकदेव नाम को चरणदास कूँ उपदेश ॥

॥ कवित्त ॥

नाम के प्रताप नन्दलाल आप भये प्रभु,
नाम के प्रताप सुत दशरथ को कहायो है।
नाम के प्रताप पैज[1] राखी प्रहलादजू की,
नाम के प्रताप दौरो द्वारका सूँ धायो है ॥१॥
नाम के प्रताप की न महिमा मोपै कही जात,
नाम के प्रताप सब सन्तन सहायो है।
सोई नाम वास[2] अब आस लगो चरनदास,
सोई नाम चार वेद विमल २ गायो है ॥२॥
नाम के प्रताप शबरी सुरन तैं सरस करी,
नाम के प्रताप अधम लोक[3] कूँ पठायो है।
नाम के प्रताप अजामील कूँ विमान आयो,
नाम के प्रताप गज ग्राह सूँ छुटायो है ॥३॥
नाम के प्रताप सब दीनन को दुख हरो,
नाम को प्रताप शुकदेवजी दृढ़ायो है।
सोई नाम वास अब आस लगो चरणदास,
सोई नाम चार वेद विमल २ गायो है ॥४॥

—: पांच प्रेत वर्णन :—

दो० नाम अंग महिमा अधिक, मोपै कही न जाय।
पाँच प्रेत अब कहत हूँ, जाकूँ सुनि चितलाय ॥५३॥

१ टेक २ स्थित ३ भगवत धाम।

योग तपस्या भक्ति कूँ, ज्ञान बिगाड़न पाँच ।
जीवत दुख दै जगत में, मुये नरक दे आँच ॥५४॥
काम क्रोध मोह लोभ से, और पाँचवाँ गर्व ।
राज करै वसुधा[1] विषे, इन वश कीने सर्व ॥५५॥

—: अथ काम अंग :—

दो० काम बली वर्णन करूँ, जिन मारे बलवन्त ।
जाका बकसी[2] नारि है, जीते गुणी महन्त ॥५६॥

—: नारी वर्णन :—

॥ राग सोरठ ॥

साधो नारि सबल रे भाई । नहिं माने राम दुहाई ॥
बाँदर ज्यों पकरि नचावे । हरिजी सूँ नेह छुटावे ॥
दया धर्म सब खोवे । जब नैन कजल भरि जोवे[3] ॥
जिनका चित चोरा राँड़ी । तिनकी जग थू थू भाँड़ी[4] ॥
उन सब ही सरबस खोया । नर शीश पकर कर रोया ॥
जनम पदारथ छीना । स्याही का टीका दीना ॥
दोनों ही मुख सों खाया । फिर फिर के गरभ दिलाया ॥
काम कटक[5] में सूरी । वह सावँत[6] कहिये पूरी ॥
बड़े बड़े योधा मारे । अरु बहुतक शूर पछारे ॥
गुरु शुकदेव बतावे । बटमारन[7] तोहि दिखावे ॥
चरणदास यह जानो । तुम छल बल कला पिछानो ॥

१ पृथ्वी २ सेनाध्यक्ष ३ देखे ४ तिरस्कार ५ सेना ६ योधा ७ पथिकों को मारने वाले ।

नारी ने हरि सुमिरण सूँ खोये ।
राजा परजा मुंडत[१] चुंडत[२] नैन कटाक्षन मोहे ॥
राती चूनर चटक मटक ले भूषण काजल साधे ।
मुड़ मुसकावे मधुरी बाणी प्यार प्रीत कर बाँधे ॥
बहुतन को उन योग छुटायो बहुतन को तप छीन्हों ।
बहुतन की उन भक्ति बिगारी अंग विषय रस दीन्हों ॥
बँदुवा[३] करि बहु नाच नचायो फंदा मोह लगायो ।
याते सावधान ही रहियो मैं तुम कूँ समुझायो ॥
गुरु शुकदेव बतावै साधो निश्चय ठगिनी जानो ।
चरणदास कहै हाथ न आवो नीके ताहि पिछानो ॥

साधो परतिरिया सूँ डरिये ।
जाके दरश परश के कीये जीवत नरक में परिये ॥
गौतम घरनी[४] सुन्दरि सुनि कै इन्द्रासन तजि आयो ।
जो गति भई जगत में जानी भलो कलंक लगायो ॥
शृङ्गी ऋषि वन में तप कीन्हो सुरपति देखि डरायो ।
रंभा[५] भेजि हरो सत जाको सबही तेज सिरायो[६] ॥
दैत्यरु देवत नर जो हूये नारी देख लुभाये ।
ताको फल ऐसो ही पायो अजहूँ कुयश सुनाये ॥
चरणदास शुकदेव गुरू ने दे उपदेश बचाये ।
यती सती कोइ हाथ न आये कामी पकरि नचाये ॥

---

१ सिर मुंडाने वाले साधू २ जटाधारी ३ दास ४ पत्नी ५ स्वर्ग की एक अप्सरा ६ नाश हो गया ।

अरे नर परनारी मत तकरे।
जिन जिन ओर तको डायन[1] की बहुतन कूँ गई मखरे[2] ॥
दूध आक को पात कटइया[3] झाल अगनि की जानो।
सिंह मुछारे विष कारे को ऐसे ताहि पिछानो ॥
खानि नरक की अति दुखदाई चौरासी भरमावे।
जनम जनम कूँ दाग लगावै हरि गुरु तुरत छुटावै ॥
जग में फिटि[4] फिटि महिमा खोवै राखै तन मन मैला।
चरणदास शुकदेव चितावै सुमिरो राम सुहेला[5] ॥

दो० नर नारी सब चेतियो, दीन्हो प्रकट दिखाय।
परतिरिया परपुरुष हो, भोग नरक को जाय ॥१॥
परनारी कै आपनी, दोनों बुरी बलाय।
घर बाहर की आग ज्यों, देवे हाथ जलाय ॥२॥

॥ काम जीतन उपाय ॥

चटक मटक सब छोड़ दे, देही रूप बिगार।
देख न कोई रीझ है, ना होवे लगवार ॥३॥
यही ढाल है जत्त की, लगै न शस्तर काम।
आठ अंग हैं काम के, तासूँ रहु निष्काम ॥४॥
काम कान में आय करि, फिर आवत है नैन।
बहुरि हिये में आय करि, लगे बहुत दुख दैन ॥५॥

वह काम बुरारे भाई। सब देवे तन बोराई ॥
पंचों में नाक कटावे। वह जूती मार दिलावे ॥

१ डाकिनी २ खा जाना ३ काँटेदार पेड़ ४ अपमान ५ सुगम।

मुहँ काला गधे चढ़ावै । वहु लोग तमाशे आवै ॥
झिड़का ज्यों डोलै कूता[१] । सब ही के मन सूं ऊता[२] ॥
कोई नीके मुख नहिं बोलै । शरमिंदा[३] जग में डोलै ॥
वह जीवत नरक मँझारी । सुन चेतो नर अरु नारी ॥
काम अंग तजि दीजे । सतसंगति ही करि लीजे ॥
कहै चरणही दासा । हरि भक्तन में कर वासा ॥

दो० तन मन जारै काम ही, चित करै डावाँडोल ।
धरम शरम सब खोय के, रहै आप हिय खोल ॥६॥

वह दया छमा को मारे । जत सत को पकरि पछारे ॥
शुचि[४] नेम को दूरि कढ़ावे[५] । मुख ऊपर धूरि उड़ावे ॥
जग भीतर महिमा खोवे । पापों की माला पोवे ॥
वह धीरज नाहीं राखे । वह मुख सों झूठी भाखे ॥
वह चाल चलै विपरीता । करि विषय भोग की चीता ॥
काम बली जहँ आवे । अरु बहुतक औगुण लावे ॥
यह मैन[६] खोट का पूरा । कोइ जीते गुरुमुख शूरा ॥
साधु भक्ति वह गुनियाँ[७] । जिन काम दुष्ट को हनियाँ[८] ॥
चेत कही शुकदेवा । सब चरणदास सुनि लेवा ॥

दो० सुनि के जो चित में धरे, फेरि चले वह चाल ।
खाँड़ा पकरे शील[९] का, काम हने ततकाल ॥७॥

१ कुत्ता २ ठुकराया गया ३ लज्जित ४ पवित्रता ५ करे ६ काम ७ विवेकी गुणवान ८ मारा ९ ब्रह्मचर्य ।

॥ अथ क्रोध अंग ॥

क्रोध महा चण्डाल है, जानत हैं सब कोय ।
जाके अँग वरणन करूँ, सुनियो सुरति समोय ॥१॥
क्रोध भूतके चरित सुनाऊँ । भिन्न भिन्न परगट दिखलाऊँ ॥
क्रोध भूत जब ता पर आवे । तन मन की सब सुधि बिसरावे ॥
नैंना लाल वदन सब कारो । रोम रोम व्यापे हत्यारो ॥
महा चण्डाल नीच अति घोरी । अति विपरीत बुद्धि करै औरी ॥
अपने हाथ आपको मारे । अपने कपड़े आपहि फारे ॥
मुहड़े[1] झाग मरोड़ै हाथा । कहै बहकती फूहड़[2] बाता ॥
हाफै बहुत आपको गाली । जेंवत आवे पटके थाली ॥
कबहुँ शस्त्र सों मारन लागे । कबहूँ कूँये पड़ने भागे ॥
भली कहे ताहि भोग[3] सुनावे । बुरे भले पर ईंट चलावे ॥
सबल देखि शीला होजावे । निबल देखि बहु दुन्द मचावे ॥
याका यतन करो मन भावे । चरणदास शुकदेव बतावे ॥
दो० जिहि घट आवे धूम[4] सूँ, करै बहुत ही ख्वार[5] ।
पत[6] खोवे बुधि कूँ हने, कहा पुरुष कहा नार ॥२॥
वह बुद्धि भ्रष्ट करि डारे । वह मारहि मार पुकारे ॥
वह सब तन हिंसा छावे । कहिं दया न रहने पावे ॥
वह गुरु से बोलै वैंड़ा[7] । साधों सूँ डोलै एँडा[8] ॥
वह हरिसूँ नेह छुटावे । वह नरक माहिं ले जावे ॥

---

१ मुख २ असभ्य ३ गाली देना ४ तेजी से ५ हैरान ६ इज्जत ७टेढ़ा
८ अकड़ा हुआ ।

वह आतमघाती जानो । वह महामूढ़ पहिचानो ॥
सोंटों की मार दिलावे। कवहूं कै शीश कटावे ॥
वह नीच कमीना कहिये । ऐसे सूँ डरता रहिये ॥
वह निकट न आवन दीजे । अरु क्षमा अंकमर[1] लीजे ॥
जब क्षमा आय किया थाना[2] । तब सब ही क्रोध हिराना[3] ॥
कहैं गुरु शुकदेव खिलारी । सुनु चरणदास उपकारी ॥

॥ अथ मोह अंग ॥

दो० क्रोध अंग पूरो कियो, कहूँ मोहका अंग ।
जाहि लगे दुख दे घना, कबहुं न छोड़े संग ॥१॥
माया मोह बिछाइया, जाल सँभारि सँभारि ।
आय आय तामें फँसे, बहुत पुरुष बहु नारि ॥२॥
फँसे आय करि चाव सूँ, लेन गया नहिं कोय ।
चरणदास यों कहत हैं, पछिताये कहा होय ॥३॥
छूट सके नहिं जाल सूँ, मिरगा ज्यों अकुलाय ।
कूद कूद निकसो चहे, ज्यों ज्यों उरझत जाय ॥४॥
मोह शहद सम जानिये, मक्खी सम जिय जान ।
लालच लागे जित फँसे, शीश धुनें अज्ञान ॥५॥
बन्दीखानो भवन है, सब दिन धंधे जाइ ।
मोह छुटावै राम सूँ, डारै नरक मँझाइ ॥६॥
लख चौरासी योनि में, फिर वह भरमैं जाय ।
ह्वाँसे निकसै कठिन सूँ, कबहूँ औसर पाय ॥७॥
तिरिया मोह महा बलदायी । मोह संतान सदा दुखदायी ॥

१ गोद-हृदय से लगाना २ मुकाम ३ चला गया ।

मोह कुटुंब अरु भाई बंधा । समझे नहीं मूढ़मति अंधा ॥
देव भूत जिहि कारण धावे । ठग चोरी करि खोट कमावे ॥
बस्तर भूषण वाहन[1] मोहा । सब मिलि किया जीव सूँ द्रोहा ॥
द्रव्य लाल अरु हीरा मोती । सब मिलि मोह लगावैं गोती ॥
मोह महल धरती अरु गाऊँ । बड़ा मोह जू अपना नाऊँ ॥
जामें फँसे रंक अरु राजा । तिहि कारण धंधा दुख साजा ॥
घर काजैं बहुतै दुख पाया । अपना सबही मूल गवाँया ॥
बड़े बड़े खेद उठाये सबही । भूले ध्यान राम का जप ही ॥
जीते मोह शूरमा कोई । मिले राम कूँ साधू सोई ॥
होय मुक्ति जग बहुरि न आवे । चरणदास शुकदेव बतावे ॥

—: मोह निवारण उपाय :—

दो० मोह बड़ा दुख रूप है, ताकूँ मार निकास ।
प्रीति जगत की छोड़ दे, जब होवे निरवास[2] ॥८॥
जग माहीं ऐसे रहो, ज्यों जिह्वा मुख माहिं ।
घीव घना भक्षण करे, तो भी चिकनी नाहिं ॥९॥
जग माहीं ऐसे रहो, ज्यों अम्बुज सर[3] माहिं ।
रहै नीर के आसरे, पै जल छूवत नाहिं ॥१०॥
ऐसा हो जो साधु हो, लिये रहै वैराग ।
चरण कमल में चित धरै, जग में रहै न पाग[4] ॥११॥
मोह बली सब सूँ अधिक, महिमा कही न जाय ।
जाको बाँधो जग सबै, छूटै ना बौराय[5] ॥१२॥

१ सवारी २ वासना से रहित ३ तालाब ४ फँसा हुआ ५ बहकता रहता है ।

॥ अथ लोभ अंग ॥

लोभ नीच वर्णन करूँ, महा पाप की खान ।
मंत्री जाका झूठ है, बहुत अधर्मी जान ॥१॥
तृष्णा जाकी जोय[1] है, सो अंधा करि देय ।
घटी वढ़ी सूझै नहीं, नहीं काल का भेय[2] ॥२॥
दम्भ मकर[3] छल भगल[4] जो, रहत लोभ के संग ।
मुये नरक ले जायँगे, जीवत करै उदंग[5] ॥३॥
देहैं धर्म छुटाय ही, आन धर्म ले जाय ।
हरि गुरु ते बेमुख करैं, लालच लोभ लगाय ॥४॥
चहूँ देश भरमत फिरे, कलह[6] कलपना साथ ।
लोभ काज उठ उठ लगैं, दोऊ पसारै हाथ ॥५॥

लोभी भक्त होय नहिं कबही । साधु पुराण कहत हैं सबही ॥
लोभी सती न होवे शूरा । लोभी दाता सन्त न पूरा ॥
लोभी हितू न होवे साँचा । लोभी रहे जगत में राँचा ॥
लोभी रहे द्रव्य के माहीं । तन छूटे पै निकसे नाहीं ॥
लोभी करे जीव की घाता । लोभी करे कपट की बाता ॥
लोभी पाप न करता डरे । लोभी जाय कष्ट में परे ॥
लोभी बेचै अपना शीसा । लोभी डूबे त्रिसबेबीसा ॥
गुरु शुकदेव बतावैं हम कूँ । सो यह कथा कही मैं तुम कूँ ॥
चरणदास कहै लोभ न कीजे । हरि के पदपंकज मन दीजे ॥

दो० चींटी बाँदर खगन[7] कूँ, लोभ बहुत दुख दीन ।

१ स्त्री २ भय ३ दगाबाजी ४ बेइमानी ५ उत्पात ६ लड़ाई ७पक्षी ।

याकूँ तजि हरिकूँ भजो, चरणदास परवीन ॥६॥
लोभ बढावे मान कूँ, करे जगत आधीन ।
बोझ[1] घटा भिष्टल[2] करे, करे बुद्धि को हीन ॥७॥
लोभ गये ते आवई, महा बली संतोष ।
त्याग सत्य कूँ संगले, कलह निवारण शोक ॥८॥
घट आवे सन्तोष ही, कहा चहै जग भोग ।
स्वर्ग आदि लौं सुख जिते, सबकूँ जानै रोग ॥९॥
संतोषी निश्चल दिशा[3], रहै राम लौलाय ।
आसन ऊपर दृढ़ रहै, इत उत कूँ नहिं जाय ॥१०॥
काहू से नहिं राखिये, काहू विधि की चाह ।
परम संतोषी हूजिये, रहिये बेपरवाह ॥११॥
चाह जगत की दास है, हरि अपना न करे ।
चरणदास यों कहत है, व्याधा नाहिं टरै ॥१२॥

॥ अथ अभिमान अंग ॥

चार अंग पूरे किये, कहूँ गर्व गुण गाय ।
बहुत सिकंडी[4] मारिया, शिर पर छत्र फिराय ॥१॥
अभिमानी चढ़ि करि गिरे, गये वासना माहिं ।
चौरासी भरमत भये, क्योंहीं निकसे नाहिं ॥२॥
अभिमानी मींजे[5] गये, लूट लिये धन वाम[6] ।
निरअभिमानी हो चले, पहुँचे हरि के धाम ॥३॥
चरणदास कहैं आपा थपै, गिनै आपको पाँच[7] ।

१ गौरव २ भृष्ट ३ दशा ४ बलवान ५ कुचले गये ६ स्त्री ७ पंच अथवा मुखिया ।

मान वड़ाई कारने, सहै जगत की आँच ॥४॥
करैं वड़ाई कारने, परपंची छल धूत ।
अभिमानी फूले फिरैं, ज्यों मरघट[१] का भूत ॥५॥
अभिमानी की मुक्ति न होई । अभिमानी मति अपनी खोई ॥
ऐंठ अकड़ अभिमानी माहीं । अभिमानी नीचा हो नाहीं ॥
विन नान्हापन सुख नहिं पावे । आनँदपद कूँ कैसे जावे ॥
झूठ कपट अभिमानी खेलै । कंचन वरतन माटी मेलै ॥
झगल[२] दंभ नितही मन माहीं । निकट साँच कभु आवै नाहीं ॥
हूँ हूँ हूँ करता ही डोलै । काहू ते सीधा नहिं वोलै ॥
इन लच्छण जीवत दुख पावे । नरक माहिं तन छूटे जावे ॥
चरणदास शुकदेव वतावे । पूरा सो अभिमान नशावे ॥
दो० चरणदास यों कहत है, सुनियो सन्त सुजान ।
मुक्ति मूल आधीनता, नरक मूल अभिमान ॥६॥
रूपवन्त गरवावे । कोइ मो सम दृष्टि न आवे ॥
तरुणापा गरवाना । वह अँधरा होवे राना[३] ॥
कहै धन मध[४] में परवीना[५] । सव मेरे ही आधीना ॥
कहै कुल अभिमानी सूचा[६] । मैं सव जातिन में ऊँचा ॥
वह विद्या गर्व जु भारी । करै वाद विवाद अनारी[७] ॥
अरु भूप करै अभिमाना । उन आपै ही कूँ जाना ॥
उन काल नहीं पहिचाना । सो मार करै यमसाना[८] ॥

१ शमशान २ धोखा ३ समर्थ मानना ४ में ५ मुख्य अथवा वड़ा ६ पवित्र
७ मूर्ख ८ नष्ट करना ।

गुरु शुकदेव चितावें। तोहि परगट नैन दिखावें ॥
यम बाँधि पकरि लेजावें। वे बहुतै त्रास दिखावें ॥
जब कहाँ जाय अभिमाना। मेरा नीका सुन यह ताना ॥
फिर डारे नरक मँझारी। सुनि चेतो नर अरु नारी ॥
तो मद मत्सर[1] तजि दीजे। साधों के चरण गहीजे ॥
हरि भक्ति करो चितलाई। जब सकल व्याधि छुटि जाई ॥
कर जाति बरण कुल दूरा। हो सतसंगति में पूरा ॥
जब मुक्त धाम कूँ पावे। फिर गर्भ योनि नहिं आवे ॥
कहैं गुरु शुकदेव बखानो[2]। यह चरणदास मन आनो ॥

दो० मन में लाय विचार कूँ, दीजे गर्व निकार।
नान्हापन जब आय है, छूटे सकल विकार ॥७॥
पाँचों उतरैं भूत जब, ह्वै हो ब्रह्म अरूप।
आनँदपद कूँ पाय हो, जित है मुक्तस्वरूप ॥८॥
पाँच प्रेत जो ये कहे, सतगुरु के परताप।
शील[3] अंग अब कहत हूँ, जासूँ छूटैं पाप ॥९॥

॥ इति पंचप्रेत वर्णन ॥

॥ अथ शील अंग वर्णन ॥

दो० अब मैं गाऊँ शीलकूँ, ऐ हो सन्त सुजान।
नर नारी सब ही सुनो, दे दे चित बुधि कान ॥१॥
रूप गुणी कुलवंत जो, अरु होवे धनवन्त।
शील बिना शोभा नहीं, भिष्टै[4] नरक पड़न्त ॥२॥

१ ईर्षा २ वर्णन करता हूं ३ ब्रह्मचर्य ४ भृष्ट होकर।

शील विना जो तप करै, करै शील विन दान।
योगयुक्ति करै शील विन, सो कहिये अज्ञान ॥३॥
शील बड़ो ही योग है, जो करि जानै कोय।
शीलविहीनो चरणदास, कबहूँ मुक्त न होय ॥ ४ ॥
सब शुभ लक्षण तो विषे, शील न आया एक।
जप तप निष्फल जाहिंगे, चरणहिं दास विवेक ॥ ५ ॥
पूजा संयम नेम जो, यज्ञ करै चित लाय।
चरणदास कहैं शील विन, सभी अकारथ जाय ॥ ६ ॥
सोइ सती सोइ शूरमा, सोइ दाता अधिकाय।
शील लिये नित ही रहैं, तो निष्फल नहिं जाय ॥ ७ ॥
शील अंग ऊंचो अधिक, उन्तीसों के बीच।
जा घट शील न आइया, सो घट कहिये नीच ॥ ८ ॥
शील न उपजे खेत में, शील न हाट विकाय।
जो हो पूरा टेक का, लेवे अँग उपजाय ॥ ९ ॥
शील विना नरकै परै, शील विना यम दण्ड।
शील विना भरमत फिरै, सात द्वीप नौ खण्ड ॥१०॥
शील विना भटकत फिरै, चौरासी के माहिं।
पहिले होवे प्रेत ही, यामें संशय नाहिं ॥११॥
सब तजि सेवो शील कूँ, राम नाम लौ लाय।
जीवत शोभा जगत में, मुये मुक्ति ह्वै जाय ॥१२॥
जाको शील सुभाव है, ताकी दूर बलाय।
ताकी कीरति जगत में, सुन हो कान लगाय ॥१३॥

शील रहेते सब रहैं, जेते हैं शुभ अंग ।
ज्यों राजा के रहे ते, रहै फौज को संग ॥१४॥
सत्य गया तो क्या रहा, शील गया सब झाड़ ।
भक्ति खेत कैसे बचै, टूट गई जब बाड़ ॥१५॥
ज्वानी शील न राखिया, बिगड़ गई सब देह ।
अब पछितावा क्या करे, मुख पर उड़िया खेह ॥१६॥
शील गये शोभा घटे, या दुनिया के माहिं ।
कूकर ज्यों झिड़क्यो फिरे, कहीं भी आदर नाहिं ॥१७॥
शील गये गुरु सूँ फिरे, हरि सों बेमुख होय ।
चरणदास कहाँ लौं कहैं, सर्वस डारै खोय ॥१८॥
धिक जीवन संसार में, जाको शील नशाय ।
जग में फिटफिट होत है, मुये यातना[1] पाय ॥१९॥
शील कसैला आँवला, और बड़ों के बोल ।
पाछे देवे स्वाद वे, चरणदास कहि खोल ॥२०॥
शील निरोगा नींब सा, औगुण डारे खोय ।
पहिले करुवा दुख लगे, पाछे गुण सुख होय ॥२१॥
लाख यही उपदेश है, एक शील कूँ राख ।
जन्म सुधारो हरि मिलो, चरणदास की साख ॥२२॥
शीलवंत के चरण का, जो चरणोदक लेय ।
रोग दोष मिटि जायँ सब, रहै न यम का भेय ॥२३॥
आठ[2] अंग सूं शील ही, जा घट माहीं होय ।

१ दंड २ आठ प्रकार का मैथुन ।

चरणदास यों कहत हैं, दुर्लभ दर्शन सोय ॥२४॥
शीलवंत दर्शन बड़े, देखत पातक जाय।
वचन सुनै मन शुद्ध हो, खोटी दृष्टि सिराय ॥२५॥
शील सरोवर न्हाय करि, करो राम की सेव।
या सम तीरथ और ना, कहिया गुरु शुकदेव ॥२६॥
शील अंग पूरो कियो, महिमा अधिक अपार।
दया अंग बरणन करूँ, समझै छुटै विकार ॥२७॥

॥ अथ दया अंग वर्णन ॥

दो० परमारथ में दया बड़, जो घट उपजै आय।
परगट हो निर्वैरता, कर्म गाँठि खुल जाय ॥१॥
थावर जंगम चर अचर, या जग में हो कोय।
सब ही पै हित राखिये, सुखदानी ही होय ॥२॥
भोजन करो सँभाल करि, पानी पीजो छान।
हरा वृक्ष नहिं तोड़िये, कर्म बचे यों जान ॥३॥
औरो बहुत विचारि ले, जामें लगे न कर्म।
यही तपस्या जानिये, यही दया यहि धर्म ॥४॥
इक इन्द्री दो इन्द्रियाँ, ती इन्द्री अरु चार।
पंच इन्द्री लौं जीव की, हिंसा अकस[1] निवार ॥५॥
खावे वस्तु विचारि के, बैठे ठौर विचार।
जो कुछ करै विचारि करि, किरिया यही आचार ॥६॥
मन सों रहु निर्वैरता, मुख सूँ मीठा बोल।

---

१. ईर्षा

तन सूँ रचा जीव की, चरणदास कहि खोल ॥७॥
करुवा वचन न बोलिये, तन सूँ कष्ट न देहु।
अपना सा जी जानिके, बने तो दुख हरि लेहु ॥८॥
मुख सूँ जो करुवा कहे, तन सूँ देवे कष्ट।
यही जु हिंसा जानिये, दया धर्म जा नष्ट ॥९॥
दश इन्द्री मन ग्यारवाँ, करि विचारि ले जान।
इनहीं सूँ सुख दीजिये, चरणदास पहिचान ॥१०॥
काहू दुख नहिं दीजिये, दुर्जन हो कै मीत।
सुखदायी सब जगत को, गहो दया की रीत ॥११॥
कोमलता परपीरता, सज्जनता निर्दोष।
सभी दया के अंग हैं, इन ते पावे मोच्च ॥१२॥
दया ज्ञान का मूल है, दया भक्ति का जीव।
चरणदास यों कहत हैं, दया मिलावे पीव ॥१३॥
दया नहीं तो कुछ नहीं, सब ही थोथी बात।
बाहर कथनी सोहनी, भीतर लागी घात ॥१४॥
छापे तिलक बनाय कै, माला पहिरी दोय।
दया बिना बक सम वही, साधुरूप नहिं होय ॥१५॥
दया न आई घट विषे, हीया बड़ा कठोर।
यह नगरी कैसे बसे, तामें हिंसा चोर ॥१६॥
पँडिताई बहुतै करी, दया न राखी जीव।
छाछि छाछि तैं लै लई, डारि दिया तत घीव ॥१७॥
तोहि पण्डित मैं कहा कहूँ, मूरख कै परवीन।

लिया न तैं मत सूप का, चलनी का मत लीन ॥१८॥
दया गहेते सब नशैं, पाप ताप दुख द्वन्द ।
ऐसी परम पुनीत कूँ, तजै सो मूरख अन्ध ॥१६॥
दया बिना नर पतित है, दया बिना नर दुष्ट ।
दया बिना सुनवत[1] बने, सब ही थोथी गुष्ट[2] ॥२०॥
जन्म मरण छूटै नहीं, नाहीं कर्म नशाहिं ।
दया बिना बदला भरे, चौरासी के माहिं ॥२१॥
काम क्रोध मोह लोभ से, गरब आदि भजि जाय ।
चरणदास कहैं दया जो, घट में पहुँचै आय ॥२२॥
जितने बैरी जीव के, तिन में रहै न एक ।
चरणदास यों कहत हैं, दया जो आवै नेक ॥२३॥
दुख भाजैं सुख हों घने, काया नगरी ढंग ।
हिंसा रानी जो भजै, लेकर अपनो संग ॥२४॥
धन्य दया धनि शील कूँ, जिनसे रीझै राम ।
गुरु शुकदेव बतावई, सब ही सुधरैं काम ॥२५॥

॥ इति दया का अंग सम्पूर्णम् ॥

❀ माया अंग वर्णन ❀

॥ राग भैरव ॥

बैठा गुरु सूँ चलता[3] चेला । सुखी होय रहै रैन अकेला ॥
दया क्षमा रख राम सुहाती । बात कहै करुई नहिं ताती ॥

---

१ खोखला २ गोष्ठी अथवा चर्चा ३ भ्रमण करने वाला ।

बिन जाँचे उपदेश न दीजे । तरकी[1] सूँ चर्चा नहिं कीजे ॥
मौन गहे थोरा सा बोले । पलक न मिले नैन रहे खोले ॥
दृष्टि राख नासा के आगे । सत्य वचन मीठा मुख भाषे ॥
रसना उलट अकाश चढ़ावे । बिन ही बादल जल बरसावे ॥
पवन साधि मन कूँ ठहरावे । कामिनि कनक रूप बिसरावे ॥
आसन अडिग[2] सुरत अनहद में । अन्तर खोल मिले नहिं जगते ॥
चरणदास शुकदेव बतावे । ऐसा होय महन्त कहावे ॥

दो० जो बोलै तो हरिकथा, मौन गहै तो ध्यान ।
चरणदास यह धारणा, धारे सो सुज्ञान ॥१॥
माया की अस्तुति करूँ, होय रही संसार ।
अद्भुत लीला कर रही, शोभा अगम अपार ॥२॥
माया सकल पसार है, नाना रँग बहु क्रान्ति[3] !
जहँ लग यह आकार ही, चंचल मिथ्या भ्रान्ति[4] ॥३॥
जैसे सुपना रैन का, मुख दर्पण के माहिं ।
भासे है पर है नहीं, ज्यों तरुवर की छाहिं ॥४॥

यह माया सब कूँ मोहै । बस होय न ऐसा को है ॥
यह बहुत सोहनी लागे । सब ही नर नारी पागे ॥
कहिं चमक दमक बहु रूपा । अरु कहीं रंक कहिं भूपा ॥
अरु जहँ तहँ अधिक तमासे । बह भाँति भाँति ही भासे ॥
अरु जहँ लग सकल सवादा । कोइ करे जु वाद विवादा ॥
अरु काम क्रोध मोह लोभा । अरु मान बड़ाई शोभा ॥

१ तर्क करने वाला २ स्थिर ३ क्रिया शीलता ४ भ्रम ।

अरु पाँचों इन्द्री जानो । सब माया रूप पिछानो ॥
अरु पाँच तत्त्व गुण तीनों । सो माया ही कूँ चीन्हों ॥
यह मकर पेच छल जाने । अरु पहर पहर बहु बाने[1] ॥
गुरु शुकदेव जनावे । सब माया खेल दिखावे ॥

दो० जेते सुख संसार के, सब ही माया जार[2] ।
ता में दो कणका धरे, एक द्रव्य एक नार ॥५॥
लालच लागे चाव सूँ, गिरे आय करि लोय[3] ।
फँसे आप सूँ आप ही, गहि नहिं लाया कोय ॥६॥
पाँचों इन्द्री सों लखै, सो माया आकार ।
याही सेती सब भयो, जहाँ लग है साकार ॥७॥

अरु माया रूप अनन्ता । कोई जाने साधू सन्ता ॥
कहा सुना अरु देखा । सब माया रूप विशेखा ॥
आठ सिद्धि नौ[4] माया । जहाँ योगी तपी भुलाया ॥
अरु माया फंदे माहीं । सब जीव आइ फँसि जाहीं ॥
वे नरक माहिं दुख पावें । यम छप्पन[5] त्रास दिखावें ॥
फिर भुगतें लख चौरासी । वे गरभ योनि के वासी ॥
वे पशू देह धरि धावें । नहिं मुक्ति ठिकाना पावें ॥
चरणदास कहें नर चेतो । तजो माया ही सूँ हेतो[6] ॥

दो० जगत वासना के तजे, माया की न बसाय ।
कर्म छूटे मिटि जीवता, मुक्त रूप हो जाय ॥८॥

१ भेनाक २ जाल ३ लोग ४ नौनिद्धि ५ बहुत प्रकार की ६ आसक्ति ।

—:इन्द्रिय व मन वर्णन:—

फँसे न इन्द्री स्वाद में, चरणकमल में ध्यान ।
पर आशा कोइ ना रहे, लगे न माया बान ॥९॥
सबसे अधिकी ज्ञान है, तासे ऊँचो ध्यान ।
ध्यान मिलावै पीव कूँ, पावे पद निरबान[1] ॥१०॥
ध्याता ध्येय कैसे मिले, होय न बिच में ध्यान ।
तीनों एक हुये बिना, लहै न पद निरबान ॥११॥
इन्द्रिन के वश मन रहै, मन के वश रहै बुद्ध ।
कहो ध्यान कैसे लगे, ऐसा जहाँ विरुद्ध ॥१२॥
जित जित इन्द्री जात हैं, तित मन कूँ ले जात ।
बुधि भी संग हि जात है, यह निश्चय करि बात ॥१३॥
जित इन्द्री मन हूँ गया, रही कहाँ सूँ बुद्धि ।
चरणदास यों कहत हैं, करि देखो तुम शुद्धि ॥१४॥
इन्द्री मन के वश करे, मन कर बुधि के संग ।
बुधि राखै हरि पद जहाँ, लागै ध्यान अभंग ॥१५॥
इन्द्री मन मिल होत है, विषय वासना चाह ।
उपजे जैसे काम ही, नारी मिल अरु नाह[2] ॥१६॥
न्यारे न्यारे तत रहैं, होत न कछू उपाध ।
जुदे राख मन इन्द्रियन, गुरुगम[3] साधन साध ॥१७॥
इन्द्रिन सूं मन जुदा करि, सुरत[4] निरत[5] करि शोध[6] ।

१ मोक्ष २ पुरुष ३ गुरु का बताया हुआ ४ चित्त को सूक्ष्म लगन ५ निरन्तर लगना ६ शुद्ध करना ।

उपजे ना विष वासना, चरणदास को बोध ॥१८॥
इन्द्री रोके ते रुके, और यतन नहिं कोय ।
मन चंचल रिझवार है, रसिक सवादी सोय ॥१९॥
चलो करे थिर ना रहे, कोटि यतन करि राख ।
यह जब ही वश होयगा, इन्द्रिन के रस नाख[1] ॥२०॥
न्यारे न्यारे चहत हैं, अपने अपने स्वाद ।
इन पाँचों में प्रीति है, कछू न वाद विवाद ॥२१॥
दुर्जन के फूटे बिना, तेरी होय न जीत ।
चरणहिंदास विचारि करि, ऐसी गहिये रीत ॥२२॥
जुदी जुदी पाँचों कहूँ, एक एक का भेद ।
जो कोइ इनकूँ वश करे, सबही छूटैं खेद ॥२३॥

(१) नेत्र इन्द्रिय

यह इन्द्री आँख विचारो । सो देत महा दुख भारो ॥
वह राग द्वेष उपजावे । अरु हरष शोक लै आवे ॥
सो रूप माहिं फँसि जावे । तन मन में व्याधि उठावे ॥
वह देहि और के हाथा । करि डारै बहुत अनाथा ॥
वह फंदे माहीं डारै । अरु काम अगिनि में जारै ॥
यह डोले दौरी दौरी । कर चित बुधि की गति औरी ॥
कोइ साधु शूरमा मोड़े । जग सेती नैंना तोड़े ॥
कहँ चरणदास सुनि लीजे । कछु याका यतन करीजे ॥
दो० दीपक त्रिया निहारि करि, गिरै पतंग ज्यों जाय ।

[1] त्याग दो ।

कछू हाथ आवे नहीं, उलटो आप जराय ॥२४॥
उन तन मन सभी जराया। कछु भोंदू हाथ न आया ॥
अरु विषय वासना फैला। जब छुटा राम का गैला ॥
तो मुक्ति कहाँ सों होई। दिया जन्म अकारथ खोई ॥
अब क्या शिर मारैं कोई। घर ही में दुर्जन सोई ॥
यह दृष्टि सदा की वैरी। जो सुरत बिगारै तेरी ॥
वह माया मोह लगावै। अरु चौरासी भरमावै ॥
शर्म सकुच सब खोवैं। अरु बीज कुबुधि का बोवैं ॥
यह ठग चोरी की बानी[1]। अरु जार[2] करम अगवानी ॥
यह पानप[3] सभी घटावैं। यमपुर के त्रास दिखावैं ॥
कहैं गुरू शुकदेवा। ये आँख महा दुख देवा ॥
दो० ऐसी इन्द्री आँख की, सो अपनी नहिं होय।
गुरु शुकदेव बतावई, चरणदास सुन लोय ॥२५॥
दर्शन कीजे साधु का, के गुरु का कर लोय।
जहाँ तहाँ ब्रह्म देखिये, दुबिधा दुर्मति खोय ॥२६॥
वैरी मितर एक सा, एकै रूप कुरूप।
ऐसी होवै दृष्टि ही, जब ठहरे मन भूप ॥२७॥

२—श्रवण इन्द्रिय—

सुन दूजे इन्द्री काना। सो गुरु परतापैं जाना ॥
जब सुने काम रस रीता[4]। तब भूले पढ़ सुन गीता ॥
मन उपजे काम तरंगा। जब होत ध्यान में भंगा ॥

१ आदत २ व्यभिचार ३ तेज ४ विषय रस के तरीके।

फिर लोभ वचन सुन औरे । जब तृष्णा चहुँ दिशि दौरे ॥
कहिं द्रव्य हाथ लगि जावे । यों सोचि सोचि दुख पावे ॥
कहै ठग चोरी कर लाऊँ । कहिं गड़ा दबा ही पाऊँ ॥
काहू सुने जु दौलतबंधा । मन ही मन रोवे अंधा ॥
यों उपजे अधिकी लोभा । जब बढ़े पाप की गोभा ॥
कहैं चरणहिदास विचारी । सुन चेतो नर अरु नारी ॥
फिर सुने बड़ाई कुल की । जब पुलक हँसत है मुलकी[1] ॥
जो अपनी सुने बड़ाई । जब अहूँ[2] होत अकड़ाई ॥
फिर करन बड़ाई लागे । सोता ज्यों कूकर जागे ॥
जब उपजे बहु अभिमाना । अरु नेक न होवें नान्हा ॥
परनिन्दा बहुत सुहावे । नहिं और बड़ाई भावे ॥
अहंकार बढ़ा मन माहीं । आधीन बिना गति नाहीं ॥
सुनि उपजे तामस अंगा । जब करे बहुतही दंगा ॥
मन क्रोधरूप हो जावे । उठ उठ कर मारन धावे ॥
कभी सुने मोह के बैना । लगे हर्ष शोक दुख देना ॥
जब सुने कुटुँब की नीकी । तब करे खुशी बहु जीकी ॥
कोइ कुटुँब माहिं दुख पावे । सुन रोरो नैन गवाँवे ॥
जो हिरन कान वश हूवा । तो तीर लाग करि मूवा[3] ॥
शुकदेव कहैं यह जानो । सब कान विकार पिछानो ॥

—:इन्द्रिय का सत्कर्म:—

दो० मन दे सुनिये हरि कथा, सुनिये हरि यश कान ।

१ मुसकराकर २ अहंकार ३ मरा ।

ताहि विचारि जु कीजिये, होय भक्ति का ज्ञान ॥२८॥

उपजे ज्ञान भक्ति अरु योगा। सुन सुन उपजे राम वियोगा ॥
उपजे प्रेम अनन्य उमाहा। होय उछाह दरश का चाहा ॥
सुन सुन उपजे लक्षण साधू। सुनि २ पावे भेद अगाधू ॥
उपजे साधु संत की सेवा। गुरुमुख होय सुने यहि भेवा ॥
सुनि २ उपजे भय अरु लाजा। सो वे सकल सँवारन काजा ॥
सुनि सुनि यती सती हो जावे। नान्हा हो अभिमान नशावे ॥
सुनि सुनि छूटे यम की त्रासा। चौरासी में लहै न वासा ॥
सुनि सुनि चार पदारथ पावे। आवागमन के बीज जरावे ॥
सुनि सुनि काग हंस होजाई। चरणदास शुकदेव बताई ॥

दो० सुनि सुनि उपजे सुबुधि ही, लागे हरि का रंग।
सुनि सुनि उपजे कुबुधि ही, खोटी उठे तरंग ॥२९॥
ऐसी इन्द्री कान की, जाके युगल सुभाव।
कथा कीरतन ही सुनो, करि २ कोटि उपाव ॥३०॥
वचन सुनो गुरु साधु के, मन कूँ लावो मोर।
विषय वासना सूँ निकस, आवे हरि की ओर ॥३१॥

३—जिव्हा इन्द्रिय—

सरवन इन्द्री में कही, दोनों अंग दिखाय।
जिह्वा इन्द्री कहत हैं, चरणदास चित लाय ॥३२॥
कुटिल जु इन्द्री जीभ की, चाहे षटरस स्वाद।
या वश हो औगुण करे, जन्म जाय बरबाद ॥३३॥

यह बहुत चटोरी कहिये। याही ते डरते रहिये ॥

यह चोरी भी करवावे । यह पकड़ बन्ध में द्यावे[१] ॥
करे याही कारण जारी । यह करे बहुत ही ख्वारी[२] ॥
यह अमल[३] खान सिखलावे । अरु गाली मार दिलावे ॥
अरु बहुतै झूठ बुलावे । हो मीत नरक लेजावे ॥
खेले याही कारण जूवा । दुनियाँ में फिट फिट हूवा ॥
ये पाँचों[४] ऐब सुनाऊँ । रसना में सभी दिखाऊँ ॥
यह महा अपरबल जानों । अरु रणजीता हो मानों[५] ॥

दो० जिह्वा के जीते बिना, गये जन्म सब हार ।
चरणदास यों कहत है, भये जगत में ख्वार ॥३४॥
वंशी[६] डारी ताल में, मछली लागी आय ।
जिह्वा कारण जिय दियो, तलफि तलफि मरि जाय ॥३५॥
तजा न जिह्वा स्वाद कूँ, वा सँग दीन्हे प्रान ।
जो कोइ ऐसा जगत में, सो अज्ञानी जान ॥३६॥
या सूँ ले हरि नाम ही, गुणावाद ही भाख ।
जो बोले तो साँच ही, नाहीं मुख में राख ॥३७॥
मीठा वचन उचारियो, नवता[७] सब सूँ बोल ।
हिरदे माहिं विचारि करि, जब मुख बाहर खोल ॥३८॥
बिना स्वाद ही खाइये, राम भजन के हेत ।
चरणदास कहै शूरमा, ऐसे जीतो खेत ॥३९॥
जिन जीता है जीभ कूँ, तिन जीती सब देह ।

१ डालदे २ बरबादी ३ अफीम ४ चोरी, जारी, नशा, झूठ, जूवा ५ कहता हूँ
६ मछली पकड़ने का कांटा ७ दीनता युक्त वचन ।

कहैं गुरू शुकदेवजी, मुक्तिधाम फल लेह ॥४०॥
रसना जीते भक्त जो, सो योगी सो साध।
अगमपन्थ वहि पग धरे, पहुँचे देश अगाध ॥४१॥

४—त्वचा इन्द्रिय—

त्वचा सु इन्द्री काम की, नित ही खेले दाव[1]।
पशु पक्षी असुरा नरा, फँसे आयकरि चाव ॥४२॥
यह त्वचा सु मल मल माँजे। अरु काजल सुरमा आँजे॥
यह तेल फुलेल लगावे। अरु चिकना गात बनावे॥
अरु वस्तर भूषण पहिरे। करै अंजन मंजन गहिरे॥
अरु सपरस की विधि ठाने। सब याही कूँ सुख माने॥
अरु फँसे आय करि दोऊ। अब निकसन कैसे होऊ॥
हित[2] गाँठ पेंच गहि दीन्हा। दोउ नेह वचन बहु कीन्हा॥
अरु एक एक ने बाँधा। वह समझै नाहीं आँधा॥
अब शीस धुनैं पछितावैं। दोउ चले नरक कूँ जावैं॥
कहै चरणदास नहिं जानो। तुम औगुण ना पहिचानो॥
दो० त्वचा स्वाद सब वश भये, फँधे[3] जगत के माहिं।
जो कोई निकसो चहे, सो भी निकसे नाहिं ॥४३॥
धोखे की हथिनी लखी, आयो गज ललचाय।
खंदक[4] माहीं रुकि गयो, शीस धुने पछिताय ॥४४॥
कछू हाथ आयो नहीं, परो फन्द में जाय।
मैन[5] महावत वश भयो, शिर में अंकुश खाय ॥४५॥

१ अवसर २ मोह ३ फँसे ४ गड्ढे ५ कामदेव।

जङ्गल में आनन्द सूँ, बहुतै केलि[१] कराय ।
अब तो द्वारे भूप के, परो बन्ध में आय ॥४६॥
ऐसे ही यह नर फँधो, देखि कामिनी रूप ।
जन्म गँवायो दुख भरो, पड़ो अविद्या कूप ॥४७॥
करी न हरि की भक्ति ही, गुरु सेवा तजि दीन ।
सुनी न हरि की गुण कथा, सतसंगत नहिं कीन ॥४८॥
फिर ऐसो कब होयगो, पावै मानुष देह ।
अब तो चौरासी विषे, जाय कियो उन गेह ॥४९॥
जीतो इन्द्री त्वचा की, कहिया श्री शुकदेव ।
यासे तप ही कीजिये, चरणदास सुन लेव ॥५०॥

शीत उष्ण का दुख नहिं माने । कोमल सकत[२] एक करि जाने ॥
तप सूँ काया उमर गवाँवै । अष्टसुगन्ध निकट नहिं जावै ॥
आन[३] त्वचा सपरस नहिं करै । काम अगनि हिय में ना जरै ॥
काया तावन[४] करनी ठानै । यही तपस्या मन में आनै ॥
त्वचा सु इन्द्री जीतो ऐसे । मैं यह भेद बतायो जैसे ॥
गुरु शुकदेव बतावै सब ही । चरणदास करि तन सूँ तप ही ॥

दो० त्वचा सु इन्द्री वश किये, छूटै काम कलेश ।
यत सत शील संतोष सूँ, लगै न माया लेश ॥५१॥

५—नासिका इन्द्रिय—

त्वचा अंग पूरो कियो, कहूँ नासिका अंग ।
ता वश अलि मुत जी दियो, जाको कहूँ प्रसंग ॥५२॥

१ मेल २ कड़ा-सख्त ३ दूसरे की ४ तपाना ।

बास आस गुंजत फिरो, बैठो कमल मँझार।
सूर छिपे से मुँदि गयो, अब शिर दै दै मार ॥५३॥
कुंजर आयो ताल पै, जल पीवन के काज।
प्यास बुझा करने लगो, खेल करन के साज ॥५४॥
खेल करत कमलहि गह्यो, लीन्ह्यो ताहि उपाड़ि।
फेरि दियो मुख माहिं ही, चाबि गयो दै जाड़ि[१] ॥५५॥
ऐसे ही ये नर फँसे, परे काल मुख जाय।
चरणदास यों कहत हैं, चाले जन्म गवाँय ॥ ५६॥
सुगँध और हरपै नहीं, दुरगन्धे न रिसाय।
ऐसे जीते नासिका, मन भवँरा ठहराय ॥५७॥
समझन कूँ तुक[२] एक है, भूलन कूँ तुक लाख।
गुण अवगुण इन्द्री कहे, सो तू मन में राख ॥५८॥
जो इन्द्रिन के वश भयो, बाँधो नरके जाय।
चौरासी भरमत फिरे, गर्भ योनि दुख पाय ॥५९॥
जो इन्द्रिन के वश भयो, पावे ना आनन्द।
बार बार जग माहिं ही, छूटे ना सम्बन्ध ॥६०॥
भक्ति माहिं चित ना लगे, सबही बिगड़ैं काम।
जो इन्द्रिन के वश भयो, ताको मिलें न राम ॥६१॥
चरणदास यों कहत है, इन्द्री जीतन ठान।
जग भूले हरि कूँ मिले, पावे पद निरबान ॥६२॥

१ जबाड़े—दोनों दाढ़ों के बीच २ शब्द।

—: इन्द्रियजित की महिमा :—

इन्द्री जीते सो ब्रह्मज्ञानी । इन्द्री जीते सोई ध्यानी ॥
इन्द्री जीते सो हरि दासा । अमरलोक में पावे वासा ॥
इन्द्री जीते सोई सिद्धा । अष्ट कला[1] अरु पावे ऋद्धा ॥
इन्द्री जीते सोई शूरा । इन्द्री जीते सो जन पूरा ॥
इन्द्री जीते सो सतवन्ता । इन्द्री जीते गुणी महन्ता ॥
इन्द्री जीते राम रिझावे । इन्द्री जीते सब कछु पावे ॥
इन्द्री जीते सो सन्यासी । इन्द्री जीते सोइ उदासी ॥
इन्द्री जीते सब फलदायक । इन्द्री जीते सब कुछ लायक ॥
इन्द्री जीते छुटै विदेशा[2] । या जग में कछु लगे न लेशा ॥
इन्द्री जीते परम सुखारा । निश्चय पहुँचे हरि दरबारा ॥
इन्द्री जीते सो रणजीता । इन्द्री जीते आतम मीता ॥
इन्द्री जीते ध्यान लगावे । सो निश्चय ईश्वर ह्वै जावे ॥
इन्द्री जीते मिले भगवन्ता । इन्द्री जीते जीवनमुक्ता ॥
चरणदास सुनि कहैं शुकदेवा । इन्द्री जीते सो गुरुदेवा ॥

—मन—

दो० मन इन्द्रिन के वश भयो, होय रह्यो बेढंग ।
आपा बिसरो जग रलो[3] , हुवो जो नाना रंग ॥६३॥
आवे तरंग जु क्रोधकी, होत जु वाके रूप ।
काम लहर कबहूँ उठे, ताके होत स्वरूप ॥६४॥
लोभ कामना जब उठे, जभी लोभ रँग होय ।
मोह कलपना के उठे, मोह बरण हो सोय ॥६५॥

१ सिद्धि २ संसार ३ एकमेक होगया ।

मन ही खेले खेल सब, मन ही करै अभिमान।
मन ही यह जग हो रहो, अब सुनि मन का ज्ञान ॥६६॥
कबहूँ यह मन होवे गिरही[1]। कबहूँ यह मन होवे बिरही॥
कबहूँ यह मन होवे रोगी। कबहूँ यह मन होवे शोगी[2]॥
कबहूँ यह मन होवे नारी। कबहूँ यह मन राखे ख्वारी॥
कबहूँ यह मन दौरा डोले। कबहूँ यह मन टेढ़ा बोले॥
कबहूँ यह मन कुल का ऊँचा। कबहूँ यह मन नकटा बूंचा[3]॥
कबहूँ यह मन दुन्द[4] मचावे। कबहूँ छमा शील घर आवे॥
कबहूँ यह मन होवे दाता। कबहूँ करे सूम सी बाता॥
चरणदास कहै मन कूँ जानो। ऐसी विधि मन कूँ पहिचानो॥
दो० बहुरूपी बहुरंगिया, बहुतरंग बहुचाव।
बहुत भाँति संसार में, करि करि घने उपाव ॥६७॥
यह मन राजा होवै भोगी। यह मन त्यागी होवै योगी॥
यह मन होवै हरि का भक्ता। यह मन होवै योगरु युक्ता॥
यह मन होय विवेकी ज्ञानी। यह मन तपिया जपिया ध्यानी॥
यह मन करे दया की बातें। यह मन करे जीव की घातें॥
यह मन यती सती अरु शूरा। यह मन काशी पण्डित पूरा॥
यह मन तीरथ बर्त्त उपासी। यह मन ठकुरानी अरु दासी॥
यह मन होवै देवी देवा। या मन का कोइ लहै न भेवा॥
यह मन प्रेमी नेमी जन ही। चरणदास कहै सब कुछ मन ही॥
दो० या मन के जाने बिना, होय न कबहूँ साध।

१ गृहस्थी २ शोक करने वाला ३ निर्लज्ज ४ झगड़ा।

जगत वासना ना छुटे, लहे न भेद अगाध ॥६८॥
तै मन कूँ जाना नहीं, करी न याकी सार।
चौरासी छूटी नहीं, उपजा बारंबार ॥६९॥

—मन जीतन उपाय—

मन कूँ सतसंगति ले जावो। कानों हरि यश कथा सुनावो॥
भाँति भाँति के रँग ललचावे। तो हरि के रँग क्यों न रँगावे॥
तो याको ज्ञानी ही कीजे। जगत ओर जाने नहिं दीजे॥
कै दीजे हरि ही को ध्यानू। रामभक्ति में याकूँ सानू॥
कै कीजे यह योगी पूरा। याहि सुनावो अनहद तूरा[१]॥
या मन कूँ कीजे वैरागी। या कूँ कीजे सर्वस त्यागी॥
जग रँग उतरि ब्रह्म रँग लागे। ताते कर्म भर्म भय भागे॥
चरणदास शुकदेव बतावे। मन फेरन की राह दिखावे॥

दो० मन ने आप[२] गवाँइया, ज्ञान बुझाया दीव।
करम लगा भरमत फिरो, मिला न अपना पीव ॥७०॥
दौरि दौरि रस[३] ओर ही, होय रहा कंगाल।
नातरु[४] आगे भूप था, ऊँचा बड़ा दयाल ॥७१॥
पाँचों इन्द्री स्वाद में, भयो निपट आधीन।
राज बड़ाई सब नशी, भयो मूढ़ मतिहीन ॥७२॥
सरकि जाय विष[५] ओर ही, बहुरि न आवे हाथ।
मजन माहिं ठहरे नहीं, जो गहि राखूँ बाथ[६] ॥७३॥

१ शब्द २ आतमस्वरूप ३ विषयरस ४ नहीं तो ५ विषय६ दोनों हाथ से मजबूती से पकड़ना।

मन निश्चल आवे नहीं, निकसि २ भजि जाय ।
चरणदास यों कहत है, काहू को न बसाय ॥७४॥
पचिहारे ज्ञानी तपी, रहे बहुत शिर मार ।
मन परेत[1] सूँ डर लगै, ले डूबे मँझधार ॥७५॥
यह मन भूत समान है, दौड़े दाँत पसार ।
बाँस गाड़ि उतरे चढ़े, सब बल जावे हार ॥७६॥
यों आतम में मन धरे, होय जहाँ लौ लीन ।
ठहरि रहै फिरि ना चलै, सकल[2] विकल हो चीन ॥७७॥
भजे तो जान न दीजिये, घेर घेर कर लाव ।
या मन कूँ परचाय[3] करि, ध्यानहि माहिं लगाव ॥७८॥
और कहों विधि दूसरी, सुनियो चित्त लगाय ।
राम नाम मन सूँ जपो, चंचलता थकि जाय ॥७९॥
पवन रुकै जब मन थकै, और दृष्टि ठहराय ।
ऐसी साधन साधिये, गुरुगम भेद मिलाय ॥८०॥
इन्द्री रोके मन रुकै, अरु उत्तम विधि एहु ।
चरणदास यों कहत है, यह साधन करि लेहु ॥८१॥
इन्द्रिन कूँ मन वश करे, मन कूँ वश करे पौन ।
अनहद वश कर वायु कूँ, अनहद कूँ ले तौन ॥८२॥
याको नाम समाधि है, मन तामें ठहराय ।
जन्म जन्म की वासना, ताकूँ दग्ध कराय ॥८३॥

१ प्रेत २ संकल्प ३ समझा बुझाकर ।

इन्द्री पलटै मन विषे, मन पलटै बुधि माहिं ।
बुधि पलटै हरि ध्यान में, फेरि होय लै जाहिं ॥८४॥
दग्ध वासना होय जब, आवागमन नशाय ।
कहैं गुरू शुकदेव जी, मुक्तरूप ह्वै जाय ॥८५॥

—:असत्य का वर्णन:—

मन के सगरे भेद ही, जाको दियो जिताव[१] ।
चरणदास अब कहत हैं, झूठ साँच को न्याव ॥८६॥
जो कोइ बोलै झूठ ही, ताकूँ लागै पाप ।
जन्म जन्म छूटै नहीं, दुख दे तीनों ताप ॥८७॥
बोले झूठ महा अपराधी । धरम छुटे उठि लागे व्याधी ॥
झूठा सौ सौ सौगँद खाय । झूठा लेवै कर्म लगाय ॥
झूठा करै बिराना[२] बुरा । झूठा रहै जक्त में गिरा ॥
झूठे की परतीति न होई । झूठा बोल न बोलो कोई ॥
झूठा हरि की भक्ति न पावै । झूठा घोर कुण्ड में जावै ॥
झूठे कूँ लागै यम मार । झूठा चौरासी में ख्वार ॥
झूठ बचन का भारी दोष । झूठे की होय गति न मोष[३] ॥
झूठे के नहिं गुरू न राम । झूठे कूँ नाहीं बिश्राम ॥
चरणदास शुकदेव बतावैं । झूठे सभी नरक कूँ जावैं ॥
दो० झूठे के मुँह दीजिये, "नौसादर का बाप"[४] ।
डरा करै सकुचा रहै, वह शरमिंदा आप ॥८८॥
झूठे कूँ हत्यारा जानो । झूठे कूँ ठग चोर पिछानो ॥

१ सावधान कर दिया २ दूसरे का ३ मोक्ष ४ नौसादर का बाप = विष्टा ।

झूठा कुटिल शराबी होय । झूठा कहिये कामी सोय ॥
झूठे ही को जानो ज्वारी । समझि देखि सब ही नर नारी ॥
सकल ऐब झूठे में पाऊँ । एक एक क्या खोल दिखाऊँ ॥
पाँचों[1] खोट सबन के राजा । सो मैं कहे चितावन काजा ॥
झूठ पाप की कहिये खानि । सो वह करै पुण्य की हानि ॥
सब ही अवगुण झूठे माहीं । चरणदास शुकदेव बताहीं ॥

—:सत्य का वर्णन:—

दो० साँच बिना साधू नहीं, कबहुँ न मिलि हैं राम ।
साँच बिना गति ना लहै, पावे ना निज धाम ॥८९॥
सत सत मुख सूँ बोलिये, सत ही चलिये चाल ।
सत ही मन में राखिये, सत ही रहिये नाल[2] ॥९०॥
साँचे कूँ ग्रह ना लगै, साँचे कूँ नहिं दाग[3] ।
साँचे शाप न लागई, सब दुख जावें भाग ॥९१॥
बड़ी तपस्या साँच है, बड़ा बरत है साँच ।
जासों पाप सभी जरैं, लगै न गर्भ की आँच ॥९२॥
जाका बचन मुड़ै नहिं, साँचे सब व्यवहार ।
चरणदास त्रयलोक में, कभी न आवै हार ॥९३॥

साँचे के मन ही में राम । साँचा करे न छल के काम ॥
साँचा होकर सुमिरण करै । आप तरै औरन लै तरै ॥
सतवादी की पति[4] है साँच । ताकूँ लगै न दिव की आँच ॥

१ हिंसा, चोरी, नशा, काम, जूवा २ साथ ३ दोष ४ टेक ।

साँचे चोर चुराया घोड़ा । परमेश्वर ताका रँग मोड़ा ॥
और चोर चोरी सूँ गया । साँच प्रताप अचम्भा भया ॥
औरे साँच प्रताप अनन्ता । सब ही जानै साधू सन्ता ॥
लाख बात का एकहि जोड़[१] । साँचा पुरुष सबन शिरमोड़ ॥
आवै साँच परम सुख पावै । चरणदास शुकदेव सुनावै ॥
दो० साँचे की पदवी बड़ी, दुष्ट साध के माहिं ।
दोनों अस्तुति ही करैं, निन्दक कोई नाहिं ॥६४॥

—:गुरूमुख वर्णन:—

गुरू कहै सो कीजिये, करै सो कीजै नाहिं ।
चरणदास की सीख सुन, यही राखि मनमाहिं ॥६५॥
कथा सुने व्रत हू किये, तीरथ किये अघाय ।
गुरुमुख के होये बिना, जप तप निर्फल जाय ॥६६॥

—:गुरुमुख लक्षण:—

अब गुरुमुख के लच्छण गाऊँ । जुदे जुदे करि सब समझाऊँ ॥
इन कूँ समझ धरै हिय कोई । पूरा गुरुमुख कहिये सोई ॥
प्रथमहि गुरु सों झूठ न बोलै । खोटी खरी करै सब खोलै ॥
दूजे गुरु को पय[२] न लगावै । निश्चय गुरु के चरण मनावै ॥
तीजे आज्ञाकारी जानो । इन लच्छण गुरुमुखी पिछानो ॥
जो कोइ गुरु का लेवै नाम । ताको निहुरि[३] करै परणाम ॥
जो कहुँ देखै गुरु का बाना[४] । ताकूँ जानै गुरू समाना ॥
चरणदास शुकदेव बखानै । गुरुभाई कूँ गुरुसम जानै ॥
दो० गुरुभाई कूँ पूजिये, धरिये चरणन शीस ।

१ सार २ झूठा दोष ३ नम्रता से ४ भेष ५ शिरोमणि।

चरणोदक फिरि लीजिये, गुरुमत विश्वावीस ॥९७॥
जो कहुँ गुरु का वस्तर पावे। हिये लगाय चूम दृग ल्यावे[1] ॥
गुरू देश का मानुष आवै। दै परिक्रमा बलि बलि जावै ॥
कहै दया करि दर्शन दीन्हे। मेरे पाप सबै सब छीन्हे[2] ॥
जो अपने गुरुद्वारे जइये। देखत पौरि[3] बहुत हरषइये ॥
हाँई सूँ दण्डवत जु कीजे। दर्शन करि करि सरबस दीजे ॥
फिर ठाढ़ो रहै जोरे हाथा। बैठे तब आज्ञा दे नाथा ॥
जो बोले सो मन में धरिये। अपने अवगुण सब ही हरिये ॥
चरणदास शुकदेव बतावे। ऐसा गुरुमुख राम रिझावे ॥

—:साधु निन्दा:—

दो० साधुन की निंदा बुरी, मत कोइ कीजो भूल ।
दुनिया में दुख पाय है, रहै नरक में झूल ॥९८॥

साधु का निन्दक तन मन दुखी। साधु का निन्दक होय न सुखी ॥
निन्दक साधु दरिद्री होय। निन्दक डारे सरबस खोय ॥
साधु का निंदक नरक मँझार। निश्चय खावे यम की मार ॥
साधु का निंदक पूरा पापी। साधु का निंदक डूबे आपी ॥
मूरख होय सो निन्दा करे। साधु संत कूँ अवगुण धरे ॥
साधुका निन्दक श्वान समान। साधु का निन्दक शूकर जान ॥
साधु राम की कहिये देह। निन्दक के मुख माहीं खेह[4] ॥
चरणदास निन्दा तजि दीजे। भक्तों की अस्तुति ही कीजे ॥

दो० साधुन की अस्तुति किये, हरि की अस्तुति होय ।
भक्तों की निन्दा किये, प्रभुकी निन्दा सोय ॥९९॥

१ स्पर्श करे २ नाश ३ दरवाजा ४ मिट्टी ।

श्री मन्निकुञ्ज विहारिणेनमः

अथ श्री शुकदेव मुनिराज महाप्रभु के शिष्य

श्री स्वामी चरणदासजी महाराज रचित

वेद स्तुति

दो० भक्ति पदारथ कारने, देहुँ वेद की साख।
ताको भेद मिलाइये, चरणदास कहै भाख ॥१॥
गुरु शुकदेव प्रताप सों, कहूँ वेद के वाक[1]।
संस्कृत सूँ भाषा करी, आदि सनातन साख ॥२॥
नारद सूँ नारायनहि, देवलोक[2] सनकाद।
शुकदेव परिच्छित सों कही, मैं कहुँ सुनियो साध ॥३॥

॥ अष्टपदी छन्द ॥

श्री शुकदेव गुरू के वचन विचार के।
वेद अस्तुति की कथा कहूँ उर धार के॥
भक्ति प्रापत होय जक्त व्याधा नसे।
अंत मुक्तिपद पाय अमरपुर जा बसे॥
श्री भागवत पुराण दशम स्कंध में।
कही कथा सुखदान हिये के हुलास तें॥
राजा परिच्छित कहत श्रीशुकदेव को।
मोहि कहो समझाय सकल या भेव को॥
हरि अस्तुति भलिभाँति जु वेदन गाइ है।
निर्मल परमपुनीत सो मो मन भाइ है॥

---

१ वाक्य २ ब्रह्मलोक।

निरगुन अस्तुति अधिक सरगुन माँहिं कही।
मेरे मन में समझि न आवत कुछ यही ॥
बोले गुरु शुकदेव ये सुन के बात कूँ ।
राजा मन चित लाय सुनो या गाथ कूँ ॥
हरि इच्छा सों जबहि उन्हें शिक्षा भई ।
तब अधिकारी होय अस्तुति वेदन कही ॥

दो० नारायण पै जाय के, नारद चरणहिदास ।
यही बात पूछत भए, करि करि उमँग हुलास ॥४॥

॥ अष्टपदी छन्द ॥

हरि भक्तन के माँहि महा मुनि अति गुनी ।
एक दिवस कर चाव श्री नारद मुनी ॥
श्री नारायण पास जु वह चल कर गए ।
दरशन उनके पाय मुदित मन में भए ॥
नमस्कार कर जोर ऋषी ज्ञानी महा ।
नारायन सों बोल वचन ऐसे कहा ॥
अस्तुति श्रीभगवान की वेदन गाई है ।
सो सब हम को आज कहो समझाइए ॥
श्रीनारायण बोल वचन मुख ते कहे ।
नारद सों यहि भाँति गिरा भाखत भये ॥
एक दिवस सनकादि ऋषी शिरमौर हीं ।
सुत ब्रह्मा के जान न उन सम और हीं ॥
बैठ सभा के माँहिं देव ही लोक में ।

राजत जैसे चंद तारन संयोग में ॥
तहाँ चली यह बात सकल मन भाँवती ।
वेदन अस्तुति कही किहि भाँति सुहावती ॥
चारों[1] भैया जान सनक कूँ आदि दे ।
परम पुनीत प्रवीन सकल गुन आगरे ॥
कथा भागवत सुने सभी चित लायके ।
जो पै ज्ञानी होंहिं ज्ञान को पाय के ॥
तिहि कारन ही बैठ सकल भ्राता तहाँ ।
बोले अति परवीन सनक इहि विधि जहाँ ॥
वेदन ऐसी भाँति सूँ यह स्तुति करी ।

—: वेदस्तुति प्रारम्भ :—

जै जै जै तुम आदिपुरुप नित हो हरी ॥
त्यागो निद्रा जोग जागो करतार जू ।
निज माया विस्तार सृजो संसार हू ॥
जो पै माया रहत तुम्हारे संग ही ।
तुम कबहू करतार जु वाके वस नहीं ॥
खोटी अधम जो नारि कहीं कोइ होत है ।
अपने पति को दोप लगावत हैं वहै ॥
यह कारन मन लाय के माया परिहरो ।
जग सिरजन के काज आप आज्ञा करो ॥

[1] सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार ।

—: त्रिविध भगवान :—

तुम तिरविधि भगवान रहत ब्रह्मण्ड में ।
प्रथम सूक्षम ग्रान रहत है पिण्ड में ॥
दुतिय रूप विराट तुम्हारो जानिये ।
धारन हारो सृष्टि को उर में आनिये ॥
तीजो व्यापक होय सबन ही जीव में ।
जानत पंडित लोय आपने हीय में ॥

—: जगत के कर्ता, भर्ता और हर्ता :—

तुम ही सबके आदि जक्त करतार हो ।
और सकल या सृष्टि के तुम भरतार हो ॥
छिन में जग उपजाय फेर परलै करो ।
घटो बढ़ो तुम नाहिं सदा पूरन रहो ॥
आदि अंत सब सृष्टि के पुरुष अनन्त जू ।
नित ही इकरस रहत तुम ही भगवंत जू ॥

—: स्तुति की सामर्थ्य :—

जो तुम ऐसी भाँति कहो हरि देव जू ।
हमसों उत्पति भई तुम्हारी भेव[1] जू ॥
तुम तो कैसी भाँति हमें पहचानई ।
अस्तुति ऐसी भाँति कैसे के बखानई ॥

दो० ऐसी बुद्धि हमरी भई, तुम्हरे ही परताप ।
हम तो चरणहिदास हैं, तुमही करता आप ॥५॥

---

१ रहस्य (वास्तविकता) ।

॥ अष्टपदी छन्द ॥

यह सब किरपा नाथ तुम्हारी जानिये ।
ना तो केतिक बुद्धि हमारी मानिये ॥

—: ब्रह्म का वर्णन :—

तुमही सगरी सृष्टि के कारन रूप हो ।
तुम उपजावन पालन मारन रूप हो ॥
ज्यों घट नाना भाँति यों ही संसार है ।
फूटे माँटी होय सभी यों विचार है ॥
ऐसे ही इक ब्रह्म सकल व्यापक सदा ।
नाम अनेक कहाये हम बरनें कहा ॥
निराकार निरलिप्त निरगुन करतार हो ।
अपने भक्तन हेत लेत अवतार हो ॥

—: निर्वाण पद :—

तुम्हरी लीला नाथ जो परम सुहावई ।
जो जन कहै अरु सुनै हिये में लावई ॥
ते जन लहत पुनीत जो पद निरवान कूँ ।
अंत काल तुम्हें मिलत जो ऐसे ज्ञान सूँ ॥

—: अनन्य भक्ति :—

तुम्हरी भक्ति अनन्य जो कोई जन करै ।
जन्म सुफल तिहिं होय मुक्ति पर पग धरै ॥
प्रेम मगन जो साधु तेरो गुन गावई ।
होय सु महाप्रसाद प्रीति सों पावई ॥

—: अष्टांग योग वर्णन :—

जोगेश्वर चित लाय जु तुमकूँ ध्यावई।
प्रानवायु कूँ खैंच त्रिकुटी लावई॥
हृदयकमल के माँहिं तुमहि कूँ देखई।
अद्भुत रूप सरूप अनूपम पेखई॥
अगमपंथ भगवान तुम्हारो जानिये।
कह न सकत परमान कोऊ हिय आनिये॥
अगमपंथ इहि भाँति तुम्हारो नाथ जू।
पहुँच सके किहि भाँति सुनो यह बात जू॥

—: भक्त लक्षण :—

भक्ति तुम्हारी नाथ स्मृति वरनन करैं।
पावैं इस विधि तुमहिं प्रीति तुम सों करैं॥
तुम्हरी भक्ति अनूप हीये में धारई।
चार[1] पदारथ संत कबहुँ चाहत नहीं॥
ऐसे लच्छन होहिं तुम्हारे भक्त के।
अंतर प्रेम अगाध बाहर जड़ रूप के॥
मन के माँहीं ध्यान तुम्हारो ही बसे।
कबहूँ रोवे आप कबहुँ आपहि हँसे॥
हँसत तुम्हारे ध्यान में बहु हरखाय के।
देख दशा संसार रोवे पछताय के॥

---

१ अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष।

कबहुँ मगन मन होय ध्यान दृढ़ कर गहै ।
साजे तुम्हरी भक्ति जहाँ चित्त दे रहै ॥
बिना भक्ति कुछ और न जिय में जानई ।
बिरले ऐसे कोय जक्त में मानई ॥

—: अगमता :—

तुम्हरो रूप अनूप को न ठहरावई ।X
हम हूँ जो पै वेद बड़े कहलावई ॥
तो पै तुम्हरो भेव कछू नहिं पावई ।
तुम्हरो रूप अरूप न देखो जात है ॥
पंथ तुम्हारेकी देहिं बताय के बात है ।

—: पहिचान के उपाय :—

ज्ञान भक्ति वैराग्य जु मन में ऊपजै ॥
तब तुम्हरी पहिचान हिये में नीपजै[1] ।
दस इन्द्रिन को रोक जु मन के बस करै ।
सो मन अपनी बुद्धि माँझ ही ले धरै ॥
जब वह अपनी बुद्धि तुमहीं सों लावई ।
सोई जोगी होय वे साधु कहावई ॥
जो पै नाम प्रकाश तें बहु विधि संचरे[2] ।
भक्ति बिना निर्वान को पद नाहीं लहै ॥

—: शरीर की नश्वरता :—

जो पै काल परयन्त जो जीवे नर कोई ।

१ पैदा होती है २ जो पै..............संचरे । इस पंक्ति का भावार्थ यह है कि यदि किसी की ख्याति बहुत फैल जावे ।

X जहाँ कर्म मन वचन पंथ नहि नामई ॥

तो भी होवे नाश ब्रह्मा के संग ही ॥

—: कर्म :—

जो पै देवन माँहि जाय के अवतरे ।
तो भी न छूटैं कर्म मुक्ति वर ना करे ॥
बेड़ी लोहे की होहिं सोने की जानिये ।
दोऊ एक समान उही[1] विधि मानिये ॥
तुम्हरो पुरुष स्वरूप प्रगट जब होय जू ।
ब्रह्मादिक सब देव पूजत हैं सोय जू ॥
कर कर यज्ञ उपाय जगत के लोय हैं ।
देवन पूजा साज करत सब कोय हैं ॥
स्वर्गलोक में जाय ताको फल पावई ।
मृत्युलोक ही माँहि बहुरि फिर आवई ॥
जब लगि यह निष्कर्म नहीं जो होय है ।
मुक्ति पदारथ पन्थ न पावत कोय है ॥

—: भक्ति योग :—

विषय भोग रस स्वाद जोई जन परहरे[2] ।
भक्तिजोग दृढ़ होय जहाँ मन लै धरे ॥
तुम बिन और न चहै गहै परनाम को ।
लहै तुम्हारो नाम रहै विश्राम सों ॥

—: विषयी लोगों की गति :—

जो जन जग के माहिं इन्द्रिन के बस रहै ।

१ उसी २ छोड़दे ।

कीट योनि के माँहिं जन्म सोई लहै ॥
वहुरि लेत जड़योनि माँहिं अवतार ही ।
फिर आवत है पशु की योनि मझार ही ॥
तिहि पीछे नरदेह वही जो पावई ।
पहिले ही वह नीच योनि में आवई ॥
वहुरो ऐसे चार वरण में अवतरै ।
ऐसे विषई लोय[1] सदा भरमत फिरै ॥

—: माया :—

माया तुम्हरी अपार सुचतुर कहावई ।
एकै रूप अनेक भाँति दिखलावई ॥
विविध वरन सों होय भासे साकार ही ।
उनही रच्यो सब जक्त जहाँ लौं आकार ही ॥
वृक्ष की छाया देख सरोवर नीर ही ।
छेरी[2] मन ललचाय आई वा तीर ही ॥
वह तो इतनी शक्ति कहाँ सों पावई ।
जासों ही वह निकट वृक्ष के आवई ॥
या विधि प्रानी सबै माया में डूबई ।
नाहीं तो वह आप काहू व्यापत नहीं ॥
माया ही के माँहिं जो कोऊ जन बंधै ।
चौरासी के माँहिं सदा भरमत रहै ॥

१ लोग २ बकरी ।

—: माया निवृत्ति :—

जो जन मन ते आप माया को परिहरै ।
हरि के चरनों माँहिं ले चित अपनो धरै ॥
परम भक्त जो होय जक्त के मध्य ही ।
जीवन मुक्ति को पाय कछू संशय नहीं ॥

—: जीव व ब्रह्म :—

माया ही के संग मोह उन लाइया ।
तिहि कारन नर जीव जु नाम कहाइया ॥
अहंकार के संग सों छूटत हैं जबै ।
परमातम अरु ब्रह्मरूप होवे तबै ॥

—: दुर्लभ मानव देह :—

मनुप रूप को जन्म दुर्लभ जग माँहिं है ।
देवन हूँ को कठिन परापत नाहिं है ॥
सकल देव इहि भाँति मनोरथ नित करैं ।
मनुप जन्म को पाय के भवसागर तरैं ॥
नरशरीर को नवका सम ही जानिये ।
वेद पुरानन माँहिं जु साख पिछानिये ॥
सतगुरु खेवट रूप हिये में आनिये ।
या नवका को पार लगावन जानिये ॥
अलख ईश भगवान जो कृपानिधान है ।
भवसागर के तरन को रूप विधान है ॥
तिन के शरने आय चरणहीदास हो ।

प्रेमा भक्ति अनन्य करे निरवास हो ॥
या विधि सों जो पार न होवे नर कोई।
आतमघाती जीव जान लीजे सोई ॥
पुनि चौरासी लच कि योनि मझार ही।
भ्रमत रहत इहि भाँति जु बारम्बार ही ॥
दारा सुत अरु बन्धु हितू मन आनिये।
मिथ्या सब व्यवहार जक्त को जानिये ॥
जो जन इन के माँहिं बंधे चित देवई।
कबहूँ मुक्त न होय जन्म फिर लेवई ॥

—: सफल जन्म :—

मन वच करके प्रीति जो तुमसों साजई।
कर्मबन्ध कट जाय मुक्तिपुर राजई ॥
तुम्हरे जे जन लोय जु ग्रह को परहरें।
तुम कारन ही नाथ बहुत तीरथ करें ॥
जेते तीरथ होहिं गंग कूँ आदि दै।
तुम चरणोदक होय वहै तीरथ सबै ॥
तुम चरणन के ध्यान मगन निशिदिन रहैं।
तुम्हरी अमृत कथा सुनैं नित सुख लहैं ॥
इहि विधि तुम सों प्रीति सदा जु निबाहई।
बिना भक्ति वे मुक्ति कबहूँ नहिं चाहई ॥
और वस्तु की चाह कहा मन लावई।
छिन में सब को नाश न कुछ ठहरावई ॥

उनके मन के माँहिं कछू इच्छा नहीं।
बन में कारन कौन रहें निशि दिन वहीं॥
तन मनहू की आप कछू उन सुधि नहीं।
वे तो मृत्यु समान फिरें जग माँहिं ही॥
इहिविधि ऐसी भाँति जु कोऊ जन रहें।
जन्म सुफल तिहि होय जक्त में सुख लहैं॥

—: भक्ति विमुख :—

विमुख होहिं तुमसों जो प्रानी मूढ़ ही।
पशु समान वे लोय अज्ञानी गूढ़ ही॥
याहि जक्त के माँहिं कर्म नहिं होय जू।
का विधि तुहम्री भक्ति करें सब लोय जू॥
जब लग तुम्हरी भक्ति हिये नहिं लावई।
तब लग कैसी भाँति मुक्ति पद पावई॥

—: निष्काम कर्मयोग :—

कीजै सब ही कर्म धर्म की रीति ही।
याही विधि भगवान सों उपजै प्रीति ही॥
जब लग भक्ति की रीति न मन में आवई।
तब लग कर्म की रीति न छोड़ गँवावई॥
विधि सों सगरे कर्म सोई नर साजई।
अंत होय निष्कर्म मुक्तिपुर राजई॥
कर्म भक्ति को त्याग जु कोऊ जन करें।
घोर नर्क के माँहिं सोई प्रानी परें॥

—: दो पक्षी :—

जग में मनुप शरीर वृक्ष सम जानिये।
तिहि ऊपर द्वै पक्षी ही पहिचानिये॥
एक-पक्षी[१] तिहि माँहिं ताको फल पावई।
अति ही दुर्बल छीनि[२] दृष्टि में आवई॥
दूजो[३] पक्षी कछू न जाको फल लहै।
मन में अति आनन्द लसत[४] नित ही रहै॥

—: निष्कामी भक्त :—

वसुधा में जो भक्त तुम्हारे कहावही।
रैन दिवस चित आप तुम्हीं सों लावही॥
तिनको सगरे[५] देव बहुत भरमावई।
अष्टसिद्धि नवनिद्धि को लोभ दिखावई॥
लोभ करै सिधि[६] देख निद्धि पर मन बहै।
भक्तिपदारथ सोय[७] जो कैसी विधि लहै॥

—: माया के सात तत्व :—

अति अद्भुत इहि भाँति ब्रह्मण्ड बनाइया।
सात ही तत्त्व के संग सोई लिपटाइया॥
पहिले धरतीतत्त्व हिये में आनिये।
ताते दसगुन नीर जीय में जानिये॥
बहुरि अग्नि अरु पवन और आकाश है।
षष्ठम अहम् जु तत्त्व सदा परकाश है॥
महत्तत्त्व येहि भाँति जु चित में जानिये।

१ जीव २ क्षीण ३ भगवान ४ भोगना ५ सब ६ अष्ट सिद्धियाँ ७ वह।

अष्टम मायारूप सकल पहिचानिये ॥

—: मायातीत भक्त :—

जो नहिं होत अशक्त[1] जक्त व्यवहार में ।
मन में तुम्हरी भक्ति धरै संसार में ॥
माया के शिर पाँव जो धर के भक्त ही ।
लोक तुम्हारे माँहिं जाय पहुँचत वही ॥

—: प्रभु महिमा :—

आदि अंत अरु मध्य संपूरण सकल में ।
घटत बढ़त तुम नाहिं कबहुँ कल[2] विकल[3] में ॥
प्रभुमहिमा हम नाथ हिये नहिं जानई ।
और लोक[4] किहि भाँति सु बरन[5] बखानई ॥
सगुन अस्तुति करी जु यह निरवानही ।
निरगुन रूप अरूप को कैसे बखानई ॥
या धरती की रज जु सभी गन लीजिए ।
तव सरूप गुन सकै न गिनती कीजिए ॥
औरहु सब परपंच तुमहिं माहीं रहैं ।
तिनहूँ को हम अंत कछू नाहीं लहैं ॥
तिहि कारन हम करें तुम्हें परनाम हो ।
जय जय श्री भगवान जागो सुखधाम हो ॥
वेदस्तुति इहि भाँति सघन मन भाइ है ।

१ आसक्त २ माया स्वीकार करके सृष्टिकाल में ३ प्रलय काल में ४ लोग ५ वर्णन करके ।

सकल ऋषिन को भाष जु सनक सुनाइ है ॥
तबहि सकल ऋषि चाव सों मिल पूजा करी।
वेदस्तुति भलि भाँति सों लैकर चित धरी ॥
श्री नारायण वचन कहे इस रीति सों।
नारद श्रोता भये अधिक ही प्रीति सों ॥
श्री नारद यह कथा सकल मनभाँवती।
वेदव्यास सों कही जो अधिक सुहावती ॥
जैसी विधि जेहि भाँति जो तिन सों हम सुनी।
वाही विधि वाहि रीति सों तुम आगे भनी ॥
ऐसे कहि शुकदेव परिच्छित राज सों।
भाषा कर मैं कही मुक्ति के काज कों ॥
सब मिलि सुनियो संत विवेक विचारियो।

—: भक्ति की श्रेष्ठता :—

भक्ति हिये में राख आन सब डारियो ॥
भक्ति किये बस होय जक्त करतार ही।
ब्राह्मण शूद्ररु पुरुष करो नर नार ही ॥
साधु सती अरु सूर बहुत दाता भये।
इन की नाहीं जात चरनदासा कहे ॥

—: वेदस्तुति माहात्म्य :—

यह अस्तुति जो कहै सुनै चित लाय कै।
सतसंगति लहै बास जो अघहि नसाय कै ॥
समझ धरै मन माँहि मुक्ति सोइ पावई।

भवसागर दुखरूप जहाँ नहिं आवई ॥

दो० वेदस्तुति पूरी करी, भेद दियो गुरुदेव ।
चरनदास के शीस पै, सदा रहो शुकदेव ॥६॥

इति श्री वेदस्तुति भाषा
श्रीमदाचार्य्यवर्य्य स्वामी श्री श्यामचरणदासजी रचित संपूर्णम् शुभम्
॥ श्री राधाकृष्णार्पणमस्तु ॥

अथ मोह छुटावन अंग वर्णन

कुंडलिया

भक्ति दृढ़ावन कूँ कहे नाना ही परसंग ।
शुकदेव कृपा सों अब कहूँ मोह छुटावन अंग ॥
मोह छुटावन अंग कोई हिय माहीं धारै ।
कुटुँब जाल सूँ छूटि लगै हरि चरणों लारै ॥
चरणदास यों कहत है उपजै मन वैराग ।
जक्त नींद ही सूँ खुलै चौथे पद में जाग ॥

दो० गुरू पूजि जग छोड़िये, भवसागर के द्वन्द ।
साधुन की संगति करो, तजो जाति कुल बन्ध ॥१॥
बन्धु नारि सुत कुटुँब सब, यम की फाँसी जान ।
तोहि छुटावैं राम सूँ, इनका कहा न मान ॥२॥
खैंचि पकड़ि ह्याँ राखि हैं, जहाँ मोह का जाल ।
जीवत दुख बहु भाँति के, मुये नरक ततकाल ॥३॥
या प्राणी कूँ ठग लगे, सकल कुटुँब परिवार ।

तिनमें दो बलवन्त हैं, एक द्रव्य इक नार ॥४॥
नारि किये दुख बहुत हैं, बन्धन बँधैं अनेक।
जो सुख चाहै जीव का, तिरिया कूँ मत पेख[1] ॥५॥
द्रव्य माँहिं दुख तीन हैं, यह तू निश्चय जान।
आवत दुख राखत दुखी, जात प्राण की हान ॥६॥
ताते इनकी प्रीति मन, उठै तभी निरवार[2]।
ये दुर्जन दुख रूप हैं, ऐसो करो विचार ॥७॥
जो कोई इनमें पगै, तिन से छूटै राम।
चरणदास यों कहत है, क्यों पावै हरिधाम ॥८॥
हेरि फेरि धन को करत, बीतै पहर इक रात।
तीन पहर निशि के रहैं, सोवै नारी साथ ॥९॥
नारी के फैलाव को, दीखै ओर न छोर।
द्रव्य माहिं तृष्णा रहै, चाहै लाख किरोर ॥१०॥
द्रव्य जोरि मरि जाय जब, हो बैठे तहँ नाग।
नारी में जो चित रहै, ह्वै है कूकर काग ॥११॥
ऐसे ही भरमत फिरै, लख चौरासी देह।
कनक[3] कामिनी कूँ तजै, जब लग नाहीं नेह ॥१२॥
मूरख त्याग न करि सकै, ज्ञानवन्त तजि देह।
चौंकायल[4] मृग ज्यों रहै, कहीं न साजै गेह ॥१३॥
जो कोइ छोड़ै कुटुँब कूँ, ऐसी कर पहिचान।
जैसे छूटो बन्ध सूँ, यम जोरा[5] सूँ जान ॥१४॥

१ देखना २ दूर करना ३ स्वर्ण ४ चौंका हुआ ५ बलवान।

जीवत यम तौ कुटुँब है, घेरि घेरि दुख देय ।
ऐसे मानुष देह कूँ, लूटे ही नित लेय ॥१५॥
कै ठग सब कूँ जानिये, कै धाड़ी[1] के चोर ।
रणजीत कहै तू देख ले, लूटत हैं निशि भोर ॥१६॥
बाहर कलकल करत हैं, भीतर लावहि लाव ।
ऐसो बाँधो खेंच करि, छुटै हाथ नहिं पाँव ॥१७॥
लाज तौंक[2] गल में पड़ा, ममता बेरी पाँय ।
रसरी मूरख नेह की, लीन्हे हाथ बँधाय ॥१८॥
डारि दियो अज्ञान में, परो परो भिललाय[3] ।
निकसन कूँ जबही चहै, कुतका[4] मोह लगाय ॥१९॥
रखवारे जहँ पाँच हैं, इन्द्रिन के रस जान ।
तब ही देह भुलाय के, जो कुछ उपजै ज्ञान ॥२०॥
कुटुँब और इन पाँच को, एक मतो ही जान ।
प्राणी कूँ जग में फँसा, चहै खान अरु पान ॥२१॥
ये सब स्वारथ ही लगे, इसका सगा न कोय ।
जो शिर मारै धरणि पर, कल्प कल्प करि रोय ॥२२॥
मात पिता सुत नारि की, इनकी उलटी रीति ।
जग में देह फँसाय के, करिके प्रीतिहि प्रीति ॥२३॥
जैसे वधिक बिछाय के, जाल माहि कण डार ।
प्रीति करै पक्षी गहै, पाछे करै जु ख्वार[5] ॥२४॥
जैसे ठग बहु प्यार करि, बौंलापन[6] ही देह ।

१ डाकू २ गले की बेड़ी ३ चिल्लाना ४ पिंजरे का फंदा ५ हैरान ६ भुलावा देना ।

पहिले लड्डू खवाय के, पाछे सरवस लेह ॥२५॥
हित सूँ हिरण बुलाय के, गोली मारे तान ।
चरणदास यों कहत है, ऐसे इन कूँ जान ॥२६॥
जल में वंशी[1] डारिया, अटकाया जहाँ माँस ।
मछरी जानै हित कियो, लखो न अपनो नास ॥२७॥
मौंदू यह गति ना लखी, पड़ो कुमति के धुंध[2] ।
ज्यों की त्यों सूझी नहीं, किया मोह ने अंध ॥२८॥
सब ठग यह देखी नहीं, कपट हेत नहिं जान ।
इनहीं में मिलकर चलौ, समझौ ना अज्ञान ॥२९॥
अब इनके छल कहत हूँ, समझै होय उदास ।
जानै ना ह्वाईं रहै, कहै चरणहीदास ॥३०॥

अब इनके छल कहि समझाऊँ । भिन्न भिन्न परगट दिखलाऊँ ॥

—: पिता का मोह :—

पिता कहै तुम पुत्र हमारे । बहुत भरोसे मोहिं तुम्हारे ॥
अब तुम ऐसी विद्या पढ़ो । अपने कुल में ऊँचे चढ़ो ॥
सतसंगति में कभी न जइये । अपने घर में चित्त लगइये ॥
हम तो हैं दुनियाँ के कूते । जाति बरण में होहिं सपूते ॥
कृत्य करो पालो सुत बाम । कथा कीरतन सूँ क्या काम ॥
अब तुम ठौर हमारी हूजै । हमने किये सो तुमहूँ कीजै ॥
ऐसी बुद्धि बड़ाई दीन्ही । इनहू हिरदय में धरि लीन्ही ॥
चरणदास कहै देखो प्यार । मुये नरक जीवत हो ख्वार ॥

१ मछली पकड़ने का कांटा २ कोहरा ।

दो० पिता बुद्धि ऐसो दई, रहिये कुटुँब मँझारि ।
जो कुछ है सो जक्त में, धन सम्पति सुत नारि ॥३१॥
हरि की राह भुलाय करि, दीन्हों कुटुँब चिताय ।
ताते दुख जग में घने, चौरासी भरमाय ॥३२॥

—: माता का मोह :—

अब सुन माताहू की बातें । अपना ज्ञान सिखावें तातें ॥
द्रव्य काज उद्यम ही कीजै । ला माता की गोदी दीजै ॥
करै कमाई सोइ सपूता । नाहीं तो वह पूत कपूता ॥
नारी कूँ भूषण पहिनावो । सुत पुत्री को व्याह रचावो ॥
पूजो पित्तर देवी देवा । सकल कुटुँब की कीजै सेवा ॥
अपने कुल को न्योति जिमावो । ताते बहुत बड़ाई पावो ॥
बहु विधि स्वारथ ही सिखलावैं । परमारथ की राह भुलावैं ॥
बारबार जग में उरझावै । ऐसे तो नित ही चलि आवैं ॥
जितका तित ह्वाँई रखि लीन्हा । चरणदास कहैं ज्ञान न दीन्हा

दो० माताहू ने प्यार करि, बहुत दिया शिर भार ।
यही जो नीके धारियो, महल द्रव्य सुत नारि ॥३३

—:स्त्री का मोह:—

अब नारी की गति सुनि लीजै । तामें चित्त कबहुँ नहिं दीजै ॥
छल बल करि वश अपने राखै । मधुर वचन रस सनं जु भाखै ॥
कहै कि शिर के छत्र हमारे । हम तो लागी शरण तुम्हारे
तुम तो बहुतै लगो पियारे । मोकों तजि मत हूजो न्यारे ॥

ऐसे कहि कहि बाँधा चाहै । आठों अंग[1] काम के बाहै ॥
वस्तर भूषण देह शिंगारै । नानाविधि करि रूप सँवारै ॥
करै कटाक्ष बहुत ही मारै । वश करने को टोना डारै ॥
काजल भरी आँख सूँ जोहै । अंग विषे रस दै दै मोहै ॥
ह्याँसूँ निकसन कैसे पावै । चरणदास शुकदेव सुनावै ॥

दो० तिरिया ही के जाल में, आय फँसै जो कोय ।
तलफि तलफि ह्वाँई रहै, निकसि सकै नहिं सोय ॥३४॥

सुत पुत्री वनिता सूँ जानों । समधाने÷ वासूँ पहिचानों ॥
और बँधे बहुतै बँधवार । नाई ब्राह्मण वहु परिवार ॥
सेढ[2] मसानी देवी भूत । ग्रह नक्षत्रहु लगै अऊत ॥
चौथ[3] अहोई[4] लागै सौन[5] । तिरिया कारण साजो भौन ॥
औरौ बहुत बखेड़े जान । नारी सेती ही पहिचान ॥
महा अपरबल दुख तेहि माहीं । मरिकै चौरासी में जाहीं ॥
तातै ह्वजे वेगि उदास । समुझि तजो तिरिया की आस ॥
श्री शुकदेव कहैं चरणदासा । सभी कुटुँब है नरक निवासा ॥

—: पुत्र का मोह :—

दो० सुत की बोली तोतली, करै चोचले चाव ।
मन मोहै बाँधै घनो, छूटन को न उपाव ॥३५॥

---

१ निकटवास, देह-स्पर्श, नैन कटाक्ष, मीठी बातें, हाव-भाव करना, स्वरूप की एकता, स्नेह बढ़ाना, शृङ्गाररस दिखाना ये आठ काम के अंग हैं २ शीतला ३ चतुर्थी तिथि को पुजने वाली देवी ४ कार्तिक कृष्णा अष्टमी को पुजने वाली देवी ५ शकुन ÷ संबंधी ।

हँसि गोदी में आय करि, बहुत बढ़ावै नेह ।
तामें घने विकार हैं, अन्तकाल दुख देह ॥३६॥
मोह लगा मर जाय जब, तन मन लागै आग ।
चरणदास यों कहत हैं, सुख चाहै तो त्याग ॥३७॥
जिहि कारण चिन्ता लगै, जब लग घट में प्रान ।
हरि गुरु हिये न आवई, यही जु पूरी हान ॥३८॥
तन छूटे सुत में रहै, ऐ नर तेरी आस ।
जनम जु शूकर को लहै, मुये नरक ही बास ॥३९॥
कुटुंब बंध ऐसे करि जानो । फाँसीगर तिनकूँ पहिचानो ॥
तोकूँ डारैं नरक मँझारा । ताते होहु सबन से न्यारा ॥

—: घट के बैरी :—

बहुतक दुर्जन हैं घट माहीं । तू उनकूँ जानत है नाहीं ॥
हैं बैरी तू जानत मीता । स्वपने हू इनको नहिं चीता ॥
काम क्रोध लोभ अरु मोहा । सब ही राखैं तोसूँ द्रोहा ॥
जिनसे गर्व मछरता भारी । जगत बड़ाई तिनकी नारी ॥
आपा लिये सदा ही रहै । टेढ़े बचन झूठ बहु कहै ॥
इनके संग बने ही दुष्टी । तेरे तन में रहैं अदृष्टी ॥
नितही करैं अकारज नेरा । चरणदास कहै या बिधि घेरा ॥
दो० बहु बैरी घट में बसैं, तू नहिं जानत कोय ।
निशिदिन घेरे ही रहैं, छुटकारा नहिं होय ॥४०॥
जो कहुँ निकसि बाहरै आवै । अरु बिरक्त का रूप बनावै ॥
कुटुंब छोड़ि उपजै बैराग । जगत रहा चरणों से लाग ॥

कछू वासना मन में धँसी। जब ही लोक बड़ाई हँसी ॥
पुष्ट भयो आपा अभिमान। सहजहि आया मोह दिवान ॥
सबही संगी लिये बुलाय। या विरक्त कूँ घेरो आय ॥
ताकूँ बाँधि मुरंडा[1] कीन्हा। फेरि कुटुँब के माहीं दीन्हा ॥
कुटुँब मित्र गाढ़ा करि बांधा। वड़ि वड़ि आँखों ऐसा आँधा ॥
चरणदास कहै घर में आया। घट के दुर्जन वाहि वँधाया ॥
दो० कुनबे[2] में से निकसि करि, फिर कुनबे में जाय।
निश्चय नरकी होयगा, दुनियाँ में दुख पाय ॥४१॥

—: एक दृष्टांत :—

एक तपोवन में जा रहा। शीत ऊष्ण पावस शिर सहा ॥
सूखे पातों किया अहारा। छूटे सब ही जग व्यवहारा ॥
रहै ध्यान में निशि दिन लागा। हरि के चरणकमल में पागा ॥
महिमा सुनि राजा तहँ आया। दे परिक्रमा शीस नवाया ॥
हाथ जोरि ठाढ़ो फिरि भयो। तपसी मुख ना बैठन कह्यो ॥
ठाढ़े भये वार बहु भई। तब राजा ने मन में कही ॥
यह तपसी है बहु अभिमानी। मो आवन महिमा नहिं जानी ॥
ऐसी कहि मन माहीं ऐंठा। आपहि आप भूप वह बैठा ॥
दो० जो हरि के रँग में रँगे, भूपन सूँ क्या काम।
चरणदास कुछ भय नहीं, ना कुछ चाहिये दाम ॥४२॥
तपसी कछू न मुख सूँ भापा। राजा उठि चढ़ि मारग लागा ॥
क्रोधभरा महलन में आया। खोटा मन में मता उपाया ॥

१ वैराग्यहीन २ कुटुम्ब।

पातुरि[1] भेजि वाहि अजमाऊँ[2] । भेद झूँठ साँचे को पाऊँ ॥
जबही पातुरि लई बुलाई । ये बातें वाकूँ समझाई ॥
कहै पातुरी आज्ञा दीजै । देखि तमाशा वाका लीजै ॥
आयसु लै पातुरि घर आई । प्रथमें लौंड़ी[3] एक पठाई ॥
वा तपसी का लावो भेद । कौन वस्तु से वाको हेत ॥
कहा सु भोजन करै अहारा । छुटै भजन सूँ कौनी बारा[4] ॥
बाँदी गई भेद सो लाई । पातुरि कूँ सब बात सुनाई ॥
दो० झरै[5] जा मुख धोयकै, फिरि तलाव में न्हाय ।
चरणदास फल पात जो, गिरे पड़े ही खाय ॥४३॥
पातुरि सुनि मन में डरपाई । कैसे वाकूँ वश करूँ जाई ॥
बिन वश किये भूप नहिं रीझै । काढ़ि नगर सूँ बहुतै खीझै ॥
ताते मकर पेंच कछु कीजै । तपसी का मन कर में लीजै ॥
जो कहुँ इच्छा नेकहु पइये । छल बल करि वा मदन[6] जगइये ॥
यह विचार पातुरि जब कियो । नाना विधि भोजन कर[7] लियो ॥
गई जहाँ तपसी अस्थान । वह तो करत हुतो हरिध्यान ॥
बैठ रही धीरज उर धारि । जब लग उठै ध्यान निरवारि ॥
उठे ध्यान ते आँखें खोली । करि दण्डवत नारि यों बोली ॥
पुत्र नहीं हमरे घर मांहीं । जिस कारण दर्शन कूँ आई ॥
यह कहि भोजन आगे राखा । तपसी भोजन लिया न माखा ॥
वा दिन तो योंहीं उठि आई । अँगुली टिकन ठौर नहिं पाई ॥
दूजे दिन गइ बहुत सवाँरा । न्हाकर आये थे उहि वारा ॥

१ वेश्या २ जांच करना ३ दासी ४ समय ५ टट्टी जाना ६ कामदेव ७ हाथ ।

कहा कि भोजन हमरा कीजै । हमरे नैनन को सुख दीजै ॥
तपसी कहै न चित्त डोलाऊँ । सूखे पात और फल खाऊँ ॥
पातुरि कहै दूर सूँ आई । तुम तो दयावंत सुखदाई ॥
यही मान मेरो तुम राखो । बहुत नहीं अंगुली भरि चाखो ॥
कहिकर वचन वाहिपिघलाया[१] । अंगुली भरि भोजन चटवाया ॥
चाटत चाटत चाटत रहा । रणजीत कहै यों मन बहि गया ॥

दो० पातुरि ने कर जोरि करि, बहुरौ वचन सुनाय ।
एक बार अरु लीजिये, इन्द्रीजित ऋषिराय ॥४४॥

फिरि भारी अँगुली भरि लीन्हा । बहुरौ मुख के माहीं दीन्हा ॥
अँगुली टिकन काम करि आई । घर आकर बहुतै हुलसाई ॥
फिर ह्वाँ दिना चार ठहराई । उत नहिं गई यही मन आई ॥
पातुरि चतुर ढील[२] सूँ गई । तपसी कही कहाँ तुम रही ॥
जबही पातुरि प्रीति पिछानी । अपनी कला पैठती जानी ॥
वा दिन व्यंजन कछू न लाई । बहु विधि भोजन बात सुनाई ॥
घर ठाकुर सेवा चित लाऊँ । नाना विधि के भोग लगाऊँ ॥
लै आज्ञा निज भवन पधारी । चरणदास कहै छल कियो नारी ॥

दो० तपसी कूँ जीतन कियो, टेक बाँधि करि वाद[३] ।
हौरै[४] हौरै लाय हूँ, या जिह्वा के स्वाद ॥४५॥
नाना विधि के स्वाद करि, लै गइ वाही पास ।
कह्यो कि यह परसाद है, लीजै कोई ग्रास ॥४६॥

१ अनुकूल बनाया २ देर ३ शर्त ४ धीरे ।

ठाकुर को परसाद जु लीजै । याको नाहीं कबहुँ न कीजै ॥
नाहीं किये होय अपराध । तुम तो कहियो पूरे साध ॥
कछूक पातुरि वचन सुनायो । कछूक तपसी के मन आयो ॥
डारो हाथ थार के माहीं । ज्यों ज्यों खात सराहत जाहीं ॥
पातुरि कही सदा लै आऊँ । जो जो ठाकुर भोग लगाऊँ ॥
यामें कछू दोष नहिं लागै । तन मन का सब पातक भागै ॥
वाकूँ बश करिकै घर आई । सखियन कूँ यह कथा सुनाई ॥
कामदेव की सौंगंद खाऊँ । तपसी बँदुवा[1] करि दिखलाऊँ ॥
दो० रसना स्वादहि वश किये, मन में जीतन वाद ।
कभी आप बाँदी[2] कभी, पहुँचायो परसाद ॥४७॥
कबहूँ वा तपसी ढिग जावै । नाना विधि के भोजन खावै ॥
कबहूँ भेजै बाँदी हाथा । कहियो छुट्टी मोहि न नाथा ॥
वह जानै मम सेवा करै । यह तौ भजन तपस्या हरै ॥
एक दिना पातुरि ह्वाँ गई । हाथ जोरि भाषत यों भई ॥
कहो कि मेरे भवन पधारो । करो पवित्तर जूँठनि डारो ॥
लावन की बहु बात बनाई । सो तपसी के मन नहिं भाई ॥
ह्वाँई रही टोना सो कीन्हो । तपसी को मन वश करि लीन्हो ॥
दूजे रस की कला दिखाई । मोह बढ़ो अरु आँख लजाई ॥
भोर भये फिर बात सुनाई । छलबल करि घर ही लै आई ॥
चरणदास तपसी नहिं जानी । अजहूँ ठगनी ना पहिचानी ॥
दो० घर में ला बहु सुख दिया, दिना आठ ही राखि ।

१ कैदी २ दासी ।

तपसीहू वा वश भयो, पाँचन सूँ रस चाखि ॥४८॥
इन्द्रीवश पातुरि घर आया। अपने तप का तेज घटाया ॥
सिमटा मन भया फूटक फूटा। लागा ध्यान राम का छूटा ॥
देखो घर के वैरी किया। पकड़ बाँधि और कर दिया ॥
फिर पातुरि राजा पै गई। तपसी ठगन बात सब कही ॥
नेक नेक सब कह समझाई। तब राजा कूँ हाँसी आई ॥
योंहीं कही वेगि लै आवो। वाकी सूरत हमैं दिखावो ॥
फिर पातुरि उलटी ही धाई। तपसी कूँ इक बात सुनाई ॥
राजा दर्शन करन बुलावै। जित सेती खाने कूँ आवै ॥
वाकूँ चल करि दर्शन दीजै। किरपा प्यार बहुत ही कीजै ॥
हमतो उनकी सदा कहावै। नित उठि करि मुजरे[1] को जावैं ॥
ह्वाँतौ अपना घर ही जानौ। उठिये चलिये सकुच न मानौ ॥
पाछे, तपसी आगे बाला[2]। ऐसे राजदुआरे चाला ॥
जा राजा कूँ दई अशीसा। राजा बैठे नायो शीसा ॥
हँसि करि कही जु किरपा कीन्ही। यह नगरी अपनी करि लीन्ही॥
घर बैठे हम दर्शन पाये। वे धन हैं जो तुमको लाये ॥
तपसी कही धन्य तुम राजा। बहुतन को सारत[3] हौ काजा ॥
तुम्हरो तेज देखि हम चीन्ही। तुमहुँ तपस्या आगे कीन्ही ॥
बिना तपस्या राज न पावै। वेद पुराणन में यों गावै ॥
हमहूँ दर्शन तुम्हरे पाये। तपसी कहि यों वचन सुनाये ॥
भूपति बहुत अचम्मा कीन्हा। बहुत द्रव्य पातुरि को दीन्हा ॥

१ नमस्कार २ स्त्री ३ सुधारते हो।

फिरि राजा तपसी सूँ बोला। खोट हिये का सब ही खोला ॥
एक दिना हम तुम ढिग धाये। वन में तुम्हरे दर्शन पाये ॥
हूँ ठाढा रहा बहुती बारा। ना तुम बोले नैन उघारा ॥
आज द्यौस ऐसा हरि कीन्हा। ह्याईं आ तुम दर्शन दीन्हा ॥
यह सुनि तपसी शोचि विचारा। तबही पातुरि सूँ भयो न्यारा ॥
वेगहि उठि जंगल कूँ गया। चरणदास कहै रमता भया ॥

—: इन्द्रियवश होने वाले की दुर्दशा :—

दो० जो इन्द्रिन के वश भयो, यही हाल ह्वै जाय।
पछतावा मन में रहै, करै हाय दुख हाय ॥४९॥

पाँचों[1] चोर महा दुखदाई। सो या जग में देह फँसाई ॥
तन मन कूँ बहु व्याधि लगावैं। कायिक वाचिक पाप चढ़ावैं ॥
करम लगा बहुतै भरमावैं। यम के छप्पन[2] त्रास दिखावैं ॥
फिर चौरासी माहिं फिरावैं। जठर[3]अगनिमें ताहि तपावैं ॥
जन्म मरण भारी दुख देवैं। मानुष देह का सर्वस लेवैं ॥
तीन लोक में डोलै हाला[4]। स्वर्ग मृत्यु बहुरो पाताला ॥
कैसे मुक्तिधाम कूँ पावै। जो इन्द्रिन के वश हो जावै ॥
छूटै जब गुरु किरपा करैं। चरणदास के शिर कर धरैं ॥

—: वैराग्य चेतावनी :—

दो० स्वारथ ही के सब सगे, कुटुंब मित्र कुल गोत।
परमारथ समझावई, जो दयाल गुरु होत ॥५०॥

१ ज्ञानेन्द्रियाँ २ छप्पन प्रकार के नरक ३ गर्भ की ४ मारामारा फिरना।

परमारथ में दुख मिटै, कलह कलपना जाय।
स्वारथ माहीं सुख नहीं, तामें चित्त न लाय ॥५१॥
स्वारथ में चिन्ता घनी, जो ह्वाँ करिहो गेह।
विना आग की चिता में, जीवत जरि है देह ॥५२॥
चिन्ता घट में नागिनी, ताके मुख हैं दोय।
निशि दिन खाये जात है, जान सकै नहिं कोय ॥५३॥
ता घट चिन्ता नागिनी, जा मुख जप नहिं होय।
जो टुक आवै याद भी, उहीं जाय फिरि खोय ॥५४॥
चिन्ता ही सूँ लगत है, चरणदास उर आग।
तहाँ ध्यान हरिचरण को, कैसे हो अब लाग ॥५५॥
जक्त वासना के विषे, घर चिन्ता का जान।
जग की आशा छोड़ि करि, हरि सुमिरण ही ठान ॥५६॥
आशा नदिया में चलै, सदा मनोरथ नीर।
परमारथ उपजै वहै, मन नहिं पकड़ै धीर ॥५७॥
धीर विना नहिं ध्यान है, निश्चल जप नहिं होय।
जो चाहै हरि भक्ति कूँ, जक्तवासना खोय ॥५८॥
जब लग जग सूँ प्रीति है, तब लग दुःख अपार।
भय भारी चिन्ता घनी, भवन[1] पिछानौ[2] दार[3] ॥५९॥
जग सूँ छुटि बाहर परै, उसी समय सब चैन।
उपजै आनँद परम ही, तहाँ कुछ लैन न दैन ॥६०॥
रहै एक हरि भक्ति ही, व्याधा सब छुटि जाहि।

१ गृहस्थ जीवन को २ विवेकपूर्वक परीक्षा करके देखो ३ स्त्री चरित्र।

जबै राम अपनो करै, वेगहि पकरैं बाहि ॥६१॥

ताते सुन मन मेरे मीत । जगत छुटन की राखो चीत ॥
ऐसा अवसर फिर नहिं पावो । काहे मानुष देह गँवावो ॥
संगी तेरा नहिं धन धाम । तू क्यों पचै मूढ़ वेकाम ॥
पिछली गई तास कूँ रोय । आगे रही योंहिं मत खोय ॥
इक इक घड़ी अमोलक जान । चेत चेत मत होय अजान ॥
अपने घर का करो सँभाल । ललकारत आवत है काल ॥
याते कीजै यही विचार । डारि सिदौसी[1] जग जंजार ॥
शुकदेव कही हो चरणहिदास । हरि के चरणकमल करि वास॥

दो० यामें ढील न कीजिये, यह विचार मन आन ।
चरणदास यों कहत है, यह गो[2] यह मैदान[3]॥६२॥
आयुर्दा यों जात है, जस तरुवर की छाँह ।
चेत सितावी[4] भक्ति में, तजो जक्त की बाँह[5] ॥६३॥
तू नहिं पकरो जक्त ने, तैंहीं पकरो आय ।
ज्यों नलिनी[6] को सूवटा[7], धोखे पकड़ो जाय ॥६४॥

जैसे बाँदर आपहि फँसिया । समझवान मन माहीं हँसिया ॥
मूठ चनों की जो वह तजता । तौ काहे कूँ फँसा जु रहता ॥
ज्यों काँटे सूँ मच्छी लागी । आपहि आई चली अभागी ॥
सरवर में तरवर की छाहीं । अजया[8] देखि गिरी वा माहीं ॥
जैसे पत्ती जाल मँझारा । आपहि आय फँसा वजमारा[9]॥

१ जल्दी २ इन्द्रियाँ ३ विषय ४ शीघ्र ५ हाथ अर्थात् आसक्ति ६ चिकनी लकड़ी ७ तोता ८ बकरी ९ मंदभागी ।

खन्दक में हाथी आ परिया । ले न गया कोउ आपहि गिरिया ।।
बाजत बीन मृगा चलि आया । पकर कौन चंचल कूँ लाया ।।
योंही तुम अपनी गति जानौ । आपहि बंधे यही पहिचानौ ।।
ऐसे जग ने तू नहिं पकड़ा । चरणदास कहै नाहीं जकड़ा ।।

—: सुमिरण :—

दो० छोड़ जक्त की वासना, यही जु छुटन उपाव ।
ऐ मन ऐसी धारिये, अब ही नीको दाँव ।।६५।।
अब की चूके चूक है, फिर पछितावा होय ।
जो तुम जक्त न छोड़ि हौ, जन्म जायगो खोय ।।६६।।
जग माहीं न्यारे रहो, लगे रहो हरिध्यान ।
पृथ्वी पर देही रहै, परमेश्वर में प्रान ।।६७।।
ज्यों तिरिया पीहर बसै, सुरति पिया के माहिं ।
ऐसे जन जग में रहैं, हरिकूँ भूलैं नाहिं ।।६८।।
ज्यों किरपण बहु दाम ही, गाड़ि जिमीं के नीच ।
सदा वाहि तकतो रहै, सुरति रहै ता बीच ।।६९।।
तन छूटे हो सरप ही, जा बैठे वा ठौर ।
जहाँ आश तहाँ वास है, कहूँ न भर्मै और ।।७०।।
चित रहै गोविन्द के विपे, जग में सहज सुभाय ।
तन छूटै हरि कूँ मिलै, चरणकमल लिपटाय ।।७१।।
जग त्यागो वैराग लै, निश्चय मन कूँ लाव ।
आठपहर साठौं घरी, सुमिरण सुरति लगाव ।।७२।।
सब सूँ रहु निरवैरता, गहो दीनता ध्यान ।

अंत मुक्तिपद पाइ हौ, जग में होय न हान ॥७३॥
चरणदास यों कहत है, बड़ी दीनता जान।
औरन की तो क्या चलै, लगै न माया बान ॥७४॥
दया नम्रता दीनता, क्षमा शील संतोष।
इनकूँ ले सुमिरण करै, निश्चय पावै मोक्ष ॥७५॥
ये सब लक्षण राम में, परगट दीखैं मोहि।
जो ये आवैं तुझ विषे, प्यार करैं हरि तोहि ॥७६॥
हरि सूँ प्रीति लगाय कै, सब सूँ लेहि उठाय।
रहै सदा इक राम ही, और सकल मिटि जाय ॥७७॥
मिटते सूँ मत प्रीति करि, रहते सूँ करि नेह।
झूठे कूँ तजि दीजिये, साँचे में करि गेह ॥७८॥
साँचा हरि का नाम है, झूठा यह संसार।
शुकदेव कहि चरणदास हो, सुमिरण करो विचार ॥७९॥
दश इन्द्रिन कूँ खैंच करि, अभय अमरफल चाख।
सहजहि सुमिरण होत है, तामें मन कूँ राख ॥८०॥

—: नाम जप :—

मानसरोवर देह में, मुक्ताहल[1] जो श्वास।
चुगिये हंसस्वरूप ह्वै, खुलै कर्म की गाँस[2] ॥८१॥
अजपा को यहि अर्थ है, बिना जपे ही होत।
कछुवा की ज्यों[3] सिमट करि, तहाँ लगावो गोत ॥८२॥
आवत ही कूँ देखिये, जाते कूँ जो निहारि।

१ मोती २ गांठ ३ तरह।

ऐसे सुरत लगाइये, चरणदास हिय धारि ॥८३॥
सक्कारे[१] तन सींचिये, हक्कारे[२] सुख होय।
ऐसे सुमिरण[३] संत कूँ, जानै बिरला कोय ॥८४॥
नाभिहि सेती उठत है, फिर ता माहिं समाय।
याको भेद अपार है, सतगुरु देहिं बताय ॥८५॥
नाभि नासिका माहिं करि, घाल हिंडोला झूल[४]।
उपजै अति आनन्द ही, रहै न दुख का मूल ॥८६॥
ब्रह्मसिन्धु की लहर है, तामें न्हान संजोय[५]।
कलिमल सब छुटि जायँगे, पातक रहै न कोय ॥८७॥
अड़सठ तीरथ तो बिपे, बाहर क्यों भटकाव।
चरणदास यों कहत है, उलटा ही घर आव ॥८८॥
श्वासा सँभल विचारि करि, तहाँ करो विश्राम।
जाते हरि ही हरि कहौ, आवत कहिये श्याम ॥८९॥
श्वासा लेवै नाम बिन, सो जीवन धिक्कार।
श्वास श्वास में राम जप, यही धारणा धार ॥९०॥
उलट पलट जप राम ही, टेढ़ा सीधा होय।
याका फल नहिं जायगा, कैसे ही लो कोय ॥९१॥
खाते पीते नाम ले, बैठे चलते सोय।
सदा पवित्तर नाम है, करै ऊजला तोय ॥९२॥
नीचन कूँ ऊँचा करै, ऊँचन को करै देव।

१ नो २ हं ३ श्वास में सोहं का जप ४ अर्थात् नाक से नाभि तक आते जाते स्वांस में मन लगाना ५ प्रयत्न करो।

देवन कूँ हरि ही करै, रहै न दूजा भेव ॥९३॥
भरमत भरमत आइया, पाई मानुष देह।
ऐसो अवसर फिर कहाँ, नाम शितावी लेह ॥९४॥
कै घर में कै बाहरै, जो चित आवै नाम।
दोनों होहिं बराबरी, कै जंगल कै ग्राम ॥९५॥
करै तपस्या नाम बिन, योग यज्ञ अरु दान।
चरणदास यों कहत है, सब ही थोथे जान ॥९६॥
अधिकी ऊँचा नाम है, सब करणी का जीव।
अष्टादश[1] अरु चार[2]का, मथि करि काढ़ा घीव ॥९७॥
चारौंयुग में देखिले, जिन जपिया जिन नांव।
टेक पकरि आगे धँसे, पड़ा न पीछे पांव ॥९८॥
जैसी गति उनकी भई, गावत साधु पुरान।
वैसी तेरी होयगी, यह निश्चय करि जान ॥९९॥
दुख धन्धे कूँ छोड़ करि, कलह कल्पना त्याग।
शुकदेव कहि चरणदास कूँ, राम भजन में लाग ॥१००॥

—: भगवत् महिमा :—

हरि के गुण माला करो, रसना ऊपर लाव।
किया किया सब देखि करि, ताहि सराहत जाव ॥१०१॥
देखि देखि देखत रहो, अस्तुति मुख सूँ भाख।
बाकी चतुराई सबै, लै करि मन में राख ॥१०२॥
वैसा तो रँगरेज ना, वैसा छीपी नाहिं।

१ अठारह पुराण २ वेद।

वैसा कारीगर नहीं, या दुनिया के माहिं ॥१०३॥
अजब अजब अचरज किये, अद्भुत अधिक अपार ।
जल थल पवन अकाश में, देखो दृष्टि उघार ॥१०४॥
सृष्टि बाग माली रचो, भाँति भाँति गुलजार[१] ।
रीझरीझ शिर दीजिये, एहो निरख बहार ॥१०५॥
कबहूँ जग परगट करै, कबहूँ करै अलोप[२] ।
नानाविधि बाजी करै, आप रहत है गोप ॥१०६॥
बाजीगर बाजी[३] रची, सब गति पूरण साज ।
किये तमाशे बहुत ही, तोहि दिखावन काज ॥१०७॥
देखि होय परसन्न ही, तू वाको गुण मान ।
चरणदास जो बुद्धि है, अधिक सुघरता[४] जान ॥१०८॥
बहुत प्यार तोपै करै, तू नहिं जानत सार[५] ।
वाहि भुलाये ही फिरै, नेक न करै सँभार ॥१०९॥
राम बिसारो आदि सूँ, लियो द्रव्य अरु नार ।
याही ते भरमत फिरो, तन धरि बारंबार ॥११०॥
गई सु गई अब राखि ले, एहो मूढ़ अयान ।
निष्केवल हरि कूँ रटौ, सीख गुरू की मान ॥१११॥

—: जाग कर भजन करने की महिमा :—

सोवन में नहिं खोइये, जन्म पदारथ पाय ।
चरणदास हो जागिये, आलस सकल गँवाय ॥११२॥
सोवन ही में हानि है, जागन में बहु लाभ ।

१ फुलवारी २ प्रलय ३ खेल ४ चतुराई ५ रहस्य ।

बुद्धि जु उज्ज्वल होत है, मुख पर चढ़ै जु आम[1] ॥११३॥
दिन कूँ हरि सुमिरण करो, रैनि जाग करि ध्यान।
भूख राखि भोजन करो, तजि सोवन की बान ॥११४॥
चारि पहर नहिं जगि सकै, आधी रात सूँ जाग।
ध्यान करो जप ही करो, भजन करन कूँ लाग ॥११५॥
जो नहिं श्रद्धा दोपहर, पिछिले पहरे चेत।
उठ बैठो रटना रटो, प्रभु सूँ लावो हेत ॥११६॥
जागे ना पिछिले पहर, ताके मुखड़े धूल।
सुमिरै ना करतार कूँ, सभी गँवावै मूल ॥११७॥
जागै ना पिछिले पहर, करै न आतम ध्यान।
ते नर नरकै जाइँगे, बहुत सहैं यमसान[2] ॥११८॥
जागै ना पिछिले पहर, करै न गुरु मत[3] जाप।
पोह[4] फाटै सोवत रहै, ताको लागै पाप ॥११९॥
पिछिले पहरे जागि करि, भजन करै चित लाय।
चरणदास वा जीव की, निश्चय गति ह्वै जाय ॥१२०॥
पिछिले पहरे जागि करि, भरि भरि अमृत पीव।
विषय जक्त की ना रहै, अमर होय करि जीव ॥१२१॥
जन्म छुटै मरणा छुटै, अवागमन छुटि जाय।
एक पहर की रात सूँ, बैठा हो गुण गाय ॥१२२॥
पहिले पहरे सब जगै, दूजे भोगी मान।
तीजे पहरे चोर ही, चौथे योगी जान ॥१२३॥

१ प्रकाश २ यमत्रास ३ दिया हुआ ४ अरुणोदय।

मरयादा की यह कही, क्या विरक्त परमान ।
आठपहर साठौं घरी, जागै हरि के ध्यान ॥१२४॥
जे कोइ विरही राम के, तिनकूँ कैसी नींद ।
शस्तर लागा नेह का, गया हिये को बींध ॥१२५॥
तिन से जग सहजै छुटा, कहा रंक कहा भूप ।
चले गये घर छोड़िकै, धरि विरक्त का रूप ॥१२६॥
जिनको मन विरकत सदा, रहो जहाँ चित होय ।
घर बाहर दोउ एकसा, डारी दुविधा खोय ॥१२७॥
सोये हैं सँसार सूँ, जागे हरि की ओर ।
तिनकूँ इकरस ही सदा, नहीं साँझ नहिं भोर ॥१२८॥
उनकूँ नींद न आवई, राम मिलन की चींत ।
सोवैं ना सुखसेज पै, तजिकै हरि सो मींत ॥१२९॥
कै सोवैं हरि सूँ मिलैं, जिनके ऊँचे भाग ।
कै सोवैं हरि त्यागि कै, रहे जक्त सूँ लाग ॥१३०॥
सोवन जागन भेद की, कोइक जानत बात ।
साधूजन जागत तहाँ, जहाँ सवन की रात ॥१३१॥
जो जागै हरिभक्ति में, सोई उतरै पार ।
जो जागै संसार में, भवसागर में ख्वार ॥१३२॥
कै जागत हुक्का भरा, कै जागा वश काम ।
कै जागा जग टहल में, लाग रहा धन धाम ॥१३३॥
ऐसे जन्म गँवा दिया, महामूढ़ अज्ञान ।
चौरासी में फिर चले, मन का कहा जु मान ॥१३४॥

सतगुरु शरणै आय करि, कहा न मानै एक।
ते नर बहु दुख पाइ हैं, तिनकूँ सुख नहिं नेक ॥१३५॥
सतगुरु चरणौं ना लगे, किया न हरि का खोज।
सो खर[1] कूकर शूकरा, अरु जंगल का रोझ[2] ॥१३६॥

—: मिताहार :—

पेट भरे भर सोइया, ते नर पशू समान।
परनारी कै आपनी, तिनका नाहीं ज्ञान ॥१३७॥
जैसा तैसा खाय करि, पेट भरे भरि लेह।
पड़कर सौवे भोर लौं, सो शूकर की देह ॥१३८॥
हरिचरचा बिन जो बकै, सो कूकर की भूँस।
रणजीत कहै वह साँझ लौं, खाय भूँस[3] ही भूँस ॥१३९॥
जो पावै सोई चरै, करै नहीं पहिचान।
पीठ लदै हरि ना जपै, ताकूँ खर ही जान ॥१४०॥
रोझ जान वा देह कूँ, ताकू नहीं विचार।
फिरै बिना मर्यााद ही, बहुता करै अहार ॥१४१॥
बहुता किये अहार ही, मैली रहै जु बुद्धि।
हरि के निर्मल नाम की, कैसे आवै शुद्धि ॥१४२॥
सूक्षम भोजन खाइये, रहिये ना पड़ सोय।
ऐसी मानुष देह कूँ, भक्ति बिना मत खोय ॥१४३॥
जन्म चलो ही जात है, ज्यों कूवे में लाव।
दौरत मृग की छाँह को, नेक नहीं ठहराव ॥१४४॥

१ गधा २ नीलगाय ३ विना विचारे खाना।

समझ शितावी भक्ति ले, नेक न ढील लगाव ।
आपा हरि कूँ दे चुको, याको यही उपाव ॥१४५॥

—: सतगुरु का स्वरुप :—

जगका कहा न मानिये, सतगुरु सों ले बुद्धि ।
ताकूँ हिय में राखिये, करो शितावी शुद्धि ॥१४६॥
गुरु सेती सतगुरु बड़े, परमेश्वर के रूप ।
मुक्ति छाँह पहुँचाय दें, जक्त छुटावैं धूप ॥१४७॥

॥ कुण्डलिया ॥

पहिला गुरु दाई कहूँ दूजे माई जान ।
तीजा गुरू खिलावड़ी[1] चौथा पिता पिछान ॥
चौथा पिता पिछान पाँचवें पाधा[2] जानौ ।
कनफूँका गुरु छठा तासु पूजा दे मानौ ॥
सतवाँ सतगुरु जानिये जग सूँ करै उदास ।
मुक्तिधाम सोइ देत है कहै चरणहीदास ॥

दो० गुरु मिलते ऐसे कहै, कछू लाय मोहि देह ।
सतगुरु मिल ऐसे कहै, नाम धनी का लेह ॥१४८॥
कनफूँका गुरु जगत का, राम मिलावन और ।
सो सतगुरु को जानिये, मुक्ति दिखावन ठौर ॥१४९॥
गलियारे[3] गुरु फिरत हैं, घर घर कंठी देत ।
और काज उनकूँ नहीं, द्रव्य कमावन हेत ॥१५०॥
सतगुरु डंका देत हैं, भक्ति राम की लेहु ।

१ जो लड़कपन में खिलावे २ प्रारम्भिक अध्यापक ३ गलियों में ।

पहिले हमकूँ भेंट ही, शीस आपनो देहु ॥१५१॥
सो सतगुरु शुकदेव हैं, समझि हिये में राखि ।
तिनके शरणै आव मन, चरणदास कहै माखि ॥१५२॥
यह सगरो उपदेश ही, मैं आपन कूँ कीन ।
मो मन कूँ आपा घना, कहीं होय आधीन ॥१५३॥
सतगुरु सूँ माँगौं यही, मोहि गरीबी देहु ।
दूर बड़प्पन कीजिये, नान्हा ही करि लेहु ॥१५४॥
जनक परम गुरुदेवजी, सुनु सतगुरु शुकदेव ।
यही अर्ज मैं करत हूँ, मोहि साधु करि लेव ॥१५५॥
चारौं युग के भक्तजन, तुमहो सुख के धाम ।
चरणहिदासा होय के, तुम्हैं करूँ परणाम ॥१५६॥
आदि पुरुष किरपा करो, सब अवगुण छुटि जाहिं ।
साधु होन लक्षण मिलैं, चरणकमल की छाहिं ॥१५७॥

—:भगवत महिमा:—

तुम्हरी शक्ति अपार है, लीला को नहिं अंत ।
चरणदास यों कहत है, ऐसे तुम भगवंत ॥१५८॥

॥ छप्पै ॥

रच्यो आप में जगत रूप नारायण कीन्हो ।
दूजे लक्ष्मी भई बहुरि पानी रँग भीन्हो ॥
नाभिकमल फिरि भयो जहाँ ब्रह्माजी उपजे ।
विधिकी त्रिकुटी माहिं तहाँ शंकरजी निपजे ॥
चारि वेद अरु विष्णु ह्वै सकल जगत छिन में कियो ।
निराकार आकार सो चरणदास जिहि मन दियो ॥

॥ कवित्त ॥

वही तौ अडिग्ग[१] राम चौथे पद वास जाको, वही तौ अडिग्ग राम मथुरा में आयो है। वही तौ अडिग्ग राम योगी जाको ध्यान धरैं, वही तौ अडिग्ग राम सीतापति पायो है॥ वही तौ अडिग्ग राम सभी ठाम रमि रह्यो, वही तौ अडिग्ग राम संतन सहायो है। वही तौ अडिग्ग राम चरणदास चेरो जाको, वही तौ अडिग्ग राम काया खोजि पायो है॥

—: निर्भय पद के साधन :—

मायाभ्रम फंद देख साधन को संग पेख, रामजू को पहिरि भेख कंचन तन तावरे। मन कूँ पहिचान ज्ञान एका-एकी[२] सबै जान, नाद के गहेते तू अनाहद बजावरे॥ उलटि पलटि काया बीच चारों कर दूर नीच, ऐसी विधि मेरुपै[३] समीर[४] कूं चढ़ावरे। कहै चरणदासा गगन मध्य करौ वासा, जहाँ नहीं शीत उष्ण निरभय पद धावरे॥

—: चेतावनी :—

दो० दुर्योधन रावण गये, अरु यादव परिवार।
चरणदास थिर को नहीं, होय मिटै संसार॥१५९॥

॥ कवित्त ॥

भोर सो विहानो[५] जात ढरैगी दुपहरी सी, समझ कै विचारि देखि चली आवे रात है। भ्रमत है शुचान[६] काल तेरे पर ताकि रह्यो, छिन पल की खबर नाहिं करै आय घात है॥

१ अचल २ एकत्व ३ रीढ़ की हड्डी ४ पवन ५ बीत रहा है ६ बाज।

दारा सुत सम्पति सब सुपने को सुख भयो, जानौगे जभी जब छूटि जाय गात है। कहै चरणदास अब तजै क्यों न विषय वास, पानी में नाव जैसे आयु चली जात है ॥

कुमारग सूँ भाज और लाज खोटे करमन सूँ, चौरासी के त्रासन सूँ मूढ़ क्यों न लजरे। साधुन के संग बैठि धर्महू की नाव लेटि, गुरुहू को ज्ञान राखि प्रेम भक्ति सजरे ॥ छूटै जब नारी[1] यम देवैं दुःख भारी, डारैं नरक मँझारी आवागमन क्यों न तजरे। कहै चरणदास अब तजै क्यों न विषय वास, राम के सँवारे[2] तू राम राम भजरे ॥

॥ सवैया ॥

भूलि रहो जग में जड़तावश, दारा सुता सुत प्रीति बढ़ावै।
इनसूँ मन बाँटि रहो गृह बीच, सो अन्त समैं कोइ पास न जावैं॥
आनि गहै यमराज जबै, सबही मिलि प्रीतम राम बतावै।
चरणदास कहै चेतो नर मूरख, राम बिना कोई काम न आवै ॥

—: अनन्य आश्रय :—

॥ कवित्त ॥

धावै भरम देवन कूँ भीतन केलेवन[3] कूँ, कोई संग साथी नाहिं भीरपरे तेरा है। परसता है चंडकी भूत अरु शीतला कूँ, भजै क्यों न राम नाम कटै यमबेरा है ॥ मैरों अरु वाराही[4] पाखंड पूजा सभी करैं, लगी है बहीर[5] किन्हूँ नैनन

१ नाड़ी २ संभाल कर ३ दीवारों पर लिखी हुई देवी आदि ४ एक देवी ५ भीड़-कतार।

न हेरा है। चरणदास कूर सब सन्तन को चेरो कहै, ऐसो जग अन्धा जानि कर्मन ने घेरा है॥

दो० यंतर टोना मूँड़ हलावन, और कीमियाँ झूठ।
चरणदास कहैं सब भगल है, यह जग लीन्हा लूट ॥१६०॥

॥ कवित्त ॥

भूतन कूँ सेवै सो भूतन में जाय मिलै, जादू को सेवै सो चमार ताकी माई सूँ। देवतों कूँ सेवै तौ देवलोक बास लहै, औषधी कूँ सेवै तो मिलाप रावराईसूँ॥ कीमियाँ कूँ सेवै तौ खराब होय दुनियाँ में, ऐसे धन खोवै जो सुनावै नहि भाई सूँ। कहै चरणदास हम इतने कूँ मानै नाहिं, देखि सभी छाँड़ि मन लागो है कन्हाई सूँ॥

कु० पारा मारा ना मरै गंधक होय न तेल।
केते पचि पचि मरि गये शिर में मिट्टी मेल॥
शिर में मिट्टी मेल भटक करि जन्म सिरायो।
जड़ी बूँटि कूँ फिरे कहीं कुछ हाथ न आयो॥
बौरे हरि क्यों न भजे काहे को जन्म गवायो।
चरणदास कीमियाँ झूठी मोको शुकदेव सुनायो॥

॥ अरिल्ल ॥

सात पाँच की सेव तजो लगि एक सूँ।
साधन की करि सेव मुड़ो मत भेप सूँ॥
भेपी माहिं अलेख यही तू जानियो।
चरणदास की सीख निश्चय करि मानियो॥

दो० आपै भजन करैं नहीं, औरैं मने करैं।
चरणदास कहै वे दुष्ट नर, भर्म भर्म नरकै परैं ॥१६१॥
औरन कूँ उपदेश करि, भजन करैं निष्काम।
चरणदास कहै वे साधुजन, पहुँचैं हरि के धाम ॥१६२॥
शून्य शहर हम बसत हैं, अनहद है कुलदेव।
अजपा गोत विचारिले, चरणदास यहि भेव ॥१६३॥

—: भक्ति पदार्थ की महिमा :—

भक्तिपदारथ उदय सूँ, होय सभी कल्याण।
पढ़ै सुनै सेवन करै, पावै पद निरबाण ॥१६४॥
भक्तिपदारथ मैं कही, कछु इक भेद बखान।
जो कोइ समझै प्रीति सूँ, छूटै यमदुख सान ॥१६५॥
पाठ करै मन में धरै, बहुरूँ करै विचार।
कहैं गुरू शुकदेवजी, उतरै भवजल पार ॥१६६॥
जय जय श्रीशुकदेवजी, तुम्हैं करूँ परणाम।
तुम प्रसाद पोथी कही, भये जो पूरणकाम ॥१६७॥
हिरदय में शीतल हुये, तपनि गई सब दूर।
या वाणी के कहेते, कायर मन भयो शूर ॥१६८॥
चन्दन चरचै पुष्प धरि, बहुरि करै परणाम।
कथा बाँचि सबरी सुनैं, कहा पुरुष कहा वाम ॥१६९॥
कहै सुनै जो प्रेम सूँ, वाकूँ राखै याद।
चरणदास यों कहत है, बनि हो पूरे साध ॥१७०॥

॥ इति श्रीचरणदासजी कृत भक्तिपदार्थ संपूर्णम् ॥

अथ मन विरक्तकरण गुटकासार प्रारम्भ

श्रीमद्भागवत एकादश स्कंध में वर्णित

राजा यदु एवं दत्तात्रेय जी का चौवीस गुरु संबंधी संवाद ।।

दो० नमो नमो श्रीव्यासजी, सतगुरु परमदयाल ।
ध्यान किये आशा नशै, लगै न जगत खयाल ॥१॥

।। अष्टपदी ।।

नमो नमो शुकदेव तुम्हैं परणाम है ।
तुम किरपा सों आय मिलैं घनश्याम है ।।
तुम्हरी दया सों होय जु पूरण योग है ।
तन की व्याधा छुटै मिटै मन रोग है ।।
तुम किरपा सों ज्ञानपदारथ पावई ।
उपजै सार विचार असार छुटावई ।।
तुम्हरी दया सों होय भक्ति निस भोर है ।
हिये सरोवर उठत जु प्रेम हिलोर है ।।
तुम किरपा वैराग दूर लगि आवई ।
सकल वासना छूटि परमपद पावई ।।
सब गुणदायक लायक परमदयाल हौ ।
मम हिरदय में आय भेद सब ही कहौ ।।
मोसे कछु नहिं होय जु तुम बिन नाथजू ।

नितहि रहो तुम हाथ जु मेरे माथजू ॥
अरज करै रणजीत सुनो गुरुदेव जी ।
मो मुख सेती भाषि कहौ सब भेव जी ॥

दो० एकादश भागवत में, जाकी यह मति जान ।
दत्तात्रेयी ने कह्यो, राजा यदु सों ज्ञान ॥२॥
अब मैं भाषा कहत हौं, तुम ही करो सहाय ।
ज्यों की त्यों मुख से निकसि, पूरी ही ह्वै जाय ॥३॥
सुनियो ज्ञानी सन्तजन, रहन गहन की चाल ।
जो कोइ लै हिरदय धरै, होवै तुरत निहाल ॥४॥
चरणदास हो कहत हौं, परमारथ के काज ।
जो अँग श्रीभागवत में, साधु होन के साज ॥५॥
गुरु शुकदेव प्रताप सों, कहूँ विचार विवेक ।
दत्तात्रेयी ने किये, चौवीसौं गुरु देख ॥६॥

॥ कुण्डलिया ॥

एक दिना यदु भूप ही खेलन गये शिकार ।
तहाँ नगर के निकट जो ह्वाँ थी अधिक उजार ॥
ह्वाँ थी अधिक उजार एक अवधूता लेटे ।
मूरति पुष्ट प्रसन्न जक्त के भय सब मेटे ॥
राजा देखि प्रणाम करि पूछा शीस नवाय ।
पाये आनँद कहाँ तुम मो से कहौ सुनाय ॥

दो० बोले दत्तात्रेय जब, सुनि हो भूप विशाल ।
चौबिस परिचा गुरु किये, तासों भये निहाल ॥७॥

॥ कुण्डलिया ॥

पृथ्वी पवन अकाश है नीर अग्नि शशि भान ।
कपोत गुरू अजगर लखो और सिन्धु को जान ॥
और सिन्धु को जान पतंगा भँवरा कहिये ।
माखी हाथी मृगा मीन अरु पिंगला लहिये ॥
चील्ह वाल कन्या कहूँ तीर बनावनहार ।
साँप माकरी भृंग जो चौबीसों उरधार ॥

दो० भिन्न भिन्न अब कहत हौं, जुदो जुदो विस्तारि ।
ताको सुनि करि चेतियो, चरणदास नर नारि ॥८॥

॥ अष्टपदी ॥

दत्तात्रेय की बात सकल अब गाय हौं ।
बीसचारि गुरु किये ताहि समुझाय हौं ॥
जिस कारण जिस हेतु जु उन ऐसी करी ।
जो जो शिक्षा लई समझ हिरदय धरी ॥
जासों भजे मनरोग जक्त व्याधा नसी ।
उपजि परम संतोष क्षमा हिय आ बसी ॥
परम भये आनंद परमपद पाइया ।
जीवन्मुक्त होय कि चाह उठाइया ॥
सोइ कहूँ अब साध सबै सुनि लीजिये ।
शुकदेव परीक्षित सों कह्यो साँच पतीजिये ॥
दत्तात्रेय अवतार श्रीभगवान के ।
राजा यदु सों बोल बचन भाषत भये ॥

हमने गुरू चौबीस करे संसार में ।
तिनको ज्ञान विचार कहूँ निरधार मैं ॥
पहिले गुरु की शरण गही वहु प्रीति सों ॥
उन दीनों उपदेश मंत्र जो रीति सों ।

दो० सतगुरु ने किरपा करी, धरो हाथ मम शीश ।
यही कही सुमिरण करो, ध्यान करो जगदीश ॥६॥

॥ अष्टपदी ॥

काया छीजत देखि यही मन में धरो ।
विरथा खोवत आयु नेम तप को करो ॥
गहि विरक्तकी रीति तभी गृह को तजो ।
रामभक्ति को चाव हमारे मन रचो ॥
जग सों रहौं उदास वास हरि पद जहाँ ।
छुटि छुटि जावै ध्यान न मन लागे तहाँ ॥
बालक गारी देइ कोई बेलाज ही ।
शिरपै डारैं खेह सोई वेकाज ही ॥
हँसि हँसि ताली पीट जु हमरे सँग लगैं ।
मैं हूँ चलो उठाय तौ वे आगे भगैं ॥
तातें निशिदिन क्रोध आपने मन धरूँ ।
हरि सुमिरण गो भूलि जक्त में यों फिरूँ ॥
तब शिक्षा गुरु किये चौबीसौं भेद ही ।
सो अब वर्णन करूँ छुटै सब खेद ही ॥
तिन सों सीखी चाल सभी उर में धरी ।

चरणहि दासा होय सुरति आनँद भरी ॥

१—: पृथ्वी :—

दो० पहिले गुरु पृथ्वी किया, तीन सीख लइ तास ।
गिरिवर तरुवर मही जो, भयो चरण को दास ॥१०॥

॥ अष्टपदी ॥

पहिले पृथ्वी गुरू हमारो जानिये ।
ताते लइ मति तीन साँच हिय आनिये ॥
पहिले पर्वत एक मही ऊपर लखा ।
जाके निकटै जाय जु चढ़ि बैठा शिखा ॥
कोइ ऊपर चढ़ि जाय कोई आवै तले ।
जल बरपै ना बहै पवन सों ना हिलै ॥
वा पर्वतकी सीख बुद्धि में मानिया ।
देह लोभ दियो त्याग जु थिरता आनिया ॥
क्रोध दियो बिसराय जो तामस डारई ।
कोउ कहौ दुर्वचन कोउ क्यों न मारई ॥
क्रोध लोभ जो होय करै मन भंग है ।
कैसे सुमिरण होय लगे हरि रंग है ॥
क्रोध लोभ छुटिजाय रहन ये अगाध है ।
पर्वत की सम होय जो निश्चल साध है ॥
वृत्त कहूँ अब जान जासु मति पाइया ।
कहै चरणको दास जो चित्त लगाइया ॥

दो० तरुवर ने काया धरी, परमारथ के हेत ।

कोऊ बैठै छाहँ में, कोऊ कारज लेत ॥११॥

॥ अष्टपदी ॥

दूजे देखे वृक्ष धरणि ऊपर भले।
उनहूँ की लइ सीख गयो उनके तले॥
मन न हुती यह बात जु परकारज करूँ।
या प्राणी के काज नहीं करतो फिरूँ॥
जब आई यह रीति वृक्ष की दृष्टि में।
मैं लीन्ही सोइ धारि भलीविधि सृष्टि में॥
कोई बैठे छाहँ कोई डारी हनै।
कोई ले फल फूल वृक्ष कछु ना भनै॥
परमारथ के काज वृक्ष देही धरी।
सकल जीव ब्योसाहिं[1] यही मनसा करी॥
जो विरक्त सों काज कोई अपनो कहै।
वाको नाटै नाहिं सभी शिर पर सहै॥
काहू को कछु काज जो काया सों सरै।
यह शिक्षा भलिभाँति वृक्ष की मन धरै॥
तीजे शिक्षा और मही की धारिया।
चरणहिदासा होय अहूँ[2] को मारिया॥

दो० कोई खोदै नींव को, कोई खोदै कूप।
अरु ऐसे कारज किते, ऐसो धरो स्वरूप॥१२॥

१ लाभ उठाना २ अहङ्कार।

॥ अष्टपदी ॥

काहू को वह भलो बुरो हू ना कहै।
ऐसे विरक्त रहै सभी दुख सुख सहै॥
हरि सुमिरण में मगन सदा आनन्द रहै।
भलो बुरो नहिं मान एकता दृढ़ गहै॥

२—: पवन :—

दूजे गुरु कियो पवन सीख लइ जासु की।
दोय भाँति पहिचान हिये धरि तासु की॥
इक दिन बाग के माहिं सहज ही में गयो।
देखन लाग्यो फूल जाय ठाढ़ो भयो॥
पुष्पन सों लगि पवन बास मोहि आइया।
जब ही कीन्हों ज्ञान बात सब पाइया॥
वह तौ अतिहि सुगन्ध हरष उपजावई।
फिर आई दुर्गन्ध बहुत अनखावई[1]॥
गन्धहि सों लगि पवन आप गन्धहि भई।
पुनि आई बिन गन्ध शुद्ध निर्मल वही॥
वाको देखि स्वभाव यही मन आइया।
चरणहिदासा होय अंग उपजाइया॥

दो० एक दिना इच्छा करी, भिक्षा माँगी जाय।
अपनी श्रद्धा उन दियो, भोजन कर में लाय॥१३॥

॥ अष्टपदी ॥

वाकी अस्तुति नाहिं कछू मुख ते कही।

१ अप्रिय लगी।

फिर गयो दूजे द्वार दई भिक्षा नहीं ॥
जाकी निंदा नाहिं कछूक उचारिया।
अस्तुति निन्दा त्याग यही जु विचारिया ॥
जिन कछु दीन्हो नाहिं नहीं औगुण धरो।
जो कछु पहिले आयो सोई भोजन करो ॥
जो कहुँ अपने काज गयो भलि ठाँव ही।
गिरहण कीन्हों नाहिं रंग नहिं लाव ही ॥
जो गयो भोंड़ी ठौर बुरो नहिं जानियाँ।
आतमरूप सँभाल जहाँ मन आनियाँ ॥
सबही सों निर्लेप सबन के माहि हूँ।
सहज भवन में आय सहज कहिं जाहि हूँ ॥
परालब्ध जो पाय ताहि भोजन कियो।
ना तो करि परणाम बैठि योंही रह्यो ॥
जिह्वा लौं ही जान स्वाद भोजन सभी।
इक सम सबही होयँ उदर जावैं जभी ॥
अब आयो सन्तोप कल्पना सब गई।
चरणहिदासा भयो जभी यह मति लई ॥

३—: आकाश :—

दो० तीजे गुरु आकाश को, कीनों समझ सँभार।
जाकी मति के लेत ही, पायो ब्रह्म विचार ॥१४॥

॥ अष्टपदी ॥

तामें बरसै मेह और आँधी चलै।

बिजली चमक वा माहिं और पावक जलै ॥
सदा रहै निर्लेप और निर्मल रहै ।
सब ही जग वा माहिं आप निर्लम्ब है ॥
पवन हलावै नाहिं अग्नि जारै नहीं ।
ताहि न भिजवै नीर मरै मारै नहीं ॥
लघु दीरघ नहिं होय पुरुष नहिं नार है ।
नहिं सूक्षम नहिं भार वार नहिं पार है ॥
शब्द उठै बहु भाँति वही जो अबोल है ।
उतपति परलय माहिं सदा जो अडोल है ॥
यह नभ ब्रह्म समान लखो दृष्टान्त है ।
निरखि हिये की आँख गयो सब भ्रान्त है ॥
भाँड़े कनक के होहिं चाँदी के देखिया ।
काँसी पितल के होयँ मट्टी के पेखिया ॥
सब माहीं आकाश एक ही जानिया ।
यों घट घट में ब्रह्म सकल पहिचानिया ॥
थिर चर ही के माहिं जु थावर जंग में ।
न्यारा अरु सब बीच भली विधि रंग में ॥
जो बर्तन गयो फूटि रह्यो आकाश हू ।
ऐसेहि काया बिनशि रहै नित ब्रह्म जू ॥
नित्य अनित्य विचार जभी निश्चय भई ।
पायो आतमज्ञान सभी दुबिधा गई ॥
ना काहू से बैर नहीं कहुँ प्रीति है ।

ना काहू दुख देहुँ नहीं सुख रीति है ॥
काहू से नहिं डरूँ न काहू सँग लगूँ ।
काहु कि शरण न जावँ न काहू से भगूँ ॥
कहैं श्रीशुकदेव विवेक विचार सों ।
दत्तात्रेयी कह्यो यथा यदुराज सों ॥
यह शिक्षा आकाश सों लीन्ही जानिकै ।
चरणहिदासा भयो यही मत मानिकै ॥

४—: नीर :—

दो० चौथे गुरु कियो नीर ही, जाको सुनो प्रसंग ।
आप महाउज्ज्वल रहै, मिलि जावै सब रंग ॥१५॥

॥ अष्टपदी ॥

जल ज्यों निर्मल होय सदा विरकत वही ।
तजै न शीतल अंग बसै नित ही मही ॥
गृही संग जो चलै बाट कबहूँ कहीं ।
मन सों न्यारा रहै लेप लागै नहीं ॥
ऐसो रखै विचार यथा बरषा समै ।
जल मैला ह्वै जाय खेह सँग ही रमै ॥
संगति गुण सों होय जु गँदला आप ही ।
जाड़े में ह्वै शुद्ध लगै नहिं पाप ही ॥
समझो यों चित माहिं संग को गुण यहै ।
निर्मल नीर स्वभाव सदा उज्ज्वल रहै ॥
संसारी के संग सों जब मन फिर गयो ।

तब नारायण रूप ध्यान आनँद लयो ॥
कछू मैल मन माहिं कबहुँ व्यापै नहीं ।
जल अरु साधू भाँति एक जानो तहीं ॥
जो कुचील कछु होय सो जल सों धोइये ।
वाको कीजै शुद्ध मैल सब खोइये ॥
साधू ऐसा होय ज्ञान मुख उच्चरै ।
श्रोता के सब पाप ताप व्याधा हरै ॥
ताते ही उपदेश भक्ति का कीजिये ।
नीच ऊँच मत देख वृत्त ज्यों सींचिये ॥
मीठे शीतल नीर को यह गुण लीजिये ।
मीठा सब सों बोलि परमसुख दीजिये ॥
गुरु शुकदेव प्रताप सों जल गुण गाइया ।
चरणहिंदासा होय नमनता[1] आइया ॥

५—: अग्नि :—

दो० पंचम गुरु कियो अग्नि को, समझ निहारि निहारि ।
उत्तम मध्यम जारदे[2] , राखै कछु न विचारि ॥१६॥

॥ अष्टपदी ॥

ब्राह्मणहूँ करै होम शूद्र जोपै करैं ।
दोउ पवित्र करि देइ दोऊ के अघ हरै ॥
ऐसे साधू लोग जहाँ भोजन करैं ।
वाको पावन करैं पाप सबही हरैं ॥

१ आधीनता २ जलादे ।

गृही जु सेवा करै आश ऐसी धरै।
विरकत भोजन किये पाप निश्चय जरै॥
धान्य हमारो खाय जु साधूजन कभी।
हमरे प्राछत[1] जाहिं और व्याधा सभी॥
साधूजन जो होय अग्नि के भाँति ही।
सकल पाप करै चार जु वाकी क्रांति ही॥
सदा गुप्त ही रहै प्रकट किये होत है।
ऐसे साधू भेद छिपावै जोत[2] है॥

६—: चन्द्रमा :—

षष्ठम गुरु कियो चंद सदा इक सम वहै।
कला घटै अरु बढ़ै मावस लग ना रहै॥
पूनो[3] को सब होहिं कला भरपूर ही।
चाँदनि सब जग माहिं विराजत नूर ही॥
शशिमण्डल इक भाँति रहै नाहीं घटै।
योंही आतमरूप चरणदासा रटै॥

दो० उतपति परलय देहको, घटै बढ़ै दुख होय।
आतम इकरस जानिये, अविनाशी है सोय॥१७॥

॥ अष्टपदी ॥

ताते कियो विचार ये काया ना रहै।
जन्म मरण ये होय कला के ज्यों यहै॥
परमातम इकभाँति सदा ही जानिये।

१ पाप २ तेज ३ पूर्णमासी।

घटै बढ़ै वह नाहिं यों मन में आनिये ॥
काया छोटी होय बड़ी पुनि होत है ।
कबहूँ हो मन मगन कबौं रोवै बहै ॥
आतम ही नित[1] जानि जु काया में रहै ।
वही सदा इकभाँति कोई ज्ञानी लहै ॥
ताते श्रीभगवान को सबठाँ पेखि कै ।
मनमाहीं गहि राखि फिरत हूँ भेखि कै ॥

७—: सूर्य :—

सतवें गुरु किया सूर जु शिक्षा दो लई ।
आठ महीने किरण नीर सोखत वही ॥
चार मास वह आप फेर बरषा करै ।
वा जल को कछु लोभ नहीं मन में धरै ॥
ऐसे साधू होय जु कछु कोइ देत है ।
वाको आछी भाँति सोई वह लेत है ॥
मोह न कबहूँ करै जु कोई कछु चहै ।
चरणहिदासा जानि सोई यह गति लहै ॥

दो० लेते कछु हरषै नहीं, देते दुख नहिं होय ।
ऐसे निर्लोभी रहै, चरणदास है सोय ॥१८॥

॥ अष्टपदी ॥

दूजे जो प्रतिबिम्ब सूर को देखिये ।
जल भाँड़ों के माहिं सबन अवरेखिये[2] ॥

---

१ नित्य २ देखना ।

खोजि कै देखौ वाहि सूर तो एक है।
घट घट में प्रतिविम्ब विचार अनेक हैं॥
ना काहू से वैर प्रीतिहू ना करै।
सूरज एक निहारि सकल घट छवि धरै॥
ऐसे ही निर्मोह सदा निर्लेप है।
वाको साधू जान सो ऐसी विधि रहै॥

८—: कपोत :—

अठवें कियो कपोत गुरू मैं विचारि कै।
निर्मोहित मन भयो तभी जु निहारि कै॥
उठी एक मन माहिं नारि सुत कीजिये।
जग में ह्वै निश्चिन्त बहुत सुख लीजिये॥
सहज बाग के माहिं जाय ठाढ़ो भयो।
वृक्ष पै एक कपोत कपोतिनि को लह्यो[1]॥
ता ऊपर उन गेह आपनो साजिया।
बहुत प्रीति सुख मानि सकल दुख भाजिया॥

दो० करि विचारि मन में धरी, धन्य भाग सुख होय।
हम समान या जगत में, और न दीखै कोय॥१६॥

॥ अष्टपदी ॥

भयो कपोतिनि गर्भ अण्ड द्वै वा दिये।
प्रीति सों सेवन किये फूटि द्वै सुत भये॥
केतक दिवसन माहिं पंख निकसे सभी।

१ देखा ~~२ पृथ्वी ३ शिकारी~~।

उड़िकै बैठन लगे डार ऊपर तभी ॥
निरखत बहु सुख मानि कपोत कपोतिनी ।
हमरे अति बड़ भाग दियो यह सुख धनी ॥
एक रहे घर माहिं जु रक्षा धारने ।
दूजे बन में जाय जीविका कारने ॥
बन से चूगा लाय बच्चन मुख डारई ।
वाते उनकी क्षुधा सकल निरवारई ॥
जन्म सुफल मन जानि रैन दिन यों रहै ।
वसुधा में कछु शोच न हिय माहीं लहै ॥
इक दिन कह्यो कपोत कपोतिनि साथ ही ।
ये बच्चा अब बड़े भये सब गात ही ॥
ये तो रहैं गृह माहिं दोऊ हम बन चलैं ।
चूगा लावैं बहुत करैं भोजन भलैं ॥
ह्वै करि निस्संदेह दोऊ बन को चले ।
कहैं चरणहीदास चुगन लागे भले ॥

दो० पाछे बधिक जु आइया, दीनों जाल बिछाय ।
पकरन की मन में करी, बैठ्यो घात लगाय ॥२०॥

॥ अष्टपदी ॥

दोऊ गये बनमाहिं बधिक इक आइया ।
उन बच्चन को देखिकै जाल बिछाइया ॥
तापर किणका डारि आप तौ छिपि रह्यो ।
बच्चन चूगा देखि भेद कछु ना लह्यो ॥

यह कण कारण मात पिता वन को रमैं।
सो पायो यहि ठौर चुगैं क्यों ना हमैं॥
दोऊ उतरे तहाँ जबै मुख डारिया।
तब वहि वधिक ने जाल को फंदा मारिया॥
आय कपोतिनि जबै शब्द नाहीं सुनो।
घर में पाये नाहिं शीस तबही धुनो॥
बच्चन कारण शब्द कियो हंकारि कै।
बोले पिंजर माहिं जु बचन निहारि कै॥
देखि कपोतिनि जाल में यह मन आनिया।
अपना जीवन अफल जगत में जानिया॥
तन में अति दुख पाय कल्पना बहु करी।
कहै चरणहीदास बुरी आशा धरी॥

दो० जाल माहिं मो सुत फँसे, जाय परौं वा ठौर।
विकल होय चाली तबै, कियो विचार न और॥२१॥

॥ अष्टपदी ॥

मोह फंद वश होय जाल माहीं परी।
वाहू को गहि बधिक पिंजर माहीं धरी॥
आयो बहुरि कपोत लख्यो सुत बाल हूँ।
इन बिन कैसे जिऊँ मरौं बेहाल हूँ॥
परो जाल के माहिं बहुत दुख मानिकै।
चारों गहि लै चलो वधिक सुख जानिकै॥
राजा मो मन हुती जु सुत दारा करूँ।

निरखि लई यह सीख बहुरि नहिं चित धरूँ ॥
वाको कीनों गुरू चरित यह देखि कै ।
हरिसुमिरण में पगो रहूँ जु विशेषि कै ॥
मोह महा दुखरूप सकल विसराइया ।
लिये रहूँ वैराग परमसुख पाइया ॥
सदा रहूँ निर्बंध द्वन्द सब भाजिया ।
चरणकमल को ध्यान हिये में साजिया ॥
तहाँ बसौं निशि भोर अंत नाहीं बहूँ ।
चरणहिदासा होय कै निज आनँद लहूँ ॥

९—: अजगर :—

दो० नवाँ गुरू अजगर कियो, लियो परम संतोष ।
पराल्ब्ध दृढ़ करि गही, रहा राग नहिं दोष[1] ॥२२॥

॥ अष्टपदी ॥

जिहि कारण गुरु कियो कहूँ कारण सभी ।
जासों रहौं दृढ़ बैठि भयो धीरज तभी ॥
आगे भिक्षा काज ध्यान तजि डोलतो ।
कोऊ देते भीख कोऊ दुर्बोलतो ॥
जो कोउ भोजन दियो मगन होतो जहाँ ।
जो कोउ नाहीं दियो क्रोध करतो तहाँ ॥
अजगर इक दिन लखो जहाँ उतपति भयो ।
निशिदिन ह्वाँई रह्यो कहूँ नाहीं गयो ॥

१ द्वेष ।

आय अचानक मृगा सिंह वा मुख धँसैं।
चौपाये यों आय तासु मुख में फँसैं॥
जो वह जागत होय उन्हैं मुख सों गहै।
तिनको भोजन करै उदर यों ही भरै॥
परालब्ध जो होय सोई ह्वाँ आ रहै।
परो रहै वहि ठौर सभी दुख सुख सहै॥
याकी लीनी रहनि बहुत सुख पाइया।
चरणहिदासा होय अधीर गँवाइया॥
दो० जब सों पर आशा तजी, गृही द्वार नहिं जावँ।
लगो रहौं हरि ध्यान में, सहज मिलै सो खावँ॥२३॥

॥ अष्टपदी ॥

मन राखौं प्रभु ध्यान सदा आनंद में।
ज्ञान दशा अब भई रहो नहिं द्वन्द में॥
याचक[1] घर घर फिरै न भिक्षा पावई।
साधुन को बन माहिं भोजन हरि ख्वावई॥
जब भइ ऐसी समझ निश्चल बुधि आइया।
जहँ लग जिह्वा स्वाद सभी जु गँवाइया॥
स्वादी[2] अरु बिन स्वाद जो भोजन आवई।
करि सब अंगीकार सुरुचि सों पावई॥
सूखो गीलो होय जु भूनो हो कछू।
ताको फेरौं नाहिं सभी लेकर भखूँ॥

१ भिखारी २ स्वादिष्ट।

जो कछु आवै नाहिं ह्वाँईं बैठो रहूँ ।
परालब्ध ही जानि बुरो भल ना कहूँ ॥
सकल विकल नहिं होय न आशा कछु कहीं ।
नारायण के ध्यान रहूँ लागो वहीं ॥
अजगर की सी वृत्ति निरी[1] मेरे रही ।
चरणहिदासा होय भक्ति दृढ़ करि गही ॥

१०—: सिंधु :—

दो० दशवें गुरु कियो सिन्धु को, कहूँ सोई परसंग ।
लीन्हे समझ विचारि कै, जाके तीनों अंग ॥२४॥

॥ अष्टपदी ॥

खारी नीर स्वभाव सदा इक रस वही ।
मीठी सरिता[2] वहुत चली आवै वही ॥
मिलि नहिं फिरै स्वभाव तासु को जानिये ।
ऐसे विरकत रहै जगत में मानिये ॥
बहुतै होय गँभीर थाह नहिं पावई ।
ऐसा साधू जानि राम मन भावई ॥
वर्षाऋतु की नदी रलैं[3] बहु वाद[4] सों ।
घटै बढ़ै वह नाहिं रहै मर्याद सों ॥

११—: पतङ्ग :—

एकादश जो पतँग कहूँ मैं सुनाय कै ।
देखि दीप की ज्योति गिरो है आय कै ॥

केवल २ नदी ३ मिलना ४ वेग ।

दीन्हों आप जराय हाथ कछु ना लगो ।
समुझि कामिनी रूप सो मैं दूरी भगो ॥
ज्ञान जाय अरु नरक परै इस रीति सूँ ।
सुन्दर रूप निहारि करो मत प्रीति कूँ ॥

१२—: भँवरा :—

दो० फूल फूल पर बैठिकै, उदर भरै तिस नाल[1] ।
सो भँवरा गुरु बारवाँ, लई जु वाकी चाल ॥२५॥

॥ अष्टपदी ॥

भिक्षा कारण माँगन घर घर जात हो ।
कोऊ देतो आनि कोऊ जु रिसात हो ॥
ताते शिक्षा भवँर कि यह उर में लही ।
सूक्षम सबही पुष्प सों उन रसना गही ॥
तब मैं कियो विचार इकट्ठो लेन तें ।
देनहार को दुःख बहुत ही होत है ॥
नेक नेक ही लेहु बहुत घर जायकै ।
उदर पूरण करूँ जु आनँद पायकै ॥
जितना होय अहार सोई अब लेत हौं ।
बासी नेक न राखि न काहू देत हौं ॥
अलिसुत की यह रीति भूख भरि खावई ।
और दिना के काज न नेक बचावई ॥
फूलन को रस चाटि नहीं उन सों बँधै ।

१ पास ।

ऐसे विरक्तरूप जागत में ना फँधै ॥
चरणहिदासा होय त्याग मन राखई ।
राजा सों इहि भांति ऋषीश्वर भाखई ॥

१३—: मधु मक्खी :—

दो० देखि दशा माँखीन की, तजो सकल संग्रेह ।
मिटि दुविधा निर्भय हुये, भई सुखारी देह ॥२६॥

॥ अष्टपदी ॥

तेरह सहत की माँखी ताहि पिछानियाँ ।
सब वृक्षनको मीठो इकठाँ आनियाँ ॥
जब छत्ता भयो पूर किसी ने तोरिया ।
सब रस लीन्हो काढ़िके वाहि मरोरिया ॥
वहुत भयो उन कष्ट जु वै भागी फिरीं ।
वहुत मरीं वहि ठावँ वहुत सिसकैं गिरीं ॥
ताते माँखी गुरू हिये माहीं धरो ।
कोऊ जगत वस्तु को संग्रह ना करो ॥

१४—: हाथी :—

चौदह हाथी जानि काम वश होयकै ।
आपा आप बँधाय जन्म दियो खोयकै ॥
इक गज मातो हुतो जँगल के बीच ही ।
अति बलवंत विशेषि कोऊ वा सम नहीं ॥
वा ढिंग हस्ती और कोई नहिं जात हो ।

१ इकठी ।

मानुष पशु जिया जोनि कहा कहूँ बात हो ॥
वाकी आई बात जु राजा पै चली ।
इक कुंजर वन माहिं रहत है अति बली ॥
भूपति आज्ञा दई पकरि वा लीजिये ।
जामें आवै हाथ यतन सोइ कीजिये ॥
दो० पीलवान आज्ञा लई, खोदी खंदक जाय ।
चरणदास तहाँ छल कियो, दीन्हीं घास बिछाय ॥२७॥

॥ अष्टपदी ॥

भगल[१] की हथिनि बनाय सँवारी बुद्धि सों ।
खंदक ऊपर धरी खरी करि शुद्धि सों ॥
जल पीवन के काज जु हस्ती आइया ।
वा हथिनी को देखिकै अधिक लोभाइया ॥
जब हथिनी की ओर चलो मतिहीन हीं ।
सपरश इच्छा धारि परो खंदक महीं ॥
निकसन कैसे होय बहुत लंघन करे ।
अतिदुर्बल तन भयो पराक्रम सब हरे ॥
तब वा पर चढ़ि बैठो महावत आय कै ।
बाहर लायो काढ़ि जु ताहि सधाय[२] कै ॥
फिरि राजा के पास खड़ो कियो लाय कै ।
अंकुश शिर के माहिं जु बेड़ी पायँ कै ॥
शीस धुनै पछिताय वै आनँद कित गये ।

१ कपट २ वश में करके ।

जो सुख बन के माहिं सभी स्वपना भये ॥
सदा हुतो निर्बंध आय बंधन बंधो ।
कहै चरणहीदास काम फंदन फँधो ॥
दो० सपरश की इच्छा किये, भया जु ऐसा हाल ।
पशु पच्छी नर नारि जो, फँसे काम के जाल ॥२८॥

॥ अष्टपदी ॥

भाषत दत्तात्रेय जु साधूजन कभी ।
कामिनि ओर निहारि करै सपरश तभी ॥
हस्ती को सो हाल साधु को होय है ।
सुमिरण ज्ञानरु ध्यान जु सब ही खोय है ॥
जो कहै हम हैं साधु जु कोई भार्य्या ।
चूमै हमरे चरण तासु होय है कहा ॥
चरणन चूमै आय हाथ धरि पायँ पै ।
साधू मन चलि जाय स्पर्श सुख पाय कै ॥
वाको सुख उर धारि करै इक कामिनी ।
वाते पुत्र कलत्र बहुत ही यामिनी[१] ॥
बन में तप अरु योग जु करतो निशिदिना ।
सो सबही गयो भूलि नहीं सुख इक छना ॥
ताते हस्ती गुरू हिये में धारिया ।
कामिन को परसंग सकल निर्वारिया ॥
काठ कि पुतली होय कै कागज में रची ।

१ यातना ।

चरणहिदासा होय सो भी देखन तजी ॥

१५—: मृग :—

दो० पन्द्रहवों गुरु मृग कियो, ताकी गति सुनि लेहु ।
औगुण ही को छोड़ि करि, गुण ही में चित देहु ॥२६॥

॥अष्टपदी ॥

मृग देखो वन माहिं तासु मति आनियाँ ।
जीव दियो वहि ठौर सोई हम जानियाँ ॥
वधिक बजाई बीण राग गावन लगो ।
स्रवण[1] सुनि वह हिरण रीझि आयो भगो ॥
पहुँचो पारधि[2] पास बाण उन मारिया ।
वा दिन राग को चाव सकल निर्वारिया ॥
जो विरक्त सुनै राग जु रस श्रृङ्गार को ।
ऐसेहि होवै ख्वार नरक में जाय सो ॥
सुनिये गुण गोपाल चरित कर्त्तार को ।
जासों दुख छुटि जाय ये मायाजार[3] को ॥
तासों उपजै ज्ञान ध्यान दृढ़ करि गहै ।
पावै पद निर्वाण जहाँ सुख सों रहै ॥
निश्चय ही तू जान जु मैंने यह कही ।
चंचलता गइ छूटि जु बुधि निश्चल भई ॥
ताना[4] रीरी राग नाच बिसराइया ।
चरणहिदासा होय चरण चित लाइया ॥

१ कान २ शिकारी ३ माया का जाल ४ राग रागनी ।

१६—: मछली :—

दो० कहूँ सोलवीं मीन की, बुरे जीभ के स्वाद।
जो कोई यामें फँसै, लगै बहुत उठि ब्याध ॥३०॥

॥ अष्टपदी ॥

सोलहों गुरु सुन मीन जो ऐसे देखिया।
वा मच्छी को एक वधिक अवरेखिया[1] ॥
थोरो माँस लगाय जु वंशी[2] साथ ही।
जल में दी छुटकाय डोर गहि हाथ ही ॥
जिह्वा स्वाद के काज मीन वह खाइया।
गई उदर के माहिं हिये अटकाइया ॥
तीक्षण काँटा लोह उदर को फारिया।
ताही क्षण वह मीन प्राण तजि डारिया ॥
ताते मच्छी गुरू हिये माहीं करो।
जिह्वा को कछु स्वाद नहीं मन में धरो ॥
जो विरक्त को स्वाद जीभ को चाहिये।
बहुत भाँति दुख होय नहीं सुख पाइये ॥
जिह्वा स्वाद के काज गृही घर जाय है।
आछो भोजन पाय तौ रुचि सों खाय है ॥
भोंड़ो भोजन होय तौ नाक चढ़ावई।
हरि सुमिरण को त्यागि कै जित तित जावई ॥
ताते साधू लोग नहीं घर घर फिरैं।

१ देखा २ काँटा।

जिह्वा को कछु स्वाद नहीं चित में धरैं ॥
ऐसो भोजन खाय लखै ज्यों औषधी ।
सब ही रोग नशाहिं रहै काया शुधी[1] ॥
चीकन भोजन खाय नींद बहु आवई ।
ध्यान भजन की रीति सकल बिसरावई ॥
सब इन्द्रिन के माहिं जो जिह्वा वश करै ।
जो आवै सोइ खाय कभूं भूखो रहै ॥
जो जिह्वा वश होय तो इन्द्री वश सबै ।
जो रसना वश नाहिं तो सब परबल[2] तबै ॥
चीकन भोजन खाय तो इन्द्री सब जहाँ ।
अति ही ह्वै बलवन्त करैं औगुण तहाँ ॥
षटरस ही के स्वाद सों नारी वश भये ।
जग माहीं दुख पाय मुये नरकै गये ॥
मन में देखि विचारि गुरू कियो मीन हू ।
जासों लीनी सीख इन्द्रि भइ छीन हू ॥
सब ही स्वाद भुलाय शरण हरि की लई ।
चरणहिदासा होय सुरति निर्मल भई ॥

१७—: पिंगला :—

दो० सत्रहवों गुरू पिंगला[3], लीन्हो जासों ज्ञान ।
आशा तजि निर्मल भयो, लगो रहूँ हरि ध्यान ॥३१॥

१ स्वस्थ २ बलवान ३ एक वेश्या का नाम ।

॥ अष्टपदी ॥

गुरू सत्रहवों जान हमारो पिंगला ।
पर आशा दइ छाँड़ि रहूँ आनन्द मिला ॥
इक दिन राजा जनक विदेही के नगर ।
गयो अचानक लखो पिंगला को बगर[1] ॥
पिंगला उठि परभात भली विधि न्हाइया ।
भूषण वस्तर पहिरि सुगन्ध लगाइया ॥
घर के द्वारे बैठि जु बाट निहारई ।
कोऊ दे बहु द्रव्य सु ह्याँ पग धारई ॥
मारग में नर देखि यही आशा करै ।
आवत जानै ताहि खुशी हिय में धरै ॥
जब वह आयो नाहिं दुखी मन में भई ।
कबहूँ आश निराश ऐसे ही निशि अई[2] ॥
ऐसे सब दिन बीति गयो यहि भाँति ही ।
मन में भई मलीन आइ पुनि राति ही ॥
काया आलस धारि जु घर भीतर गई ।
पलँगा बैठी जाय जहाँ भलि सेज ही ॥
बिछे बिछौना श्वेत फूल तापर धरे ।
लेटी तहाँ मग जोय नैन निद्रा भरे ॥
कबहू उठि जा द्वार कभूँ जा भीतरै ।
कहै चरणहीदास नींद नाहीं परै ॥

१ मकान २ आ गई ।

दो० आशा की डोरी बँधी, त्तण घर में त्तण द्वार ।
थिरता ना संतोष बिन, दुखी पिंगला नार ॥३२॥

॥ अष्टपदी ॥

ऐसे आधी राति गई जब बीति कै ।
कोऊ आयो नाहिं सु ह्वाँ कछु प्रीति कै ॥
पिंगला उपजो ज्ञान हिये परकाश ही ।
उदय भयो संतोष लोभ गयो नाश ही ॥
वर्ष सहसदश माहिं जु तप कोऊ करै ।
हिरदै निर्मल होय सभी कलिमल हरै ॥
ऐसो ज्ञान उजास पिंगला को भयो ।
तब उन हिरदै माहिं वचन ऐसो कह्यो ॥
हीन हमारे भाग जन्म यों हीं गयो ।
मनुष रूप सों काम क्रोध लोभै छयो ॥
ताते जिविका आप हिये में चाहिया ।
परमातम भगवान सों प्रीति न लाइया ॥
सदा विराजत निकट दूरि नहिं होत है ।
सब विधि पूरणकाम सकल जग ज्योति है ॥
सबही को नित देत खान अरु पानई ।
चरणहिदासा होय सोई यह जानई ॥

दो० लख चौरासी योनि में, सबको भोजन देय ।
सदा वही पालन करै, अपनो नाम न लेय ॥३३॥

॥ अष्टपदी ॥

मनुपरूप जो देय एक दिन खान को ।
दूजे दिन वह बहुत घटावै मान को ॥
नारायण सों भक्त जो जग को सुख चहै ।
ऐसे वाको देय सदा इकरस रहै ॥
जाके लीन्हे नाम सकल पातक नशैं ।
कथा जु उनकी सुनै हिये आनँद लसैं ॥
ऐसो हरि बिसराय मनुप को चाहिया ।
बिरथा जन्म गवाँय कै सुख नहिं पाइया ॥
काया है इक गेह हाड़ अरु माँस को ।
नाड़ी गुण सों बाँधि रखो है तासु को ॥
चामरु लोहू पीव तहाँ नव द्वार हैं ।
सदा वहत ही रहत यही जु विचार हैं ॥
विष्ठा मूत जो होय या गेह के माहिं हीं ।
ऐसे घर सों भोग मुदित मन चाह हीं ॥
ऐसे बिरथा आयु सकल जु गवाँइया ।
हरि के चरणनदास नहीं जु कहाइया ॥

दो० अब उर में ऐसी उठी, करूँ भक्ति चित लाय ।
चरणकमल में मन धरूँ, जग सों नेह उठाय ॥३४॥

॥ अष्टपदी ॥

अब करूँ भक्ति उपाय जु हरि मन भाइया ।
तातें लेहुँ रिझाय परम गुण गाइया ॥

जैसे लच्मी सेव करी मन लाय कैं ।
कीन्हे महा प्रसन्न श्री पति धाय कैं ॥
ऐसे मन भगवान सों अपनो लाय हौं ।
पावों पुरुष निधान प्रीति के भाय हौं ॥
लच्मी करी जु भक्ति पुराणन में कहैं ।
नारायण दई ठौर सदा हिय में रहैं ॥
मैं हूँ ऐसी भक्ति करूँ अति प्रेम सों ।
करूँ महा परसन्न अधिक ही नेम सों ॥
आज के दिन से आश पुरुष की त्यागि कै ।
राखूँ प्रभु की चाह चरण हीं लागि कै ॥
जो कछु हरि मोहिं देयँ सोई निर्दोष है ।
करूँ भजन भगवन्त तासु सों मोष है ॥
मनुपरूप कह वस्तु जु आशा कीजिये ।
बहुत वहाँ लौं देत जहाँ लौं जीजिये ॥

दो० दुख में काम न आवई, मुये न संगी कोय ।
चरणदास यों कहत है, ये संसारी लोय ॥३५॥

॥ अष्टपदी ॥

जब वह मृत्यक होय नहीं कछु हेत है ।
हरि जु सदा ही संग सभी सुधि लेत है ॥
मनुष आपनी नाहिं जु इच्छा करि सकै ।
औरन को कहा देय मूर्ख यों हीं तकै ॥
पिंगला कही यह ज्ञान मुझे क्यों आइया ।
नीके काजन माहिं न चित्त लगाइया ॥

तीरथ बर्त न साधू दर्शन देखिया।
हौं तीरिया बुरे कर्म कि चाल विशेषिया॥
परमेश्वर की दया सों यह पहिचानिये।
और बात कछु नाहिं हिये में आनिये॥
जो कोइ कहै आज कछू धन ना लयो।
कोई आयो नाहिं ज्ञान ताते भयो॥
आगे हू बहु दिवस कोई नहिं आइया।
कीन्हे लंघन बहुत द्रव्य नहिं पाइया॥
ज्ञान कबौं नहिं भयो आज जानत नहीं।
कौन भाग बड़ मोर भयो परगट अभी॥
कहैं गुरू शुकदेव जु उन नहिं जानियाँ।
दत्तात्रेय के दर्श सों कुमति भुलानियाँ॥

दो० पिंगला आई घर विषे, छोड़ि मनुष की आश।
सुखी होय सोवन लगी, जब वह भई निराश॥२६॥

॥ अष्टपदी ॥

मनमें कियो सन्तोष सकल दुख मिटि गये।
छोड़ी जग की आश हिये आनँद छये॥
यों कहैं दत्तात्रेय राजा सों यही।
वाकी में लइ सीख सोई दृढ़ करि गही॥
गृही द्वार नहिं जाँव न माँगों न कछु कहूँ।
ताते सुखीऽरु शान्त सदा बैठो रहूँ॥
उद्यम करूँ कछु नाहिं वासना त्यागि कै।

आनँद तन मन मोहि वहुत अनुरागि के ॥
मनुप दुखी वहि होय रहै आशा लिये ।
काम क्रोध अरु लोभ मोह उतपति किये ॥
जो आशा मन आय कबहु वह ना भई ।
क्रोध भयो उत्पति यही मनसा ठई ॥
काहू ते इक वस्तु कभू जु मँगाइया ।
वाने दीन्हीं नाहिं क्रोध उपजाइया ॥
वाते कीन्हों वैर अधिक रिस ठानिया ।
नारायण के ध्यान सुरति नहिं आनिया ॥
यह शिक्षा लइ मानि पिंगला से तभी ।
जग की छोड़ी आश भये कारज सभी ॥

१८—: चील :—

दो० चील्ह अठारवों गुरु कियो, मिटो सकल सन्देह ।
रहों अकेलो संग तजि, करौं न कछु संग्रह ॥३७॥

॥ अष्टपदी ॥

जब गृह सेती निकसि वैरागी हम भये ।
तब हमरे मन माहिं जु ये कारज छये ॥
दो भाजन[1] सँग होहिं एक जल पीजिये ।
दूजे भाजन माहिं खान को लीजिये ॥
इक चादर कोपीन[2] दो यह चाहिये ।
ताते ओढ़ि नहान कि युक्ति बनाइये ॥

१ वर्तन २ लगोट ।

करि कै जब असनान ध्यान करने लगो ।
मन में चिन्ता कोऊ कोपीनहि लै भगो ॥
समझो यह मन माहिं बहुत अधिकार ते ।
अन्त महादुख होय मोह उरधार से ॥
ऊँची पदवी पाय बहुरि नीचे परै ।
जब वह संपत जाय घनो मन में झुरै ॥
जो कोइ रहै इकन्त अकेलोई सहै ।
ताहि उदर को शोच कछू नाहीं रहै ॥
दश बिस सौं[1] जो साथ अधिक दुख लहत है ।
आप अकेलो रहै परमसुख सहत है ॥
सकल विकल बिसराय जु आनन्द पावई ।
चरणहिदासा होय कै बोझ बगावई[2] ॥

दो० उड़ती देखी चील्ह को, पंजे माहीं माँस ।
बहु पत्ती घेरे फिरैं, लेन न देवैं श्वाँस ॥३८॥

॥ अष्टपदी ॥

पत्ती सभी लोभाहिं माँस को देखि कै ।
वाको मारैं चोंच जु लोभ विशेषि कै ॥
कोई नोचै पंख कोई मस्तक भनै[3] ।
वह दुख पावै बहुत समझि मूंड़ी[4] धुनै[5] ॥
मैं काहू से वैर प्रीति नहिं मानिया ।
या भक्षण के काज कष्ट ही जानिया ॥

१ संकट २ फेंकदेना ३ चोट मारना ४ सिर ५ पीड़ित होकर हिलाना ।

माँस दियो छिटकाय जुदे पत्ती भये ।
वा भक्षण के पास सभी दौरे गये ॥
वह बैठी मन मुदित जु पंख पसारि कै ।
दीन्हो दुख बिसराय जु व्याधा टारि कै ॥
वा दिन ते लइ सीख जु संग्रह ना करौं ।
कछू न राखौं पास नग्नतन मैं फिरौं ॥
जहँ चाहूँ तहँ जावँ भजन आनन्द में ।
कछु मन चिन्ता नाहिं छुटो सब बन्ध ते ॥
काहू वस्तु न शोच कोई लै जायगो ।
चरणहिदासा होय ध्यान हरि पाय को ॥

१९—: बालक :—

दो० बालक गुरु उन्नीसवों, ताके लिये स्वभाव ।
नहीं मान अपमान है, लोभ न कछू उपाव ॥३९॥

॥ अष्टपदी ॥

बालक माहीं नहीं मान अपमान हूँ ।
लोभ जु वामें नाहिं रहै अनजान हूँ ॥
मारै कोई वाहि रोष वह ना करै ।
करै जु फिरि वह प्यार बाल हँसि हँसि परै ॥
निन्दा अस्तुति दोय कभी नहिं धारई ।
वैर प्रीति को अङ्ग कछू न विचारई ॥
जो मणि बहुतै मोल कि वासे लीजिये ।
खेल खिलौना फूल को पलटे दीजिये ॥

मणि को लोभ न करत कछू नहीं भाषई ।
चित को अपने खेल के माहीं राखई ॥
जो कोउ नारी पकरि हिये सों लागई ।
बालक अरु वा नारि को काम न जागई ॥
नग्न जु बालक फिरत लाज नहिं आवई ।
ज्यों भावै त्यों रहै कोई न चलावई ॥
क्रिया कर्म अरु सकुच कछू वाके नहीं ।
ठाकुर अरु चरणदास कछू जानै नहीं ॥

दो० बोले दत्तात्रेय जी, राजा सों यह बैन ।
इक दिन बालक की सबै, देखी अपने नैन ॥४०॥

॥ अष्टपदी ॥

भाषैं दत्तात्रेय बाल गति देखि कै ।
वाके लिये स्वभाव सभी जु विशेषि कै ॥
जो कहुँ हम सों प्रीति बहुत आदर कियो ।
काहू गारी काढ़ि[1] बहुत झिड़को दियो ॥
दोनों एक समान और नहिं व्यापई ।
बैठूँ सहज स्वभाव उठूँ फिर आपई ॥
जो किन्हूँ भोजन दियो चाटि ह्वाई लियो ।
कर ही को कर पात्र पानी ता में पियो ॥
अष्टधातु[2] को लोभ त्याग सब ही कियो ।
कैसो हि वस्तर देहु छाँड़ि तित ही दियो ॥

१ देना २ कांसा, तांबा, पीतल, सोना, लोहा, चांदी, रांगा, जस्ता ।

ज्यों बालक निज खेल में आनँद सों रहै ।
त्यों परमातम संग कछू दुखहू न भै ॥
तुरिया पद निर्वाण मातु सम ही कहूँ ।
ताकी गोदी माहिं सदा सुख सों रहूँ ॥
चरणहिदासा होय कै गर्व नशाइया ।
छोटापन के अंग सबै तब आइया ॥

२०—: कन्या: —

दो० कन्या गुरु कियो बीसवों, समझि विचारि कै देखि ।
रहौं अकेलो तभी सों, पाया यही विवेक ॥४१॥

॥ अष्टपदी ॥

पुनि तू बीसवों जान गुरू कन्या कियो ।
वाको मत अनुराग हिये माहीं लियो ॥
इक नगरी के माहिं एक दिन हम गये ।
इक गृहचारी[१] के गेह जाय ठाढ़े भये ॥
स्यानी[२] कन्या तासु जु घर माहीं हुती ।
मात पिता केहु काज गवन कीन्हों तभी ॥
करन सगाई आय लोग बैठे तहीं ।
या कन्या की करैं सगाई आज ही ॥
कन्या कीन्हों शोच यही कैसे करूँ ।
मात पिता कहिं गये अकेली मैं अहूँ[३] ॥
ऐहैं मातरु पिता चिन्त मन में करैं ।

१ गृहस्थ २ समझदार ३ हूँ ।

भोजन को कछु नाहिं जु हम आगे धरैं ॥
कन्या करि कैं शोच ये वचन उचारिया ।
मात पिता गये न्हान अभी पग धारिया ॥
आवो बैठो खाट रसोई खाइये ।
भोजन होत सवार[१] कहीं नहिं जाइये ॥
वाके गृह कछु नाहिं धान थोरे हुते ।
कूटन लागी ताहि सोई अपने मते ॥
चूरी हाथ के माहिं बहुत खरकन[२] लगीं ।
फिरि समझी मन माहिं शोच माहीं पगी[३] ॥
यों समझैं ये लोग कछू गृह में नहीं ।
भोजन कारन धान जु कूटति है तहीं ॥
चूरी डारी फोरि दोय तहँ राखिया ।
तऊ न खरको गयो शब्द ही भाषिया ॥
दूजी दइ बिगसाय[४] एक ही रह गई ।
तब खरका नहिं होय कूटत निर्भय भई ॥
वा दिन कन्या गुरू जु हम ने चित धरा ।
साधु अकेलो रहै सदा आनँद भरा ॥
धर्मशाल ते निकसि शिष्य को साथ लै ।
कबहू उपजै क्रोध शिष्य भाषै यहै ॥
आपन ही लियो बहुत हमैं थोरो दियो ।
गुरु को चाहिये टहल शिष्य रूठै गयो ॥

१ शीघ्र २ शब्द करना—बजना ३ युक्त होना ४ तोड़ना ।

गुरू कहै कछु और शिष्य औरै कहै।
झगड़ैं आपस माहिं प्रीति थिर ना रहै॥
दोउ में कलकल होय शान्ति नहिं आवई।
विना अकेले रहे चैन नहिं पावई॥
पशु पत्ती नर नारि संग नहिं लीजिये।
दूजे ही को साथ सभी तजि दीजिये॥
छूटैं सकल कलेश ध्यान लागै भलो।
चरणहिदासा होय रहै हरि सों मिलो॥

२१—: तीर बनाने वाला :—

दो० गुरु कीन्हो इकीसवों, ताहि तीरगर जान।
चरणदास यों कहत है, वासों सीखो ध्यान॥४२॥

॥ अष्टपदी॥

पुनि इकीसवों गुरू तीरगर हम कियो।
ताते ध्यान को भेद सीखि हिय में लियो॥
इक दिन नगरी माहिं तीरगर हाट में।
ठाढ़भयो तहँजाय चलत ही बाट में॥
वह तो बनावत तीर आपनी जान में।
और कछू सुधि नाहिं पगो वा ध्यान में॥
वाके आगे होय भूप इक आइया।
हस्ती अरु दल साज निशान बजाइया॥
भयो मुहूरत एक मनुप तहँ आइ कै।
भूप गयो इस राह बुझो जु सुनाय कै॥

वह तो साजत तीर यही उत्तर दियो ।
हम तो जानत नाहिं नहीं दरशन कियो ॥
भाषत दत्तात्रेय जु हम वासों कह्यो ।
राजा संग बहु भीर शब्द दुन्दुभि भयो ॥
बहुत कटक लिये साथ जु भूप सिधारिया ।
तैं काहे नहिं सुनो न दृष्टि निहारिया ॥
उन यों उत्तर दियो तीर के ध्यान हीं ।
सुरति रही तेहि माहिं याते नहिं जान हीं ॥
वाको कीन्हों गुरू हिये में धारि कै ।
मन हरि चरणन पास रखूँ निर्धारि कै ॥
दृष्टि मना[1] अरु बुद्धि जहाँ जु लगाइया ।
ऐसो कहिये ध्यान बिरल[2] कहुँ पाइया ॥

दो० ध्यान करै दृग मूंदि करि, जो कोई नर नार ।
खटका सुनि पलकैं खुलैं, मन चलै बारंबार ॥४३॥

॥ अष्टपदी ॥

वह नहिं कहियत ध्यान जु खुलि खुलि जात है ।
निश्चल लागै ध्यान जु पूरी बात है ॥
ध्याता ध्यान के बीच ध्यान ध्येय माहिं है ।
तीनों एक हि होहिं विघ्न कछु नाहिं है ॥
मन हरि चरणन पास काया की सुधि नहीं ।
भूख प्यास कछु नाहिं ध्यान लागत तहीं ॥

१ मन २ कोई-कोई ।

मन गयो औरै ठावँ ध्यान जो लाइये ।
सो वह डिगि डिगि जाय न थिरता पाइये ॥
जब नारायण साथ मगन मन ह्वै गयो ।
सब कारज गयो भूलि कछू सुधि ना रह्यो ॥
जैसे आपत लोय समाधी पुरुष को ।
दिन बीतैं दस बीस नहीं सुधिबुधि कहूँ ॥
कहिये यही समाधि वासना सब जरैं ।
कोटिन मध्ये एक ध्यान ऐसो धरैं ॥
सोई चरण को दास सोई योगीश है ।
सोई साधक सोइ सिद्ध जु बिस्वेबीस है ॥

दो० ध्यानी ध्यान लगाय कै, रहै राम लव[1] लाय ।
आपा बिसरै हरि मिलै, बहुरि न उपजै आय ॥४४॥

॥ अष्टपदी ॥

तन की सुधि बिसराय कछू सुधि ना रहै ।
या विधि से जो करै ध्यान ताको कहै ॥
हलचल ध्यान जो करै सो हरि सों ना मिलै ।
अफल ध्यान सोइ होय जो मन चणचण चलै ॥
तीर बनावनहार गुरू हमने कियो ।
ताते यह उपदेश हिये माहीं लियो ॥
ऐसे मन को साधि प्रभू चरणन धरै ।
ह्वाई रहै चित्तलाय जु इत उत ना फिरै ॥

१ लौ ।

२२—: साँप :—

बाइसवों गुरु साँप हमारो जानिये।
ताते लीन्ही सीख यही पहिचानिये॥
सदा अकेलो रहै कबौं घर ना करै।
रैनि जहाँ कहुँ होय वहीं वह बसि रहै॥
वाकी देखी रहनि जु मन में लाइया।
सदा रहूँ निर्बंध न मन्दिर छाइया॥
उपजो मोह न लोभ लगे नहिं दाग है।
चरणहिदासा भयो द्वेष नहिं राग है॥

दो० बँधा जु पानी गादला[1], चलता निर्मल होय।
दोनों रीति विचारि कै, भली होय सो लोय[2] ॥४५॥

२३—: मकरी :—

तेइसवों मकरी गुरू, उगालि[3] तार भखि जाय।
ऐसे जग परकाश करि, प्रभु ले आप लुकाय[4] ॥४६॥

॥ अष्टपदी ॥

तेइसवों गुरु जान हमारो माकरी।
आप सों काढ़ै तार रहै वा में खरी॥
फिरि वह तार समेटि लेय उर में धरै।
यों हरि लीला जानिये कौतुक सो करै॥
वसुधा[5] को उपजाय करै पालन जभी।
फिरि सब लेय मिलाय आप माहीं तभी॥

१ गंदा २ ग्रहण करो ३ निकाल कर ४ छिपाना ५ पृथ्वी सृष्टि।

जैसे मकरी तारसों जाल बनाइया।
फिरि आपन वा बीच में सहज समाइया॥
जब चाहे वह जाल उदर में ले धरै।
मच्छी जाल में फँसै सो नाहीं ऊबरै॥
भाषैं दत्तात्रेय मुक्ति जो चाहिये।
हरि उतपति क्षय करन कि शरन में आइये॥
जन्म मरण भय मानि भक्ति में पागिये।
जग के जाल सों छूटि वेगिही भागिये॥
लीजै त्याग वैराग चरणहीदास हो।
हरियश हरिगुण गाय तजो जगवास हो॥

२५—: भृङ्गी :—

दो० भृङ्गी[1] मिलि भृङ्गी भवै, सुनो हुतो यह वैन।
अब मन आई साँच ही, देखा अपने नैन॥४७॥

॥ अष्टपदी ॥

चौबिसवों गुरु कियो जु भृङ्गी जानि कै।
वासों निश्चय भई हिये में आनि कै॥
सुनी हुतो यह बात जु कोई हरि भजै।
निशिदिन मन ह्वाँ लाय कै प्रभु सेवा सजै॥
सो नारायणरूप आप ह्वै जात है।
या में संशय नाहिं साँच यह बात है॥
मन ठहरत ना हुती ये बात सुहावनी।

१ भँवरा।

सेवक जो कोइ होय सो क्यों होवै धनी ॥
भृङ्गी को हम लखो कीट इक आनि कै ।
राखो उन गृह माहिं आपनो जानि कै ॥
आपन बाहर बैठि ताहि सन्मुख कियो ।
केतक दिवसन माहिं वह भृङ्गी करि लियो ॥
भृङ्गी रूपको देखि कै भृङ्गी ह्वै गयो ।
ताते भृङ्गी गुरू हमारे मन छयो ॥
जैसे करै कोइ ध्यान सो वा सम होत है ।
नहीं रहै चरणदास रहै ब्रह्मज्योति है ॥

दो० चौबीसौं पूरे किये, समझि समझि करि देख ।
विरक्त ह्वै जग में रहूँ, लगै न माया रेख ॥४८॥
फिरि अपनी काया लखी, रही न जासों प्रीति ।
थके जु इन्द्री स्वाद ही, सहज गई सब रीति ॥४९॥

—: देह :—

॥ अष्टपदी ॥

भाषैं दत्तात्रेय गुरू इक देह है ।
पहिले मोको होतो अधिक सनेह भै ॥
देखो छण छण देह छीण ह्वै जात ही ।
नित उठि सुख के काज भला कुछ खात ही ॥
बहुत चाव करि आप भलो भोजन कियो ।
दूजे दिन वहि भाँति घनो ही दुख दियो ॥
इक दिन वस्तर विमल बनाये लाय कै ।

फिरि वस्तर के काज फिरूँ दुख पाय कै ॥
जितनो कियो उपाय काया सुख काज ही ।
कबहू सुख ना भयो फिरत बेलाज ही ॥
इक दिन एक उपाय जु सुख को धारिया ।
दूजे दिन वहि दुःख बहुत विस्तारिया ॥
और लखी यह बात यह काया आपनी ।
अपनी होवै नाहिं विचारी ही घनी ॥
मूरख जानै नाहिं सु याही भेद को ।
होवै क्यों चरणदास सहै बहु खेद को ॥

दो० बालपने अरु तरुण में, और बुढ़ापे माहिं ।
तीनों पन में देह यह, कबहू अपनी नाहिं ॥५०॥

॥ अष्टपदी ॥

बालकपन में हाथ बाप अरु माय कै ।
तरुणापन में फँसे त्रिया कर जाय कै ॥
वृद्ध अवस्था माहिं पुत्र के हाथ हीं ।
पुनि जब मृत्यक होय अगिनि जारै तहीं ॥
जो योंहीं रहि जाय पशू आदिक भखैं ।
देह न अपनी होय ज्ञान माँहीं लखैं ॥
या दिन ते सुख काज नहीं श्रम धारिया ।
परालब्ध जो आय उदर में डारिया ॥
काया ते इक काज भलो पुनि होत है ।
हरि की प्रापति होय जु ज्ञान उदोत है ॥

मृत्यु जबहि होय जाय ये काया ना रहै ।
भारे[१] जैसो गेह जीव काया लहै ॥
जबही आवै काल नहीं ठहरायगो ।
खर्चै जो बहु द्रव्य न क्षण रहि जायगो ॥
जबही समुझो ज्ञान देह को जीय में ।
भयो विरक्त विचार आपने हीय में ॥
लई सीख चौबीस देह हित त्यागि कै ।
कीन्हो हरि को ध्यान बहुत अनुरागि कै ॥
दत्तात्रेय ये वचन कहे बहु चाव सों ।
पुनि तीर्थन को गये भक्ति के भाव सों ॥
राजा सुनि यह ज्ञान हिये में धारिया ।
हरि सों सुरति लगाय सकल दुख टारिया ॥
चरणहिदासा होय परमसुख ही लियो ।
तन को जग में राखि जु मन हरि को दियो ॥

दो० दत्तात्रेयी ने कहे, जो राजा से बैन ।
सो मैं भाषा में कियो, समझो पावो चैन ॥५१॥

॥ अष्टपदी ॥

चौबीसों के माहिं होय उपदेश दै ।
सतगुरु वाहि उबारि किये सब दूरि भै ॥
उनहीं के परताप चौबिसौं समझ ही ।
आई घट के मांहिं जु उज्ज्वल बुद्धि ही ॥

१ किराये जैसा ।

चौबीसौं तन धारि जु अंग बताइया ।
जासों भयो कल्याण अधिक सुख पाइया ॥
ऐसे हैं गुरुदेव ये निश्चय जानिये ।
सकल विकल सब छोड़ि गुरू ही मानिये ॥
गुरु ही के परसाद मिलैं नारायणा ।
जन्म मरण बँध छूटि होय पारायणा ॥
समरथ श्री गुरुदेव शीस पर राखिये ।
भवसागर की व्याधि सकल ही नाखिये ॥
कहैं मुनी शुकदेव चरणहीदास को ।
वही जु पावै चौथे परमनिवास को ॥

दो० गुरु समान तिहुँलोक में, और न दीखै कोय ।
नाम लिये पातक नशैं, ध्यान किये हरि होय ॥५२॥
गुरु ही के परताप सों, मिटै जगत की व्याध ।
राग द्वेष दुख ना रहै, उपजै प्रेम अगाध ॥५३॥
गुरु के चरणन में धरो, चित बुधि मन अहंकार ।
जब कछु आपा ना रहै, उतरै सब ही भार ॥५४॥
मन विरक्त के करन को, कीन्हो गुटकासार ।
पढ़ै सुनै चित में धरै, भवसागर हो पार ॥५५॥

॥ इति श्रीचरणदासजी कृत मन विरक्तकरण गुटकासार सम्पूर्णम् ॥

अथ श्रीस्वामीचरणदासजी कृत ब्रह्मज्ञानसागर प्रारम्भ

दो० जैसे हैं शुकदेव जी, जानत सब संसार।
भगवत मत परगट कियो, जीव किये बहु पार ॥१॥
तिन मोपै किरपा करी, दियो ज्ञान विज्ञान।
सो शिष तुम सों कहत हौं, छूटै सब अज्ञान ॥२॥
शिष्य सुनो अब कहत हौं, परम पुरातन ज्ञान।
निगुरे को नहिं दीजिये, ताके तप की हान ॥३॥

—: मोक्ष का साधन :—

कुं० मोक्त मुक्ति तुम चहत हो तजौ कामना काम।
मन की इच्छा मेटि करि भजौ निरंजन नाम ॥
भजौ निरंजन नाम तत्त्व देह अध्यास मिटावो।
पंचन के तजि स्वाद आप में आप समावो ॥
जब छूटे झूठी देह जैस के तैसे रहिया।
चरणदास यहि मुक्ति गुरू ने हमसे कहिया ॥

—: जड़ और चेतन का स्वरूप :—

दो० देह मरै तू है अमर, पारब्रह्म है सोय।
अज्ञानी भटकत फिरै, लखै सो ज्ञानी होय ॥४॥
देह नहीं तू ब्रह्म है, अविनाशी निर्वान।
नित न्यारो तू देह सों, देह कर्म सब जान ॥५॥

डोलन बोलन सोवनों[1] , भक्षण करन अहार ।
दुख सुख मैथुन रोग सब, गर्मी शीत निहार ॥६॥
जाति वरण कुल देह की, सूरति मूरति नाम ।
उपजै विनशै देह सो, पाँच तत्त्व को ग्राम ॥७॥

—: पाँच तत्त्व और तीन गुणों का परिणाम :—

पावक पानी वायु है, धरती अरु आकास ।
पाँचतत्त्व के कोट में, आय कियो तैं वास ॥८॥
पाँच[2] पचीसों[3] देह सँग, गुण तीनों हैं साथ ।
घट[4] उपाधि[5] सों जानिये, करत रहैं उतपात ॥९॥
तामस अरु हिंसा करै, वचन चलन विपरीत ।
आलस अरु निन्दा करै, तामस गुण की रीत ॥१०॥
दम्भ कपट छल छिद्र[6] बहु, खोटे सब व्यवहार ।
झूठ वचन ऐंठो रहै, तामस के गुण धार ॥११॥
मान बड़ाई नाम को, सिद्धि चहैं भजि राम ।
भोजन नाना स्वाद के, राजस गुण के काम ॥१२॥
खेल तमाशे राजसी, अरु सुगन्ध की बास ।
आपन को ऊँचो गिनै, औरन की कर हास ॥१३॥
दया क्षमा आधीनता, शीतल हिरदय धाम ।
सत्य वचन गुण सात्त्विकी, भजन धर्म निष्काम ॥१४॥
दुखी न काहू को करै, दुख सुख निकट न जाय ।

१ निन्द्रा लेना २ पाँच तत्त्व ३ पाँच तत्त्वों का विस्तार जिसको अगले पृष्ठ पर देखें ४ शरीर ५ संग ६ दोष देखना ।

समदृष्टी धीरज सदा, गुण सात्त्विक को पाय ॥१५॥

—: माया और ब्रह्म का विचार :—

राजस सों तामस बढ़ै, तामससों बुधि नास ।
रजगुण तमगुण छाँड़ि कै, करो सतोगुण वास ॥१६॥
सतगुण में मन थिर करो, करि आतम सों नेह ।
आतम निर्गुण जानिये, गुण इन्द्री सँग देह ॥१७॥
सात्त्विक राजस तामसी, त्रैगुण ते संसार ।
तीन पाँच को नाश है, माया ब्रह्म विचार ॥१८॥
अहंतत्त्व[1] ते ॐ भयो, जिनते तीनों देव ।
जिनके परे जु आतमा, अगम[2] अगोचर[3] भेव[4] ॥१९॥
उपजै सो माया सभी, विनशि नेक में जाय ।
छल माया सों कहत हैं, स्वपनो सकल दिखाय ॥२०॥
निराकार अद्वै अचल, निर्वासी[5] तू जीव ।
निरालम्ब निर्वैर सो, अज अविनाशी सीव[6] ॥२१॥

—: पाँच तत्त्वों से शरीर, अन्तःकरण तथा इन्द्रियों का निर्माण :—

जिह्वा इन्द्री नीर की, नभ की इन्द्री कान ।
नासा इन्द्री धरणि की, करि विचार पहिचान ॥२२॥
त्वचा सो इन्द्री वायु की, पावक इन्द्री नैन ।
इनको साधै साधु जो, पद पावै सुख चैन ॥२३॥
चाम हाड़ नाड़ी कहो, रोम जान अरु माँस ।

१ परब्रह्म का अहं २ जो कि प्राकृत साधनों से न जाना जाय ३ जो इन्द्रियों से न जाना जाय ४ भेद ५ वासनारहित ६ ब्रह्म ।

पृथिवी की प्रकृती यह, अन्त सबन को नास ॥२४॥
रक्त बिन्दु कफ तीसरो, मेद मूत्र को जान ।
चरणदास प्रकृति यह, पानी सों पहिचान ॥२५॥
निद्रा संगम आलकस, भूख प्यास जो होय ।
चरणदास पाँचौं कही, अग्नि तत्त्व सों जोय[1] ॥२६॥
बल करना अरु धावना, उठना अरु संकोच ।
देह बढ़ै सो जानिये, वायु तत्त्व है शोच ॥२६॥
काम क्रोध मोह लोभ भय, तत्त्व आकाश को भाग ।
नभ की पाँचौं जानिये, नित न्यारो तू जाग ॥२८॥
रोम गगन नाड़ी पवन, माँस अग्नि का अंश ।
त्वचा नीर सों जानिये, अस्थि मही को वंश ॥२६॥
कफ अकाश बिंदु[2] वायु सों, रक्त अग्नि सों बूझ ।
मूत्र नीर रणजीत भन[3], मेद मही सों सूझ ॥३०॥
नींद व्योम सपरश पवन, आलस अग्नि पिछान ।
प्यास नीर रणजीत भन, भूख मही सों जान ॥३१॥
उठना तो आकाश सों, बल करना है वायु ।
बढ़नि अग्नि धावन उदक[4], संकोचन महि आय ॥३२॥
लोभ जु नभ का अंश है, काम वायु का भाग ।
क्रोध अग्नि मोह नीर सों, भय पृथ्वी का लाग ॥३३॥

—: प्रकृति और पुरुष का विभाजन :—

पाँच पचीसों एक ही, इनके सकल स्वभाव ।

१ देखो २ वीर्य ३ कहना ४ जल ।

निर्विकार तू ब्रह्म है, आप आपको पाव ॥३४॥
निराकार निर्लिप्त तू, देही जान अकार ।
आपन देही मान मत, यही ज्ञान ततसार ॥३५॥
शस्तर छेदि सकै नहीं, पावक सकै न जारि ।
मरै मिटै सो तू नहीं, गुरुगम भेद निहारि ॥३६॥
जलै कटै काया यही, बनै मिटै फिरि होय ।
जीव अविनाशी नित्य है, जानै विरला कोय ॥३७॥
जरा मरण धर्म देह को, भूख प्यास धर्म प्रान ।
सकल विकल मन जानिये, स्वाद सु इन्द्री जान ॥३८॥
आँख नाक जिह्वा कहूँ, त्वचा जान अरु कान ।
पाँचौं इन्द्री ज्ञान हैं, जानैं संत सुजान ॥३९॥
जो जो इन सों जानिये, निश्चय ना ठहराय ।
कहै सुनै चाखै लखै, सो सोई मिटि जाय ॥४०॥
इन्द्री जानि सकै नहीं, मन बुधि लहै न ताय ।
ज्ञानदृष्टि पहिचानिये, वाकूँ[1] वासों[2] पाय ॥४१॥

—: शरीर में पाँचों तत्त्वों के स्थान, रंग तथा परिणाम :—

गुदा लिंग मुख तीसरो, हाथ पावँ लखि लेह ।
पाँचौं इन्द्री कर्म हैं, यह भी कहिये देह ॥४२॥
देह मिटत है स्वप्न ज्यों, जीव रहत है नित्त ।
देहकर्म बिसराय करि, आतम सों करि हित्त ॥४३॥
मन जीतै इन्द्री गहै, चित जब सुस्थिर होय ।

१ ब्रह्म को २ ज्ञान दृष्टि से ।

आतम सों परचो रहै, राखै सुरति समोय ॥४४॥
पृथ्वी कालजै ठौर है, मुखै जानिये द्वार ।
पीरो रँग पहिचानिये, पीवन खान अहार ॥४५॥
जल को वासा भाल है, लिङ्ग जानिये द्वार ।
मैथुनकर्म अहार है, रंग सफेद निहार ॥४६॥
पित्ते में पावक रहै, नैन जानिये द्वार ।
लाल रंग है अग्नि को, मोह लोभ आहार ॥४७॥
पवन नाभि में रहत है, नासा जानि दुवार ।
हरो रंग है वायु को, गन्ध सुगन्ध अहार ॥४८॥
अकाश शीश में वास है, श्रवण दुवारो जान ।
शब्द कुशब्द अहार है, ताको श्याम पिछान ४९॥

—: तीन शरीर :—

कारण सूक्ष्म लिंग है, अरु कहियत अस्थूल ।
शरीर तीन सों जानिये, मैं मेरी जड़ मूल ॥५०॥

—:चार अवस्था :—

जाग्रत का अस्थूल है, स्वपने लिंग शरीर ।
कारण जान सुपोपती, तुरिया साक्षी बीर ॥५१॥
जाग्रत स्वप्न सुपोपती, तुरी अवस्थ विचार ।

—: चार वाणी :—

परा पश्यन्ती मध्यमा, वैखरी वाणी चार ॥५२॥
जाग्रत वासा नैन में, स्वप्न कण्ठ अस्थान ।
जान सुपोपति हिये में, नाभि तुरिय मन तान ॥५३॥

नाभि मध्य वाणी परा, हिये पश्यन्ती सुक्ख ।
कंठ मध्यमा जानिये, कहूँ बैखरी मुख्य ॥५४॥
चित बुधि मन हंकार जो, अन्तः करण सु चार ।
ज्ञान अग्नि सों जारिये, आतमतत्त्व विचार ॥५५॥

—: पाँच तत्त्वों का परिणाम :—

जल सों मन निश्चय कियो, भयो वायु सों चित्त ।
अहंकार भयो अग्नि सों, बुधि पृथ्वी सों मित्त ॥५६॥
शब्द स्पर्शरु गंध है, अरु कहियत रसरूप ।
देह कर्म तनमात्रा, तू कहियत निहरूप ॥५७॥
शब्दा गुण आकाश का, सपरश गुण है वाय ।
पृथ्वी का गुण गंध है, सो यह प्रकट दिखाय ॥५८॥
रूप अग्नि का गुण कहूँ, रस गुण जल का जान ।
रणजीत बतावै खोलि करि, ऐ शिप ले पहिचान ॥५९॥
सरवण मुख इन्द्री भई, तत्त्वाकाश सों दोय ।
त्वचा हाथ इन्द्री युगल, वायु तत्त्व सों होय ॥६०॥
पावक सों इन्द्री युगल, भये नैन अरु पावँ ।
जल सों जो इन्द्री भई, लिंग रसना दो नावँ ॥६१॥
गुदा नासिका दो भई, पृथ्वी सों पहिचान ।
चरणदास यों कहत है, एक कर्म इक ज्ञान ॥६२॥
राजस सों इन्द्री भई, तामस सों तत्त्व पाँच ।
सात्त्विक सों चारों भये, चरणदास कहै साँच ॥६३॥

तीनौं गुण से है परे, सो आतम को रूप।
सो वह दृष्टि न आवई, अगम अगोचर गूप ॥६४॥

—: चौबीस तत्त्व :—

दश इन्द्री तत पाँच हैं, तन्मात्रा भी पाँच।
चारौं अन्तःकरण हैं, ये चौबीसों बाँच ॥६५॥
पन्द्रह को अस्थूल है, नौ को लिंग शरीर।
कारण झीनी वासना, तुरिया निर्मल थीर ॥६६॥
जाग्रत में चौबीस हैं, स्वप्ने में नौ जान।
सुषुप्ति में सब लीन है, ये अँग जड़ के मान ॥६७॥

—: तुरीय आत्म तत्त्व :—

तुरिया इकरस आतमा, निर्मल अचल अनाद।
घटै बढ़ै उपजै नहीं, तहाँ न वाद विवाद ॥६८॥
घटै बढ़ै उपजै मिटै, जड़ को यही स्वभाव।
सो सब कौतुक कर रही, नाना किये उपाव ॥६९॥
चेतन ज्यों को त्यों सदा, सदा अकर्ता जोय।
सब कर्मन सों रहित है, आतम ऐसो होय ॥७०॥
काहू ते उपजो नहीं, वाते भयो न कोय।
वह न मरै मारै नहीं, राम कहावै सोय ॥७१॥
योग युगत करि खोजि ले, सुरति निरति करि चीन।
दश प्रकार अनहद बजैं, होय जहाँ लवलीन ॥७२॥

—: दश वायु :—

तीन बंध नौ नाटिका[1], दश वाई[2] को जान।

१ नाड़ी २ वायु।

प्राण अपान समान हैं, और कहत उदान ॥७३॥
व्यान वायु अरु किरकिरा, कूरम वाई जीत।
नाग धनंजय देवदत, दश वाई रणजीत ॥७४॥

—: हठयोग :—

नवों द्वार को बंध करि, उत्तम नाड़ी तीन।
इड़ा पिंगला सुषमना, केलि करै परवीन ॥७५॥
करते प्राणायाम के, पावै आतम भेख।
अनहद ध्वनि के बीच में, देखै शब्द अलेख ॥७६॥
पूरक करि कुंभक करै, रेचक पवन उतार।
ऐसे प्राणायाम करि, सूक्षम करै अहार ॥७७॥
धरती बन्ध लगाय करि, दशौं वायु को रोक।
मस्तक प्राण चढ़ाय कै, करै अमरपुर भोग ॥७८॥
पाँचौं मुद्रा साधिकै, पावै घट को भेद।
नाड़ी शक्ति चढ़ाइकै, षट् चक्कर को छेद ॥७९॥
नासा ध्यान दृष्टि भृकुटी में, सुरति श्वास के माहिं।
आतम देखो जात है, यामें संशय नाहिं ॥८०॥

—: ब्रह्म विचार :—

योग युक्ति कै कीजिये, कै आतम को ध्यान।
आपा आप विचारिये, परम तत्त्व को ज्ञान ॥८१॥
शूद्रा वैश्य शरीर है, ब्राह्मण और रजपूत।
बूढ़ा बाला तू नहीं, चरणदास अवधूत ॥८२॥
काया माया जानिये, जीव ब्रह्म है मित्त।

काया छुटि सूरति मिटै, तू परमातम नित्त ॥८३॥
पाप पुण्य आशा तजो, तजो मान अरु थाप[1] ।
काया मोह बिकार तजि, जपै सु अजपा जाप ॥८४॥
आप भुलानो आप में, बँधो आप ही आप ।
जाको ढूँढ़त फिरत हो, सो तुम आपहि आप ॥८५॥
इच्छा दुई बिसारि कै, क्यों न होय निर्वास ।
तू तो जीवन्मुक्त है, तजो मुक्ति की आस ॥८६॥
आपा खोजै आप लखि, आप अपन को देख ।
चरणदास तुहि ब्रह्म है, तूही पुरुष अलेख ॥८७॥
जैसे कछुआ सिमिटि कै, आपहि माहिं समाय ।
तैसे ज्ञानी श्वास में, रहै सुरति लवलाय ॥८८॥
सब घट रमो सो राम है, आदि पुरुष निर्गम्य ।
लख चौरासी योनि में, एक समानो सम्य[2] ॥८९॥
दृष्टि मुष्टि[3] आवै नहीं, रूप न देखो जाय ।
बिन सूरति बिन नाम को, घट घट रहो समाय ॥९०॥

॥ छप्पय ॥

इच्छा दुइ कर दूर आप तू ब्रह्म ह्वै जावै ।
और सो द्वितिया कौन तासु को शीश नवावै ॥
माला तिलक बनाय पूर्व अरु पश्चिम दौरा ।
नाभि कमल कस्तूरि हिरण जंगल भयो बौरा ॥
चरणदास लखि दृष्टि भरि एक शब्द भरपूर है ।

१ अहंकार = देह भाव २ समान रूप से ३ हाथ में ।

निरखि परखि ले निकट ही कहन सुनन सूँ दूर है ॥
झूठी सी यह दृष्टि जगत सब झूठो दरशै ।
मूरख जानै सत्य तासु सों फिरि फिरि परशै ॥
चंद सूर थिर नहीं नहीं थिर पौन न पानी ।
त्रैदेवा थिर नहीं नहीं थिर माया रानी ॥
नव नाथ चौरासी सिद्ध जो चरणदास थिर ना रहैं ।
ब्रह्म सत्य सर्वज्ञ है आतम विचार क्यों ना गहैं ॥

—: माया ब्रह्म का विवेक :—

दो० जो मुख सेती बोलिये, अरु सुनियत है कान ।
जो आँखिन सों देखिये, सब ही माया जान ॥६१॥
एकै सब तन रमि रह्यो, चेतन जड़ के माहिं ।
माया दर्शत है सबै, ब्रह्म दीखत है नाहिं ॥६२॥
जैसे तिल में तेल है, फूल मध्य ज्यों बास ।
दूध मध्य ज्यों घीव है, लकड़ी मध्य हुतास[१] ॥६३॥
थावर जंगम चर अचर, सब में एकै होय ।
ज्यों मनको[२] में डोरि है, बाहर नाहीं कोय ॥६४॥
एक डोरि मनका गुहो, अवरण[३] वरण[४] निहारि ।
आतम तो निहरूप है, नित्य अनित्य विचारि ॥६५॥
माया यही स्वभाव है, उदय होय छिपि जाय ।
चंचल चपल सुहावनी, ओला ज्यों गलि जाय ॥६६॥

१ अग्नि २ मणियों ३ निराकार ४ साकार ।

परमातम तो नित्य है, ताको आदि न अन्त ।
सदा अचल चंचल नहीं, सब गुण रहित अनन्त ॥९७॥
सत चेतन आनन्द है, आदि अन्त मधि हीन ।
आदि अन्त आकार को, सो तू झूठो चीन ॥९८॥
सुरति नाम आकार है, ज्यों भूतन को नाच ।
मृगतृष्णा को नीर है, निकट गये नहिं साँच ॥९९॥
चितवत साँची सी लगै, खोज किये मिटि जाय ।
दीखै है पर है नहीं, कौतुक सो दरशाय ॥१००॥

॥ शिष्य वचन ॥

ब्रह्म बिना खाली नहीं, धरवे को इक पावँ ।
माया को कहाँ ठौर है, सतगुरु मोहिं बताव ॥१०१॥
निर्विकार तो ब्रह्म है, अद्वै अचल अपार ।
आई माया कहाँ ते, सतगुरु कहो विचार ॥१०२॥

॥ गुरु वचन ॥

आप ब्रह्म माया भयो, ज्यों जल पाला होय ।
पाला गलि पानी भयो, ऐसे नाहीं दोय ॥१०३॥
झूठी माया को कहैं, ज्ञानी पण्डित लोय ।
भर्म भूल साँची लगै, समझै साँच न होय ॥१०४॥
सोने को गहनो गढ़ै, कहन सुनन को दोय ।
गहनो ना सोनो सबै, नेक जुदो नहिं होय ॥१०५॥
झूठ साँच दो नाम हैं, झूठ मिटै इक साँच ।
नाम मिटै सूरत मिटै, भूषण को लग आँच ॥१०६॥

जाको माया कहत हैं, सो तू नेक निकास ।
जैसे हींग कपूर की, नेक जुदी कर बास ॥१०७॥
जल समान तो ब्रह्म है, माया लहर समान ।
लहर सबै वह नीर है, लहर कहै अज्ञान ॥१०८॥
खेल खिलौना खाँड़ के, कीजै लाख पचास ।
सकल खिलौना खाँड़ है, ऐसे गहि विश्वास ॥१०९॥
चरणदास खिलौना खाँड़ के, भाजन राखे खाँड़ ।
बिन बिनशे भी खाँड़ है, बिनशि जाय तो खाँड़ ॥११०॥
माटी के भाँडे भवें, सूरति अरु बहु नाम ।
बिगसि फूटि माटी भई, बासन कहु केहि ठाम ॥१११॥
ऐसे ही माया नहीं, समझि देखु मन माहिं ।
जो दीखै सो ब्रह्म है, रंचक माया नाहिं ॥११२॥
इच्छा मेटै दुइ तजै, एकै मन विश्राम ।
ब्रह्मज्ञान विज्ञान है, समझ परमपद धाम ॥११३॥

॥ सवैया ॥

श्वास उसास चलै जब आपहि, है जु अखण्ड टरै नहिं टारो ।
भीतर बाहर है भरिपूर सो, ढूँढ़ौं कहाँ नहिं नाहिं न न्यारो ॥
चरणदास कहै गुरु भेद दियो, भ्रम दूरि भयो जु हुतो अति भारो ।
दृष्टि अदृष्टि[1] जु राम को देखत, राम भयो पुनि देखनहारो ॥

—: सर्वमय ब्रह्म :—

दो० आप आप में आप है, खेलो बहु विस्तार ।

१ अनुभव दृष्टि ।

द्वितिया तो कछु है नहीं, एकहि एक निहार ॥११४॥
कहिं नारायण नाभि है, कहिं ब्रह्मा कहिं वेद।
कहिं शंकर गिरिजा कहीं, कहीं जु भेदाभेद ॥११५॥
कहिं ऋषि मुनि कहिं देवता, कहीं सिद्ध कहिं नाथ।
आपन को आपै खड़ो, कहूँ नवावै[१] माथ ॥११६॥
कहिं आसन कहिं तप करै, कहीं ज्ञान कहिं योग।
कहीं दुखी कहिं सुख भयो, कहीं रोग कहिं भोग ॥११७॥
कहीं नारि कहिं नर भयो, कहिं बालक कहिं बाल।
कहिं दाता मँगता कहीं, कहीं सुखी कंगाल ॥११८॥
कहीं वृक्ष कहिं फल भयो, कहीं फूल कहिं बीज।
कहीं मूल शाखा भयो, कहिं माली कहिं सींच ॥११९॥
कहिं मालिनि कहिं मालती, कहिं फुलवा कहिं हार।
कहीं महल खिरकी भयो, कहिं दीपक उजियार ॥१२०॥
कहीं बाग क्यारी भयो, कहीं भँवर गुंजार।
कहीं घटा कहिं बिज्जुली, दादुर मोर बहार ॥१२१॥
कहिं पर्वत जंगल भयो, कहिं बारिद[२] कहिं बारि।
कहिं बड़वानल अग्नि ह्वै, धारो तेज अपार ॥१२२॥
मानसरोवर भयो कहिं, मोती कहीं मराल[३]।
कहिं सरिता[४] धीवर[५] कहीं, कहीं मीन कहिं जाल ॥१२३॥
कहीं कथा श्रोता कहीं, कहीं कीर्त्तन रूप।
कहीं त्याग वैराग लै, कीन्हों संत स्वरूप ॥१२४॥

१ झुकाता है २ मेघ ३ हंस ४ नदी ५ मल्लाह।

कहिं पृथ्वी कहिं व्रज भयो, कहिं गोपी कहिं ग्वाल।
कहीं प्रेम के रूप ह्वै, कहिं प्रेमी कहिं ख्याल ॥१२५॥
कहिं कालिंदी[1] निकट हो, कहिं वृन्दावन धाम।
कहिं कुंजैं अति सोहनी, कहीं युगल भयो नाम ॥१२६
कहिं सुगन्ध शीतल पवन, कहिं वंशीवट ठावँ।
कहीं चरणहीदास ह्वै, बारबार बलि जावँ ॥१२७॥
कहीं कन्हैया ह्वै खड़ो, एक पावँ अँग मोर।
कहिं मुरली अधरन धरी, बाजत है घनघोर ॥१२८॥
कहीं मुकुट कुण्डल भयो, अलकैं कहीं कपोल।
कहिं लंलचौहैं नैन हैं, नासा मुक्त[2] सुडोल ॥१२९॥
कहीं धुकधुकी कंठ है, कहिं मोतियन की माल।
कहिं बाजू नवरतन के, नटवर मदन गोपाल ॥१३०॥
कहीं कड़ा कहिं कर भयो, कहिं पहुँची जहँगीर।
रतन चौक गूँठी भयी, लागी संग जँजीर ॥१३१॥
कहीं बादलो जर्द[3] है, नीमो ह्वै गयो अंग।
कहिं वद्धी गलजिद है, कहीं साँवरो रंग ॥१३२॥
कहिं पैंजनि कहिं पग भयो, कहीं चरण को दास।
कहीं आपही नख भयो, शशि समान परकास ॥१३३॥
आप आप में आप है, आप आप में आप।
आप अपन में जपत है, आप आपनो जाप ॥१३४॥
अविनाशी नाशै नहीं, नाश न कबहूँ होय।

१ यमुना नदी २ मोती ३ पीला।

ब्रह्म स्वरूपी एक है, कभी होय नहिं दोय ॥१३५॥
तत्त्व स्वरूपी एक है, कभी होय नहिं दोय ॥१३५॥
आप ब्रह्म मूरति भयो, ज्यों बुदगल[1] जल माहिं।
मूरति विनशै नाम सँग, जल विनशत है नाहिं ॥१३६॥
बुदगल देखो जल सबै, बुदगल कहूँ न होय।
कहबे को दूजो कहो, जल बुदगल नहिं दोय ॥१३७॥
भयो नेक में बुलबुलो, नाच कूद मिटि जाय।
निराकार रहि जायगो, मूरति ना ठहराय ॥१३८॥
निराकार आकार धर, खेलो कैइक[2] बार।
स्वप्नो ह्वै ह्वै मिटिगयो, रहो सार को सार ॥१३९॥
आप आप में खेल मचायो। ज्यों पानी बुदगिल ह्वै आयो॥
ऐसे ब्रह्म धरी है काया। आप हि पुरुष आप ही माया॥
आप नारायण लक्ष्मी भई। नाभि कमल अरु आपहि दई॥
आपहि धरती आपहि पानी। आपहि रुद्र चतुर विज्ञानी॥
ह्वै नारायण विष्णु कहायो। शेषनाग ह्वै तलै पठायो॥
तेंतिस कोटि देवता भयो। ऋषि मुनि कोटि अठासी छयो॥
चारों युग आपहि भयो लोका। पाप पुण्य आपहि भयो शोका॥
आपहि फूल शूल अरु वारी। आपहि पुरुष आपही नारी॥
दो० जल थल पावक राम है, राम रमो सब माहिं।
हरि सब में सब राम में, और दूसरो नाहिं ॥१४०॥
दश अवतार आप ह्वै आयो। सेवक साहब आप कहायो॥
आपहि गिरिवर आपहि तरुवर। आपहि हंस आपही सरवर॥

---

१ बुदबुदा २ अनेकों।

आपहि चारि वरण षट दरशन। पूजै आप आपही परशन ॥
आपहि ध्यानी आपहि प्रेमी। आपहि योग भोग अरु नेमी ॥
चरणदास शुकदेव कहायो। अपनो भेद आपही गायो ॥
तारा मण्डल आप अकाशा। आपहि चंद सूर परकाशा ॥
जैसे जल तरंग ह्वै आई। उलटि फेरि जल माहिं समाई ॥
आप आप में स्वप्न उठायो। आपहि स्वप्न आप ह्वै आयो ॥
ना कछु गयो नहीं कछु आयो। अपनो भेद आप ही पायो ॥
ना कछु कटै मिटै नहि छीजै। ना कछु उठै चलै नहिं भीजै॥
स्वप्नो मिटि भयो एक अकारा। ज्ञानी अबही ल्योह निहारा ॥

—: अनिवचनीय ब्रह्मतत्त्व :—

नहीं सूच्छम अस्थूल न भारी। रूप रंग नहिं है परकारी ॥
वार पार कछु दीखत नाहीं। कब सों है अरु कब सों नाहीं ॥
कहा कहौं कछु कहत न आवै। गूंगो स्वप्नो कहा बतावै ॥
वारापार पार नहिं पायो। ढूँढ़त ढूँढ़त आप भुलायो ॥
कहत कहत मैं गयो हिराई। अब मोपै कछु कह्यो न जाई ॥

दो० हद कहूँ तो है नहीं, बेहद कहौं तो नाहिं।
हद बेहद दोनों नहीं, चरणदास भी नाहिं ॥१४१॥
जग स्वप्नो सो ह्वै गयो, भयो पेखनो[1] गावँ।
जब जागो तब मिटि गयो, चरणदास नहिं नावँ ॥१४२॥

॥ छप्पय ॥

तब न चन्द नहिं सूर नहीं नभ में तारायण।
नहिं धरती नहिं शेष नहीं अगती[2] पारायण[3] ॥

१ दिखावटी २ कुगति ३ पार होना (मोक्ष)।

तब न रूप नहिं नाम नहीं त्रैगुण त्रैदेवा ।
तब न ब्रह्म नहिं जीव नहीं साहब नहिं सेवा ॥
रणजीत मीत नहिं वैर तब निर्गुण सगुण ना हुता ।
तब न वेद वाणी नहीं नहिं ज्ञानी नहिं पंडिता ॥
जो श्रवणन सों सुनै और मुख सेती भाषै ।
जो कछु देखै नैन और सोवै अरु जागै ॥
और आवै दुर्गन्ध गंध नासा के माहीं ।
यह सब झूठो जान कछू ठहरत है नाहीं ॥
अरु चरणदास उपजै नहीं विनशै नहिं संसार कहुँ ।
ब्रह्म सत्य सर्वज्ञ है सु झूठो दरशै स्वप्न यहु ॥

दो० ब्रह्म बिना खाली नहीं, सरसों सम कहुँ ठौर ।
स्वप्नो सो जग देखिये, स्वप्न भयो तन मोर ॥१४३॥
शुद्ध ब्रह्म है रैनि सम, जगत दिवाली दीव ।
ज्यों तरंग जल में उठै, ब्रह्म बीच ये जीव ॥१४४॥
वार न जाको पाइये, पार परे नहिं चीन ।
ऐसे सिन्धु अथाह में, जगत जानिये मीन ॥१४५॥
ब्रह्म बीच ये जीव सब, फिरत रहत आधीन ।
जैसे सागर सिन्धु में, नानारूपी मीन ॥१४६॥
जैसे लहरि समुद्र की, उठत रहत तेहि माहिं ।
बिन इच्छा बिन भावना, ह्वै ह्वै मिटि मिटि जाहिं॥१४७॥
औंडो सींव[1] गँभीर है, बिन इच्छा बिन दोय ।

---

1 ब्रह्म ।

निज स्वभाव जग होत है, मिटि २ फिरि २ होय ॥१४८॥
धरती में लीकट खिचैं, उठि नहिं आवै हाथ ।
ब्रह्म सत्य जग झूँठ है, ह्वै ह्वै मिटि मिटि जात॥१४९॥
जगत ब्रह्म में यों दिपै, ज्यों धरती पर रेख ।
रेख मिटै धरती रहै, ऐसे ही जग देख ॥१५०॥
झूँठ साँच दोउ नाम हैं, झूँठ मिटै थिर साँच ।
ज्यों लोहा पावक मिलो, लोह रहै मिटि आँच ॥१५१॥
ज्यों सोवत स्वप्नो उठो, दृष्टि खोलि जब नाहिं ।
जग स्वप्नो सो ह्वै मिटै, समुझि देखु मन माहिं ॥१५२॥
देखन को अति निकट है, कहबे को बहु दूरि ।
एकै ब्रह्म अखण्ड है, सकल रह्यो भरि पूरि ॥१५३॥
अद्वै अचल अखण्ड है, अगम अपार अथाह ।
नहीं दूर नहिं निकट है, सतगुरु दियो बताय ॥१५४॥
भूल हुती जब दो हुते, अब नहिं एक न दोय ।
अटक उठी धोखो मिटो, आपन हू गयो खोय ॥१५५॥

॥ छप्पय ॥

जहाँ गुरू नहिं शिष्य जहाँ नहिं साहब दासा ।
जहाँ गुफा नहिं योग जहाँ नहिं गगन निवासा ॥
जहाँ नहीं तप दान जहाँ नहिं देवल पूजा ।
जहाँ ब्रह्म नहिं जीव जहाँ नहिं एक न दूजा ॥
अरु चरणदास मिलि मिटि गयो सो अचरज ऐसो लखिया ।
कौन सुने कासों कहै सो आप आप नहिं दूजिया ॥

दो० अपरम्पार अपार है, आदि अनादि अडोल ।
पुरुष पुरातन ब्रह्म है, बिन काया बिन बोल ॥१५६॥
अगम अगोचर अजर अनंता । अद्बै रूप अथाह भगवंता ॥
निराकार निर्भय निर्बाना । परमेश्वर परमातम प्राना ॥
अर्द्ध[1] ऊर्द्ध[2] नहीं गोसाईं । नहिं बाहर नहिं मध्य न माहीं ॥
नहीं जीव[3] नहिं सीव[4] सहाई । श्वेत श्याम नहिं है अरुणाई ॥
है जैसो तैसो ही राजै । आपन माहिं आप ही गाजै ॥
नहीं नावँ नहिं भाव न भारी । है अखंड नहिं खंडितकारी ॥
है सर्वज्ञ सत्य विज्ञाना । अभेद अछेद अकथ सुज्ञाना ॥
ज्यों का त्यों जैसे का तैसा । नहिं ऐसा नहिं कहिये वैसा ॥
दो० नीचे नीचे अन्त ना, ऊपर ऊपर ऊप[5] ।
बायें बायें हद ना, दहिने दहिने गूप[6] ॥१५७॥
नहिं नीचे ऊपर नहीं, नहिं दहिने नहिं बाम ।
मध्य नहीं आकार ना, निराकार नहिं नाम ॥१५८॥
निर्गुण ना सगुण नहीं, उपजै ना मिटि जाय ।
सब कुछ है अरु कुछ नहीं, सदा ब्रह्म थिरथाय ॥१५९॥
जहाँ साँच जहँ झूँठ है, जहाँ झूँठ जहँ साँच ।
झूँठ साँच दोनों नहीं, तहँ कुछ सील न आँच ॥१६०॥
बंध नहीं मुक्तौ नहीं, पाप पुण्य भी नाहिं ।
उतपति ना परलय नहीं, नहीं नहीं भी नाहिं ॥१६१॥
इन्द्री ना निग्रह करौं, मन नहिं जीतूँ ताहि ।

१ नीचे २ ऊपर ३ अणु ४ विभु ५ ऊपर भी सीमा नहीं है ६ गुप्त ।

भूलौं ना चेतौं नहीं, मैं नहिं खोजौं वाहि ॥१६२॥
योग नहीं युगता नहीं, नहीं ज्ञान नहिं ध्यान ।
बुधि विचार पहुँचै नहीं, तहँ कछु लाभ न हान ॥१६३॥
जैनधर्म शिव शक्ति ना, स्वर्ग नरक नहिं वास ।
षट दरशन चौवरण ना, नहीं कर्म संन्यास ॥१६४॥
सिद्ध नहीं साधक नहीं, नहीं तिमिर नहिं भान ।
शून्य नहीं वेशून्य ना, नहीं तत्त्व विज्ञान ॥१६५॥
धर्म कर्म अरु मोह ना, अरु नाहीं वैराग ।
ज्योंका ज्यों सो भी नहीं, नहीं दुखी अनुराग ॥१६६॥

—: ब्रह्मज्ञान की महिमा :—

ब्रह्मज्ञान बिन मिटै न दोई । ब्रह्मज्ञान बिन मुक्त न होई ॥
दान यज्ञ तप नाना भोगा । ब्रह्मज्ञान बिन सबही रोगा ॥
कलह कल्पना मन में दोष । ब्रह्मज्ञान बिन ना संतोष ॥
तिमिर अविद्या सब ही भागै । ब्रह्मज्ञान में जो तू जागै ॥
मत मारग मिलि भर्म बढ़ावैं । पक्षपात लै सब भर्मावैं ॥
गुरु बिन ब्रह्मज्ञान नहिं पावै । गुरु बिन तत्त्व कौन दर्शावै ॥
गीता अरु वेदान्त बतावै । सामवेद भी यों हीं गावै ॥
ब्रह्मज्ञान में निश्चय आवै । जीवन्मुक्त सोइ कहावै ॥

—: ब्रह्मज्ञान का फल :—

दो० तू नाहीं सब राम है, वेद भेद की सीख ।
एक रमैया रमि रह्यो, सकल अखण्ड व्यापीक ॥१६७॥

१ रहस्य २ शेष ।

सिन्धु स्वरूपी ब्रह्म में, ज्यों पाला सब लोक।
पाला गलि पानी भवै, कछू न निकसै फोक[1] ॥१६८॥
उलझे को सुलझाय के, कई जन्म को सूत।
चरणदास निर्भय भये, आशा तजि औधूत ॥१६९॥

॥ कवित्त ॥

स्वर्ग हू न चहिये जो होम यज्ञ दान करौं, इन्द्र आदि भोगन को चित्त ते उठायो है। ऋद्धि हू न चहिये जो जक्त में बड़ाई चलै, सिद्धि हू न चाही सब साधन बिसरायो है॥ जाति हू न चाही जो कुल की मर्याद चलूँ, चारि बरण एकै यों वेदन में गायो है। कासों कहैं मुक्त और बंध तो न सूझै कहूँ, कहै चरणदास आप आपन लौ लायो है॥

॥ सवैया ॥

आदिहु आनँद अन्तहु आनँद, मध्यहु आनँद ऐसे हि जानो।
बंधहु आनँद मुक्तहु आनँद, आनँद ज्ञान अज्ञान पिछानो॥
लेटेहु आनँद बैठेहु आनँद, डोलत आनँद आनँद आनो।
चरणदास विचारि सबैकछु आनँद, आनँद छाँड़िकै दुःख न ठानो
आदिहु चेतन अन्तहु चेतन, मध्यहु चेतन माया न देखी।
ब्रह्म अद्वैत अखण्ड निरालँभ, और न दूसरो आतम ऐखी[2]॥
सिन्धु अथाह अपार विराजत, रूप न रंग नहीं कछु रेखी।
चरणदास नहीं शुकदेव नहीं, तहँ ना कोउ मारग ना कोउ भेखी

—: ब्रह्मज्ञानी का व्यवहार :—

भक्षत हैं नहिं भक्षत भोजन, पीवत हैं नहिं पीवत पानी।

1 शेष 2 देखना।

डोलत हैं नहिं डोलत पैंड सों, बोलत हैं नहिं बोलत बानी ॥
नाना रूप ब्योहार में देखत, निश्चय के मध्य कछू नहिं आनी ।
चरणदास बताय दियो शुकदेव ने, ऐसे रहैं ताहि जानिये ज्ञानी ॥
सोवत हैं नहिं सोवत नींद सो, जागत हैं नहिं जाग दिखानी ।
योग करैं न करैं कछु साधन, ध्यान करैं न करैं कछु ध्यानी ॥
बचन बिलास करैं चरचा, न करैं चरचा नहिं होय बिनानी ।
चरणदास बताय दियो शुकदेव ने, ऐसे रहैं ताहि जानिये ज्ञानी ॥

॥ कवित्त ॥

मन्दिर क्यों त्यागै अरु भागै क्यों गिरिवर को, हरिजी को दूर जानि कलपै क्यों बावरे। सब साधन बतायो अरु चारि हूँ वेद गायो, आपन को आप देखि अन्तर लौ लावरे ॥ ब्रह्म-ज्ञान हिये धरो बोलते का खोज करो, माया अज्ञान हरो आपा बिसरावरे । जैहैं जब आप थाप कहा पुण्य कहा पाप, कहै चरणदास तू निश्चल घर आवरे ॥

॥ अथ ब्रह्मज्ञानी लक्षण वर्णन ॥

(ज्ञानपरीक्षा)–१ निरालंब२ निर्भ्रम३ निर्बासीक४ निर्विकार ।
(विचार परीक्षा)–५ निर्मोहत६ निर्बंध७ निर्हिंसक८ निर्बान ।
(विवेक परीक्षा)–९ सावधान१० सर्बंगी११ सारग्राही१२ संतोषी ।
(परम संतोष परीक्षा)–१३ अयाचीक१४ अमानी१५ अपक्षीक१६ स्थिर

१ योगक्षेम की चिन्ता से रहित ३ संसारी वासनाओं सेरहित ४ काम क्रोधादि विकारों से रहित ६ सांसारिक बंधनों से रहित ८ मुक्त ९ स्वलक्ष्य में सावधान १० ज्ञान के सब अंगों से पूर्ण १३ कामनारहित १५ पक्षपात

(सहज परीक्षा)–[१७]निष्प्रपंच [१८]निहतरंग[१९]निर्लिप्त [२०]निष्कर्म
(निर्वैर परीक्षा)–[२१] सुहृद [२२] सुखदाई [२३] शीतलताई [२४]सुमति
(शून्य परीक्षा)–[२५]शीलवंत[२६]सुबुद्धि[२७]सत्यवादी[२८]ध्यानसमाधि

जामें ये लक्षण होंय ताको ब्रह्मज्ञानी कहिये और जामें ये लक्षण न होंय ताको वाचक ज्ञानी विटंडा जानिये लक्ष्यज्ञानी न जानिये ॥

दो० जनक गुरू शुकदेवजी, चरणदास शिष्य होय ।
आप राम ही राम हैं, गई दुई सब खोय ॥१६०॥
ब्रह्मज्ञान पोथी कही, चरणदास निर्वार ।
समझै जीवन्मुक्त हो, लहै भेद ततसार ॥१६१॥

॥ इति श्रीशुकदेवजी के शिष्य श्री चरणदासजी कृत
ब्रह्मज्ञान सागर सम्पूर्णम् ॥



१७ सांसारिक प्रपञ्चों से रहित १८ संकल्प विकल्प से रहित १९ आसक्ति रहित २५ ब्रह्मचारी ।

अथ श्री चरणदासजी कृत शब्द प्रारम्भ

श्री शुकदेवजी की स्तुति

।। मंगलाचरण ।।

दो० ब्रह्मरूप आनन्दघन, निर्विकार निर्लेव ।
मंगलकरण दयाल जी, तारण गुरु शुकदेव ।।
सतियन[1] में तुम सत्य हो, शूरन में हो वीर ।
यतियन में तुम यत्त[2] हो, श्रीशुकदेव गँभीर ।।
पतित उधारण तुम लखे[3], धर्म चलावन भेव[4] ।
संकट सकल निवारिये, जै जै श्री शुकदेव ।।
चिन्तामेटन भवहरण, दूरि करन जग व्याध ।
गुरु शुकदेव कृपा करो, चरण लगैं सब साध ।।
दाता चारौं भेद[5] के, श्रीशुकदेव दयाल ।
चरणदास पर हूजिये, बारंबार कृपाल ।।

---

१ सत्यनिष्ठों में २ इन्द्रियजित ३ समझा ४ रहस्य ५ चार भेद—जैसे मिट्टी की चार अवस्थाएं होती हैं वैसे ही ब्रह्म की भी चार अवस्थाएं हैं जो चार भाव कहलाते हैं। प्रथम—वर्तन वनने से पहले मिट्टी का पिंडरूप प्रागभाव है, द्वितीय—घड़े कुल्लड़ आदि वर्तन वन जाने पर अन्योन्या भाव है, तृतीय वर्तन फूट जाने पर उसके टुकड़े विध्वंसाभाव है और चतुर्थ—तीनों अवस्थाओं में मिट्टी ही मिट्टी सत्य है यह अतीताभाव है। इसी प्रकार सृष्टि रचने के पूर्व ब्रह्म का प्रागभाव, सृष्टिरूप हो जाने पर अन्योन्याभाव, प्रलय हो जाने पर विध्वंसाभाव और तीनों अवस्थाओं में ब्रह्म ही सत्य है यही अतीता भाव है। इन्हीं को चार भेद कहते हैं।

१—॥ राग कल्याण ॥

नमो शुकदेव हो चरण पर वारणम् ॥ टेक ॥छन्द संकट
हरण करणसुख मंगलं, परम आनन्दघन पतित के तारणम्
नाम तक त्याग वैराग है मुक्ति लौं, तीनिहूँ गुणन ते निर्विकारम्
महानिष्काम और धाम चौथे रहौ, सिद्धि चेरी भई फिरैं लारम्
ज्ञान के रूप अरु भूप सब मुनिन में, दया की नाव किये जीव पारम्
उदै भागौत* मत भानु परगट कियो, तिमिर कियो दूर अरु धर्म धारम्
मोह दल जीति अनरीतिy के खण्डनं, भक्ति के दृढ़ करन भव+ विडारम्
चरणदास के शीस पर हाथ नित ही रहो, यही माँगों गुरू बारबारम्

॥ भगवान् के चरणचिह्न ॥

दो० दश चिह्न दहिने चरण, बायें हैं दश एक।
जिनके निश्चल ध्यान तैं, कटैं जो विघ्न अनेक ॥
श्रीशुकदेव आज्ञा दई, चरणदास उच्चार।
सो अब वरणन करत हूँ, शब्द माहिं विस्तार ॥

२ ॥ राग कल्याण ॥

चरण चिह्न चितलाव, फेर तेरा जन्म न होगा।
पदम[१] झलक छबि निरखि नैन भरि, अंकुश[२] मन अटकाव ॥
अम्बर[३] छत्र[४] कुलिश[५] यव[६] राजत, ध्वजा[७] धेनुपद[८] भाव।
शंख[९] चक्र[१०] अरु कलश सुधाहृद[११], तासूँ चित उरझाव ॥
स्वस्तिक[१२] जम्बू-फल[१३] की शोभा, जासों सुरति लगाव।

३ अम्बावाड़ी ५ वज्र ६ जौ ११ अमृत का कलश १३ जामुन * भागवत
y अधर्म + आवागमन के दुःख को मिटाने वाले।

अर्द्ध चन्द्र[१४]षटकोन[१५]मीन[१६] बुंद[१७], ऊर्ध्वरेख[१८] लखि चाव ।।
अष्टकोण[१९] तिरकोण[२०] बिराजै, धनुषबाण[२१] उर धाव ।
कोटि काम नख ऊपर वारूँ, नूपुर सुन्दर पावँ ।।
श्री शुकदेव चिह्न पद बरणे, सो तू हिय में लाव ।
चरणदास हित राखि भोर निशि, बार बार बलि जाव ।।

३ ।। राग भैरव आरती ।।

मंगल आरति या विधि कीजे । हर्ष पाय आनँद रस पीजे ।।
प्रथमैं मंगल गुरु ही जान । जिनसूँ पायो पद निर्बान ।।
ज्ञान भानु परगट कियो भोर । मिटि गई रैन तिमिर घनघोर ।।
द्वितिये मंगल श्री गोपाल । भक्त बछल बहु पतित उधार ।।
राम कृष्ण पूरण औतार । दुष्ट दलन सन्तन रखवार ।।
तृतिये मंगल प्रभुजी के साध । मान सरोवर मता अगाध ।।
तिनकी संगति उठि गयो संसा । काग पलट गति ह्वै गयो हंसा ।।
चौथे मंगल श्रीभागौत । घट उजियार करन कूँ ज्योत ।।
पाप ताप दुख मेटनहारी । जिहि नौका चढ़ि उतरो पारी ।।
पँचवें मंगल श्रीशुकदेव । तन मन सूँ करि उनकी सेव ।।
चरणहिदास चरण चित लायो । मंगलचार भयो जस गायो ।।

४ ।। आरती ।।

मंगल आरति कीजै प्रात । सकल अविद्या घट गइ रात ।।
सूरज ज्ञान भयो उजियारा । मिटि गये औगुण कुबुधि विकारा ।।
मन के रोग शोग सब नाशे । सुमति नीर शुभ जलज प्रकाशे ।।
भय अरु भर्म नहीं ठहराई । दुविधा गई एकता आई ।।

जाति वरण कुल सूझै नीके। सब सन्देह गये अब जीके ॥
घट घट दरशै दीनदयाला। रोम रोम सब होगइ माला ॥
दृष्टि न आवै दुख जगजाला। काग पलट गति भये मराला[1]॥
अनहद बाजे बाजन लागे। चोर नगरिया तजि तजि भागे ॥
गुरु शुकदेव की फिरी दुहाई। चरणदास अन्तर लौ लाई ॥

५ ॥ भोर की ध्वनि राग भैरव ॥

जै जै ब्रह्म अचल अविनाशी। आपन ही सब ज्योति प्रकाशी ॥
जै जै अलख निरंजन देवा। ऋषि मुनि शारद लहैं न भेवा ॥
जै जै आदिपुरुष जगदीश। हर्षित तोहि नवाऊँ शीश ॥
जै जै जगपति सिरजनहारा। व्यापि रह्यो जीव जन्तु मँझारा ॥
जै जै भूमि भार परहारी[2]। प्रकट होत संतन हितकारी ॥
जै जै वपुधारी चौबीश। लीला कारण त्रिभुवन ईश ॥
जै जै कृष्ण मनोहर गाता। नैन विशाल प्रेम के दाता ॥
जै जै भक्तवछल भगवान। व्याधि कटत हैं जिनके ध्यान ॥
जै जै निरगुण सरगुण रूप। नाना भाँती अधिक अनूप ॥
जहाँ तहाँ छवि धारे रहैं। जाकी महिमा को कवि कहैं ॥
जै जै हो शुकदेव विराजैं। मम मस्तक पर निशि दिन राजैं ॥
जै जै प्रेम सुधा रस पिये। जै जै तिलकशिरमली[3] किये ॥
जै जै साधुन के सुखदाई। चरणदास तुम्हरी शरणाई ॥

६ ॥ आरती ॥

आरति आदि पुरुषकीकीजै। साधो अगम अपार अचल मनदीजै

१ हंस २ हरने वाले ३ श्री तिलक।

अद्भुत आरती ॐकारा । त्रैदेवा ह्वै जगत पसारा ॥
पहिले मच्छरूप हरि धारो । वेद लाय शंखासुर मारो ॥
रई मन्द्राचल वासुकि नेती । चौदहरतन[१] मथे दधि सेती[२] ॥
रूप वराह धारि हरि धाये । हिरण्याक्ष हनि धरती लाये ॥
खम्भ फारि हिरणाकुश मारो । नरसिंह ह्वै प्रहलाद उबारो ॥
वामन ह्वै करि वलि छलि लीन्हे । तीनि लोक तीनों डग कीन्हे
परशुराम ह्वै शस्तर धारे । क्षत्री सवै निकछ[३] करि डारे ॥
रामरूप रावण दल मलिया[४] । लंकाराज विभीषण मिलिया ॥
कृष्णरूप ह्वै कंस पछारो । दर्शन दे व्रज सकल उधारो ॥
वोधरूप[५] अचरज गति तेरी । कौतुक देखि थकी वुधि मेरी ॥
निष्कलंक[६] निर्लिप्त निरासा । संभल[७]सुरत[८]लियो जहाँ वासा॥
हरि हैं एक रूप बहु धारे । निराकार आकार नियारे ॥
दश औतार आरती गाऊँ । निरभै होय अभैपद पाऊँ ॥
चरणदास शुकदेव वतायो । निरगुण हरि सरगुण ह्वै आयो ॥

७ ॥ आरती ॥

आरती रमता राम की कीजै । अन्तरध्यान निरखि सुख लीजै॥
चेतन चौकी सत को आसन । मगन रूप तकिया धरि दीजै ॥
सोऽहं थाल खैंचि मन धरिया । सुरत निरत दोउ बाती वरिया॥
योग युगति सूँ आरति साजी । अनहद घंट आप सूँ वाजी ॥

१ लक्ष्मी, कौस्तुभमणि, रम्भा, वारुणी, अमृत, शंख, ऐरावत, कल्पवृक्ष, चन्द्रमा, कामधेनु, धन्वा, धन्वन्तरि, गरल, घोड़ा २ द्वारा ३ वलहीन ४ नष्ट किया ५ गौतम बुद्ध ६ कल्कि अवतार ७ एक ग्राम का नाम ८ स्मरण करके ।

सुमति साँझ की बिरिया[1] आई। पाँच पचीस मिलि आरति गाई॥
चरणदास शुकदेव को चेरो। घट घट दर्शै साहब मेरो॥

८॥ आरती॥

आरति करत हँसै मन मेरो। वार पार कछु दिखै न तेरो॥
अमर अडोल निःईक्षण[2] भेखा। त्रै गुण रहित रूप नहिं रेखा॥
चेतन आनँद नित निरधारा। निराकार निर्लिप्त नियारा॥
निराकार आकार विवरजित[3]। निरगुण अरु सरगुण तेरी गति॥
हाथ पाँव अरु शीश घनेरे। कैसे आरति करूँ प्रभु मेरे॥
सोहं बाती घीव अखण्डा। एकहि ज्योति बलै ब्रह्मण्डा॥
तुही थाल तुहि आरति साजै। तुहि घंटा तुहि झालर बाजै॥
चरणदास शुकदेव लखायो। सुरति थकी पै पार न पायो॥

९॥ आरती॥

गगनमँडल में आरति कीजै। उत्तम साज[4] सकल सजि लीजै॥
सुखमन[5] अमृत कुम्भ धरावै। मनसा मालिनि फूल चढ़ावै॥
घीव अखण्डा सोहं बाती। त्रिकुटी ज्योति बलै दिन राती॥
पवन साधना थाल करीजे। तामें चौमुख मन धरि दीजै॥
रवि[6] शशि[7] हाथ गहो तिहि माहीं। खिन दहिनो खिन बायें लाई॥
सहस कमल सिंहासन राजै। अनहद झालर नित ही बाजै॥
इहि विधि आरति साँची सेवा। परमपुरुष देवन को देवा॥
चरणदास शुकदेव बतावैं। ऐसी आरति पार लगावैं॥

---

१ समय २ इन्द्रियातीत ३ रहित ४ सामग्री ५ सुषुम्ना नाड़ी ६-७ दायें, बायें स्वरों से प्राणायाम ---ना।

१० ॥ आरती ॥

ऐसी आरति करि हुलसावै । दे परिक्रमा शीस नवावै ॥
तन को थाल अरु मन को चौमुख[१], ज्ञान ध्यान की बाती लावै ॥
भक्ति भाव को घी भरि तामें, जगमग जगमग ज्योति जगावै॥
अर्ध ऊर्ध हित सूँ करि फेरै, रचना रचै फूल वर्षावै ॥
सुरति मृदंग अरु निरत तँबूरा, झँगड़ झँगड़ झाँझ बजावै ॥
ताल वीणा मुहचंग शंख ध्वनि, प्रेम मगन ह्वै हरि गुण गावै॥
सुवरन कलशा जल को राखै, धूपरु अगर सुगन्ध धरावै ॥
या विधि सों शुकदेव श्याम की, गाय आरती को फल पावै ॥
युगलकिशोर निरखि नैनन सों, चरणदास सखि बलि बलि जावै

११ ॥ भोग का पद ॥

या विधि गोविन्द भोग लगावो। भक्त वछल हरि नाम कहावो॥
बेर भीलनी के तुम पाये । देखि ऋपीश्वर सकल लजाये॥
जैसे साग विदुर घर पायो । दुर्योधन को मान घटायो ॥
भक्त सुदामा के तंदुल लीन्हे । कंचन महल अधिक सुख दीन्हे॥
ज्यों करमा की खिचरी खाई । नेह लियो सब शुचि बिसराई॥
तुम्हरी विभौ प्रभु तुम्हरे हि आगे । हमसे दीनन को कहा लागे ॥
प्रेम प्रीति सूँ भोजन कीजै । बचै सीत[२] सन्तन कूँ दीजै ॥
चरणदास भरि राखी झारी । अचवो हरि शुकदेव मुरारी ॥

१२ ॥ भोग के आगे की ध्वनि राग काफी ॥

जै जै पारब्रह्म परधान[३] । जाकूँ पावै गुरु के ज्ञान ॥

१ चारबत्ती वाला दीपक २ भोग लगा हुआ प्रसाद ३ प्रकृति ।

ब्रह्म पुरुष को धरो स्वरूप। सो तो कहिये अधिक अनूप ॥
जै जै ॐ और त्रै देव। जै जै दश औतार अभेव[1] ॥
जै जै वृन्दावन निजधाम। जै जै गोकुल अरु नँदग्राम ॥
जै जै गोपी जै जै ग्वाल। जै जै सदा विहारीलाल ॥
जै जै कुंजगली नँदलाल। मोरमुकुट मुरली वनमाल ॥
जै जै राधे कृष्ण मुरार। जै जै व्यास वेद उच्चार ॥
जै जै महा विदेह जनकजी। जै जै श्री शुकदेव दयाल ॥
इनको नाम जपै जो कोय। प्रेम भक्ति पावत है सोय ॥
चरणदास सुख वास लहै। हरि चरणन के पास रहै ॥

※ अथ गुरुदेव का अंग वर्णन ※

१३ ॥ राग कल्याण ॥

सतगुरु पाँचों भूत उतारो।

जन्म जन्म के लागेहि आये, दे मन्तर अब इन्हें विडारो[2]॥
काम क्रोध मोह लोभ गर्व ने, मन बौराय कियो अपभायो[3]॥
जिनके हाथ परो जिय मेरो, घेराघेरी[4] बहु दुख पायो ॥
एक घरी मोहिं छोड़त नाहीं, लहरि चढ़ाय कै बहुत निवायो[5]।
कपि ज्यों घर घर द्वार नचावैं, उत्तम हरि को नाम छुटायो ॥
अबकै शरण गही है तुम्हरी, चरणहिदास अयाने।
किरपा करि यह व्याधि छुटावो, गुरु शुकदेव सयाने ॥

१ तत्व में अभेद २ दूर करो ३ रुचि के अनुकूल ४ भंवर जाल ५ नीचे दवा दिया।

१४ ॥ राग धनाश्री ॥

अब मैं सतगुरु शरणैं आयो ॥

बिन रसना बिन अक्षर बाणी ऐसोहि जाप सुनायो ॥
काम क्रोध मद पाप जराये त्रैविधि ताप नशायो ।
नागिनि पाँच मुई सँग ममता दृष्टि सूँ काल डरायो॥
किरिया कर्म अचार भुलाना ना तीरथ मग धायो ।
समझो सहज बचन सुनि गुरु के भर्म को बोझ बगायो ॥
ज्यों ज्यों जपूँ गरक हों वामें वह मो माहिं समायो ।
जग झूठो झूठो तन मेरो यों आपा नहिं पायो ॥
वाकूँ जपैं जन्म सोइ जीतैं सोहम् शुद्ध बतायो ।
चरणदास शुकदेव दया सों सागर लहर समायो ॥

१५ ॥ राग सोरठ ॥

गुरुदेव हमारे आवो जी ।

बहुत दिनों से लगो उमाहो आनँद मंगल लावोजी ॥
पलकन पंथ बुहारूँ तेरो नैनन परि पग धारोजी ।
बाट तिहारी निशिदिन देखूँ हमरी ओर निहारोजी ॥
करौं उछाह बहुत मन सेती आंगन चौक पुरावोंजी ।
करूँ आरती तन मन वारूँ बारबार बलि जावों जी ॥
दे परिक्रमा शीश नवाऊँ सुनि सुनि वचन अघाऊँ जी ॥
गुरु शुकदेव चरणहीदासा दर्शन माहिं समाऊँ जी ॥

१६ ॥ राग सोरठ ॥

हो अँखियाँ गुरु दर्शन की प्यासी ।
इकटक लागी पंथ निहारूँ तन सूँ भई उदासी ॥
रैन दिना मोहि चैन नहीं है चिन्ता अधिक सतावै ।
तरफत रहूँ कलपना भारी निश्चल बुधि नहिं आवै ॥
तन गयो सूक हूक अति लागी हिरदय पावक बाढ़ी ।
खिन में लेटी खिन में बैठी घर अँगना खिन ठाढ़ी ॥
भीतर बाहर संग सहेली बात नहीं समझावै ।
चरणदास शुकदेव पियारे नैनन ना दर्शावैं ॥

१७ ॥ राग भैरव ॥

गुरु बिन मेरे और न कोय । जग के नाते सब दिये खोय ॥
गुरु ही मात पिता अरु वीर । गुरु ही सम्पति जीव शरीर ॥
गुरु ही जाति बरण कुल गोत । जहाँ तहाँ गुरु संगी होत ॥
गुरु ही तीरथ बरत हमार । दीन्हे और धरम सब डार ॥
गुरु ही नाम जपौं दिन रैन । गुरु को ध्यान परम सुख दैन ॥
गुरु के चरणकमल कर वास । और न राखूँ कोई आस ॥
जो कुछ चाहैं गुरु ही करैं । भावैं छाहँ धूप लै धरैं ॥
आदिपुरुष गुरु ही कूँ जानूँ । गुरु ही मुक्तीरूप पिछानूँ ॥
चरणदास के गुरु शुकदेव । और न दूजा लागैं लेव ॥

* अथ भक्ति अंग वर्णन *

१८ ॥ राग करखा ॥

राखिये लाज महाराज गोपालजी, दीनजन शरण आयो

तिहारी । लगो मोहि ध्यान दृढ़ चरण ही कमल में, कीजिये कृपा सुनि हो त्रिहारी ॥ विषय जंजार रस स्वाद घेरो घनों, पाँचहू चोर दुख देहिं भारी । नीच बहु दुष्ट बलवान पच्चीस ठग, तकैं निशि द्योस ही घात डारी ॥ पकरि गज-राज कूँ ग्राह खैंच्यो तबै, टेर दे हेर कीन्ही पुकारी । गरुड़ तजि धाय आये छुटायो तुरत हरि, हिये व्याधि, तन विपति टारी ॥ ध्रुव अटल कियो प्रह्लाद कूँ दरस दियो, दास हनुमान सूँ प्रीति भारी । भीलनी अरु कामी अजामील से अधम अति, पतित गणिका उबारी ॥ पाण्डुसुतहू बचाये जरत अग्नि सूँ, द्रौपदी चीर बाढ़ो अपारी । नामदेव सैन पीपा कबीरा सदन, नरसिया दासि मीरा उधारी ॥ कोटि अनगिन भक्त तारि दिये तनक में, कहो मेरी सुरति क्यों बिसारी । तो बिना कहाँ जाऊँ कहीं ठौर ना, तेरे ही द्वार को हूँ भिखारी ॥ सकल संशय हरण तूही तारण तरण, श्याम शुकदेव गिरिधर मुरारी । चरणदास रणजीत को आसरो तुही है, आपनो जान लीजै सँभारी ॥

१६ ॥ राग करखा ॥

साधौ सोई जन शूर जो खेत में मड़ रहै, भक्ति मैदान में रहै ठाढ़ा । सकल लज्जा तजै महा निरभै गजै, पैज नीशान जिन आय गाड़ा ॥ भये बहु वीर गम्भीर जे धीरमति, सबन को यश कहत ग्रन्थ होई । तिन विषे कछूइक नाम वर्णन करूँ, सुनो हो सन्त दै चित्त सोई ॥ पिता सूँ रूठि ध्रुव पाँच ही वर्ष को, टेक गहि भक्ति के पन्थ धायो । छल

भयो ना डिगो टेक पूरी भई, जीति मैदान हरि दर्श पायो ॥ हठो प्रह्लाद हरि नाम छाँड़ो नहीं, बाप ने त्रास दै बहु डिगायो । टेक जब ना टरी राम रचा करी, दुष्ट को मारि कै जन जितायो ॥ कबीर दादू धने पहिरि बख्तर घने, नामदेव सारिखे बहुत कूदे । सेन सदना बली भक्त पीपा बड़ो, राम की ओर कूँ चले सूधे ॥ मलूक जैदेव गज ग्राह कलँगी धरे, सूर रैदास मुख नाहिं मोड़ा । ध्यान बन्दूक में प्रेम रञ्जक जमा, मीरमाधो चला कुदाय घोड़ा ॥ दासि मीरा पिली प्रेम सन्मुख चली, छोड़ि दई लाज कुल नाहिं माना । और शबरी मँडी तोड़ि ऊँची गढ़ी, दौर करमा चली प्रेम जाना ॥ श्री शुकदेव रणजीत साँवत कियो, लड़े कलियुग बिषे खम्भ गाड़े । बहुत सेना लिये ललक हूहू किये, चरणहीदास सँग नाहिं छाँड़े ॥

२० ॥ राग काफी ॥

हे जगके करतार, तेरी कहा अस्तुति कीजे ।
तूही एक अनेक भयो है अपनी इच्छाधार ॥
तूही सिरजै तूही पालै तूही करै सँहार ।
जित देखूँ तित तूही तूहै तेरा रूप अपार ॥
तूही राम नारायण तूही तूही कृष्णमुरार ।
साधौं की रचा के कारण युग युग ले औतार ॥
तूही आदि अरु मध्य तुही है अन्त तेरा उजियार ।
दानव देव तुही सूँ प्रकटे तीन लोक विस्तार ॥

जल थल में व्यापक है तूही घटघट बोलनहार ।
तो बिन और कौन है ऐसो जासों करों पुकार ॥
तूही चतुर शिरोमणि है प्रभु तूही पतित उधार ।
चरणदास शुकदेव तुही है जीवन प्राणअधार ॥

२१ ॥ राग काफी ॥

तव गुण करूँ बखान, यह मेरी बुद्धि कहाँ है ।
चतुर्मुखी ब्रह्मा गुण गावैं तिनहुँ न पायो जान ॥
गुण गावत शंकर जब हारे करने लागे ध्यान ।
गुण अपार कछु पार न पायो सनकादिक कथ ज्ञान ॥
गुण गावत नारद मुनि थाके सहस मुखन सूँ शेश ।
लीला को कछु वार न पारा ना परिमाण न भेष ॥
शक्ति घनी अनगिनत तुम्हारी बहुतरूप बहु नावँ ।
जबहि विचारूँ हिय में हारूँ अचरज हेरि हिरावँ ॥
अति अथाह कछु थाह न पाऊँ सोच अचक रहि जावँ ।
गुरु शुकदेव थके रणजीता मैं कहु कौन कहावँ ॥

२२ ॥ राग पर्ज ॥

रामगुण कोई न जाने हो ।
शेश महेश गणेश अरु ब्रह्मा रहे थकाने हो ॥
सुरति निरति बुधि गम नहीं सब देव लुभाने हो ।
सनकादिक नारदहू हारे कौन बखाने हो ॥
योगी जंगम ऋषी मुनी तपसी सुर ज्ञाने हो ।
ध्यान लगावें अन्त न पावें गये हिराने हो ॥

पशू मनुप कहा कहि सकै विषय रस लपटाने हो।
चरणदास शुकदेव दया यह बात पिछाने हो॥

२३ ॥ राग काफी ॥

रामा रामा जी साईं ॥

अलख निरंजन रूपा। तूही एक अनेक स्वरूपा॥
तेरी ज्योति सकल जग छाई। तू घटघट रहो समाई॥
तूही आदि अनादि कहावै। ब्रह्मादिक पार न पावै॥
अविगत अविनाशी जाना। निरगुण सरगुण पहिचाना॥
बहुविधि के भेप बनावै। सिरजै पालै विनशावै॥
अचरज कौतुक विस्तारा। जन कारण ले औतारा॥
तूही है देवन को देवा। सनकादिक लहै न भेवा॥
चाहै सो करै पल माहीं। तूही व्यापक है सब ठाहीं॥
तूही ज्ञानी गुणी अपारा। पूरण परमातम प्यारा॥
गुण बहुत कहाँ लौं गाऊँ। विनती करि शीस नवाऊँ॥
शुकदेव गुरू बतलाया। चरणदास शरण तेरी आया॥

२४ ॥ राग काफी ॥

रामा रामा जी, सुनिलीजै विनती मेरी। मैं शरण गही है तेरी॥
तैं बहुतैं पतित उधारे। भव जल सूँ पार उतारे॥
हौं सब को नाम न जानूँ। अब कोइ कोइ भक्त बखानूँ॥
अँबरीप सुदामा नामा। सो पहुँचाये निजधामा॥
ध्रुव पाँच बरप को बाला। तैं दरशन दियो गोपाला॥
प्रह्लाद टेक तुम राखी। यों जानत है सब साखी॥

शबरी के फल तुम खाये । त्रयलोचन के घर आये ॥
पण्डवन की करी सहाई । द्रौपदी की लाज बचाई ॥
गणिकाहू पार लगाई । करमा की खिचरी खाई ॥
मीराँ तुम्हरे रँगभीनी । नरसी की हुँडी लीनी ॥
धन्ना को खेत जमायो । तैं साग बिदुर घर पायो ॥
कबिरा के बालद[१] लाये । सब काज किये मनभाये ॥
सदना से सैना नाई । तैं बहुत किये मुकताई ॥
ग्राह सुँ गज जाय छुटायो । तैं मोकूँ क्यों बिसरायो ॥
सनकादिक ब्रह्मा ध्यावैं । तेरा शेष आदि यश गावैं ॥
तेरा वेद पार नहिं पाया । जिन नेति नेति बतलाया ॥
मैं काम क्रोध ने घेरा । ममता की उर उरझेरा ॥
मोह लोभ के फन्दे परिया । तेरा नाम बिसारि दुख भरिया ॥
अब तुम ही करो निबेरा । मोहि जानि चरण को चेरा ॥
मैं पापी महा सन्तापी । अपराधी बहुत कलापी ॥
तुम छाँड़ि कासु पै जाऊँ । यह दुख कौने समझाऊँ ॥
शुकदेव गुरू मैं पाया । जिन तेराहि नाम बताया ॥
चरणदास आपनो कीजै । मोहिं भक्तिदान वर दीजै ॥

२५ ॥ राग रामकली ॥

पतित उधारण बिरद तुम्हारो ।
जो यह बात साँच है हरिजी तो तुम हमको पार उतारो ॥
बालपने अरु तरुण अवस्था और बुढ़ापे माहीं ।

१ सामग्रियों से युक्त बैलों का समुदाय ।

हम से भई सभी तुम जानो तुमसे नेकहु छानी नाहीं ॥
अनगिन पाप किये मनमाने नखशिख अवगुण धारी ।
हिरि फिरिकै सुनि शरणै आयो अब तुमको है लाज हमारी ॥
शुभ करमन को मारग छूटो आलस निद्रा घेरो ।
एकहि बात भली बनि आई जग में कहायो तेरो चेरो ॥
दीनदयाल गुपाल विश्वंभर श्रीशुकदेव गुसाईं ।
जैसे और पतित घन तारे चरणदास की गहिये बाहीं ॥

२६ ॥ राग रामकली ॥

अर्ज सुनौ जगदीश गुसाईं ।
ग्रह नछत्र अरु देव बिसारे चरणकमल की आयो छाँईं ॥
सत बिश्वास यही हिय धारो तोहि न भूलों एक घरी ।
इत उत से मन खैंचि लियो है काहू से कछु नाहिं सरी ॥
अब चाहो सो करो प्रभु तुमही द्वार तुम्हारे सुरति अरी ।
भावैं नरक स्वर्ग पहुँचावो भावैं राखो निकट हरी ॥
अपनी चाह रही नहिं कोई जबसूँ तुम्हरी आस धरी ।
आन भरोसो छाँड़ि दियो हैं सकल बिकल सब छार करी ॥
यह आपा तुमही को दीयो मेरी मो में कुछ न रही ।
आदि पुरुष शुकदेव सुनो जी चरणदास यों टेरि कही ॥

२७ ॥ राग विभास ॥

अबकै करो सहाय हमारी ।
दुष्टदलन अरु भक्त बचावन ऐसी साखि तुम्हारी ॥
जन प्रह्लाद असुर गहि बाँध्यो लीन्हो खड्ग निकारी ।

हिरणाकुश हनि दास उबारो नरसिंह को तन धारी ॥
खैंचि ग्राह गज बोरन लागो राम कहो इक बारी ।
सुनत पुकार पयादेहि धाये तजिकै गरुड़ सवारी ॥
द्रौपदि लाज उतारण कारण लाये सभा मँझारी ।
दीनानाथ लई सुधि बेगहि बाढ़ो चीर अपारी ॥
जिन जिन शरण गही संकट में कहा पुरुष कहा नारी ।
चारों युग हरि करी सहाई रक्षक भये मुरारी ॥
गुरु शुकदेव बतायो तोकों सन्तन को रखवारी ।
चरणदास थकि द्वारे तेरे गुण पौरुष दियो डारी ॥

२८ ॥ राग धनाश्री ॥

अब तुम करो सहाय हमारी ।

मन के रोग होय गये दीरघ तन के बड़े बिकारी ॥
तुम सो बैद और को दूसर जाहि दिखाऊँ नारी ।
सजीवनमूल अमर हो जासों सो है दया तुम्हारी ॥
क्रिया कर्म की औषधि जेती रोग बढ़ावनहारी ।
दीजै चूरण ज्ञान भक्ति को मेटो सकल व्यथारी ॥
जन के काज पयादे धावत चरणकमल पर वारी ।
मैं भयो दास अधीन तुम्हारो मेरी करो सँभारी ॥
जो मोहि कुटिल कुचील[१] जानिकै मेरी सुरति बिसारी ।
चरणदास है शुकदेव तेरो दुष्ट हँसैंगे भारी ॥

---

१ अपवित्र ।

२९ ॥ राग धनाश्री ॥

हरिजी संकट वेगि निवारो ।
जनकूँ भीर परी है भारी चक्र सुदर्शन धारो ॥
कंसनिकंदन रावणगंजन हिरणाकुश गहि मारो ।
दुष्टदलन अरु भक्तउबारण जन प्रह्लाद उबारो ॥
पाँचौं पाण्डव राख लिये हैं कौरव दल संहारो ।
जिन जिन द्वेष कियो सन्तन सों सो सोई हनि डारो ॥
निरभय भक्ति करैं जन तेरे ऐसो समय विचारो ।
चरणदास के घट में बैरी तिनको क्यों न विदारो ॥

३० ॥ राग विभास ॥

राखो जी लाज गरीबनिवाज ।
तुम बिन हमरे कौन सँवारे सबही बिगरें काज ॥
भक्तवछल हरि नाम कहावो पतित उधारणहार ।
करो मनोरथ पूरण जन के शीतल दृष्टि निहार ॥
तुम जहाज मैं काग तिहारो तुम तजि अनत न जाऊँ ।
जो तुम हरिजी मारि निकासो और ठौर नहिं पाऊँ ॥
चरणदास प्रभु शरण तिहारी जानत सब संसार ।
मेरी हँसी सो हँसी तिहारी तुमहूँ देखि बिचार ॥

३१ ॥ राग बिलावल ॥

प्रभुजी शरण तिहारी मैं आयो ।
जो कोइ शरण तिहारी नाहीं भरमि भरमि दुख पायो ॥
औरन के मन देवी देवा मेरे मन तुहि भायो ।

जबसों सुरति सँभारी जग में और न शीस नवायो ॥
नरपति सुरपति आस तिहारी यह सुनिकरि मैं धायो।
तीरथ वरत सकल फल त्यागे चरणकमल चित लायो ॥
नारदमुनि अरु शिव ब्रह्मादिक तेरोहि ध्यान लगायो ।
आदि अनादि युगादि तेरो यश वेद पुराणन गायो ॥
अब क्यों न बाँह गहो हरि मेरी तुम काहे बिसरायो।
चरणदास कहै करता तूही गुरु शुकदेव बतायो ॥

३२ ॥ राग केदारा ॥

अबके तारिहो बलबीर ।
चूक मोसों परी भारी कुबुधि के संग सीर ॥
भवसागर की धार तीक्ष्ण महा गँधीलो नीर ।
काम क्रोध मद लोभ भँवर में चित न धरत तहाँ धीर ॥
मच्छ जहाँ बलवन्त पाँचौं थाह गहर गँभीर ।
मोह पवन झकोर दारुण दूर पैलो[१] तीर ॥
नाव तो मँझधार भरमी हिये बाढ़ी पीर ।
चरणदास कहै कोइ नाहिं संगी तुम बिना हरि हीर[२] ॥

३३ ॥ राग सोरठ ॥

अब जग फंद छुटावोजी हौं तो चरणकमल को चेरो ।
परो रहूँ दरबार तिहारे संतन माहिं बसेरो ॥
बिना कामना करूँ चाकरी आठों पहरे नेरो ।
मनसब-भक्ति[३] कृपा करि दीजै मोहि यही बहुतेरो ॥

१ दूसरा २ हीरा—परात्परतत्व ३ भक्ति का पद ।

खानेजाद[1] कदीमी[2] कहियो तुही आसरो मेरो।
झिड़क घिड़ारो तऊ न छाँड़ौं सेवा सुमिरण तेरो ॥
काहू और आन देवन सों रह्यो नहीं उरझेरो।
जैसे राखो त्योंहीं रहहूँ कर लीजो सुरझेरो ॥
तेरे घर बिन कहूँ न न मेरो ठौर ठिकानो डेरो।
मोसे पतित दीन को हरिजी तुमही करो निबेरो ॥
गुरु शुकदेव दया करि मोकूँ ओर तिहारी फेरो।
चरणदास को शरणैं राखो यही इनाम घनेरो ॥

३४ ॥ राग विलावल ॥

तुम साहब करतार हो हम बन्दे तेरे।
रोम रोम गुनहगार हैं बकसो हरि मेरे ॥
दशौं दुवारे मैल है सब गन्दम गन्धा।
उत्तम तेरो नाम है बिसरै सो अन्धा ॥
गुण तजि कै औगुण किये तुम सब पहिचानो।
तुमसों कहा छिपाइये हरि घट की जानो ॥
रहम[3] करो रहमान तुम यह दास तिहारो।
भक्ति पदारथ दीजिये आवागमन निवारो ॥
गुरु शुकदेव उबार लो अब मेहर करीजै।
चरणहिदास गरीब को अपना करि लीजै ॥

३५ ॥ राग रामकली ॥

चारि वरण सों हरिजन ऊँचे।

१ घर जायन्दा दास २ पुरातन ३ कृपा ।

भये पवित्तर हरि के सुमिरे तन के उज्ज्वल मन के सूचे ॥
जो न पतीजै साखि बताऊँ शबरी के झूठे फल खाये।
बहुत ऋषीश्वर ह्वाँई रहते तिनके घर रघुपति नहिं आये ॥
भीलनी पाँव दियो सरिता में शुद्ध भयो जल सब कोइ जाने।
मन्द[1] हुतो सो निर्मल हूवो अभिमानी नर भये खिसाने ॥
ब्राह्मण क्षत्री भूप हुते बहु, बाजो शङ्ख श्वपच[2] जब आयो।
वालमीकि[3] यज्ञ पूरण कीन्हो जय जय कार भयो यश गायो ॥
जाति बरण कुल सोई नीको जाके होय भक्ति परकास।
गुरु शुकदेव कहत हैं तोकों हरिजन सेव चरणहीदास ॥

३६ ॥ राग रामकली ॥

सब जातिन में हरिजन प्यारे।
रहनी तिनकी कोई न पावै तन सों जग में मन सों न्यारे ॥
साखि सुनौ अँबरीष भूप की दुर्वासा जहँ आयो।
लगो सराप देन राजा को चक्र सुदर्शन जारन धायो ॥
प्रभुजी आये दुर्योधन के वह मन में गरबायो।
नानाविधि के व्यंजन त्यागे साग बिदुर घर रुचि सों पायो ॥
सतयुग त्रेता द्वापर कलियुग मान सन्त को राखो।
भक्तों वश भगवान सदा ही वेद पुराणन में यों भाखो ॥
ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्र घर कहीं होय क्यों न वासा।
धनि कुल वह शुकदेव बखाने यह तुम सुनो चरणहीदासा ॥

१ अपवित्र २ भंगी ३ भंगी का नाम है जिसको भोजन कराने पर पांडवों का यज्ञ पूर्ण हुआ था।

३७ ॥ राग कान्हरा ॥

धनि वे नर हरिदास कहाये ।
रामभक्ति दृढ़ही करि पकरी आन धर्म सबही बिसराये ॥
आठ पहर गलतान भजन में प्रेम मगन हिय में हुलसाये ।
आप तरैं तारैं औरन कों बहुतक पापी पार लंघाये ॥
प्रभु दर्शन बिन और न आशा अर्थ धर्म्म काम मोक्ष न चाहें ।
आठों सिद्धि फिरैं सँग लागी नेक न देखैं नैन उठाये ॥
तिनको ऋषि मुनि जाप करत हैं हरिजन हरि दोउ सँग ही गाये ।
ऊँची पदवी इन्दरहू ते, देवत देखि अधिक ललचाये ॥
कहैं शुकदेव चरणहीदासा धनि माता ऐसे जन जाये ।
जीवत शोभा जग में पाई तन छूटे हरि माहिं समाये ॥

३८ ॥ राग सोरठ ॥

मोकों कछू न चहिये राम ।
तुम बिन सबही फीके लागैं नाना सुख धन धाम ॥
आठ सिद्धि नौ निद्धि आपनी और जनन को दीजै ।
मैं तो चेरो जन्म जन्म को निज करि अपनो कीजै ॥
स्वर्गफलन की मोहि न आशा ना बैकुंठ न मोक्षहि चाहूँ
चरणकमल के राखो पासा यह उर माहिं उमाहूँ ॥
भक्ति न छाँडौं मुक्ति न माँगौं सुनु शुकदेव मुरारी ।
चरणदास की यही टेक है तजौं न गैल तुम्हारी ॥

३९ ॥ राग भैरव ॥

यह पुरुषोत्तम मेरा यार । नेह लगा टूटै नहिं तार ॥

तीरथ जाऊँ न व्रत करूँ । चरणकमल को ध्यान धरूँ ॥
प्राण पियारे मेरेहि पास । बन बन माहिं न फिरूँ उदास॥
पढ़ूँ न गीता वेद पुरान । एकहि सुमिरौं श्रीभगवान ॥
औरन को नहिं नाऊँ शीस । हरि ही हरि हैं बिस्वेबीस ॥
काहू की नहिं राखूँ आस । तृष्णा काटि दई है फाँस ॥
उद्यम करूँ न राखूँ दाम । सहजहि ह्वै रहे पूरण काम ॥
सिद्धि मुक्ति फल चाहौं नाहीं । नित हि रहूँ हरि संतन माहीं ॥
गुरु शुकदेव यही मोहि दीन । चरणदास आनँद लवलीन ॥

४० ॥ राग भैरव ॥

यों कहैं हरि जी दयानिधान । सन्त हमारे जीवनप्रान ॥
सन्त चलैं जहँ सँग ही जावँ । सन्त दियो सो भोजन खावँ ॥
सन्त सुलावैं जित रहुँ सोय । सन्त बिना मेरे और न कोय ॥
सन्त हमारे माई बाप । सन्तहि को मन राखूँ जाप ॥
सन्त को ध्यान धरौं दिन रैन । सन्त बिना मोहि परै न चैन ॥
सन्त हमारी देही जान । सन्तहि की राखूँ पहिचान ॥
सन्त की सकल बलइयाँ लेवँ । सन्त कूँ अपनो सर्वस देवँ ॥
सन्तहि हेत धरूँ औतार । रक्षा कारण करूँ न बार ॥
सुख देऊँ दुख सब निरवार । चरणदास मेरो परिवार ॥

४१ ॥ राग सोरठ ॥

भक्तजन सो हरि के मन भावै ।
निष्कामी अरु प्रेम हिये में अनन्य भक्ति चित लावै ॥
आन देव जो मोती बरषैं तो नाहीं पतियावै ।

प्रभु के चरणकमल के ऊपर भँवर भयो लिपटावै ॥
सिद्धि न चाहै ऋद्धि न माँगै दर्शन को ललचावै ।
मुक्ति आदि दे चाह न कोई आशा सकल गँवावै ॥
रोमहिं रोम पुलकि सब देही गोविंद के गुण गावै ।
गद्‌गद वाणी कंठ उसासै नैनन नीर ढरावै ॥
परमेश्वर मिलने की लहरैं इक आवै इक जावै ।
कहैं शुकदेव चरणहीदासा हरिहू कंठ लगावै ॥

४२ ॥ विलावल ॥

हमारे चरणकमल को ध्यान ।
मूरख जगत भरमता डोले चाहत जल असनान ॥
सब तीरथ वाही सों प्रकटे गंगा आदिक जान ।
जिन सेवन सब पातक नाशैं नित होवै कल्यान ॥
साकत[1] गिरही बानेधारी हैं सब ही अज्ञान ।
हरि सो हीरा छाँड़ दियो है पूजें काच पखान[2] ॥
हरिचरणन की महिमा जानैं हैं वे सन्त सुजान ।
भौंदू नर माया के चेरे इनको कहा पहिचान ॥
चरणदास शुकदेव गुरू ने दीन्हों अंजन ज्ञान ।
साँचो प्रीतम सूक्ष परो है बिसरि गयो सब आन ॥

४३ ॥ राग नट, विलावल व सारंग ॥

हमारे राम भक्ति धन भारी ।
राज न डाँड़ै चोर न चोरै लूटि सकै नहिं धारी ॥

१ शक्ति उपासक २ पत्थर ।

प्रभु पैसे अरु राम रुपइये मुहर मुहब्बत हरि की।
हीरा ज्ञान युक्ति के मोती कहा कमी ह्याँ ज़र[१] की॥
सोना शील भँडार भरे हैं रूपा रूप अपारा।
ऐसी दौलत सतगुरु दीन्हीं जाका सकल पसारा॥
बाँटों बहुत घटै नाहिं कबहूँ दिन दिन ब्यौढ़ी ब्यौढ़ी।
चोखा माल द्रव्य अति नीका बट्टा लगै न कौड़ी॥
साह गुरू शुकदेव बिराजै चरणदास बन जोटा[२]।
मिलि मिलि रंक भूप हो बैठे कबहुँ न आवै टोटा॥

४४ ॥ राग नट व बिलावल ॥

जो नर हरि धन सों चित लावै।
जैसे तैसे टोटा नाहीं लाभ सवाया पावै॥
मन करि कोठी नाम खजानो भक्ति दुकान लगावै।
पूरा सतगुरु साक्षी करिकै संगति बणिज चलावै॥
हुंडी ध्यान सुरति लै पहुँचै प्रेम नगर के माहीं।
सीधा साहूकारा साँचा हेर फेर कछु नाहीं॥
जित सौदागर सबही सुखिया गुरु शुकदेव बसाये।
चरणहिदास बिलमि रहे ह्वाईं जूनीपन्थ[३] न आये॥

४५ ॥ राग देवगन्धार ॥

मनुवाँ राम के ब्यौपारी।
अबकै खेप भक्ति की लादी बणिज कियो तैं भारी॥
पाँचौं चोर सदा मग रोकत इन सों कर छुटकारी।

१ धन २ साथी या साझेदार ३ जन्म मरण का पुराना रास्ता।

सतगुरु नायक के सँग मिलि चल लूट सकैं नहिं धारी॥
दो ठग मारग माहिं मिलेंगे एक कनक इक नारी।
सावधान हो पेच न खइयो रहियो आप सँभारी॥
हरि के नगर में जा पहुँचोगे पैहौ लाभ अपारी।
चरणदास तोको समझावैं ए मन बारंबारी॥

४६ ॥ राग सोरठ ॥

हरि पावन की गति न्यारी है।

कष्ट तपस्या पढ़न लिखन सूँ हूँढ़त मूढ़ अनारी है॥
अड़सठ तीरथ भरमत डोले देह गई सब हारी है।
निरजल व्रत किये बहु भाँती आश फलन की धारी है॥
तप करने को बन जा बैठे कीन्हीं त्वचा उघारी है।
पौन अहारी तनहूँ गारो दर्शै नाहिं मुरारी है॥
विद्या पढ़ि पढ़ि पण्डित हूवा अर्थ करै बहु भारी है।
अभिमानी ह्वै जन्म गँवायो भयो न प्रेम खिलारी है॥
साँच भक्ति बिन हरि नहिं रीझैं बहुत गये सिर मारी हैं।
चरणदास शुकदेव श्याम पर तन मन सूँ बलिहारी हैं॥

४७ ॥ राग सोरठ ॥

सुन राम भक्ति गति न्यारी है।

योग यज्ञ संयम अरु पूजा प्रेम सबन पर भारी है॥
जाति बरण पर जो हरि जाते तो गणिका क्यों तारी है।
शबरी सरस करी सुर मुनि ते हीन कुचील जो नारी है॥
दुश्शासन पति खोवन लागो सबही ओर निहारी है।
होय निराश कृष्ण कहि टेरी बाढ़ो चीर अपारी है॥

टेढ़ी लौंड़ी कंस राजा की दीन्हों रूप करारी[1] है।
एकसूँ एक अधिक ब्रजनारी कुब्जा कीन्ही प्यारी है॥
पाँचौं पाण्डवन यज्ञ सजो है सगरी सौंज सँवारी है।
बालमीकि बिन काज न होतो बाजो शंख मुरारी है॥
साधौं की सेवा में राचो भूप कि सुरति बिसारी है।
सैन भक्त के कारण हरिजी वाकी सूरत धारी है॥
दास कबीरा जाति जोलाहा ब्राह्मण मिल की ख्वारी[2] है।
बनिजारा ह्वै बालिध[3] लाये ताकी करी सँभारी है॥
साखि सुनो रैदास चमारा सो जग में उजियारी है।
कनक जनेऊ काढ़ि दिखायो विप्र गये सब हारी है॥
अजामील सदना तिरलोचन नामा[4] नाम अधारी है।
धन्ना जाट कालू अरु कूबा बहुत किये भव पारी है॥
प्रीति बराबर और न दीखै वेद पुराण विचारी है।
चरणदास शुकदेव कहत हैं ता वश आप मुरारी है॥

४८ ॥ राग गौरी ॥

आवो साधो हिलमिल हरि यश गावैं।
प्रेम भक्ति की रीति समझि करि हित सों राम रिझावैं॥
गोविंद के कौतुक लीला गुण ताको ध्यान लगावैं।
सेवा सुमिरण वंदन अर्चन नौधा सों चित लावैं॥
अबकी औसर भलो बनो है बहुरि दावँ कब पावैं।
भजन प्रताप तरें भवसागर उर आनन्द बढ़ावैं॥

१ सुंदर २ अपमानित करने का उद्योग ३ सामान युक्त बैल ४ नामदेव भक्त।

सत संगति को साबुन लेकर ममता मैल बहावैं ।
मन को धो निरमल करि उज्ज्वल मगनरूप ह्वै जावैं ॥
ताल पखावज झाँझ मँजीरा मुरली शङ्ख बजावैं ।
चरणदास शुकदेव दया सूँ आवागमन मिटावैं ॥

४९ ॥ राग बिलावल ॥

करिले प्रभु सों नेहरा मन माली यार ।
कहा गर्व मन में धरै जीवन दिन चार ॥
ज्ञानबेलि गहु टेक की दया क्यारी सवाँर ।
यत सत दृढ़ को बीजहि बोवो तासु मँझार ॥
शील छमा के कूप को जल प्रेम अपार ।
नेम डोल भरि खैंचि कै सींचो बाग विचार ॥
शूल कीकर[1] कूँ काट कै बाँधो धीरज बार[2] ।
सुमति सुबुद्धि किसान को राखो रखवार ॥
धर्म गुलेल जु प्रीति की हित धनुप सुधार ।
झूठ कपट पछीन कूँ तासों मार बिड़ार ॥
भक्ति भाव पौधा लगै फूलै रङ्ग फुलवार ।
हरिरस माता होय कै देखै लाल बहार ॥
सत संगति फल पाइये मिटै कुबुद्धि विकार ।
जब सतगुरु पूरा मिलै चाखै अमृतसार ॥
समझावैं शुकदेवजी चरणदास सँभार ।
तेरी काया में खिलै साँचो गुलजार ॥

१, बबूर २ बाड़।

५० ॥ राग मंगल ॥

सोई सुहागिन नारि पिया मन भावई।
अपने घर को छाँड़ि न परघर जावई ॥
अपने पिय को भेद न काहू दीजिये।
तन मन सुरति लगाय कि सेवा कीजिये ॥
पति की आज्ञा चाल पाल पिय को कहो।
लाज लिये कुलवंत यतन ही सूँ रहो ॥
धनि धनि ह्वै जग माहिं पुरुष बहु हित धरै।
सब में नायक[1] होय जो सर्वर[2] को करै ॥
पिय को चाहो रूप सिंगार बनाइये।
पतिव्रता कुल दोय में शोभा पाइये ॥
नौधा[3] वस्तर पहिरि दया रँग लाल है।
भूषण लक्षण धार विचित्तर बाल है ॥
रङ्गमहल निर्दोप ह्वाँ झिलमिल नूर है।
निर्गुण सेज बिछाय सभी करि दूर भै ॥
मन्दिर दीपक बाल बिना बाती घीव की।
सुघर चतुर गुण राशि लाड़िली पीव की ॥
कहैं गुरू शुकदेव यों बालम मोहिये।
चरणदास ले सीख जु प्रेम समोइये ॥

५१ ॥ राग मंगल ॥

परमसुखी सोइ साधु जो आपा[4] ना थपै[5]।

१ मुख्य २ समानता ३ नवधाभक्ति ४ अहंकार ५ स्थापित करे।

मन के रोग मिटाय नाम निर्गुण जपै ॥
परनिन्दा परनारि द्रव्य नाहीं हरै ।
जिन चालन हरि दूरि बीच अन्तर परै ॥
छण नहिं विसरै राम ताहि निकट तकै ।
हरिचर्चा बिन और बाद नाहीं बकै ॥
झूठ कपट छल झगल ये सकल निवारिये ।
यत सत शील सँतोष छमा हिय धारिये ॥
काम क्रोध मद लोभ बिड़ारन कीजिये ।
मोह ममता अभिमान अकस तज दीजिये ॥
सब जीवन निर्वैर त्याग बैराग ले ।
तब निरभै ह्वै सन्त भाँति काहू न भै ॥
कागकरम सब छांड़ि होय हंसा गती ।
तृष्णा आश जलाय सोई साधू मती ॥
जग सूँ रहै उदास भोग चित ना धरै ।
तब रीझै करतार दास अपनो करै ॥
कहै गुरू शुकदेव जो ऐसा हूजिये ।
चरणहिदास बिचार प्रेम में भीजिये ॥

५२ ॥ राग विलावल ॥

राधेकृष्ण राधेकृष्ण राधेकृष्ण गावरे ।
या देही को कहा भरोसो पल पल छिन छिन छीजत आवरे ॥
कहा अभिमान करै माया को यह धोखा सा जानि बावरे ।
मानुष जन्म भाग सों पायो बहुरि न ऐसो कबहुँ दावरे ॥

भवसागर जो उतरो चाहै सतसंगति की चढ़ ले नावरे।
ज्ञानबल्ली गहि पार मुक्त हो निश्चय तत्त्व पदारथ पावरे॥
सतयुग में सत ही सत कहते त्रेता तप करते तन तावरे।
द्वापर पूजा राज[1] मानसी[2] कलियुग कीर्त्तन हरिहि रिझावरे॥
तातें सब तजि हरि ही हरि भजि निशिदिन चरण कमल चित लावरे।
चरणदास शुकदेव चितावैं श्याम मिलन को यही उपावरे॥

५३ ॥ राग बिलावला ॥

जग में दो तारण को नीका।
एक तो ध्यान गुरू का कीजै दूजे नाम धनी का॥
कोटि भाँति करि निश्चय कीया संशय रहा न कोई।
शास्त्र वेद पुराण टटोले जिनमें निकसा सोई॥
इनही के पीछे सब जानो योग यज्ञ तप दाना।
नौ विधि नौधा नेम प्रेम सब भक्ति भाव अरु ज्ञाना॥
और सबै मत ऐसे मानो अन्न बिना भुस जैसे।
कूटत कूटत बहुतै कूटा भूख गई नहिं तैसे॥
थोथा धर्म वही पहिचानो जामें ये दो नाहीं।
चरणदास शुकदेव कहत हैं समझि देखि मन माहीं॥

५४ ॥ राग आसावरी ॥

साधौ भक्ति नफा करि लीजै। दिन दिन काया छीजै॥
मकर तजै तो मथुरा मन में कपट तजै तो कासी।

१ गंध पुष्प आदि द्वारा षोडशोपचार आदि से करना राजसी पूजा है २ मन में भगवान की मूर्ति का चिंतन करके पूजा करना।

और तीर्थ सबही जग न्हाया नाहिं छुटी यम फाँसी ॥
भाल तले तिरबेणी राजै बिरला जन कोइ न्हावै ।
सुगरा होय सो नित उठि परसै निगुरा जान न पावै ॥
काया मन्दिर में हरि कहिये वेद पुराण बतावैं ।
इत उत भूले लोग फिरत हैं धोखे को सिर नावैं ॥
यंतर टोना मूँड हलावन ताकूँ साँच न मानो ।
तजिकै सार असार गह्यो है तापर भयो सयानो ॥
चरणदास शुकदेव कहत हैं निज करि मूल गहीजै ।
पारब्रह्म जिन सृष्टि उपाई ता ओरी चित दीजै ॥

५५ ॥ राग विलावल ॥

नमो नमो श्रीरामजी देवन के देवा ।
शिव नारद सनकादि लौं कोई लहै न भेवा ॥
एजी निरगुण सों सरगुण भये कौतुक विस्तारे ।
साधुन की रक्षा करी दानव दल मारे ॥
दशरथसुत भूले कहैं कोइ जानत नाहीं ।
इकशत अंड दिखाइया अपने मुख माहीं ॥
गौरा ने परचो लियो सिय भेप बनायो ।
देखे रूप अनन्त ही जब मन बौरायो ॥
आदि निरंजन एक तू दूजा नहिं कोई ।
शुकदेव कही चरणदास को नित सुमिरो सोई ॥

५६ ॥ राग विलावल ॥

नमो नमो गोविन्दजी हूँ दास तिहारो ।

चौरासी दुख सब हरो आवागमन निवारो ॥
कर्मन को प्रेरो फिरूँ नहिं पायो नेरो ।
अबके ऐसी कीजिये दीजै चरण बसेरो ॥
पतित उधारण तुम सुने वेदन में गाये ।
अजामील गणिका तरे ले पार लगाये ॥
एजी गुरु शुकदेव बताइया गही तुम्हारी आसा ।
आन धर्म को छोड़िके भयो चरणहिदासा ॥

* श्रीकृष्ण जन्म बधाई *

५७ ॥ राग जैजैवन्ती ॥

आदि तो सनातन वोही अज अविनाशी है साईं ॥ जाको नहिं वारपार निर्गुण को तत्त्वसार, तासों भयो जग सब आप निर्वासी है । अद्वै निराकार जानो सतचिदानन्द मानो, पुरुष को रूप धरि माया परकासी है ॥ नेति नेति वेद कहैं, अस्तुति माहीं रहैं, भेद कछु नाहीं लहैं थकथक जासी है । योग ध्यान आवै नाहीं ज्ञान सों न गहो जाई, भक्तों के हिये माहीं सदा जो विलासी है । सन्तों हेतु देह धरै आयके सहाय करै, पृथ्वी को दुःख हरै घटघटवासी है । एहो चरणदास जन वासों क्यों न लावो मन, शुकदेव कृपाघन खोलि दई गाँसी है ॥

५८ ॥ राग जैजैवन्ती ॥

साँवरो सलोनो प्यारो मेरे मन भायो है माई ॥ कहा कहूँ शोभा वाकी तीन लोक माया जाकी, शेषहू की रसना थाकी पारहू न पायो है । निरगुण निराकार कोऊ कहा जानैं

सार, सन्तों की सहाय काजे देह धरि आयो है ॥ ब्रजहू में कौतुक कीन्हे सन्तन को सुख दीन्हे, मुरली बजाय गाय रीझिकै रिझायो है। योगी जाको ध्यान लावैं ब्रह्मा अरु वेद गावैं, ताको तो यशोदा माता गोद में खिलायो है ॥ चरणदास सखी पर शुकदेव कृपा कीन्ही, बाँको सो बिहारी एक पल में दिखायो है ॥

५६ ॥ बधाई राग मलार ॥

बधाई सबही ब्रज सोहाई।
मुदित भये बसुदेव देवकी मन में अति अधिकाई ॥
पहुँचे जाय महरि[1] घर माहीं काहू भेद न जानो।
यशुमति रानी बालक जनम्यो सब ने यों करि मानो ॥
घर घर मंगलचार भये हैं बन्दनवार बँधाईं।
नूतन बस्तर पहिरि पहिरि कै नारि सबै घिरि आईं ॥
करि कौतूहल मिलि मिलि गावत करैं उछाह घनेरा।
याचक भीर बहुत भइ द्वारे बजत दमामे[2] भेरा[3] ॥
जिस लायक देखा सो दीन्हा करी सुश्रुषा भारी।
इक आवत इक जात बिदा हो देत अशीस महारी ॥
धनि गोकुल धनि पौरि भवन धनि आये हैं जगदीशा।
शिव ब्रह्मादिक ध्यान धरत हैं लखि ईशन को ईशा ॥
दुष्टदलन सन्तन सुख काजैं लीनो है अवतारा।
चरणदास शुकदेव कहत हैं जगपति सिरजनहारा ॥

---

१ यशोदा २ नगारा ३ एक प्रकार का बाजा।

६० ॥ बधाई राग मलार ॥

नन्द घर कौतुक करन नवीने ।
जो जो वचन किये थे आगे सो आ पूरण कीने ॥
भक्तबछल करतार गुसाईं धरि आये औतारा ।
रक्षा कारण साधु ऋषिन की भूमि उतारण भारा ॥
जब जब भार बढ़त पृथ्वी पर तब तब होत सहाई ।
मर्यादा पुरुषोत्तम येही बिगरी सबै बनाई ॥
निरगुण सों सरगुण वपु धारे कष्ट निवारण काजै ।
योगेश्वर जेहि ध्यान लगावैं नाम लिये अघ भाजै ॥
भाग बड़े यशुमति रानी के दर्शन दीन्हें आई ।
चरणदास शुकदेव कहत हैं सुर मुनि करी बधाई ॥

६१ ॥ बधाई राग मलार ॥

जगतपति देखि महर घर आये ।
बाल चरित्तर ही दिखलावन आनँद अधिक बधाये ॥
तप कीन्हों थो नन्द यशोदा पिछले जन्म अघाई ।
वर माँगो थो हम सुत होके खेलो भवन मँझाई ॥
वचन न मोड़ा आय बिराजे भक्तों वश सुखदाई ।
जो जो चाहा सो सुख दीया हूये कुँवर कन्हाई ॥
संग लियो सामीप मुक्ति को ब्रज में अवन कियोहै ।
सुख उपजायो नर नारिन को दर्शन आय दियो है ॥
जब जब प्रकटे चारों युग में सत कलि द्वापर त्रेता ।
चरणदास शुकदेव कहत हैं सन्तन ही के हेता ॥

६२ ॥ बधाई राग मलार ॥

सखीरी आज गोकुल भाग बड़ाई ।
दर्शन दे बसुदेव देवकी नँद घर प्रकटे आई ॥
भादौं मास बदी बुध आठैं ग्रह नक्षत्र बहु नीके ।
यशुमति रानी गोद सिरानी[1] भये मनोरथ जीके ॥
भयो उछाह स्वर्ग के माहीं देव सभी हर्षाये ।
अपने अपने बैठि बिमानन पुष्प बहुत बर्षाये ॥
यह धरती परफुल्ल भई है फूल उठा बन सारा ।
कालिन्दी को बड़ो उमाहो करि हैं लाल बिहारा ॥
किरयासागर होय उजागर मर्यादा बँध बाँधन ।
चरणदास शुकदेव कहत हैं कारण अपने साधन[2] ॥

६३ ॥ बधाई राग मलार ॥

सखीरी सुन देख अभी मैं आई ।
यशुमति रानी बालक जायो यह तोहिं आनि सुनाई ॥
नायन डोलै हँसि हँसि बोलै घर घर कहत बधाई ।
भयो उछाह सकल गोकुल में बात भई मन भाई ॥
सुन सुन आपस में मुसकाने देन बधाई लागे ।
भूषण बस्तर लगे सवाँरन नर नारी रसपागे ॥
बन सूँ रहे गये नँदद्वारे ग्वाल सभी हरषाये ।
बड़ी पौरि के आगे याचक गावन ही को आये ॥
मैं घर जाऊँ बनकर आऊँ तुमहूँ देह शिंगारो ।

१ आनन्द से भरपूर २ साधुओं के लिए ।

साथ चलैंगी जाय मिलैंगी होइ है कौतुक भारो ॥
शुकदेवा का मुँह देखैंगी करि हैं अधिक हुलासा ।
ऐसे कहि वह भवन सिधारी भनै चरणहीदासा ॥

६४ ॥ राग हिंडोलनो ॥

झूलत हरिजन सन्त भक्ति हिंडोलने ॥
ररा ममा दृढ़ खंभ रोपे प्रेम डोरी लाय ।
टेक पटरी बैठि सजनी अति आनन्द बढ़ाय ॥
ध्यान के जहाँ मेघ बरसैं होय उमँग हुलास ।
गुरुमुखी जहाँ समझ भीजैं पूरण हरि के दास ॥
बुद्धि विवेक विचारि गावैं सखी सहेली साथ ।
अगम लीला रटैं सजनी जहाँ ब्रह्मविलास ॥
परमगुरु श्रीजनक झूलैं झूलैं गुरु शुकदेव ।
चरणदास सखी सदा झूलै कोइ न पावै भेव ॥

६५ ॥ राग हेली ॥

और न मेरे कोय हेली, प्राणपियारे लाल जी ।
रोमरोम वे ही रमेरी अरी हेली तन मन व्यापक सोय ॥
जित देखों तित लाल को री अरी हेली दूजा नाहीं और ।
आदि अन्त है लालजी सर्वमयी सब ठौर ॥ देश काल सब लाल है री अरी हेली अर्धऊरध है लाल । दहिने बायें लालजी दशों दिशा में लाल ॥ सोवत ही में लाल है री अरी हेली जाग्रत ही में लाल । माहिं सुषोपति लालजी तुरिया ही में लाल ॥ ज्ञान ध्यान सब लाल है री अरी हेली लाल ही गुरु

शुकदेव । चरणदास है लाल की विरला जानै भेव ॥

६६ ॥ राग हेली ॥

जो होवै हरिदास हेली एते कुल तारै वही ॥ फल न मुक्ति चाहै नहीं री अरी हेली भक्ति करै निर्वास ॥ बीस चार कुल ददा के री अरी हेली बीस नाना के जान । सोलह कुल ससुरार के द्वादश सुता बखान ॥ बहनी के ग्यारह तिरे री अरी हेली दश भूवा के पार । मौसी के कुल आठ ही वेद कहत हैं चार ॥ अष्टादश यों ही कही री अरी हेली कहैं साधु अरु सन्त । चरणदास शुकदेव भी, कहैं कमला को कन्त ॥

६७ ॥ राग हेली ॥

छूटे आल जंजाल हेली चरण कमल के आसरे ॥ भर्म भूत सब ही छुटेरी अरी हेली सौन[1] नछत्तर नाल ॥ जन्तर मन्तर सब छुटे री अरी हेली छूटे वीर मशान । मूठ[2] डीठ[3] अब ना लगै नहीं घात को बान[4] ॥ शनैश्चर बल ना चलै री अरी हेली नहीं राहु अरु केतु । मंगल बृहस्पति ना दहैं नहीं भोग उन देतु ॥ ज्योति वाल[5] परसों नहीं री अरी हेली मानूं न देवी देव । सतगुरु मोहि बताइया साँचो भूठो भेव ॥ अठसठ तीरथ ना फिरूँ री अरी हेली पूजूँ न पाथर नीर । श्रीशुकदेव छुटाइया जन्म मरण की पीर ॥ निश्चल हो हरि की

१ शकुन २ अभिचार ३ कुदृष्टि ४ घात को बान=अभिचार से मारने का उपाय ५ ज्योति....देवी देव=देवी देवताओंकी आराधना ज्योति प्रगट करके करते हैं, उसको भी मैं स्पर्श नहीं करता ।

भई री अरी हेली सुमिरूँ निर्मल नाँव। अनन्य भक्ति दृढ़ सूँ गही मारग आन न जावँ॥ गोविंद तजि औरन भजैरी अरी हेली जाके मुहड़े छार। चरणदास यों कहत है राम उतारैं पार॥

* अथ सुमिरण का अंग *

—: एक सौ आठ नाम की माला :—

६८ ॥ राग काफी ॥

कहा कहि तोहि पुकारूँ करतार हमारे।
नाम अनन्त अन्त नहिं जाको वहु गुण रूप तिहारे॥
अजर[१]अमर[२]अविगत[३] अविनाशी[४] अलख[५] निरंजन[६] स्वामी[७]।
पुरुष-पुरातन[८] पुरुषोत्तम[९] प्रभु[१०] पूरण-अन्तरयामी[११]॥
कृष्ण[१२] कन्हैया[१३]विष्णु[१४]नारायण[१५]ज्योतीरूप[१६]विधाता[१७]।
अपरम्पार[१८] मुकुंद[१९] मुरारी[२०] दीनबंधु[२१] ब्रजनाथा[२२]॥
यादवपति[२३] जगदीश[२४] चतुर्भुज[२५] निर्भय[२६] सर्वप्रकाशी[२७]।
पारब्रह्म[२८] प्राणन को दाता[२९] सब ठाँ घटघटवासी[३०]॥
निरविकार[३१]परमेश्वर[३२]गिरिधर[३३]माधव[३४]गोविंद प्यारा[३५]।
कमलनैंन[३६]केशव[३७]मधुसूदन[३८]सब में[३९] सब से न्यारा[४०]॥
हृषीकेश[४१] मुरलीधर[४२]मोहन[४३]ओम्[४४]अखिल[४५] अयोनी[४६]।
भगवत[४७] वासुदेव[४८] भगवाना[४९] ज्ञानी[५०]ध्यानी[५१]मौनी[५२]॥
दीनानाथ[५३]गोपाल[५४]हरी[५५]हर[५६]गरुड़ध्वज[५७] घनश्यामा[५८]।
भक्तवछल[५९] अरु देवकिनन्दन[६०]करता सब विधिकामा[६१]॥
आदिप्रधान[६२] माधुरीमूरति[६३] धरणीधर[६४] बलवीरा[६५]।
नन्दनँदन[६६]अरु यशुदानन्दन[६७] सुन्दर श्याम शरीरा[६८]॥

परशुराम[६९]नरसिंह[७०]विश्वंभर[७१]अचल[७२]अखण्ड[७३] अरूपी[७४]
ईश[७५]अगोचर[७६]और जगतगुरु[७७] परमानँद[७८] बहुरूपी[७९] ।।
करुणामय[८०] कल्याण[८१] अनन्ता[८२]दयासिंधु[८३] बनवारी[८४] ।
धारणशंखचक्र[८५] रुक्मिणीपति[८६]आनँदकन्द[८७] बिहारी [८८] ।।
परमदयाल[८९] मनोहर[९०] नरहरि[९१]कृपानिधी[९२] फलदाता[९३] ।
कंसनिकन्दन[९४] रावणगंजन[९५] जगपति[९६] लक्ष्मीनाथा[९७] ।।
जगन्नाथ[९८] अरु बद्रीनाथा[९९] निरगुण[१००] सरगुणधारी[१०१] ।
दामोदर[१०२] रघुवर[१०३] सीतापति रामा[१०४]कुंजबिहारी[१०५] ।।
दुष्टदलन[१०६]सन्तन को रक्षक[१०७]सकल सृष्टि को सांई[१०८] ।
दुःखहरण के कौतुक अनगिन शेष पार नहिं पाई ।।
सौ अरु आठ नाम की माला जो नर मुख उच्चारै ।
अपने कुल की सारी पीढ़ी एक अरु सौ को तारै ।।
गुरु शुकदेव मंत्र निज दीन्हो राम नाम ततसारा ।
चरणदास निश्चय सो जप करि उतरो भव जल पारा ।।

६९ ।। रागकेदारा ।।

हरिको सुमिरि संकटहरन ।
कोटि कष्ट निवारि डारैं जगपति पोषण भरन ।।
भक्ति पूरण देखि निश्चल अनन्य बाँधो परन ।
अग्नि में प्रह्लाद राखो दियो नाहीं जरन ।।
गिरि शिखर सों डारि दीन्हो लगो करुणा करन ।
दीन जानि संभार लीन्हो कियो ठाढ़ो धरन[१] ।।

[१] पृथ्वीपर ।

खम्भ बाँधो खड्ग काढ़ो दुष्ट लागो अरन[१] ।
अब बता तेरो राम कित है गहो वाकी शरन ॥
ढीठ[२] हो प्रह्लाद भाख्यो डारि शंका डरन ।
मो में तो में खड्ग खम्भ में मध्य नारी नरन ॥
खम्भ फटकर भये परगट धरो नरसिंह बरन ।
असुर मारो जन उबारो पुष्प बरषे सुरन ॥
मोहिं गुरु शुकदेव कहिया सेव सोई चरन ।
चरणदास उपासना दृढ़ होय तारण तरन ॥

७० ॥ राग अलहिया ॥

सुमिरु मन राम नाम ततसार ।
जिन जिन सुमिरो सो सो उतरे भवसागर सों पार ॥
वेद पुराण और षट माहीं तारण को यहि योग ।
जो पै पाँचौं प्रेत निवारै अरु इन्द्रिन के भोग ॥
साधन संयम पूजा अर्चन और करै तप दान ।
नाम समान न फल काहू में करि देखी पहिचान ॥
जो जप करै धरै हिरदै में आशा सकल विडार ।
तीन लोक में धनि धनि होवै शोभा अगम अपार ॥
सब धर्मन परधान नाम है सब इष्टन शिरमौर ।
निश्चय पकड़ रहो याही को सकल विकल तजि दौर ॥
तामें ज्ञान भरो ही दीखै पावै ब्रह्म विचार ।
गुरु शुकदेव दियो दृढ़ मोकूँ चरणहिदास सँभार ॥

१ हठ करने लगा २ दृढ़ निश्चय करके ।

७१ ॥ राग बिलावल ॥

अब तू सुमिरण कर मन मेरे।
अगले पिछले अब के कीये, पाप कटैं सब तेरे ॥
यम के दंड दहन पावक की, चौरासी दुख पेरे[1] ।
मर्म कर्म सबही कटि जैहैं, जगत् व्याध उरभेरे ॥
पैहै शक्ति मुक्ति गति आनँद, अमरहिलोक[2] बसेरो ।
जन्मै मरै न योनी आवै, या जग करै न फेरो ॥
सुमिरण साधन माहिं शिरोमणि, जो सुमिरण करि जानै ।
काम क्रोध मद पाप जरावै, हरि बिन और न मानै ॥
गुरु शुकदेव दियो है सुमिरण, बिन जिह्वा करि लीजै ।
चरणदासकहै घेरि घेरि करि, अर्ध ऊर्ध[3] मन दीजै ॥

७२ ॥ राग केदारा ॥

अरे मन करो ऐसो जाप ।
कटैं संकट कोटि तेरे मिटैं सगरे पाप ॥
चेत चेतन खोज करले देख आपा आप ।
काग सों जब हंस होवै नाम के परताप ॥
ध्यान आतम सुरति राखो छुटै त्रैगुण ताप ।
सुरति माला सुमिरि हिरदै छाँड़ सकल संताप ॥
परा भक्ति अगाध अद्भुत विमल अरु निष्काम ।
चरणदास शुकदेव कहिया बसै निजपुर धाम ॥

---

१ पेलेजाना २ भगवद्धाम ३ अजपाजाप ।

७३ ॥ राग भैरों ॥

राम राम राम राम राम राम गावो ।
मन के रोग सकल बिसरावो ॥
नाम प्रताप शिला जल तारी ।
सोई नाम जपो नरनारी ॥
नाम लेत प्रह्लाद उबारो ।
परगट ह्वै हिरणाकुश मारो ॥
पतित अजामिल सब जग जानैं ।
नाम लेत चढ़ि गयो बिमानैं ॥
सुवा पढ़ावत गणिका तारी ।
नाम लेत निज धाम सिधारी ॥
सोई नाम नारदमुनि गायो ।
वेदव्यास मुख प्रकट जनायो ॥
हरि के नाम को करो विचारा ।
सतसंगति मिलि उतरो पारा ॥
शिव ब्रह्मादिक नाम उपासी ।
आठ सिद्धि नव नाम कि दासी ॥
शुकदेव गुरु ने नाम बतायो ।
चरणदास हरि सों चितलायो ॥

नाम

७४ ॥ राग बिलावल ॥

राम चारौं वेद ~~ब्रह्म~~ को कहियत है टीको ।
पाप ताप दुख द्वंद्व कूँ मेटन कूँ नीको ॥

एजी जेहि सुमिरे रक्षा करी प्रहलाद उबारो ।
निर्गुण सों सगुण भयो जानत जग सारो ॥
एजी जप तप संयम योग में सबहुन पर भारी ।
नाम लिये सब ही तरैं बालक नर नारी ॥
जो हिरदै दृढ़ करि गहै हरि दर्शन पावै ।
चौरासी बन्धन कटैं आवागमन नशावै ॥
गुरु शुकदेव दया करी हरि नाम बतायो ।
चरणदास आधीन के निश्चय मन आयो ॥

७५ ॥ राग बिलावल ॥

साँचा सुमिरण कीजिये जामें मीन न मेख[1] ।
ज्यों आगे साधुन कियो वाणी में देख ॥
टेक गहो दृढ़ भक्ति की नौधा हिय धारि ।
सन्तन की सेवा करो कुल कानि निवारि ॥
जासों प्रेमा ऊपजै जब हरि दरशाय ।
आगे पीछे ही फिरैं प्रभु छोड़ि न जाय ॥
चारि मुक्ति बाँदी भवैं सिद्धि चरणन माँहिं ।
तीरथ सब आशा करैं अघ देख नसाँहिं ॥
कहैं गुरू शुकदेवजी चरणदास गुलाम ।
ऐसी धारन धारिये रहिये निष्काम ॥

७६ ॥ राग बिलावल ॥

ऐसा सुमिरण कीजिये सुनिहो मन मेरे ।
रसना राम उचारिये कर माला फेरे ॥

---

१ मीन न मेख = संशय ।

निन्दा अकस[1] न राखिये काहू दुख नहिं दीजै।
सन्तन सूँ सनमुख रहो गुरुसेवा लीजै॥
भूखे भोजन दीजिये प्यासे नीर पियावो।
सबसे नीचा ह्वै चलो अभिमान नशावो॥
सतसङ्गति में मिलि रहो गुरुमत सूँ रहिये।
आन धर्म नहिं चालिये यमदण्ड न सहिये॥
तामस कूँ विष ज्यों तजो शुकदेव बतावै।
चरणदास हरि हरि जपै मुकता ह्वै जावै॥

७७ ॥ राग विलावल ॥

थोथे सुमिरण कहा सरे।
मन के रोग शोक नहिं खोये, हिंसा डूबे अकस जरे॥
नारी सुत सूँ मोह कियो है, नेक न हरि के प्रेम अरे[2]।
कुल नाते परिवार सँभारे, साधुन की नहिं टहल करे॥
माला तिलक सुधारि सवाँरे, राखत छल बल मकर घने।
अन्तर और निरन्तर औरै, सिंह गऊ मुख रहत बने॥
ऐसी भक्ति मुक्ति नहिं पावै, करम लगे अरु नरक परे।
यम के दण्ड दहन पावन को, जनम मरण यों नाहिं टरे॥
लक्षण प्रेम सहित जप कीजै, भीतर बाहर उघर नचे।
चरणदास शुकदेव कहत हैं, हरि रीझैं जग व्याधि बचे॥

७८ ॥ राग विलावल ॥

माला फेरी कहा भयो।

---

१ ईर्षा २ अड़े।

अन्तर के मन को नहिं फेरा, पाप करत सब जन्म गयो ॥
परनिन्दा परनारि न भूलो, खोट कपट की ओर नयो[1]।
काम क्रोध मद लोभ न खोये, ह्वै रह्यौ मूरख मोहमयो ॥
दुनियाँ साँच समझ घर कीन्हो, धन जोरन को परन[2] लयो।
दया धर्म दोउ मारग छोड़े, मँगतन को नहिं दान दयो ॥
गुरु सों झूँठ भगल साधन सों, हरि को नाहीं नेह जयो[3]।
चरणदास शुकदेव कहत हैं, कैसे कहियो मुक्त हयो[4] ॥

७६ ॥ राग हेली ॥

और उपास न कोय हेली टेक हमारे नाम की ।
आन शरण जाऊँ नहीं री, अरी हेली होनी होय सो होय ॥
योग यज्ञ तप नाम ही री, अरी हेली नाम नछत्तर वार ।
सकल शिरोमणि नाम है, तन मन डारूँ वार ॥
अड़सठ तीरथ नाम ही री, अरी हेली नाम हमारे नेम ।
नाम ही सूँ राची रहूँ, नाम हमारे प्रेम ॥
व्रत हमारे नाम ही री, अरी हेली इष्ट हमारे नाम ।
अर्थ धर्म फल नाम ही, नाम मुक्ति को धाम ॥
पढ़न लिखन सब नाम ही री, अरी हेली नाम गिरह[5] सब देव ।
जो कुछ है सो नाम ही, नाम हमारो भेव ॥
राम नाम शुकदेव दियो री, अरी हेली सो राखों मन माहिं ।
चरणदास के नाम ही, इह सम तुल कछु नाहिं ॥

१ झुक गया २ प्रण ३ उत्पन्न होना ४ हुआ ५ नवग्रह ।

* रास, वंशी, विरह और शृङ्गार के पद *

—: दोहा :—

धन सतगुरु शुकदेवजी, मेरी करी सहाय।
निज वृन्दावन धाम की, लीला दई दिखाय॥
अब कछु कौतुक रास को, वरणत है चरणदास।
लाल लड़िली कृपा सों, पावै निज ब्रजवास॥

८० ॥ राग रासबिहागरा ॥

नृत्य करत छवि सों बनवारी।
टेरि लई सबही ब्रज वनिता, मुरली मधुर बजाय विहारी॥
सुनत श्रवण धुनि होय प्रेमवश, विकल भई सुन्दरि सुकुमारी।
गृह के काज लाज तजि पिय की, उठि धाई तन सुरति बिसारी॥
आये गावन छहूँ राग मिल, पाँच पाँच इक इक की नारी।
आठ आठ इक इक के वेटा, मूरतवन्त स्वरूप महारी॥
ताल वीणा मुह चंग मँजीरा, तनन तनन तँबुरा गति न्यारी।
ताधीन ताधीन बजत पखावज, घुँघुरू झनक झनक झनकारी॥ इक इक गोपियन के सँग इक इक, सुन्दर भेष धरो गिरधारी। ऐसो रच्यो रास को मण्डल, मध्य राधिका कृष्ण मुरारी॥ गावत प्रीति बढ़ाय परस्पर, मान करत पिय सों पिय प्यारी। लेत मनाय लाड़िलो प्यारो, हँसि हँसि विहरत दै दै तारी॥ ततथेई ततथेई थेइ थेइ ततथेई, उरप तुरप[१] सांगीत उचारी। नटवर रूप करो मनमोहन, शेष थको वरणत शोभारी॥

१ ऊपर नीचे की मूर्छना।

भये चकित सुर मुनि ऋषि किन्नर, बाढ़ी रैन शरद उजियारी ।
चरणदास शुकदेव श्याम की, अद्भुत लीला पै बलिहारी ॥

८१ ॥ रास, राग भैरों ॥

देख सखी रास रच्यो साँवरे बिहारी । ब्रह्मा शिव इन्द्र शेष नारद से थकित भये, ऐसो कवि कौन करै बरणन उपमारी ॥ सोहैं शिर मुकुट और कुण्डल छवि तिलक भाल, किंकिणि कटि पीताम्बर नूपुर झुनकारी । बहुत नारि सुघर सखी राधाजू चन्द्रमुखी, ललितादिक सहचरी शृङ्गार सों सवाँरी ॥ कोऊ तँबूरा कोऊ मुहचंग कोऊ बजावै गति मृदंग, कोऊ ताल देत कोऊ स्वर उठान भारी । बंसी में करत गान बाँकी सी मधुर तान, श्यामा जब करत मान श्याम लैं मनारी ॥ कबहूँ कर जोर दोऊ नाचत हैं नवकिशोर, कबहूँ हरि नृत्य करत कबहूँ पियप्यारी । ता ता ता ता ता ता थेइ थेइ थेइ होय रही, बाढ़ी निशि शरद देखि हरि की नृत्तकारी ॥ गउवन तृण छाँड़ि दियो बछरन पय नाहिं पियो, मुरली धुनि सुनत मोहे मुनि जन व्रत धारी । शुकदेवजी गुरू को चरणदास बहु प्रणाम करैं, रास को विलास दियो परगट दरशारी ॥

८२ ॥ रास, राग विहागरा ॥

रास में नृत्य करत बनवारी ।
मुदित मनोहर रंग बढ़ावत, सँग वृषभानु दुलारी ॥
मोरमुकुट छवि शीस विराजत, नाक बुलाक सुढारी ।
कर मुरली कटि काछनि काछे, अलकैं घूंघुरवारी ॥

राधाजू के शीस चन्द्रिका, नीलाम्बर जरतारी।
गावैं सखी श्याम श्यामा सँग, नखशिख रूप उजारी॥
ताधिन ताधिन बजत पखावज, ताल वीण गति न्यारी।
ठनन ठनन ठन नूपुर की धुनि, झनन झनन झनकारी॥
थेइ थेइ थेइ थेइ नचत दोऊ मिलि, बिहँसि बिहँसि मुसकारी।
चरणदास शुकदेव दया सूँ, पायो दरश मुरारी॥

८३ ॥ रास, राग रामकली व भैरों॥

नृत्यत गोपाल लाल तत्ता थेई।

नख शिख शृङ्गार किये राधा गल बाँह दिये, सखियाँ सँग नाचत स्वर ताल तान देई॥ तननन तंबूर गिड गिड धुथकधू मृदंग, ताल झम झम झै झाँझ बजत बीन बाँसुरी। झननन झनकार होत पायल ठनकार राग, गावत कल्याण और नट धनासिरी॥ कबहूँ लै कान्हरा अलाप कभूँ सोरठ को, परज अरु बिहागरो केदारा आसावरी। कबहूँ कै बिभास मालसिरी ललित रामकली, भैरों हूँ बिलावल धुनि धुर्पद को चावरी॥ सुन्दर बहु भेप धरैं रास को विलास करैं, मुनिजन मन हरैं बड़ो आनँद उँह ठाईं। अद्भुत छवि कहा कहूँ किरपा शुकदेव चहूँ, चरणदास होय रहूँ चरणकमल माहीं॥

८४ ॥ रास, राग पंचम॥

सखी दोऊ रसिक प्रीतम प्रिया प्यारी।
मिलि खेलत हैं रास छवि कहि न जाई॥

एक की एक सों सरस शोभा बनी, निरख सब सुर मुनि रहे लुभाई ॥ कोऊ कर बीन लै सुघर स्वर ताल दै, गावत सांगीत रीझत रिझाई । धुंगना धुंगना धुधुक धृधृकृत, बजत मिरदंग गति अति सुहाई ॥ तार मुहचंग स्वर सप्त सों मुरलिका, मधुर धुनि चतुर सारंग बजाई । नचत दोउ भाव सों अधिक बहु चाव सों, ततत्त थेइ थेइ थेई गति लगाई ॥ कबहूँ पिय प्यारी जू मान करैं लाल सों, कबहूँ भुज गहि पिया लैं मनाई । धरत सुन्दर डगन बजत नूपुर पगन. हँसत दोउ लसत दिये गरें बाहीं ॥ बढ़ी निशि शरद की कौन वर्णन करै, शेषहू सहसमुख रहे थकाई । कहैं चरणदास शुकदेव किरपा करी, ध्यान के माहिं लीला दिखाई ॥

दो० बस री बैरन बाँसुरी, तूही ब्रज के माहिं ।
लगी रहत पिय मुख जु तू, पल छिन छाँड़त नाहिं ॥
जब तू बाजत तान सूँ, ए बंशी बड़ भाग ।
कसक उठै जियरा जरै, तन मन लागी आग ॥
हमरो पिय तैं बश कियो, करत अधर रसपान ।
कहा टोना कियो जु तैं, बर पाये भगवान ॥
ब्रह्मा भूले वेद धुनि, शंकर छोड़ो ध्यान ।
रणजीत कहै सुनि बाँसुरी, इन्द्र तज्यो अभिमान ॥
छैल छबीलो लाड़िलो, रंग रँगीलो लाल ।
चरणदास के मन बसो, बंशीधर गोपाल ॥

८५ ॥ राग काफी ॥

मोहन प्यारे की बंशी बाजै री ।

हमकूँ जरावत विरह अग्नि सों, जब अधरन पै राजै री ॥
लालन मुख लागी रहै निशिदिन, नेक न नाहिंन लाजै री ।
तनक बाँस की बनी बँसुरिया, गर्वभरी अति गाजै री ॥
तैं वश कियो शुकदेव हमारो, सुनत कलेजो दाझै री ।
चरणदास कहै अब कहा कीजै, तुही भई सिरताजै री ॥

८६ ॥ राग काफी ॥

बंशीवारे सों नेहरा कीन्हो री ।
काहू को कछु कह्यो न मानूँ, यह तन मन वाहि दीन्हो री ॥
भरमत भरमत बहुतै हारी, भटक भटक जग बीनो[1] री ।
आन देव सों काज न मेरो, साँचो प्रीतम चीन्हो री ॥
शोभा को सागर गुण को आगर, कुँवर किशोर नवीनो री ।
नवल लाड़िलो मोहन सोहन, सोई वर वर लीन्हो री ॥
प्रभु को छाँड़ि भजूँ औरन कों, तो कहियो बुधि हीनो री ।
चरणदास को है सुखदायी, श्यामसुंदर रँगभीनो री ॥

८७ ॥ राग काफी ॥

वा मुरलिया ने हेली मेरे प्राण हरे ।
जब बाजत पिय के मुख लागी, सुनि धुनि तन की सुधि बिसरे ॥
ऐसो जप तप कहा कियो है, मोहन सोहनलाल वरे ।
जाके रस बस भये श्याम जी, ता बिन पल छिन कल न परे ॥
तीन लोक बिच धूम मचाई, सुर मुनि ऋषि के ध्यान टरे ।
चरणदास शुकदेव दयासों, मनवांछित सब काज सरे ॥

१ खोजा ।

८८ ॥ राग काफी ॥

वा मुरलियाके बोल मेरे हिये कसकैं।

बाजत मान गुमान गरब ले, करि राखो हरि कों बसकै ॥
बाँकी तान बान ज्यों लागत, चुभत कलेजे में धसकै।
नेक न होत पिया सों न्यारी, अधरन के रसके चसकै ॥
कहा करूँ कुछ यतन न दीखै, कोई उपाय न होय सकै।
चरणदास शुकदेव पियारे, कबहूँ बोलैंगे हँसकै ॥

८९ ॥ राग काफी ॥

बंशीवारे तू साडी गली आय जावो ।

तैंडे कारण भई बावरी, टुक मुख छवि दिखला जावो ॥
व्याकुल प्राण धरत, नहिं धीरज, तन की तपनि सिरा जावो ।
चरणदास तलफत दर्शन बिन, शुकदेव दुःख मिटा जावो ॥

९० ॥ राग परज ॥

तुम्हारे रूप लोभानी हो ।

जाति बरन कुल खोय के, भइ प्रेम दिवानी हो ।
खान पान सुधि सब गई, और अकबक बानी हो ।
तुम्हरे चरणकमल मन मेरो, रहो लिपटानो हो ॥
सुन्दर सूरति मोहनी, मेरे नैन समानी हो ।
तुम बिन चैन नहीं दिन राती, सुनि पिय जानी हो ॥
दरश दिखावो साँवरे, जब हिये सिरानी हो ।
नातर वह गति ह्वै है हमरी, मीन ज्यों पानी हो ॥
सुख देवो दुख सब हरो, काहे बिसरानी हो ।

चरणदास यह सखी तिहारी, मिल जा छानी[१] हो ॥

६१ ॥ राग बिहागरा ॥

सुधि बुधि सब गई खोयरी, मैं इश्क दिवानी ।
तरफत हूँ दिन रैन सखीरी, जैसे जल बिन मीनरी ॥
बिन देखे मोहिं कल न परत है, देखत आँख सिरानी[२] ।
सुधि आये हिय में दव लागे, नैनन बर्षत पानी ॥
जैसे चकोर रटत चन्दा को, जैसे पपीहा स्वाती ।
ऐसे हम तरसत पिय दर्शन, विरह व्यथा इहि भाँती ॥
जब ते मीत बिछोहा हूवा, तबते कछु न सुहानी ।
अंग अंग अकुलात सखीरी, रोम रोम मुरझानी ॥
बिन मनमोहन भवन अँधेरो, भरि भरि आवै छाती ।
चरणदास शुकदेव मिलावो, नैन भये मोहिं घाती ॥

६२ ॥ राग बिहागरा ॥

भई हूँ प्रेम में चूर हो मोहिं दरशन दीजै ।
हूँ तो दासि तिहारी मोहन, वेगि खबर आ लीजै ॥
ज्ञान ध्यान और सुमिरन तेरो, तो चरणन चित राखूँ ।
तेरोहि नाम जपूँ दिन राती, तो बिन और न भाखूँ ॥
तन व्याकुल जिय रूँधोहि आवत, परी प्रीति गल फाँसी ।
तुम तो निठुर कठोर महा पिय, तुमको आवै हाँसी ॥
विरह अग्नि नख शिखसूँ लागी, मन में कलपना भारी ।
गिरोहि परत तन सँभरत नाहीं, रहत भवन में डारी ॥

१ चुपचाप २ शीतल ।

कै विष खाय तजों यह काया, कै तुम्हरे सँग रहहूँ ।
चरणदास शुकदेव बिछोहा, तेरी सौं[1] नहिं सहहूँ ॥

९३ ॥ राग कान्हड़ा ॥

तुम बिन अति व्याकुल भइयाँ,
मोहूँ को दर्श दिखाव रे मोहन प्यारे ।
चितवन नैन हँसन दशनन की, अटक रही हिय महियाँ[2] ॥
वह लटकन मटकन चटकन पट, मोरमुकुट की छवि छइयाँ ।
अधर मधुर मुरली सुर गावत, टेरि बुलावत गइयाँ ॥
हाहा खाऊँ शीस नवाऊँ, और परूँ तोरे पइयाँ ।
वारी हूँ वारी मुख ऊपर, दोउ कर लेहुँ बलइयाँ ॥
अब तो धीर रह्यो नहिं रंचक, हो शुकदेव गुसइयाँ ।
चरणदास भइ प्रेम बावरी, आनि गहो क्यों न बहियाँ ॥

९४ ॥ राग पर्ज ॥

तुम बिन कैसे जीऊँ प्यारे नँदलाल ।
भूख प्यास कछु लागत नाहीं, तन की सुधि न सँभाल ॥
कल न परत कल कल अकुलावों, छिन छिन छिन बेहाल ।
विरह व्यथा को रोग बढ़ो है, पीर महा बिकराल ॥
कहा री करूँ कित जाऊँ री सजनी, को मेटै जंजाल ।
लटक चलन बाँकी चितवन की, चुभत कलेजे भाल ॥
भइ ऐसे यह देह दूबरी[3], सूझै परो नस जाल ।
तरफत हूँ हिय में दौ[4] लागी, नैना बरत[5] मशाल ॥

१ सौगंध २ में ३ पतली ४ अग्नि ५ जलना ।

चरणदास यह सखी तिहारी, हो शुकदेव दयाल।
आय कृपा करि दर्शन दीजै, कीजै वेगि निहाल॥

९५ ॥ राग बिलावल ॥

लागी री मोहन सों डोरी।
आनि कानि कुल की तजि दीन्ही, कोऊ कैसी बात कहोरी॥
श्याम सलोने के रँगराती, मगन भई कोई परी ठगौरी[1]।
निरखत छवि तन की सुधि बिसरी, प्रेम प्रीति रस में भइ बौरी॥
ऐसो रूप उजारो प्यारो, शोभा वर्णत शेष थकोरी।
तीनि लोक ब्रह्माण्ड सकल सब, जाकी माया सों दरशोरी॥
कान कुण्डल गल माल विराजै, शीश मुकुट माथे तिलक फबोरी।
नखशिख भूषण कर लिये लकुटी, कांधे सोहै पीत पिछोरी॥
कल न परत निशि दिन बिन देखे, रोमरोम मेरे वही रमोरी।
कान्ह सुजान सदा सुखदायी, चरणदास के हिये बसोरी॥

९६ ॥ राग झँझोटी ॥

आया मेंडा[2] मोहन मदनगोपाल।
मानौ रङ्क अष्ट सिधि पाई, निरखत भई निहाल॥
बलि बलि जाँदियाँ अँग न समाँदियाँ, मोहिं दरश दियो लाल।
कोटि भानु छवि मुख पर वारूँ, बैंदा सोहै भाल॥
अद्भुत रूप अनूप साँवरो, सुन्दर नैन विशाल।
घूँघरवारी अलकैं झलकैं, चिकने लंबे बाल॥
चितवत तीखी भौंह मरोरत, कर लिये वेणु रसाल।

१ जादू २ मेरा।

गावत तान आन[1] बाँकी सों, चलत अनोखी चाल ॥
श्री शुकदेव दया के सागर, नटनागर नँदलाल ।
चरणदास को किरपा करिकै, रीझि दई उर माल ॥

९७ ॥ राग काफी ॥

लटकरी चाल पै मैं वारी वारी जादियां ।
रैन दिना सानूं ध्यान तुसाडो, मन वच हूँदी वाँदियां ॥
कुण्डल कान मुकुट शिर सोहे, शोभा अधिक सुहादियां ।
अलबेली छवि बाँके नैना, निरखत नैन लुभादियां ॥
जब बाजी प्यारे तेंडी[2] बंशी, खान पान विसरांदियां ।
भूल गई घर काज साज सब, लाज छांड उठ आंदियां ॥
चरणदास हम भई तिहारी, फूली अंग न समांदियां ।
राखि शरण शुकदेव पियारे, चरणकमल लिपटांदियां ॥

९८ ॥ राग काफी ॥

कोई समझावो री मोहनलाल कूँ ॥
ग्वाल बाल सब ही सँग लेकर, सूने घर धँसि आवै ।
याकी घाली[3] मोरी आली, माखन रहन न पावै ॥
लेकर मटुकी चटदे झटकै, गटकै माखन सारो ।
चटपट चाट पोंछ धरि पटकै, नट ज्यों सटकै प्यारो ॥
जब हौं जावँ गगरिया भरने, ठाढ़ो रहै बिहारी ।
आगे आकर काँकर मारे, भीजै मोरी सारी ॥
जो अपने घर बैठि रहूँ तो, अँगना धूम मचावै ।

१ अदा २ तेरी ३ कारण ।

जो कबहूँ कै सोऊँ सजनी, स्वपने में दर्श दिखावै ॥
मेरे पीछे लागो आली, जित जाऊँ तित डोलै ।
कहाँ लगि कहूँ ढीठता वाकी, बात अटपटी बोलै ॥
बाँको छैल महा अलबेलो, प्रगट्यो है ब्रज माहीं ।
चरणदास शुकदेव पियारो, सदा रहौ या ठाहीं ॥

९९ ॥ राग काफी ॥

कोइ आनि मिलावो री, श्याम सुजान कूँ ॥
नन्ददुलारो मोहन सोहन, अजब अनोखो छैला ।
मदनगुपाल मुकुन्द मुरारी, मेरो जीवन प्रान री ॥
नैनन नींद न आवै सजनी, कल न परै दिन रैना ।
व्याकुल भई फिरत हूँ बौरी, भूली खान अरु पान री ॥
जो कोउ हितू ह्वै मेरो आली, लालन की सुधि लावै ।
दर्श दिखाय हरै सब बाधा, मोको दे जी दान री ॥
छिन छिन छिन गति और होत है, लगो विरह को बान री ।
चरणदास की पीर मिटावैं, सुन्दर सुख के निधान री ॥

१०० ॥ राग सोरठ ॥

हमारे घर आये हो सुन्दर श्याम ।
तन की तपन मिटी देखत ही, नैनन भयो आराम ॥
अँगन लिपाऊँ चौक पुराऊँ, फूल बिछाऊँ धाम ।
आनँद मंगलचार गवाऊँ, हूये पूरण काम ॥
अब जागे सखि भाग हमारे, मन पायो विश्राम ।
चरणदास शुकदेव पिया कूँ, हित सों करूँ प्रणाम ॥

१०१ ॥ राग सोरठ ॥

सो अब घर पाया हो मोहनप्यारा।
लखो अचानक अज अविनाशी, उघरि गये दृग तारा।
झूम रहो मेरे आँगन में, टरत नहीं कहुँ टारा॥
रोम रोम हिय माहीं देखों, होत नहीं छिन न्यारा।
भयो अचरज चरणदास न पइये, खोज कियो बहु बारा॥

१०२ ॥ राग सोरठ ॥

वह घरी कौन सी लागे मोरे नैना।
छोटी उमर भोलापन भारी, जाँनू एक न बैना॥
जब लागे तब कछू न जानी, अब लागे दुख दैना।
चरणदास शुकदेव कुँ देखैं, तब पावैं सुख चैना॥

१०३ ॥ राग मलार ॥

सो बिया मोरी जानत हो अकि[1] नाहीं।
नख शिख पावक बिरह लगाई, बिछुरन दुख मन माहीं॥
दिन नहिं चैन नींद नहि निशि कूँ, निश्चल बुधि नहिं मेरी।
कासूँ कहूँ कोउ हितु न हमारो, लगन लहरि हरि तेरी॥
तन भयो छीन दीन भये नैना, अजहूँ सुधि नहिं पाई।
छतियाँ दरकत[2] करक[3] हिये में, प्रीति महा दुखदाई॥
जल बिन मीन पिया बिन बिरहिनि, इन धीरज कहु कैसी।
पत्नी जरै दव लागी वन में, मेरी गति भइ ऐसी॥
तरफत हूँ जिय निकसत नाहीं, तन में अति अकुलाई।

१ या २ धड़कत ३ खटक ।

चरणदास शुकदेव बिना यों, दर्शन द्यौ सुखदाई ॥

१०४ ॥ राग सोरठ ॥

हमारे नैंना दरस पियासा हो ।

तन गयो सूखि हाय हिय बाढ़ी, जीवत हूँ यहि आसा हो ॥
बिछुरन थारो मरण हमारो, मुख में चलै न गासा हो ।
नींद न आवै रैनि बिहावै, तारे गिनत अकासा हो ॥
भये कठोर दरद नहिं जानो, तुम कूँ नेंक न साँसा[1] हो ।
हमारी गति दिन दिन औरैं ही, विरह वियोग उदासा हो ॥
शुकदेव पियारे मत रहु न्यारे, आनि करो उर वासा हो ।
रणजीता अपनो करि जानो, निज करि चरणनदासा हो ॥

१०५ ॥ राग सौरठ ॥

ऊधोजी कहाँ रहे भगवान ।

हम जानी काहू ने मोहे, मोहन चतुर सुजान ॥
तब सूँ नैनन नींद न आवै, धीरज धरत न प्रान ।
उमगि उमगि हियरो हुलसत है, वह सुन्दर मुसुकान ॥
योग कथा तुम काहि सुनावो, हम कूँ नाहीं ज्ञान ।
प्रेम प्रीति की रीति अनोखी, कापै होय बखान ॥
ऐसो हितू न कोऊ दीखे, जाय सुनावै कान ।
बाढ़ी व्यथा विरह की तन में, सुधि लो कृपानिधान ॥
आवो दर्श दिखावो प्यारे, देहु हमैं जी दान ।
चरणदास शुकदेव श्याम बिन, तजौं खान अरु पान ॥

१ चिन्ता ।

१०६ ॥ राग सारंग ॥

ऊधो क्या जानै हमरे जीव की ।
चातक बूँद चकोर चन्द कूँ, ऐसे हम कूँ पीव की ॥
नेह कमान बिछुर कै खैंची, मारि गये हरि तीर की ।
साल वियोग हिये बिच खटकै, सुधि न लई आ पीर की ॥
चरणदास सखि निश दिन तलफै, ज्यों मछली बिन नीर की ।
कहैं कछु और करैं कछु औरै, आखिर जात अहीर की ॥

१०७ ॥ रेखता ॥

फरज़न्द[1] नन्द जू का, दिल बीच भांवदा ।
वर[2] पांय खूब नूपुर, सुन्दर सुहांवदा ॥
वह साँवरा सलोना, महबूब[3] यारमन[4] ।
आहिस्त[5] लटक चाल मटक, मेरे आंवदा ॥
टीका संदल[6] का खैंचिके, माथे पै अदा सों ।
बर सर बिराजै अफसर[7], हीरे जडांवदा ॥
कुण्डल झलकते हैं दर[8], हर दो गोश[9] में ।
आवाज़ बाँसुरी की, शीरीं[10] बजाँवदा ॥
नीसा ज़री का गल में, कटि काछनी बनी है ।
पीरे डुपट्टे वाला, बीरे चबाँवदा ॥
करता है नृत्य नादिर[11], घुँघुरू कि झनक सों ।
तत्त तत्त थेई थेई, गति लगाँवदा ॥

---

१ पुत्र २ श्रेष्ठ ३ प्रेमास्पद ४ अंतरंगी ५ धीरे धीरे ६ चन्दन ७ मुकुट ८ एक ९ कान १० मधुर ११ अद्वितीय ।

नैनों की आन तानि कै, अबरू[1] कमान सूँ ।
पलकों के प्रेम तीर, कलेजे चुभाँवदा ॥
घायल किया है मेरे तईं,[2] उसके इश्क़ ने ।
शुकदेव चरणदास के, जिय में समाँवदा ॥

१०८ ॥ राग हिंडोला ॥

हिंडोला झूलत नन्दकुमार ।
जोड़ी युगलकिशोर विराजै, नान्हीं परत फुहार ॥
कंचन खंभ जटित हीरन सों, नग लागे ता माँहि ।
पटुली अधिक अनूपम सोहै, डोरी सुरँग सुहाहिं ॥
चहूँ ओर बदरा घिर आये, उमड़ घुमड़ घहराहिं ।
गरजत मेघ पवन झकझोरत, दामिनि दमक दुराहिं[3] ॥
गावत गीत मलार सहेली, मिल मिल दै दै तार ।
झोंटा देत विशाखा ललिता, आनँद बढ़ो अपार ॥
बोलत मोर पपीहा कोयल, दादुर हंस चकोर ।
हरी भूमि ऋतु भई सुहाई, भौंर करत अति शोर ॥
भीजत रंग रंगीले प्यारे, शोभा कही न जाय ।
चरणदास शुकदेव श्याम की, दोउ कर लेत बलाय ॥

१०९ ॥ राग हिंडोला ॥

झूलत कोइ कोइ संत लगन हिंडोलनें
पौन उमाह उछाह धरती, शोच सावन मास ।
लाज के जहँ उड़त बगले, मोर हैं जग हास ॥

१ भौंहें २ को ३ छिपना ।

हरष शोक दोउ खंभ रोपे, सुरत डोरी लाय ।
विरह पटरी बैठि सजनी, उमँग आवै जाय ॥
सकल विकल तहाँ देत झोटे, विपति गावनहार ।
सखी बहुतक रंगराती, रँगी पाँचौं नार ॥
नैन बादल उमड़ बरसैं, दामिनी दमकात ।
बुद्धि को ठहराव नाहीं, नेह की नहिं जात ॥
शुकदेव कहैं कोइ बली झूलै, शीस देत अकोर ।
चरणदासा भये बौरे, जाति बरण कुल छोर ॥

११० ॥ हेली ॥

मो विरहिन की बात, हेली विरहिन हो सोइ जानि है ।
मैं न बिछोहा जानती री, अरी हेली विरहै कीन्हो घात ॥
या तन कूँ विरहा लगोरी, अरी हेली ज्यों घुन लागो काठ ।
निशि दिन खाये जात है, देखूँ हरि की बाट ॥
हिरदे में पावक जलैरी, अरी हेली तपि नैना भये लाल ।
आँसू पर आँसू गिरैं, यही हमारो हाल ॥
प्रियतम बिन कल ना परै री, अरी हेली कलकल सब अकुलाहिं ।
डिगी परूँ सत ना रहो, कब पिय पकरैं बाहिं ॥
गुरु शुकदेव दया करैं री, अरी हेली मोहिं मिलावैं लाल ।
चरणदास दुख सब भजैं, सदा रहूँ पति नाल ॥

१११ ॥ हेली ॥

तरसैं मेरे नैन, हेली राम मिलन कब होयगो ।
पिय दर्शन बिन क्यों जिऊँ री, अरी हेली कैसे पाऊँ चैन ॥

तीर्थ वर्त बहुतै किये री, अरी हेली चितदै सुने पुरान।
बाट निहारत ही रहूँ री, छाँड़ि दई कुल कान॥
लगी उमाहे ही रहूँ री, अरी हेली सुधि नहिं लीनी आय।
यह यौवन योंही चलो री, चालो जन्म सिराय॥
विरहा दल साजे रहै री, अरी हेली छिन छिन में दुख देह।
मन लालन के वश परो, भई भाख सी देह॥
गुरु शुकदेव कृपा करो जी, अरी हेली दीजै विरह छुटाय।
चरणदास पिय सूँ मिलै, शरण तुम्हारी धाय॥

११२ ॥ हेली ॥

तिन कूँ कछु न सोहाय हेली प्रीति लगी घनश्याम सूँ।
जो सुख हैं संसार के री, अरी हेली सो सब दिये बहाय॥
भवन तज्यो अरु धन तज्यो री, अरी हेली तजी कुलन की रीत।
मान बड़ाई सब तजी, रहा एक हरि मीत॥
भूख प्यास निद्रा तजी री, अरी हेली तजि दियो वाद विवाद।
राग द्वेष दोऊ तजे, तजो पाँच को स्वाद॥
बहुत डरै सकुची रहै री, अरी हेली कहै न काहू बात।
लगी रहै हरि ध्यान में, ऐसे रैन बिहात॥
श्रीशुकदेव भले कही री, अरी हेली बारम्बार सँभार।
चरणदास हो श्याम की, वे ही निबाहनहार॥

११३ ॥ हेली ॥

मो मन कछु सुहाय हेली प्रीति लगी प्यारेलाल सूँ।
हँसि हँसि के टोना कियो री, अरी हेली दै गयो मुरली गहाय॥

जबही मूँ चेटक[1] लगो री, अरी हेली ढूँढूँ कुंजन माहिं।
बौरी हो दौरी फिरूँ, वह छवि दीखै नाहिं॥
मोहि मिलावै साँवरो री, अरी हेली ताके बलि बलि जावँ।
जन्म जन्म दासी रहूँ, कबहुँ न छोड़ों पावँ॥
है कोइ पूरी राम की री, अरी हेली मोहिं बतावै ठौर।
जहाँ विराजैं श्यामजी, वह बड़भागी पौर॥
चरणदास घायल भई री, अरी हेली मोहन मारो बान।
श्रीशुकदेव दिखाइये, मेरो जीवन प्रान॥

११४ ॥ हेली ॥

वह छवि करूँ बखान हेली, जा छवि सों नैंना लगे।
हितू देखि तोसूँ कहूँ री, अरी हेली और न पावै जान॥
मोर मुकुट माथे दिये री, अरी हेली कुण्डल सरवण माहिं।
अलकैं बल खाई रहैं, योगी देखि लुभाहिं॥
भौंहन मधि बेंदा दिये री, अरी हेली सुन्दर नैंन विशाल।
मोती नासा सोहनो, अरु बैजन्ती माल॥
नीमो अङ्ग पीरो खुभो[2] री, अरी हेली घूम घूमारो फेर।
लाल खराऊँ पावँ में, मो मन राखत घेर॥
पहुँचन में पहुँची कड़े री, अरी हेली अँगुरिन मुँदरी छाप।
अधरन पै मुरली धरे, गावत रीझत आप॥
चरणदास तिनकी भई री, अरी हेली तन मन डारो वार।
गुरु शुकदेव सराहिया, बुरो कहो परिवार॥

१ जादू २ सुशोभित।

११५ ॥ हेली ॥

वंशीवट की छाँहिं हेली, लाल लाड़िली मैं लखे ।
दोउ खड़े गावैं हँसैं री, अरी हेली अरु डारैं गल बाहिं ॥
मोर मुकुट माथे दिये री, अरी हेली सुन्दर नैन विशाल ।
पीताम्बर पट सोहनो, कर मुरली उरमाल ॥
चाके विराजै चन्द्रिका री, अरी हेली नील बसन जरतार ।
नखशिख भूषण सोहने, अरु फूलन के हार ॥
गुरु शुकदेव बताइया री, अरी हेली जब हम लिये पिछान ।
चरणदास तिनकी भई, लगो रहै वहि ध्यान ॥

* अथ सन्त शूरमा का अंग *

दो० सन्त समान न शूरमा, कहै रणजीत विचार ।
टेक गहैं सम्मुख चलैं, बाँधि प्रेम हथियार ॥

११६ ॥ राग सोरठ ॥

सन्त समान नहीं कोई शूरा ।
मोह सहित सब सेना मारी, ऐसो साँवत[१] पूरा ॥
क्षमा कि ढाल गही कर अपने, बाँधे सत तरवारा ।
कर्म भर्म के दल को पेलै, पल पल बारंबारा ॥
सुरत को तीर हृदय को तरकस, ध्यान कमान बनावै ।
प्रेम हाथ यूँ खैंचन लागे, चोट निशाने लावै ॥
बुद्धि विवेक कटारी बाँधै, वचन विलास कि बरछी ।
सतगुरुयां के हियरे बेधैं, कहि कहि बतियाँ तिरछी ॥

१ श्रेष्ठ वीर ।

चित में चाव चौगुनो उनके, सुन सुन अनहद तूरा[1] ।
अगम पंथ सों पग न डिगावैं, होय जाय चकचूरा ॥
मन हुलास आस धरि पीकी, सुन्न[2] खेत में धावैं ।
चरणदास शुकदेव कहत हैं, अमरलोक पद पावैं ॥

११७ ॥ राग सोरठ वा आसावरी ॥

साधू पैज[3] गहै सोइ शूरा ।
वाके मुख पर नूर रहै, जब बाजैं मारूतूरा[4] ॥
कलँगी अरु गजगाह[5] बनावैं, इसका परन दुहेला[6] ।
साँवत भेष बनाय चलत है, यह नहिं सहज सुहेला ॥
या बाने को नेम यही है, पग धरि फिरि न उठावैं ।
जो कछु होय सो आगे हि आगे, आगे ही को धावैं ॥
रण में पैठि झड़ाझड़ खेलै, सन्मुख शस्तर खावैं ।
खेत न छोड़ैं वहाँई जूझैं, तबही शोभा पावैं ॥
गुरु शुकदेव दियो है हेला[7], ऐसा होय सो आवैं ।
चरणदास बाना संतन का, तो ले शीस चढ़ावैं ॥

११८ ॥ राग सोरठा ॥

साधो टेक हमारी ऐसी ।
कोटि यतन करि छूटै नाहीं, कोउ करो अब कैसी ॥
यह पग धरो सँभाल अचल हो, बोल चुके सोइ बोली ।
गुरु मारग में ले मन दीन्हो, अब इत उत नहिं डोली ॥
जैसे शूर सती अरु दाता, पकरी टेक न टारैं ।

१ शब्द २ त्रिगुणातीत ३ टेक ४ लड़ाई का बाजा ५ योद्धाओं के सिर पर धारण करने की निशानी ६ कठिन ७ आवाज ।

तन करि धन करि मुख नहिं मोड़ैं, धर्म न अपनो हारैं ॥
पावक जारो जल में बोरो, टूक टूक करि डारो ।
साधु संगति हरि भगति न छाँड़ूँ, जीवन प्राण हमारो ॥
पैज न हारूँ दाग न लागे, नेक न उतरै लाजा ।
चरणदास शुकदेव दया सूँ, सब विधि सुधरै काजा ॥

११६ ॥ राग सारंग ॥

हमारे राम नाम की टेक टारी ना टरै ।
लाख करो कोइ कोटि करो जी, काहू तैं कुछ नाहिं सरै ॥
ज्यों कामी कूँ तिरिया प्यारी, ज्यों लोभी को दाम ।
अमलदार कूँ अमल पियारो, ऐसे हम कूँ राम ॥
दुष्ट छुटावै गहि गहि पकरों, हारिल[1] की लकड़ी भई ।
अब कैसे करि छूटै मोसों, रोम रोम तन मन मई ॥
ज्यों प्रहलाद पैज दृढ़ कीन्ही, हिरणाकुश से बहु अरे ।
उबरो संत असुर गहि मारो, परगट हो हरि आय खरे ॥
गुरु शुकदेव सहाय करी है, अब पग पाछे क्यों परै ।
चरणहिदास वचन नहिं मोड़ै, शूर सती मूये टरै ॥

१२० ॥ राग सारंग ॥

साधो टेक गई जाको सब गयो ।
लाज गई अरु काज गये सब, वचन धर्म कछु ना रह्यो ॥
जग में हाँस फाँस[2] हिय माहीं, कायरपन यों दहि गयो ।
अब पछिताये होत कहा है, वह पान्प[3] तेरो बहि गयो ॥

१ तोता २ पीड़ा ३ तेज ।

पैज तजी मुख कारो हूवो, धिक धिक जीवन तासु को ।
बोध गयो ओछे की संगति, यह प्रताप कुवास को ॥
चरणदास शुकदेव कहैं यों, टेक न देवो शिर देवो ।
बार बार नरदेह न पइये, अपयश जग में क्यों लेवो ॥

१२१ ॥ राग सोरठ ॥

साधो भेष वही जामें टेक है ।
टेक नहीं तो कहा भरोसो, टेक बिना नर तेक१ है ॥
टेक बिना कैसी सतवंती, टेक बिना नहिं शूरमा ।
टेक बिना दाता भी नाहीं, टेक बिना योगी बूबना२ ॥
टेक बिना नहिं भक्त हरि को, टेक बिना नहिं सिद्ध है ।
टेक बिना सब भर्मत डोलैं, टेक बिना नहिं ऋद्धि है ॥
साधु संत अरु वेद कहत हैं, टेक पकरि चढ़ धाम कूँ ।
चरणदास शुकदेव बतावैं, टेक मिलावै राम कूँ ॥

१२२ ॥ राग सोरठ ॥

साधो जो पकरी सो पकरी ।
अब तो टेक गही सुमिरण की, ज्यों हारिल की लकरी ॥
ज्यों शूरा ने शस्तर लीन्हो, ज्यों बनिये ने तखरी ।
ज्यों सतवंती लियो सिंधौरा३ ,तार गह्यो ज्यों मकरी ॥
ज्यों कामी कूँ तिरिया प्यारी, ज्यों किरपण कूँ दमरी ।
ऐसे हम कूँ राम पियारे, ज्यों बालक कूँ ममरी४ ॥

१ तुच्छ २ मूर्ख ३ सती होने के समय की शृंगार सामग्री ४ माता ।

ज्यों दीपक कूँ तेल पियारो, ज्यों पावक कूँ समरी[१] ।
ज्यों मछली कूँ नीर पियारो, बिछुरे देखै यमरी ॥
साधों के संग हरि गुण गाऊँ, ताते जीवन हमरी ।
चरणदास शुकदेव दृढ़ायो, और छुटी सब गमरी[२] ॥

१२३ ॥ राग सोरठ ॥

अरे ले गुरु के वचन चित धर रे ।
छिन छिन तेरी आयु घटत है, वेगि सँभारो घर रे ॥
शील क्षमा यत दृढ़ करि राखो, गरब गुमान निवारो ।
पाँचो इन्द्री वश करि अपने, मन गनीम[३] को मारो ॥
काया कोट[४] बुहारि युक्ति सूँ, सतसिंहासन धरिये ।
तापर बैठि अमर पदवी लै, राज अभैपुर करिये ॥
सब पर अमल[५] चलै जब तेरो, तो सम और न कोई ।
सेवक साहिब लोहा कञ्चन, बूंद समुन्दर होई ॥
विघ्न कलेश आपदा नाशै, निर्मल आनँद पावै ।
चरणदास शुकदेव दया सूँ, रहनि गहनि समुझावै ॥

१२४ ॥ राग सोरठ ॥

जब गुरु शब्द नगारे बाजैं ।
पाँच पचीसों बड़े मवासी[६], सुनि कै डंका भाजैं ॥
दृढ़ दस्तक[७] ले ज्ञान सजावल[८], जाय नगर के माहीं ।
हरि के दाम[९] भजन के माँगै, चित्त चौधरी पाहीं ॥

१ हवा २ ग्रन्थ सब ज्ञान ३ शत्रु ४ किला ५ अधिकार ६ चोर ७ सूचनार्थ खटखटाना ८ घड़ावल ९ द्रव्य ।

कानूँगोय[1] लोभ के खोटे, छलबल पाहीं झूठे।
काम किसान अरु मोह मुकद्दम[2], सबै बाँधि करि लूटे॥
तृष्णा आमिल[3] मद को मातो, पकरि गाँव सूँ काढ़े।
मन राजा को निश्चल झण्डा, प्रेम प्रीति हित गाड़े॥
सुबुधि दिवान शील को बकसी[4], यत को हाकिम भारी।
धर्म कर्म सन्तोष सिपाही, जाके आज्ञाकारी॥
साँचा कारिन्दा[5] पटवारी, धीरज नेम विचारैं।
दया क्षमा अरु बड़ी दीनता, पूरी जमा[6] सँभारैं॥
मगन होय चौकस कण करिकै, सुमति जेवड़ी[7] मांपै[8]।
दर्शन द्रव्य ध्यान को पूरण, बाँटा[9] पावै आपै॥
श्रीशुकदेव अमल करि गाढ़ो, स्ववस[10] देश बसावै।
चरणदास हूँ तिनको नायब, तत[11] परवाना[12] पावै॥

१२५ ॥ राग सोरठ ॥

जो नर इकछत[13] भूप कहावै।
सत सिंहासन ऊपर बैठै, यत ही चँवर ढुरावै॥
दया धर्म दोउ फौज महा ले, भक्ति निशान चलावै।
पुण्य नगारा नौबत बाजै, दुर्जन सकल हलावै॥
पाप जलाय करै चौगाना[14], हिंसा कुबुधि नशावै।
मोह मुकद्दम काढ़ि मुल्क सों, ला वैराग बसावै॥

---

१ भू राजस्व का निरीक्षक २ कृषि अनुमन्ता ३ ताल्लुकदार राजस्व अधिकारी ४ सेनापति ५ कामदार ६ आमद ७ डोरी ८ नापना ९ हिस्सा १० निष्कंटक ११ तत्त्व का १२ आज्ञापत्र १३ चक्रवर्ती १४ साफ मैदान।

साधन नायब[1] जित तित भेजै, दे दे संयम साथा।
राम दुहाई सिगरे फेरै, कोइ न उठावै माथा ॥
निर्भय राज करै निश्चल ह्वै, गुरु शुकदेव सुनावै।
चरणदास निश्चय करि जानो, विरला जन कोइ पावै ॥

१२६ ॥ राग कल्याण ॥

वह राजा सो यह विधि जानै। काया नगर जीतिबो ठानै ॥
काम क्रोध दोउ बल के पूरे। मोह लोभ अति साँवत शूरे ॥
बल अपनो अभिमान दिखावै। इनको मारि राह गढ़ धावै ॥
पाँचों थाने देह उठाई। जब गढ़ में कूदै मन राई[2] ॥
ज्ञान खड्ग लै द्वन्द मचावै। कपट कुटिलता रहन न पावै ॥
चुनि चुनि दुर्जन हनि सब डारै। रहते सहते सकल विडारै[3] ॥
मन सों ब्रह्म होय गति सोई। लक्षण जीव रहै नहिं कोई ॥
अचल सिंहासन जब तू पावै। मुक्ति खवासी[4] चँवर ढुरावै ॥
आठों सिद्धि जहाँ कर जोरैं। सौंही[5] ताकै[6] मुख नहिं मोरैं ॥
निश्चल राज अमल करै पूरा। बाजै नौबत अनहद तूरा ॥
तीन तीस अरु कोटि[7] अठासी[8]। वे सब तेरी करैं खवासी ॥
गुरु शुकदेव भेद दियो नीको। चरणदास मस्तक कियो टीको ॥
रणजीता यह रहनी पावै। थोथी करनी कथनि बहावै ॥

* अथ योग का अंग *

१२७ ॥ राग करखा ॥

साधो गुरु दया योग इहि विधि कमायो।

१ दीवान २ राजा ३ बाहर निकालदे ४ सेविका ५ सामने ६ देखती रहती है ७ तेतीस कोटि (श्रेणी) देवताओं की ८ अट्ठासी हजार ऋषि।

मूल को शोधि संकोच करि शङ्खिनी, खैंचि अपान उलटो चलायो ॥ बन्ध पर बन्ध जब बन्ध तीनों लगैं, पवन भइ थकित नभ गरजि आयो । द्वादशा पलटि करि सुरति दो दल धरी, दशौं परकार अनहद बजायो ॥ रोक जब नवन को द्वार दशवें चढ़ो, शून्य के तख्त आनंद बढ़ायो । सहस दल कमल को रूप अद्भुत महा, अमीरस उमँग आ झरि लगायो ॥ तेज अतिपुञ्ज परलोक जहँ जगमगे, कोटि छवि भानु परकाश लायो । उनमनी ओर चित हेत करि बसि रहो, देखि निज रूप मनुवा मिलायो । काल अरु ब्याल जग व्याधि सब मिटि गई, जीव सों ब्रह्मगति बेगि पायो । चरणदास रणजीन शुकदेव की दया सों, अभयपद परसि अविगति समायो ॥

१२८ ॥ राग करखा ॥

साधो पिण्ड ब्रह्मण्ड की सैर गुरुगम करी, परसिया युक्ति सों अलख राई। सहज ही सहज पग धरा जब अगम को, दशौं परकार झाँगड़ बजाई ॥ खोलि कपाट अरु बज्रद्वारे चढ़ो, कला के भेद कुंजी लगाई । पहल के महल पर जाय आसन किया, दूसरे महल की खबरि पाई ॥ तीसरे महल पर सुरति जा बसि रही, महल चौथे अमी-गाई[1] । पाँचवें महल को साधु कोइ पाइ है, महल छठवाँ दिया गुरु बताई ॥ सातवें महल पर कोटि सूरज दिपैं, आठवें महल अविगति गोसाईं । रूप अद्भुत तहाँ अधिक

१ कामधेनु ।

अचरज जहाँ, देखिया दरश सब विपति जाई ॥ शुकदेव की सहाय सों धारणा गही सो, आपने पीव के भवन आई । चरण-दास आपा दिया प्रेम प्याला पिया, शीश सदके[1] किया पूँजि[2] पाई ॥

१२९ ॥ राग करखा ॥

साधो परसिया देश जहँ भेप नाहीं ।

घाट तिस लखि जहाँ बाट सूझै नहीं, सुरति के चाँदने सन्त जाई ॥ चन्द षोड़श दिपैं गंग उलटी बहै, सुषमना सेज पर लम्प दमकै । तासु के ऊपरै अमी का ताल है, झिलमिली ज्योति परकाश झमकै ॥ चारि योजन परे शून्य अस्थान है, तेज अति पुंज परलोक राजै । द्वार पश्चिम धँसै मेरु ही दण्ड हो, उलटि कर आय छाजै विराजै ॥ नूर जगमग करै खेल अगाध है, वेद कतेब[3] नाहिं पार पावैं । गुरुमुखी जाय हैं अमरपद पाय हैं, शीस का लोभ तजि पन्थ धावैं ॥ तीन शुन्न[4] छेदि रण-जीत चौथे वसै, जन्म अरु मरण फिरि नाहिं होई । चरणदास करि वास शुकदेव बकसीस सों, पूज बेगमपुरी अमर सोई ॥

१३० ॥ राग सोरठ ॥

ऐसा देश दिवाना रे लोगो, जाय सो मांता होय ।
बिन मदवा[5] मतवारे झूमैं, जन्म मरण दुख खोय ॥
कोटि चन्द सूरज उजियारो, रवि शशि पहुँचत नाहीं ।

१ न्योछावर २ संपत्ति ३ शास्त्र ४ जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीन अवस्थाएं
५ शराब ।

बिना सीप मोती अनमोलक, बहु दामिनि दमकाहीं ॥
बिन ऋतु फूले फूल रहत हैं, अमृत फल रस पागो ।
पवन गवन बिन पवन बहत है, बिन बादर झरि लागो ॥
अनहद शब्द भँवर गुंजारैं, शंख पखावज बाजैं ।
ताल घंट मुरली घनघोरा, भेरि दमामे गाजैं ॥
सिंधु गर्जना अति ही भारी, घुँघरू गति झनकारैं ।
रम्भा[1] नृत्य करैं बिन पग सों, बिन पायल ठनकारैं ॥
गुरु शुकदेव करैं जब किरपा, ऐसो नगर दिखावैं ।
चरणदास वा पद के परसे, आवागमन नशावैं ॥

१३१ ॥ राग सारंग, बिलावल व सोरठ ॥

साधो अजब नगर अधिकाई ।

औघट घाट बाट जहाँ बाँकी, उस मारग हम जाई ॥
श्रवण बिना वहु वाणी सुनिये, बिन जिह्वा स्वर गावैं ।
बिना नैन जहाँ अचरज दीखै, बिना अंग लिपटावैं ॥
बिना नासिका बास पुष्प की, बिना पावँ गिरि चढ़िया ।
बिना हाथ जहँ मिलो धायकै, बिन पाधा[2] जहँ पढ़िया ॥
ऐसा घर बड़भागी पाया, पहिरि गुरू का बाना ।
निश्चल ह्वै के आशा मारी, मिटि गया आवन जाना ॥
गुरू शुकदेव करी जब किरपा, अनभय[3] बुद्धि प्रकासी ।
चौथे[4] पद में आनँद भारी, चरणदास जहाँ बासी ॥

---

१ अप्सरा २ अध्यापक ३ अनुभव ४ तुरीयपद ।

१३२ ॥ राग सोरठ ॥

सो गुरु विन वह घर कौन दिखावै ।
जिहि घर अग्नि जलै जल माहीं, यह अचरज दरशावै ॥
कामधेनु जहाँ ठाढ़ी सोहै, नैन हाथ विन दुहना ।
धापे दूधा थोड़ा देवै, भूखे दे पय दूना ॥
पीवैं जन जगदीश पियारे, गुरुगम बहुत अघावैं ।
मूरख कायर और अयोगी, सो वे नेक न पावैं ॥
अमृत अँचवै वा पद पहुँचै, महातेज को धारै ।
होय अमर निश्चल ह्वै बैठै, आवागमन निवारै ॥
भेद छिपावै तो फल पावै, काहू से नहिं कहिये ।
वह अद्भुत है ठौर अनूठी, बड़भागन सों लहिये ॥
या साधन के बहु रखवारे, ऋषि मुनि देवत योगी ।
करन न देवैं बुधि हरि लेवैं, होय न गोरस भोगी ॥
लोभी हलके को नहिं दीजै, कहैं शुकदेव गोसाईं ।
चरणदास त्यागी वैरागी, ताहि देहु गहि बाहीं ॥

१३३ ॥ राग सोरठ ॥

सो गुरु गम मगन भया मन मेरा ।
गगन मण्डल में निज घर कीन्हो, पंच विषय नहिं घेरा ॥
प्यास क्षुधा निद्रा नहिं व्यापै, अमृत अँचवन कीन्हा ।
छूटी आस बास नहिं कोई, जग में चित नहिं दीन्हा ॥
दरशी ज्योति परम सुख पायो, सबही कर्म जलाये ।
पाप पुण्य दोऊ भै नाहीं, जन्म मरण बिसराये ॥

अनहद आनँद अति उपजावै, कहि न सकूँ गति सारी।
अति ललचावै फिरि नहिं आवै, लगी अलख सों यारी॥
सहस कमलदल सतगुरु राजैं, रुचि-रुचि दरशन पाऊँ।
कहि शुकदेव चरणहीदासा, सो विधि तोहि बताऊँ॥

१३४ ॥ राग मलार ॥

चहूँदिशि झिलमिल झलक निहारी।
आगे पीछे दहिने बायें, तल ऊपर उजियारी॥
दृष्टि पलट त्रिकुटी हो देखै, आसन पद्म लगावै।
संयम साधै दृढ़ आराधै, जब ऐसी सिधि पावै॥
बिन दामिनि चमकार बहुत ही, सीप बिना लर मोती।
दीपमालिका बहु दरशावैं, जगमग जगमग ज्योती॥
ध्यान फलै तब नभ के माहीं, पूरण हो गति सारी।
चन्द घने[१] सूरज अणु[२] की ज्यों, सुभर[३] भरिया भारी॥
यह तो ध्यान प्रत्यक्ष बताया, श्रद्धा होय तो कीजै।
कहि शुकदेव चरण ही दासा, सो हम सों सुनि लीजै॥

१३५ ॥ राग केदारा ॥

अवधू सहस दल अब देख।
श्वेत रँग जहाँ पँखरी छवि, अग्र डोर विशेख॥
अमृत वरषा होत अति झरि, तेज पुंज प्रकास।
नाद अनहद बजत अद्भुत, महा ब्रह्मविलास॥
घंट किंकिणि मुरलि बाजै, शंखध्वनि मन सांन[४]।

१ अनन्त २ बालू के कणों के समान अनन्त सूर्य ३ पूर्ण रूप से ४ लगाओ।

ताल भेरि मृदंग बाजत, सिन्धु गर्जन जान ॥
काल की जहाँ पहुँच नाहीं, अमर पदवी पाव ।
जीति आठौं सिद्धि ठाढ़ी, गगन मध्ये आव ॥
करै गुरु परताप करणी, जाय पहुँचै सोय ।
चरणदास शुकदेव किरपा, जीव ब्रह्म होय ॥

१३६ ॥ राग धनाश्री ॥

सो गुरुगम इहि विधि योग कमायो ।
आसन अचल मेर[1] कियो सीधो, कसि बँध मूल लगायो ॥
संयम साधि कला वश कीन्ही, मन पवना घर आयो ।
नव दरवाजे पट दै राखे, अद्धै ऊर्ध्व मिलायो ॥
नाभि तलै पैंड़ो करि पैठे, शक्ति पताल गई है ।
काँप्यो शेष कमठ[2] अकुलायो, सायर[3] थाह दई है ॥
उलटि चले मठ फोरि इकीसौं, गये अभय पद माहीं ।
अति उजियारो अद्भुत लीला, कहन सुनन गम नाहीं ॥
जित भये लीन सबै सुधि बिसरी, छूटी जगत कि बाधा ।
चरणदास शुकदेव दया सों, लागी शून्य समाधा ॥

१३७ ॥ राग धनाश्री ॥

सो साधी ऐसी योग युक्ति गति भारी ।
मूलहि बंध लगाय युक्ति सों, मूँदि लई नौ नारी ॥
आसन पद्मासमहा दृढ़ कीन्हो, हिरदय चिबुक लगाई ।
चंद सूर दोउ सम करि राखे, निरति सुरति घर आई ॥

१ मेरुदण्ड—रीढ़ की हड्डी २ कछुवा । ३ भवसागर या चतुर ।

ऊपर खैंचि अपान सहज में, सहजै प्राण मिलाई ।
पवन फिरी पश्चिम को दौरी, मेरुहि मेरु चलाई ॥
ऐसेहि लोक अमरपद पहुँचे, सूरज कोटि उज्यारी ।
श्वेत सिंहासन सतगुरु परशे, करि दरशन वलिहारी ॥
आपा विसरि परम सुख पायो, उनमन लागी तारी ।
चरणदास शुकदेव दया सों, जन्म मरण छुटि वारी ॥

१३८ ॥ राग मलार ॥

वा पद राम सों करि नेह ।
विष की बूंद न पइये जित ह्वाँ, वरषत अमृत मेह ॥
चमकत विजुली गरजत गगना, वाजत अनहद घोर ।
यह मन थकित गलित जित पाँचों, मिटिहैं निशि अरु भोर ॥
जाग्रत मिटि है स्वप्नो मिटि है, मिटिहु सुपोपति जाय ।
षट ऋतु पइये नाहिंन अवधू, एकहि रस दर्शाय ॥
विनही जोते विनही बोये, उपजत खेत है धीर ।
लागत अचरज फल महा मुक्ता, विनही सींचे नीर ॥
राजा गुरु शुकदेव न बाँटैं, सवहि करैं वकसीस ।
चरणदास रास[1] सव पावै, मिलि है विस्वेवीस ॥

१३९ ॥ राग सोरठ ॥

अवधू ऐसी मदिरा पीजै ।
वैठि गुफा में यह जग विसरै, चंद सूर सम कीजै ॥
जहाँ कलाल[2] चढ़ाई भाठी, ब्रह्म ज्वाल परजारी ।

१ ढ़ेर = सम्पूर्ण वस्तु २ मदिरा वनाने वाला ।

भरि भरि प्याला देत कलाली, बाढ़ै भक्ति खुमारी[१] ॥
माँता[२] हो करि ज्ञान खड्ग लै, काम क्रोध को मारै ।
घूमत रहै गहै मन चंचल, दुविधा सकल बिड़ारै ॥
जो चाखै यह प्रेम सुधारस, निज पुर पहुँचै सोई ।
अमर होय अमरा पद पावै, आवागमन न होई ॥
गुरु शुकदेव किया मतवारा, तीनि लोक तृण बूझा ।
चरणदास रणजीत भये जब, आनँद आनँद सूझा ॥

१४० ॥ राग सारंग ॥

पीवै कोइ यह प्याला मतवारा ।
सुर नर मुनि जा मद को तरसैं, गुरु बिन लहै न वारा[३] ॥
शूदर[४] के घर भाठी ओटै, ब्रह्मा अग्नि जलाई ।
शिव शोवैं अरु विष्णु चुवावैं, पीवैं साधु अघाई ॥
सीता प्याला भरि-भरि देवैं, हनूमान हंकारैं ।
व्यास शेष नारद सनकादिक, किरिया नाहिं विचारैं ॥
नवधा नेम अरु संयम पूजा, विसरी सब कहा कहिये ।
घूमत रहैं महारस छाके, स्वर्ग मुक्ति ना चहिये ॥
श्रीशुकदेव सुधारस अमृत, नित प्रति अँचवन कीन्हा ।
चरणदास पर किरपा करिकै, निज प्रसाद करि दीन्हा ॥

१४१ ॥ राग सारंग ॥

साधो यह प्याला मतवार है ।
अँचवैगा कोइ योगयुगन्ता[५], चित स्थिर मन मारि है ॥

१ नशा २ मस्त ३ अबोध बुद्धि ४ मूलाधार कमल ५ योग युक्त ।

चन्द सूर दोउ सम करि राखै, ब्रह्मज्वाल अन्तर बरै ।
मुद्रा लगै खेचरी जबही, बङ्क नाल अमृत झरै ॥
भँवर गुफा में माठी औटै, भभक भभक सुषमन चुवै ।
सगुरा पी पी रहित[1] भये हैं, बिन पीये उपजे मुये ॥
शिव सनकादिक नारद शारद, और पिया नौ नाथ है ।
सिद्ध चौरासी हरि पद वासी, मगन भया सब साथ है ॥
रामानन्द कबीर नामदे, अमर हुये जिन-जिन पिया ।
गुरु शुकदेव करी जब किरपा, चरणदास को सो दिया ॥

१४२ ॥ राग धनाश्री ॥

जो जन अनहद ध्यान धरै ।
पाँचौं निर्बल चञ्चल थाकै, जीवत ही जु मरै ॥
शोधै मूलबन्ध दै राखै, आसन सिद्ध करै ।
त्रिकुटी सुरति लाय ठहरावै, कुम्भक पवन भरै ॥
घन गरजै अरु बिजुली चमकै, कौतुक गगन धरै ।
बहुत भाँति जहाँ बाजन बाजैं, सुनि सुनि सन्ध[2] अरै ॥
सहज सहज में हो परकाशा, बाधा सकल हरै ।
जग की आस त्रास सब छूटै, ममता मोह जरै ॥
शून्य शिखर पर आपा बिसरै, काल सों नाहिं डरै ।
चरणदास शुकदेव कहत हैं, सब गुण[3] ज्ञान गरै ॥

१४३ ॥ राग धनाश्री ॥

जब तें अनहद घोर सुनी ।

१ मुक्त २ निष्ठावान साधक ३ त्रिगुण ।

इन्द्री थकित गलित मन हूवो, आशा सकल भुनी ॥
घूमत नैंन शिथिल भइ काया, अमल जु सुरति सनी।
रोम-रोम आनन्द उपजि करि, आलस सहज वनी ॥
मतवारे ज्यों शब्द समायो, अन्तर भीज कनी।
भर्म कर्म के बन्धन छूटे, दुविधा विपति हनी ॥
आपा विसरि जगत को विसरो, कित रहि पाँच जनी।
लोक भोग सुधि रही न कोई, भूलो ज्ञान गुनी ॥
हो तहाँ लीन चरणहीदासा, कहैं शुकदेव मुनी।
ऐसो ध्यान भाग्य सों पइये, चढ़ि रहै शिखर अनी[१] ॥

१४४ ॥ राग बिलावल ॥

घट में खेलि ले मन खेला।
सकल पदारथ घट ही माहीं, हरि सों होय जु मेला ॥
घट में देवल घट में जोती, घट में तीरथ सारे।
वेगहि आव उलटि घट माहीं, बीतै परबी[२] न्हारे ॥
घट में मानसरोवर सूभर, मोती और मराला।
घट में ऊँचा ध्यान शब्द का, सोहं सोहं माला ॥
घट में विन सूरज उजियारा, राति दिना नहिं सूझै।
अमृत भोजन भोग लगत है, विरला जन कोइ बूझै ॥
घट में पापी घट में धर्मी, घट में तपसी योगी।
गुण अवगुण सब घट ही माहीं, घट में वैद्य रु रोगी॥
रामभक्ति घट ही में उपजै, घट में प्रेम प्रकासा।

१ नोंक २ पुण्यकाल।

शुकदेव कहैं चौथा पद घट में, पहुँचै चरणहिदासा ॥

१४५ ॥ राग विभास ॥

घट में तीरथ क्यों न नहावो ।

इत उत डोलो पथिक बने ही, भरमि भरमि क्यों जन्म गवाँवो ॥
गोमती कर्म सुकृत ही कीजै, अधरम मैल छुटावो ।
शील सरोवर हित करि न्हइये, काम अग्नि की तपनि बुझावो ॥
रेवा[1] सोई छमा को जानो, तामें गोता लीजै ।
तन में क्रोध रहन नहिं पावै, ऐसी पूजा चितदै कीजै ॥
सत यमुना संतोष सरस्वति, गंगा धीरज धारो ।
झूठ पटकि निर्लोभ होय करि, सबही बोझा शिर सों डारो ॥
दया तीर्थ कर्मनाशा कहिये, परसैं बदला जावै ।
चरणदास शुकदेव कहत हैं, चौरासी में फिरि नहिं आवै ॥

१४६ ॥ राग विभास ॥

घट में तीरथ यों तुम न्हावो ।

तिनके न्हान अमरपद पहुँचौ, आदिपुरुष निश्चय करि पावो ॥
काशी सो तत करणी[2] कीजै, कलिमल सकल नशावो ।
रहनि गहनि पुष्कर को जानो, यामें मज्जन क्यों न करावो ॥
ध्यान द्वारका दृढ़ करि परसो, हित की छाप लगावो ।
इन्द्रीजित सोइ बदरीनाथा, यह गति सत करि चित में लावो ॥
भँवर गुफा में है तिर्बेणी, सुरति निरति लै धावो ।
योग युक्ति सों डुबकी लेकरि, काग पलटि हंसा ह्वै जावो ॥

१ नदी का नाम है २ श्रेष्ठ कर्म ।

तन मथुरा अरु मन वृन्दावन, तामें रास रचावो ।
हिरदय कमल खिले परकाशा, दरशन देखि अधिक हुलसावो ॥
गुरु चरणन में सबही तीरथ, सिमिटि सिमिटि तहाँ आवो ।
चरणदास शुकदेव कहत हैं, अपनो मस्तक भेंट चढ़ावो ॥

१४७ ॥ राग पर्ज ॥

सुधारस कैसे पइये हो ।
कूप कहाँ केहि ठौर है, कैसे करि लहिये हो ॥
नेजू कित कित गागरी, कित भरने वारी हो ।
कैसे खुलै कपाट ही, को ताला ताली हो ॥
कौन समै किस गृह विषे, अँचवै किन माहीं हो ।
तुम से[1] जानै भेद को, अरु वहुतक नाहीं हो ॥
पी करि किस कारज लगै, अरु स्वाद बतावो हो ।
फल याका कहि दीजिये, सब खोलि जतावो हो ॥
शुकदेव सों पूँछन करै, यह चरणहिदासा हो ।
किरपा करिकै कीजिये, मेरी पूरी आशा हो ॥

१४८ ॥ राग पर्ज ॥

गुरू हमारे प्रेम पिआयो हो ।
ता दिन ते पलटो भयो, कुल गोत नशायो हो ॥
अमल चढ़ो गगनै लगो, अनहद मन छायो हो ।
तेजपुंज की सेज पै, प्रीतम गल लायो हो ॥
गये दिवाने देसड़े[2], आनँद दरशायो हो ।

१ सरीखे २ देश ।

सब किरिया सहजै छूटी, तप नेम भुलायो हो ॥
त्रैगुण ते ऊपर रहूँ, शुकदेव बसायो हो ।
चरणदास दिन रैन नहीं, तुरियापद पायो हो ॥

१४९ ॥ राग जैजैवंती ॥

ऐसी जो युक्ति जानै सोई योगी न्यारा । आसन जो सिद्ध करै त्रिकुटी में ध्यान धरै, बिना तेल दिया बरै ज्योति हूँ उज्यारा । संयम सँभाल साधै मूल द्वार बन्ध बाँधै, शंखनी उलटि साधै कामदेव जारा । प्राण वायु हिये माहीं खैंचिकै अपान लाहीं, दोऊ नीके मिलि जाहीं ऐसा खेल धारा । कुंभक अथक राखै अनहद ओर ताकै, सुषमन पैठि नाकै[1] आगे जो विचारा । खोलिकै कपाट सिरा कोऊ चढ़ै शूरवीरा, कामधेनु जावै तीरा अमी को उतारा ॥ उनमनी जाय लागै निज गृह माहीं जागै, जन्म मरण भागै छूटै जग भारा । गुरु शुकदेव कहै करणी यहि विधि लहै, चरणदास होय रहै आप को सँभारा ॥

१५० ॥ राग सोरठ व सारंग ॥

पाँचन मोहि लियो बलमा ।
नासा त्वचा और श्रवणीया, नैनन अरु रसना ॥
एक एक ने चारी बाँधी, गहि गहि ले ले जाहिं ।
निशिदिन उनही के रस पागो, घर में ठहरत नाहिं ॥
अलि, पतंग, गज, मीन, मृगा ज्यों, हो रह्यो पर आधीन ।

---

१ सिरा ।

अपनो आप सँभारत नाहीं, विषय वासना लीन ॥
हौं कुलवन्ती टोना सीखो, अनहद सुरति धरूँ ।
गगन मँडल में उलटा कूवा, तासों नीर भरूँ ॥
भँवर गुफा में दीपक बारौं, मन्तर एक पढूँ ।
काम क्रोध मद लोभ होम कर, लालन चित्त हढूँ[१] ॥
यतन यतन करि पीव[२] छुटाऊँ, फिर नहिं जावन दूँ ।
चरणदास शुकदेव बतावैं, निजमन[३] ही करलूँ ॥

१५१ ॥ राग सोरठ ॥

तू सदा सोहागिनि नारी है ।

पिय के संग मिली मद पीवै, ताते लागत प्यारी है ॥
भँवरगुफा में भवन बनायो, विन घृत ज्योती जारी है ।
सुषमन सेज महा सुखदायी, भोगत भोग दुलारी है ॥
वश कियो कंथा[४] चलै न पंथा, टोना डारो भारी है ।
आठ पहर तुम्हरे रँग राचो, हमको मिलै न वारी[५] है ॥
पति मनमानी सो पटरानी, सोई रूप उज्यारी है ।
हम चारौं जो सौति तुम्हारी, तुम गुण आगे हारी हैं ॥
चरणहिदास भई तोहि सेवैं, लगी रहैं नित लारी हैं ।
शुकदेवा शिर छत्र हमारो, सो वश भयो तुम्हारी है ॥

१५२ ॥ राग बिलावल ॥

करणी की गति और है, कथनी की औरै ।
बिन करणी कथनी कथैं, बकवादी बौरै ॥

१ हरना २ जीव ३ स्वाधीन मन ४ पति ५ मौका ।

करणी बिन कथनी इसी, ज्यों शशि बिन रजनी।
बिन शस्तर ज्यों शूरमा, भूषण बिन सजनी॥
ज्यों पण्डित कथि कथि भले, बैराग सुनावैं।
आप कुटुम्ब के फँद पड़े, नाहीं सुरझावैं॥
बाँझ झुलावै पालना, बालक नहिं माहीं।
वस्तु बिहीना जानिये, जहाँ करणी नाहीं॥
बहुडिंभी[1] करणी बिना, कथि कथि करि मूये।
सन्तों कथि करणी करी, हरि की सम हूये॥
कहैं गुरू शुकदेवजी, चरणदास बिचारो।
करणी रहनी दृढ़ गहो, थोथी कथनी डारो॥

१५३ ॥ हेली ॥

पाँच सखी[2] ले लार हेली, काया महल पग धारिये।
योग युक्ति डोला करो री, अरी हेली प्रान अपान कहार॥
कुंज कुंज सब देखिये री, अरी हेली नाना बाग बहार।
मानसरोवर न्हाइये, सदा बसंत निहार॥
बिना सीप मोती बने री, अरी हेली बिन गुंद[3] फूलन हार।
बिन दामिनि चमकार है, बिन सूरज उजियार॥
अनहद उत बाजे बजैं री, अरी हेली अचरज बहुतक ख्याल।
तेजपुंज की सेज पै, कागा होहिं मराल॥
श्रीशुकदेव कृपा करैं री, अरी हेली जब पावै यह भेद।
चरणदास पिया सों मिलै, छुटैं जगत के खेद॥

१ बहुत से दंभी २ पांचों ज्ञानेन्द्रियाँ ३ डोरा के बिना।

१५४ ।। हेलो ।।

योग युक्ति करि लेहि हेली, जो चाहे हरि सों मिलो ।
आसन संयम साधि कै री, अरी हेली गगनमंडल करि गेह ।।
उलटी दृष्टि चढ़ाइये री, अरी हेली होय सूरज परकाश ।
करम भरम सबही जरैं, सहज छुटै जग आश ।।
प्राण अपान मिलाय कै री, अरी हेली मूलबन्ध को बाँधि ।
रसना उलटि लगाइये, सुरति ऊर्ध्व को साधि ।।
बङ्क सुधारस पीजिये री, अरी हेली अनहद हो गलतान ।
भँवरगुफा दृढ़ बैठिकै, शून्य शिखर को ध्यान ।।
सुषमन मारग ह्वै चलो री, अरी हेली जब पहुँचो निज धाम ।
अचल सिंहासन श्वेत है, जहाँ विराजैं राम ।।
यह साधन शुकदेव की री, अरी हेली जो कोइ जानै साध ।
चरणदास अविगति लहै, देखै खेल अगाध ।।

* अथ वैराग्य का अंग *

१५५ ।। राग मंगल ।।

चला चली जग ठाट अचल हरि नाम है ।
माल मुल्क चलि जाय जाय रज धाम है ।।
तेल फुलेल लगाय बहुत सुन्दर गए ।
नाना करते भोग सो भी नर ना रहे ।।
तेज तमक और रूप जाय यौवन बना ।
सकल बराती जायँ जायँ दुलहिनि बना ।।
रोगी रोग अरु वैद्य जाय औषधि भले ।

ज्योतिष पुस्तक टूटि विनसि रंज हो मिले ॥
ज्ञानी पण्डित पीर अधिक बेवश गले ।
गौस कुतुब अब्दाल पैगम्बर[1] सब चले ॥
एक के पीछे एक वहीर लगी चली ।
नरपति सुरपति जाहिं अन्त वाही गली ॥
ऋषि मुनि देवत सिद्ध योगेश्वर जाहिंगे ।
जिन वश कीन्हीं मौत सो भी न रहाँहिंगे ॥
पाँच तत्त्व गुण तीन नहीं ठहराहिंगे ।
स्वर्ग मृत्यु पाताल सभी रलि जाहिंगे ॥
धरती अम्बर जाय जाय शशि भान हैं ।
चरणदास शुकदेव दया लियो जान हैं ॥

१५६ ॥ राग मंगल ॥

रहै राम का नाम जपै सो भी रहै ।
वेद पुराणन माहिं साख यों हीं कहै ॥
जन्म मरण नहिं होय न योनी आवई ।
सत सिंहासन वैठि अमरपुर पावई ॥
यम जालिम[2] के दण्ड भर्म छुटि जाहिंगे ।
लख चौरासी बन्ध सभी कटि जाहिंगे ॥
नवग्रह लगे न देह गेह आनँद रहै ।
डाकिनि सर्पिनि सिंह भूत नाहीं दहै ॥
साधु संग गुरु सेव आय घट में बसै ।

१ गोस....पैगम्बर=भिन्न-भिन्न श्रेणी के महात्मा २ कठोर ।

कलह कल्पना जाय द्वन्द्व संकट नसै ॥
तिलक दिपै लिलाट जु कण्ठी सोहनी ।
नौविस-लक्षण[1] धारि सहज जीतै मनी ॥
ऊँची पदवी होय जगत सब पग लगै ।
दुष्ट जलैं मन माहिं दूर ही सों तकै ॥
पाप भगैं मुख देखि दरश कोई करै ।
भक्ति परापत ताहि सु चरणों आ परै ॥
कहैं गुरू शुकदेव चरणहीदास सों ।
सब मन्तर शिरमौर सुमिर हरिनाम को ॥

१५७ ॥ राग काफी ॥

क्या दिखलावै शान, यह कुछ थिर न रहैगा ।
दारा सुत अरु माल मुल्क का, कहा करै अभिमान ॥
रावण कुम्भकरण हिरणाकुश, राजा कर्ण समान ।
अर्जुन नकुल भीम से योधा, माटी हुये निदान ॥
क्षणक्षण तेरो तन छीजत है, सुन मूरख अज्ञान ।
फिरि पछिताये कहा होयगा, जब यम घेरैं आन ॥
विनशैं जल थल रवि शशि तारे, सकल सृष्टि की हानि ।
अजहूँ चेत हेत करि हरि सों, ताही की पहिचानि ॥
नवधाभक्ति साधु की संगति, प्रेम सहित कर ध्यान ।
चरणदास शुकदेव सुमिरि ले, जो चाहै कल्यान ॥

१ भक्तों के लक्षण पृष्ठ १९६ पर दिये हैं ।

१५८ ।। राग काफी ।।

राम नाम चितलाव, अरु सब शोक निवारो ।
सकल बिकल सब मन के टारो, निश्चय करि ह्याँ आव ।।
तीरथ वर्त सभी फल देवैं, राम नाम तुल नाहिं ।
पार लगावन मुक्ति करावन, समझि देखु मन माहिं ।।
पढ़ो पढ़ावो भेद न पावो, कछू न लागै हाथ ।
अर्थ विचारो तो तुम जानो, कै संतन को साथ ।।
उमर गवाँवै तुच्छ स्वादन में, करि पाँचन सों भोग ।
अन्तकाल दुख होहिं घनेही, तन मन लिपटैं रोग ।।
लोक परलोक महासुख पावै, जो सुमिरै हरिनाम ।
चरणदास शुकदेव कहत हैं, होवैं पूरणकाम ।।

१५९ ।। राग मालश्री ।।

थिर नहिं रहना है आखिर मौत निदान ।।
देखत देखत बहुतक विनशे, आवत तुम्हरी बार ।
यतन करै कोइ नाना विधि के, बचै नहीं नर नार ।।
वे योगेश्वर वश करि मौतै, जड़ि दिये वज्र कियाँड़ ।
ह्वै बैठे ज्यों मरना नाहीं, माटी ह्वै गये हाड़ ।।
कित गये रावण कुंभकरण से, हिरणाकुश शिशुपाल ।
शंकर दियो अमर वर जिनको, सो भी खाये काल ।।
यह तन बर्तन काँच को रे, ठबक लगे खिलजाय ।
आज मरै कै कोटि वर्ष लौं, अन्त नहीं ठहराय ।।
बीतत अवधि चलावा आवै, छोड़ि जगत की आस ।

गुरु शुकदेव चितावैं तोको, समझ चरणहीदास ॥

१६० ॥ राग मालश्री ॥

क्षण भंगी छलरूप, यह तन ऐसा रे ॥

जाको मौत लगी बहु विधि सों, नाना अंग ले बान ।
विष अरु शस्त्र रोग बहुतक हैं, और विघन बहु हान ॥
निश्चय विनशै बचै न क्योंहीं, यत्न किये बहु दान ।
ग्रह नक्षत्र अरु देव मनावैं, साधैं प्राण अपान ॥
अचरज-जीवन[1] मरिबो-साँचो[2], यह औसर फिरि नाहिं ।
पिछिले दिन ठगियन सँग खोये, रहे सु योंहीं जाहिं ॥
जो पल है सो हरि को सुमरो, साधु सँगत गुरु सेव ।
चरणदास शुकदेव बतावैं, परम पुरातन भेव ॥

१६१ ॥ राग मालश्री ॥

वा दिन की सुधि राख, सोई दिन आवै है ॥

जब यमदूत बुलावन आवैं, चल चल चल कहैं भारी ।
एक घरी कोइ रख न सकैगो, प्यारे हू ते प्यारी ॥
बिछुरैं मात पिता सुत बांधव, बिछुरैं कामिनि कंत ।
जो बिछुरैं सो बहुरि न मिलि हैं, जो युग जाहिं अनंत ॥
राम सँगाती नेक न बिछुरैं, ताहि सँभारत नाहीं ।
अपनी काया सोऊ न अपनी, समझि देखु मन माहीं ॥
चरणदास शुकदेव चितावैं, छाँड़ो जग उरझेरा ।

---

१ हम जी रहे हैं यही आश्चर्य है अर्थात् जीवन सत्य नहीं है २ मृत्यु ही सत्य है ।

अमर नगर पहिचान सिदौसी, जित कर निश्चल डेरा ॥

१६२ ॥ राग मालश्री ॥

जानै कोइ संत सुजान, यह जग स्वपना है ॥
स्वप्न कुटुंबी आपा मानै, स्वपना वैरागी लै[1] ।
स्वपनै लेना स्वपनै देना, स्वपनै निर्भय भै ॥
स्वप्नै राजा राज करत है, स्वप्नै योगी योग ।
स्वप्नै दुखिया दुख बहु पावै, स्वप्नै भोगी भोग ॥
स्वप्नै शूरा रण में जूझै, स्वप्नै दाता दान ।
स्वप्नै पिय सँग पावक जरिया, स्वप्नै मान अपमान ॥
स्वप्नै ज्ञानी गुरुगम जागै, अपना रूप निहारि ।
अज्ञानी सोवत स्वप्ने में, डसे अविद्या नारि ॥
चरणदास शुकदेव चितावै, स्वप्ना सो सब झूंठ ।
अचरज समझ अगाध पुरानी, मौन गही गहि मूंठ[2] ॥

१६३ ॥ राग ललित ॥

चेत सवेरे चलना बाट । यह सब जानौ झूंठा ठाट ॥
जग सराय में कहा भुलानो । भठियारी[3] के मोह लुभानो ।
तुझको तो बहु कोसन जानो । करि हिसाब बनिये की हाट ॥
कुटुँब मित्र कोइ हितू न तेरा । अपने स्वारथ ही को घेरा ।
ह्याँ नहिं तेरा निश्चल डेरा । उठिये हूजै वेगि उचाट ॥
चलने की तदबीर[4] न कीन्हीं । खोटी राह थाह नहिं चीन्हीं ।

१ तक २ दृढ़ता से ३ धर्मशाला में भोजन बनाने वाली ४ उपाय ।

मजिलौं[१] की खरची नहिं लीन्हीं। गाफिल[२] सोवै अजहूँ खाट॥
मग माहीं ठग बाग लगाये। बहुत मुसाफिर जित परचाये[३]।
अरु उनको विप लड्डू खवाये। मारि लिये स्वादन के बाट॥
सावधान कोइ हाथ न आये। बच कर चले सो निरभय धाये।
उनके छल के पेच न खाये। नेक न लागी तिनको आँट[४]॥
मन चंचल का घोड़ा कीजै। ध्यान लगाम ताहि मुख दीजै।
ह्वै असवार ताहि गहि लीजै। भवसागर का चौड़ा फाँट[५]॥
चरणदास शुकदेव चितावै। अपना जानि तोहि समझावै।
तेरे भले की बात बतावै। बारबार कहै तोको डाँट॥

१६४ ॥ राग आसावरी ॥

गुरु मुख यह जग झूठ लखाया।
साधुसंत अरु वेद कहत हैं, और पुराणन गाया॥
मृगतृष्णा के नीर भुलाना, सीपी रूपा[६] जाना।
फटिक शिला पर पीक परी है, मूरख लाल[७] लोभाना[८]॥
स्वप्ने में सब ठाट ठटो है, कुल नाते परिवारा।
दृष्टि खुली जब सबही नाशे, रह्यो नहीं आकारा॥
ताते चेत भजन कर हरि को, ह्याँ मत मन को पागो।
वा घर गये बहुरि नहिं आवै, आवागमन न लागो॥
या स्वप्ने में लाभ यही है, चरणदास शुक भाखो।
योगेश्वर जा पद मिलि रहिया, तुरिया हित चित राखो॥

---

१ गन्तव्य स्थान २ असावधान ३ लुभाये ४ रुकावट ५ पाट = सतह
६ चाँदी ७ लालमणि समझकर ८ आकर्षित हो गया।

१६५ ।। राग बरवा ।।

या तन को कहा गर्व करत है, ओला ज्यों गलजावै रे ।
जैसे बर्तन बनो काँच को, ठबक लगे बिगसावै रे ।।
झूठ कपट अरु छल बल करिके, खोटे कर्म कमावै रे ।
बाजीगर के बाँदर की ज्यों, नाचत नाहिं लजावै रे ।।
जब लौं तेरी देह पराक्रम, तब लौं सबन सुहावै रे ।
माय कहै मेरा पूत सपूता, नारी हुक्म चलावै रे ।।
पल पल पल पल पलटै काया, क्षण क्षण माहिं घटावै रे ।
बालक तरुण होय फिरि बूढ़ा, वृद्ध अवस्था आवै रे ।।
तेल फुलेल सुगन्ध उबटनों, अम्बर अतर लगावै रे ।
नाना विधि सों पिण्ड सँवारै, जरि बरि धूरि समावै रे ।।
वैद हकीम करै बहु औषध, पंडित जाप सुनावै रे ।
कोटि यत्न सों बचै न क्यों ही, देवी देव मनावै रे ।।
जिनको तू अपने करि जानै, दुख में पास न आवै रे ।
कोई झिड़कै कोइ अनखावै, कोई नाक चढ़ावै रे ।।
यह गति देखि कुटुँब अपने की, इन में मत उरझावै रे ।
जबही यम सों पाला परि है, कोई नाहिं छुटावै रे ।।
औसर खोवै पर के काजे, अपनो मूल गवांवै रे ।
बिन हरिनाम नहीं छुटकारो, वेद पुराण बतावै रे ।।
चेतन रूप बसै घट अन्तर, भर्म भूल बिसरावै रे ।
जो टुक ढूँढ़ खोज करि देखै, आपे ही में पावै रे ।।
जो चाहे चौरासी छूटै, आवागमन नशावै रे ।

चरणदास शुकदेव कहत हैं, सतसंगति मन लावै रे ॥

१६६ ॥ राग बरवा ॥

तन का तनक भरोसा नाहीं, काहे करत गुमाना रे ।
ठोकर लगे नेकहू चलते, करि हैं प्राण पयाना रे ॥
ऐंठ अकड़ सब छाँड़ बावरे, तेज तमक इतराना रे ।
रंचक जीवन जगत अचम्भा, छण माहीं मरजाना रे ॥
मैं मैं मैं मैं क्यों करता है, माया माहिं लुभाना रे ।
बहु परिवार देखि कै फूला, मूरख मुग्ध[1] अयाना रे ॥
टेढ़ो चलै मरोरत मूछैं, विषय वास लपटाना रे ।
आपन को ऊँचो करि जानै, मातो मद अभिमाना रे ॥
पीर[2] फकीर औलिया[3] योगी, रहैं न राजा राना रे ।
धरणि अकाश सूर शशि नाशैं, तेरा क्या उनमाना[4] रे ॥
ठाढ़े घात करैं शिर पै यम, ताने तीर कमाना रे ।
पलक पैंड़ पै तकि तकि मारैं, काल अचानक बाना[5] रे ॥
श्वास निकसि फटि आँखि जाहिं जब, काया जरै निदाना रे ।
तोको बाँधि नरक लै जैहैं, करि हैं अगिनि तपाना रे ॥
अजहूँ चेत सीख लै गुरु की, करि ले ठौर ठिकाना रे ।
अमरनगर पहिचान सिदोसी, तब नहिं आवन जाना रे ॥
हरि की भक्ति साधु की संगति, यह मत वेद पुराना रे ।
चरणदास शुकदेव कहत हैं, परम पुरातन ज्ञाना रे ॥

१ आसक्त २ गुरु ३ साधू ४ मूल्य ५ तीर ।

१६७ ॥ राग सोरठ ॥

यह तन वालू का सा डेरा ।
जैसे दामिनि दमक चमक को, क्षण नहिं रहत उजेरा ॥
मैड़ी मण्डप मुल्क खजानो, अरु परिवार घनेरा ।
सो सब कौतुक सो दीखत है, राम सँभार सवेरा ॥
गज घोड़ा अरु चाकर चेरा, आखिर कोई न तेरा ।
जिनके कारण भर्मत डोलै, करता मेरा मेरा ॥
थोड़े से जीवन के काजे, बहुतै करत बखेरा ।
काल बली की खबर नहीं जब, करहिं अचानक घेरा ॥
कहैं शुकदेव समझ नर मोंदू, छाँड़ि विषय उरझेरा ।
चरणदास हरिनाम भजन बिन, कैसे होय निवेरा ॥

१६८ ॥ पद राग सोरठ ॥

दम का नहीं भरोसा रे, करि ले चलने का सामान ।
तन पिंजरे सों निकसि जायगो, पल में पत्ती प्रान ॥
चलते फिरते सोवत जागत, करत खान अरु पान ।
क्षण क्षण क्षण क्षण आयु घटत है, होत देह की हान ॥
माल मुल्क अरु सुख सम्पति में, क्यों हूवा गलतान ।
देखत देखत विनशि जायगो, मत करि मान गुमान ॥
कोई रहन न पावै जग में, यह तू निश्चय जान ।
अजहूँ समुझि छाँड़ि कुटिलाई, मूरख नर अज्ञान ॥
टेरि चितावैं ज्ञान बतावैं, गीता वेद पुरान ।
चरणदास शुकदेव कहत हैं, रामनाम उर आन ॥

१६९ ॥ राग काफी ॥

वह बोलता कित गया, काया नगरी तजिकै ।
दश दरवाजे ज्यों के त्योंहीं, कौन राह गया भजिकै ॥
सूना देश गाँव भया सूना, सूने घर के वासी ।
रूप रंग कछु औरै हूवा, देही भई उदासी ॥
साजन थे सो दुर्जन हूये, तन को बाँधि निकारा ।
चिता सँवारि लिटा करि तामें, ऊपर धरा अँगारा ॥
ढह गया महल चहल थी जामें, मिलि गया माटी माहीं ।
पुत्र कलत्र भाइ अरु बांधव, सबही ठोक जलाई ॥
देखत ही का नाता जग में, मुये सगा नहिं कोई ।
चरणदास शुकदेव कहत हैं, हरि बिन मुक्ति न होई ॥

१७० ॥ राग काफी ॥

समझौ रे भाई लोगो, समझौ रे हम कहत पुकारैं ।
अरे ह्याँ नहिं रहना, करना अन्त पयाना ॥
मोह कुटुंब के औसर खोयो, हरि की सुधि बिसराई ।
दिन धंधे में रैनि नींद में, ऐसे आयु गवाँई ॥
आठ पहर की साठों घरियाँ, सो तैं विरथा खोई ।
छण इक हरि को नाम न लीन्हो, कुशल कहाँ ते होई ॥
बालक था जब खेलत डोला, तरुण भया मदमाता ।
वृद्ध भये चिन्ता अति उपजी, दुख में कछु न सुहाता ॥
भूलो कहा चेत नर मूरख, काल खड़ो शर साँधे ।
विष को तीर खैंचि कै मारै, आय अचानक बाँधे ॥

झूठे जग से नेह छोड़ करि, साँचो नाम उचारो।
चरणदास शुकदेव कहत हैं, अपनो भलो विचारो॥

१७१ ॥ राग झंझौटी ॥

समझै नहिं माया का मतवार।
भूलि रहो धन धाम कुटुम्ब में, हरि गुरु दियो बिसार॥
पाप दुकान लीपि औगुण सों, पूँजी रची विकार।
काम के दाम क्रोध थैली धरि, बैठा हाट पसार॥
छल काँटे बिच कपट रुपइया, निरख तौल निर्धार।
कर्म ढेर कौड़िन को करिकै, गिनि गिनि धरत सुधार॥
कहा लाया कहा लै निकसैगा, अपने जीय विचार।
कोइ दम अचरज देखि तमाशा, चण इक राम सँभार॥
नर देही है लाल अमोलक, ताकी लखी न सार।
अन्त समय ज्यों हारो ज्वारी, दोउ कर चाले झार॥
यह जग स्वप्ना जान बावरे, आखिर यम सों रार।
भुगतै कष्ट महादुख पावै, सो जीवन धिरकार॥
आवत काल अचानक तोपै, कहैं शुकदेव पुकार।
चरणदास अब राम सुमिरि ले, नातर होइ है ख्वार॥

१७२ ॥ राग नट व बिलावल ॥

अरे नर अपनो लाभ विचार।
श्वास खजानो घटत सदा ही, ताको बेगि सँभार॥
जोरै जाय सो बहुरि न आवै, खरचै लाख हजार।
ऐसो रतन अमोलक हीरा, तू कर सों मति डार॥

सतसंगति में हित चित राखो, दुष्टन संग निवार ।
माया जाल अरु प्रीति कुटुम्ब की, ताको मन सों विसार ॥
काम क्रोध अरु मोह लोभ से, परबल बड़े विकार ।
ज्ञान अग्नि अन्तर परजारो[1], तासे इनको जार ॥
विषय वासना इन्द्रिन के सुख, बूड़ि रह्यो संसार ।
चरणदास को नाव चढ़ाकै, शुकदेव लियो उबार ॥

१७३ ॥ राग केदारा ॥

रे नर क्यों गवाँवै जनम ।
आयु तेरी जाय बीती, नाहिं जानै मरम ॥
जनम पा हरिभजन करि ले, देह को यही धरम ।
लोक अरु परलोक सुधरै, रहै तेरी शरम ॥
भक्ति सम कछु नाहिं दीखै, योग यज्ञ तप करम ।
आन धर्म विचार त्यागो, मेट थोथे भरम ॥
चरणदास सतसंग मिलि कै, आव हरि की शरण ।
राम सुखदाई सुमिरि ले, वही तारण तरण ॥

१७४ ॥ राग सोरठ ॥

अरे नर अफल जन्म मत खो रे ।
ज्यों तेली को बैल फिरत है, निशिदिन कोल्हू धोरे[2] ॥
भक्ति विहीने खर ह्वै आये, ढोवत बोझा रोरे[3] ।
साँझ भये वाकूँ वाको पति, घूरे[4] ऊपर छोरे ॥
भर्मत भर्मत मनुष भयो है, ऊँचे आय चढ़ो रे ।

१ प्रगट करो २ आसपास ३ मूलपाठ रोड़े = पत्थर ४ कूड़ा डालने की जगह ।

लख चौरासी योनि भुगत करि, फिर तामें न परो रे ॥
अबके चूके बहु पछितैहो, मान वचन तू मोरे ।
चरणदास शुकदेव कहत हैं, हरिपद सुरति धरो रे ॥

१७५ ॥ राग बिलावल ॥

रे नर जन्म पदारथ खोया रे ।
बीती अवधि काल जब आया, शीस पकरि कै रोया रे ॥
अब क्या होय कहा बनि आवै, माहिं अविद्या सोया रे ।
साधु संग गुरु सेव न कीन्ही, तत्त्व ज्ञान नहिं जोया[१] रे ॥
आगे से हरि भक्ति न कीन्ही, रसना राम न पोया रे ।
चौरासी यम दंड न छूटै, आवागमन का दोया रे ॥
जो कछु किया सोई अब पावो, वही लुनो[२] जो बोया रे ।
साहिब साँचा न्याव चुकावै, ज्यों का त्योंहीं होया रे ॥
कहूँ पुकारे सब सुनि लीजो, चेति जाव नर लोया रे ।
कहैं शुकदेव चरणहीदासा, यह मैदान यह गोया[३] रे ॥

१७६ ॥ राग सारंग, नट वा धनाश्री ॥

नट ज्यों नाचि गये कितने ।
दाता शूर सती सिध साधक, राव रंक जितने ॥
रावण कुम्भकरण से योधा, बहुतक कौन गिनें ।
बहुतक इकछत राज करत थे, पूजत लोग जिन्हें ॥
बहुतक भोगी नाना विधि सों, करते भोग विलास ।

१ देखा २ काटो अथवा पावो ३ घोड़ा ।

बहुतक तपसी वन के वासी, तन पर उपजी घास ॥
बहुतक ऋषि मुनि दुर्वासा से, देते अड़िग[१] शराप ।
बहुतक ज्ञानी हरि ह्वै बैठे, कहते आपहि आप ॥
हमहूँ या जग नाचन आये, यह नहिं अपना देश ।
चरणदास शुकदेव दया सों, फिर नहिं काछूँ[२] भेष ॥

१७७ ॥ राग सारंग ॥

नट ज्यों नाचहि नाचि गये ।
तिन तिन भेष धरो जग माहीं, सो सो नाहिं रहे ॥
बहुतन स्वाँग धरो राजा को, बहुतक रङ्क भये ।
बहुतक भूप करण से हूये, कंचन दान दये ॥
बहुतक स्वाँग सती के आये, ह्वै गये अग्नि मये ।
बहुतक चुण्डत मुण्डत योगी, गुफा बनाय छये ॥
भीषम अरु द्रोणाचारज से, शूरा बहुत ढये ।
रण सों पीठ दई नहिं कबहूँ, सन्मुख बाण लये ॥
बहुतक यती सिद्ध ह्वै बैठे, लोगन चरण गहे ।
बहुतक कामी चतुर सयाने, काम मुतास[३] बहे ॥
उत्तम मध्यम काछ कछे हैं, नाना स्वाँग मचे ।
चरणदास शुकदेव दया सों, प्रेमी होय नचे ॥

१७८ ॥ राग सारंग ॥

दुनिया मगन भये धन धाम ।
लालच मोह कुटुंब के पागे, बिसरि गये हरिनाम ॥

---

१ न टलने वाला २ धारण करूँ ३ वासना ।

एक घरी छुटकारो नाहीं, बँधि रहे आठों याम ।
पाँच प्रहर धंधे में माते, तीन प्रहर सँग बाम[1] ॥
फूले फिरत महा गर्वाये, पवन भरे ये चाम ।
दीप कलश ज्यों विनशि जायगो, या तन को यहि काम ॥
साधु संग गुरुसेव न कीन्ही, सुमिरे ना श्रीराम ।
चरणदास शुकदेव कहत हैं, कैसे पावै ठाम ॥

१७९ ॥ राग काफी ॥

कोई दिन जीवै तो कर गुजरान ।
कहर[2] गरूरी[3] छाँड़ दिवाने, तजो अकस[4] की बान ॥
चुगुली चोरी अरु परनिन्दा, झूठ कपट अरु कान[5] ।
इनको डारि गहै जत सत को, सोई अधिक सयान ॥
हरि हरि सुमिरो चण नहिं बिसरो, गुरु सेवा मन ठानि ।
साधुन की संगति कर निशि दिन, आवै ना कुछ हानि ॥
मुड़ो कुमारग चलो सुमारग, पावै निज पुर बास ।
गुरु शुकदेव चितावैं तोको, समझ चरणहीदास ॥

१८० ॥ राग काफी ॥

एते पर क्यों हुआ मगरूर[6]
क्षणभंगी यह तन बहुरंगी, जरि बरि होइ है धूर ॥
मूछ मरोरि चलै बाँकी गति, अकड़ि अकड़ि रहै घूर[7] ।
छैल चिकनियाँ माया मद में, मातो चकनाचूर ॥
काम क्रोध के शस्तर बाँधे, लोभ रह्यो भरि पूर ।

१ स्त्री २ अति निर्दयता ३ अभिमान ४ ईर्षा ५ इज्जत ६ घमन्ड ७ आँख फाड़ कर देखना ।

गुरु को ज्ञान न मन में आवै, ऐसा है बेसहूर[1] ॥
करि अभिमान जगत सच मानै, हरि को जानै दूर ।
चरणदास शुकदेव बतावैं, साईं सदा हुजूर ॥

१८१ ॥ राग बिलावल ॥

राम नाम तैं क्यों बिसराया ।
सीखो कपट झपट छल बल बहु, कामरु क्रोध मोह लव लाया ॥
चारि दिना का जगत अचम्भा, झूठे सुख में कहा लुभाया ।
छण इक सतसंगति नहिं कीन्ही, जन्म अकारथ खोय बहाया ॥
वाद विवाद स्वाद को चौकस[2], विषय वास रस में लपटाया ।
दया धर्म हिरदय सों भूला, परनिन्दा हिंसा को धाया ॥
चौरासी लख योनि भुगति करि, मनुष स्वरूप भाग्य सों पाया ।
लाहा[3] कछू न कीया हासिल, यों ही उलटा मूल गवाँया ॥
श्रीशुकदेव पुकार चितावैं, समझत ना केतो समझाया ।
चरणदास कलियुग के माहीं, हरिगुण गावन सार बताया ॥

१८२ ॥ राग बिलावल ॥

नाहीं रे कोइ हरि बिन तेरो ।
यह जग जाल महा दुखदाई, तामें है इक रैनि बसेरो ॥
आनि फँसो माया के फन्दन, मोह ममत कीन्हो उरझेरो ।
रंचकहू छुटकारो नाहीं, विषय स्वाद पाँचों ने घेरो ॥
साधु सन्त सों नेह न राखै, दारा सुत सम्पति को चेरो ।
अन्तकाल बहुतै पछितैहो, जब मारै यम आय थपेरो ॥

१ असम्य २ सावधान ३ लाभ ।

धन के कारण घर घर डोलै, पर काजें पचि मरत घनेरो ।
जोरत दाम वाम वश ह्वै कै, काम क्रोध सों हित बहुतेरो ॥
जो चाहै तू भलो आपनो, तो ह्याँ से करु वेगि निवेरो ।
चरणदास शुकदेव कहत हैं, छाँड़ि देहि सब विषय बखेरो ॥

१८३ ॥ राग धनाश्री ॥

अपना हरि बिन और न कोई ।
मात पिता सुत बन्धु कुटुँब सब, स्वारथ ही के होई ॥
या काया को भोग बहुत दे, मर्दन करि करि धोई ।
सो भी छूटत नेक नेकसी[1], संग न चाली वोई ॥
घर की नारी बहुत ही प्यारी, तिनमें नाहीं दोई ।
जीवत कहती साथ चलूँगी, डरपन लागी सोई ॥
जो कहिये यह द्रव्य आपनो, जिन उज्ज्वल मति खोई ।
आवत कष्ट रखत रखवारी, चलत प्राण ले जोई ॥
इस जग में कोइ हितू न दीखै, मैं समझाऊँ तोई ।
चरणदास शुकदेव कहैं यों, सुनि लीजो नर लोई ॥

१८४ ॥ राग कान्हरा ॥

हरि बिन कौन तुम्हारो मीता ।
कुटुँब सँघाती स्वारथ लागे, तेरी काहूको नाहिं चीता[2] ॥
तैं प्रभु ओरी सों मुख मोड़ा, झूँठे लोगन सों हित कीता[3] ।
अरु तैं अपनी आँखों देखा, कई बार दुख सुख हो बीता ॥
सम्पति में सबही घिरि आवैं, विपति परे अधिकी दुख दीता[4]।

१ शनैः शनैः २ चिता ३ किया ४ देते हैं ।

मूठी बाँधि जनम नर लायो, हाथ पसारि चलैगो रीता ॥
धरि धरि स्वांग फिरै तिन कारण, कपि ज्यों नाचत ताता धीता।
मुये न संगी होहिं तिहारे, बाँधि जलावैं देह पलीता ॥
गुरु सेवा सतसंग न कीन्ही, कनक कामिनी सों करि प्रीता।
चरणदास शुकदेव कहत हैं, मरत मरत हरिनाम न लीता ॥

१८५ ॥ राग रामकली ॥

धनि धनि वे नर हरि शरणाये।
और पशुन सों सब ही नीचे, परमारथ के काम न आये ॥
अचरज मनुषा देही दुर्लभ, बड़ भागन सों पाई।
तीनोंपन में नाहिं सँभारी, झूँठे धंधे योंहि गँवाई ॥
बालपना खेलन में खोया, तरुण भया सँग नारी।
बूढ़ा भये कुटुंब के संशय, पावत है अति ही दुख भारी ॥
जिन कारण तैं पाप कमाये, सो नहिं चलि हैं लारी।
तेरे ही शिर आनि परैगी, जैहो अकेले नरक मँझारी ॥
गर्भ माहिं तैं वचन किये थे, करिहौं भक्ति तुम्हारी।
ह्याँ आके कछु औरै कीन्हा, प्रभु से झूँठा हुआ अनारी ॥
हो साँचा अजहूँ सुमिरण कर, होहिं दयाल मुरारी।
चरणदास शुकदेव कहत हैं, आगेहु पतित किये भव पारी ॥

१८६ ॥ राग रामकली ॥

फिट[1] फिट मूरख जन्म गँवायो।
हरि की भक्ति साधु की संगति, गुरु के चरणन में नहिं आयो ॥

१ धिक्कार।

धन के जोरन को दृढ़ कीन्हो, महल करन व्रत धारो।
टेक पकड़ कर नारी सेई, शिर पर बोझ लियो अति भारो॥
ह्वै है दुख नाना विधि केरे, तन मन रोग बढ़ायो।
जीवत मरत नहीं सुख पै हो, आवागमन को बीज जमायो॥
भरमि भरमि चौरासी आयो, मनुषा देही पाई।
या तन की कछु सार न जानी, फिरि आगे चौरासी आई॥
आँख उघारि समझ मन माहीं, हिरदय करो विचारा।
ऐसो जन्म बहुरि कब पैहो, बिरथा खोवै जग व्यवहारा॥
जानोगे जग छाँडि चलोगे, कोइ न संग तुम्हारे।
चरणदास शुकदेव कहत हैं, याद करोगे बचन हमारे॥

१८७ ॥ राग विहाग ॥

रे नर हरि प्रताप ना जाना।
तुव कारण सब कछु तिन कीन्हा, सो करता न पिछाना॥
जिहि प्रताप तेरि सुन्दर काया, हाथ पावँ मुख नासा।
नैन दिये जासों सब सूझै, होय रहा परकासा॥
जिहि प्रताप नाना विधि भोजन, वस्त्र आभूषण धारै।
वाका नाहिं निहोरा[1] मानै, ताको नाहिं सँभारै॥
जिहि प्रताप तू भूप भयो है, भोग करै मनमाने।
सुख लै वाको भूलि गयो है, करि करि बहु अभिमाने॥
अधिकी प्यार करै माता सों, पल पल में सुधि लेवै।
तू तो पीठ दिये ही नित ही, सुमिरण सुरति न देवै॥

१ कृतज्ञता।

कृतघनी औ नूणहरामी, न्याव इन्साफ न तेरे।
चरणदास शुकदेव कहत हैं, अजहूँ चेत सवेरे॥

१८८॥ राग बिहागरा॥

अरे नर हरि का हेत न जाना।
उपजाया सुमिरण के काजे, तैं कछु औरै ठाना॥
गर्भ माहिं जिन रक्षा कीन्ही, ह्वाँ खाने को दीन्हा।
जठर अग्नि सों राखि लियो है, अंग सम्पूरण कीन्हा॥
बाहर लाय बहुत सुध लीन्ही, दशन बिना पय प्यायो।
दाँत भये भोजन बहु भाँती, हित सों तोहि खिलायो॥
और दिये सुख नाना विधि के, समझि देख मन माहीं।
भूलो फिरत महा गर्वाये, तू कछु जानत नाहीं॥
तव कारण सब कछु प्रभु कीन्हो, तू कीन्हा जग काजा।
जग व्यौहार पगो ही बोलै, तोहि न आवै लाजा॥
अजहूँ चेत उलट हरि सों ही, जन्म सुफल करि भाई।
चरणदास शुकदेव कहैं यों, सुमिरण है सुखदाई॥

१८९॥ राग काफी॥

गुमराही छाँडि दिवाने मूरख बावरे।
अति दुर्लभ है नर देह भया, गुरुदेव शरण तू आव रे॥
जग जीवन है निशि को स्वपनो, अपनो ह्याँ कौन बताव रे।
तोहि पाँच पचीस ने घेरि लियो, लख चौरासी भरमाव रे॥
बीत गई सो बीत गई, अजहूँ मन को समुझावरे।
मोह लोभ सों भागिके त्याग विषय काम क्रोध को धोय बहावरे

शुकदेव कहैं सबही तजिकै, मनमोहन सों लौ लाव रे।
चरणदास पुकारि चिताय दियो, मत चूकै ऐसो दाव रे॥

१९० ॥ राग काफी ॥

चला आवै चलावे[1] का धोस, कछू करि ले भाई।
ह्याँसे चलना होय अचानक ही, फिरि पाछे रहै अफसोस॥
पीके विषय की मदिरा, मतवारा होय रहा बेहोस।
बाट माहिं तो शूल बबूल घने, अरु जाना है कइ कोस॥
दम ही दम ही दम छीजत है, पलपल घटै तन जोस।
माया मोह कुटुँब का सुख ऐसे, जैसे दीखै मोती ओस॥
शुकदेव दियो कृपा करिकै, राम रस का प्याला नोस[2]।
चरणदास कहै यह बात भली, सुनि लीजै दोनों गोस[3]॥

१९१ ॥ राग सोरठ ॥

कछु तुम सुधि राखो वा दिन की।
जा दिन तेरी देह छुटैगी, ठौर बसोगे बन की॥
जिनके संग बहुत सुख कीन्हे, मुख ढकि होय हैं न्यारे।
यम को त्रास होय बहुभाँती, कौन छुटावनहारे॥
देहरी लौं तेरी नारि चलैगी, बड़ी पौरि लौं माई।
मरघट लौं सब बीर भतीजे, हंस अकेलो जाई॥
द्रव्य गड़े अरु महल खड़े ही, पूत रहैं घर माहीं।
जिनके काज पचे दिन राती, सो सँग चालत नाहीं॥
देव पितर तेरे काम न आवैं, जिनकी सेवा लावे।

१ मरने का २ पीने को दिया ३ कान।

चरणदास शुकदेव कहत हैं, हरि बिन मुक्ति न पावे ॥

१६२ ॥ राग सोरठ ॥

मोको भय अति वाही दिन को ।
जब यह पच्छी माया लोभी, त्यागै पिंजरा तन को ॥
सुत दारा के मोह फँसो है, लोभ लगो है धन को ।
काम क्रोध को काँपा-खायो[१], भयो अधीन सबन को ॥
पाँच पहर धन्धे में खोया, नाम न लेत भजन को ।
तीन पहर नारी सँग मातो, मानत सुख इन्द्रिन को ॥
आपन को ऊँचो करि जानै, करि अभिमान वरन को ।
सत संगति के निकट न आवै, जो है ठाट तरन को ॥
यम किंकर[२] जब आनि गहैंगे, तब ना धीर धरन को ।
गुरु शुकदेव सहाय करैंगे, आसरो दास चरन को ॥

१६३ ॥ राग केदारा ॥

सो मेरो कहो मान रे भाई ।
ज्ञान गुरू को राखि हिये में, बंध कटि जाई ॥
बालपन तैं खेलि खोयो, गई तरुणाई ।
चेत अजहूँ भली बर[३] है, जरा हू आई ॥
जिनके कारण बिमुख हरि ते, फिरत भटकाई ।
कुटुम्ब सबही सुख के लोभी, तेरे दुखदाई ॥
साधु पदवी धारणा धर, छाँड़ कुटिलाई ।
वासना तजि भोग जग के, होय मुकताई ॥

१ फंदे में फंस गया २ यमदूत ३ समय है ।

बहुरि योनी नाहिं आवै, परमपद पाई।
चरणदास शुकदेव के घर, आनँद अधिकाई॥

१९४ ॥ राग केदारा ॥

भाई रे अवधि बीती जात।
अंजली जल घटत जैसे, तारे ज्यों परभात॥
श्वास पूंजी गाँठ तेरे, सो घटत दिन रात।
साधु संगति पैंठ लागी, ले लगै जोड़ हाथ॥
बड़ो सौदा हरि सँभारो, सुमिरि लीजै प्रात।
काम क्रोध दलाल ठगिया, बणिज मत इन साथ॥
लोभ मोह बजाज छलिया, लगे हैं तेरि घात।
शब्द गुरु को राखि हिरदय, तो दगा नहिं खात॥
आपनी चतुराई बुधि पर, मत फिरै इतरात।
चरणदास शुकदेव चरणन, परस तजि कुल जात॥

१९५ ॥ राग सोरठ ॥

भाई रे स्वपन यह संसार।
देह स्वपना जन्म स्वपना, स्वपन कुल व्योहार॥
माय स्वप्ना बाप स्वप्ना, स्वपन सुत अरु नारि।
लाज स्वप्ना जाति स्वप्ना, स्वपन अस्तुति गारि॥
योग स्वप्ना भोग स्वपना, किये वेद निषेद[१]।
स्वप्न सो जो होय मिटि है, स्वप्न सुख अरु खेद॥
बन्ध स्वपना मुक्ति स्वपना, स्वप्न ज्ञान विचार।

१नेति।

स्वपन है सो बिनशि जैहै, रहैगो ततसार ॥
चरणदास स्वप्ना ब्रह्म साँचो, एकरस नित जान ।
सत्य स्वप्ना झूंठ स्वप्ना, कहा कहूँ निर्बान ॥

१९६ ॥ राग सोरठ ॥

भाई रे तजो जग जंजाल ।

संग तेरे नाहिं चालैं, महल वाहन माल ॥
मात पितु सुत और नारी, बोल मीठे बैन ।
डारि फाँसी मोह की, तोहिं ठगत हैं दिन रैन ॥
छल धतूरो दियो सब मिलि, लाज लड्डू माहिं ।
जान अपने कह भुलानो, चेतता क्यों नाहिं ॥
बाज जैसे चिड़ी ऊपर, भँवत[1] तो पर काल ।
मारते गहि लै चलैंगे, यम सरीखे साल[2] ॥
सदा संगी हरि बिसारो, जन्म दीन्हो हार ।
चरणदास शुकदेव कहिया, समझ मूढ़ गवाँर ॥

१९७ ॥ राग सोरठ ॥

भाई रे समझ जग व्यौहार ।

जब ताईं तेरे धन पराक्रम, करैं सब ही प्यार ॥
अपने सुख को सबहि चाहैं, मित्र सुत अरु नारि ।
इन्हौं तौ अपबश कियो है, मोह बेड़ी डारि ॥
सबन तोको भय दिखायो, लाज लकुटो मार ।
बाजीगर के बांदरा ज्यों, फिरत घर घर द्वार ॥

१ मंडराना २ दुख देने वाले यमदूत ।

जबै तोको विपति आवै, जरा[1] कोर[2] विकार।
तबै तोसूँ लाज मानैं, करैं न तेरी सार॥
इनकी संगति सदा दुःख है, समझ मूढ़ गवाँर।
हरि प्रियतम को सुमिरि ले, कहै चरणदास पुकार॥

१९८ ॥ राग बिहाग ॥

ये सब अप स्वारथ के गरजी।
जग में हेत न कीजै काहू सों, अपने मन को बरजी॥
रोपैं फन्द बात बहु डारैं, इनते तू डरियेजी।
हिरदय कपट बाहर मिठबोलैं, यह छल हैगो-कहा[3]-जी॥
सौगँद खाय झूठ बहु बोलैं, भवसागर कैसे तरजी।
दुख सुख दर्द दया नहि बूझैं, इनसे छुटावो हरिजी॥
बैरी मित्र सबै चुनि देखे, दिल के महरम[4] करजी।
इनको दोष कहा कह दीजै, यह कलियुग की झरजी[5]॥
दुनिया भगत कुटिल बहु खोटी, देखि छाती मेरी लरजी[6]।
चरणदास इनको तजि दीजै, चल बस अपने घरजी॥

१९९ ॥ राग आसावरी ॥

साधो राम भजे ते सुखिया।
राजा परजा नेमी दाता, सबही देखे दुखिया॥
जो कोई धनवंत जगत में, राखत लाख हजारा।
उनको तो संशय है निशिदिन, घटत बढ़त व्योहारा॥
जिनके बहु सुत नाती कहिये, और कुटुँब परिवारा।

१ बुढ़ापा २ कर ३ कैसा है ? ४ भेदू ५ प्रवाह ६ काँपगई।

वे तो जीवन मरण के काजे, भरत रहैं दुख भारा ॥
नेमी नेम करत दुख पावै, कर अस्नान सवेरा ।
दाता को देवे का दुख है, जब मँगतों ने घेरा ॥
चारि वरण में कोउ न देखो, जाको चिन्ता नाहीं ।
हरि की भक्ति बिना सब दुख है, समझ देख मन माहीं ॥
सतसंगति अरु हरि सुमिरण करि, शुकदेवा गुरु कहिया ।
चरणदास विपता सब तजि के, आनँद में नित रहिया ॥

२०० ॥ राग सारंग ॥

नर राम भजे सुख पाय है ।
दुख भाजैं अरु पातक नाशैं, जौरा[1] निकट न आय है ॥
चेत सवेरे कहूँ पुकारे, नातरु तू पछिताय है ।
जगत ठाट सब झाँकी शोभा, संग न कोई जाय है ॥
बिन गोपाल तुम्हारो को है, हमको देहु बताय है ।
पकरि बाँधि यम मारन लागे, तब को होय सहाय है ॥
देख विचारि समझ मन माहीं, तो बुधि जो अधिकाय है ।
तो तू आव उलटि हरि सौंही, चालो जनम सिराय है ॥
चरणदास शुकदेव कहत हैं, अब यह अधिक सयान है ।
गुरु की शरण साधु की संगति, प्रभु को कीजै ध्यान है ॥

२०१ ॥ राग भैरव ॥

चेतो रे नर करो विचार । छलरूपी है यह संसार ॥
स्वप्ना मात पिता सुत बंधू । स्वप्ना है सबही सम्बन्धू ॥

१ यमदूत ।

देखै कहै सुनै सो स्वपना। या जग में नाहीं कोइ अपना॥
स्वपना धरती और अकाशा। स्वप्ना चन्द्र सूर्य परकाशा॥
स्वप्ना जल थल पावक पौन। स्वप्ना योग भोग अरु मौन॥
स्वप्ना माया को व्यवहार। स्वप्ना कुल नाता परिवार॥
स्वप्ना देश नाम अरु भेश। स्वप्ना उत्पति परलय शेश॥
स्वप्ना राजा राना राव। स्वप्नै बानिक बन्यो बनाव॥
स्वप्नै लरै मरै अरु भागै। स्वप्नै सोवै स्वप्नै जागै॥
स्वप्ना है यह सबही ठाट। उठी पैंठ जब मुंदि गइ हाट॥
जो कछु है सो सबही स्वपना। साँचा हरि हरि हरि हरि जपना॥
क्यों भूला मूरख मस्तान। अजहूँ समुझि लेहि गुरु ज्ञान॥
गफलत छाँड़ि भजो हरि नाम। जो चाहै तू निश्चल धाम॥
ज्यों सोवत स्वप्नो दरशाय। आँखि खुलै जबही मिटि जाय॥
ऐसे ही सब स्वप्ना जान। अचल अखण्ड रहै भगवान॥
सबठाँ ब्रह्म रह्यो भरिपूर। ना अति निकट नहीं बहु दूर॥
जो कोइ खोजै सोई पावै। ततदरशी यह भेद बतावै॥
गुरु शुकदेव पुकारि चितावै। झूँठ साँच को न्याव चुकावै॥
चरणदास सब स्वप्ना जान। सदा एकरस ब्रह्म पिछान॥

॥ २०२ ॥ राग मलार ॥

सतगुरु भवसागर डर भारी।
काम क्रोध मद लोभ भवँर जित, लरजत[1] नाव हमारी॥
तृष्णा लहर उठत दिन राती, लागत अति झकझोरा।

---

1 डगमगाना।

ममता पवन अधिक डरपावै, काँपत है मन मोरा ॥
और महा डर नाना विधि के, छण छण में दुख पाऊँ ।
अन्तरयामी विनती सुनिये, यह मैं अरज सुनाऊँ ॥
गुरु शुकदेव सहाय करो अब, धीरज रहा न कोई ।
चरणदास को पार उतारो, शरण तुम्हारी सोई ॥

२०३ ॥ राग बिलावल ॥

भक्ति गरीबी लीजिये, तजिये अभिमाना ।
दो दिन जग में जीवना, आखिर मर जाना ॥
पाप पुण्य लेखा लिखैं, यम बैठे थाना ।
कहा हिसाब तुम देहुगे, जब जाहि दिवाना ॥
मात पिता कोइ ह्वाँ नहीं, सबही बेगाना[1] ।
द्रव्य जहाँ पहुँचै नहीं, नहिं मीत पिछाना ॥
एक सों एकहि होयगी, ह्वाँ साँच तुलाना ।
काहू की चालै नहीं, छनै दूधरु पाना ॥
साहिब की करि बन्दगी, दे भूखे दाना ।
समझावैं शुकदेवजी, चरणदास अयाना ॥

२०४ ॥ राग काफी ॥

घरी दो में मेला बिछुरै साधो, देखि तमाशा चलना ।
जे ह्वाँ आकर हुये इकट्ठे, तिनसों बहुरि न मिलना ॥
जैसे नाव नदी के ऊपर, बाट बटेऊ आवैं ।
मिलि मिलि जुदे होयँ पल माहीं, आप आपको जावैं ॥

१ पराये ।

या बारी बिच फूल घनेरे, रंग सुगन्ध सुहावैं।
लागैं खिलैं फेरि कुम्हिलावैं, झरैं टूटि बिनशावैं॥
दारा सुत सम्पति को सुख ज्यों, मोती ओस बिलावै।
ह्वाँई मिलै और ह्वाँई नाशै, ताको क्यों पछितावै॥
दै कुछ लै कुछ करिले करणी, रहनी गहनी भारी।
हरि सों नेह लगाय आपनो, सो तेरो हितकारी॥
सतसंगति को लाभ बड़ो है, साधु भक्त समुझावैं।
चरणदास हो राम सुमिरि ले, गुरु शुकदेव बतावैं॥

२०५ ॥ राग काफी ॥

वह मेला सोइ भला है साधो, जहँ सन्तों का मेला।
जिनके रहै सदा हरि चरचा, सुमिरैं राम सुहेला[१]॥
कथा कहैं अरु करैं कीर्त्तन, ज्ञान ध्यान समुझावैं।
सोवत जागत बैठे चलते, गोविन्द के गुण गावैं॥
बोलैं अमृतवाणी सब सों, कुमति कुबुद्धि छुटावैं।
हरि की भक्ति साधु की संगति, यह उपदेश बतावैं॥
माला तिलक राम को बाना, सुन्दर भेष बनावैं।
घर घर होय आरती मंगल, नवधा सों चित लावैं॥
निशि दिन आनँदरूप दिवाली, सदा बसन्त सोहायो।
प्रेम महोत्सव नित ही उत्सव, सबै ठाट मन भायो॥
या विधि सों मन मगन होय करि, भजन करैं अति भारी।
चरणदास शुकदेव कहत हैं, घट में हो उजियारी॥

१ सुखदाई।

२०६ ।। राग पर्ज ।।

राम धन जो कोइ पावै हो।
राज बड़ाई इन्दर पदवी, सुरति न लावै हो ।।
आठ सिद्धि नौ निद्धि के, लालच नहिं लागै हो।
तीनलोक तुच्छ जानिकै, तामें नहिं पागै हो ।।
अर्थ धर्म काम मोच्छ को, करणी नहिं ठानै हो।
चार मुक्ति वैकुंठ लौं, कछु वस्तु न जानै हो ।।
सबसे नीचा ह्वै चलै, मुख झूठ न भाखै हो।
हिंसा अकस वासना, कोइ नेक न राखै हो ।।
साधुन की करि चाकरी, तब वह धन आवै हो।
चरणदास से रंक को, शुकदेव बतावैं हो ।।

२०७ ।। राग पर्ज ।।

जिन्हैं हरि भक्ति पियारी हो।
मात पिता सहजे छुटैं, छुटैं सुत अरु नारी हो ।।
लोक भोग फीके लगैं, सम अस्तुति गारी हो।
हानि लाभ नहिं चाहिये, सब आशा डारी हो ।।
जग सों मुख मोड़े रहैं, करैं ध्यान मुरारी हो।
जित मनुवाँ लागो रहै, भइ घट उजियारी हो ।।
गुरु शुकदेव बताइया, प्रेमी गति भारी हो।
चरणदास चारों वेद सों, औरै कछु न्यारी हो ।।

२०८ ।। रेखता राग मलार ।।

तजि कै जगत की रीति को, कर आपनी तदबीर,

इस जग भरोसे ख्वार[1] हो सुन यार मन।
यार मन गये शाह अमीर ॥
इकदम करारी[2] है नहीं, क्षण क्षण में फेरैं रंग,
कबहूँ तो हैराँ[3] सुख घना सुन यार मन।
यार मन चल विचल वेढँग ॥
हशमत[4] व शौकत[5] थिर नहीं, मत देखि हो मगरूर,
ठहराव ताको है नहीं सुन यार मन।
यार मन भगल वड़ाई धूर ॥
जाहि श्वासा सब चले, ज्यों आब[6] दर[7] गिरवाल[8],
याद साहिब की करो सुन यार मन।
यार मन सुमिर हरि हरि हाल ॥
शुकदेव सतगुरु ने मुझे, कायम बतायो राम,
चरणहिदासा चित धरो सुन यार मन।
यार मन जपौ आठों याम ॥

२०९ ॥ रेखता ॥

दो दिन का जग में जीवन करता है क्यों गुमान[9]।
ऐ वेशहूर[10] गीदी[11] टुक राम को पिछान ॥
दावा खुदी का दूर कर अपने तू दिल सेती।
चलता है अकड़ अकड़ जवानी का जोश आन ॥
मुरशद[12] का ज्ञान समझके हुशियार हो शिताब[13]।

१ अपमानित २ स्थिरता ३ दुखी ४ ऐश्वर्य ५ सम्पत्ति ६ पानी ७ में ८ मोरी या बम्बा ९ घमंड १० असभ्य ११ मूर्ख १२ सद्गुरु १३ शीघ्र।

गफ्लत को छाँड़ि सोहबत साधौं की खूब जान ॥
दौलत का जौम[1] ऐसे ज्यों आब[2] का हुबाब[3] ।
जाता रहेगा छण में पछितायगा निदान ॥
दिन रात खोवता है दुनिया के कारबार ।
इक पल भी याद साईं की करता नहीं अजान ॥
शुकदेव गुरू ज्ञान चरणदास सूँ कहैं ।
भज राम नाम साँचा पद मुक्ति का निधान ॥

२१० ॥ हेला ॥

जग को आवन जान हेला[4], याको शोक न कीजिये ।
यह संसार असार है रे, अरे हेला हरि सों कर पहिचान ॥
कुटुम्ब संग आयो नहीं रे, अरे हेला ना कोई संग जाय ।
ह्याँई मिलैं ह्याँई बीछुरैं, ताको झुरै बलाय ॥
महल द्रव्य किस काम के रे, अरे हेला चलैं न काहू साथ ।
राम तजे इन सों पगे, हारो अपने हाथ ॥
जीवत काया धोवते रे, अरे हेला तेल फुलेल लगाय ।
मजलिस करि कै बैठते, मूये काग न खाय ॥
लाभ भये हरषैं नहीं रे, अरे हेला हानि भये दुख नाहिं ।
ज्ञानीजन वहि जानिये, सब पुरुषन के माहिं ॥
गुरु शुकदेव चितावई रे, अरे हेला चरणदास हिय राखि ।
मनुष जन्म दुर्लभ मिलै, वेद कहत हैं साखि ॥

१ घमंड २ पानी ३ बुलबुला ४ सम्बोधन सूचक ।

२११ ॥ हेला ॥

झूँठी जग की प्रीति हेला, नहिं छाड़ूँ हरि सो मीत।
रंग कुसुम संसार को रे, अरे हेला प्रभु को रंग मजीठ ॥
धन यौवन थिर ना रहै रे, अरे हेला मत कर गर्व गुमान।
छण छण औसर जात है, हरि सों कर पहिचान ॥
अन्त समय पछितायगो रे, अरे हेला जब यम घेरैं आय।
जिनके सँग तू मिल रहो, कोइ न छुटावै जाय ॥
बीति गई सो जान दे रे, अरे हेला अजहूं समझ गवाँर।
शरण गहो सत्संग की, गुरु के वचन सँभार ॥
श्रीशुकदेव बताइया रे, अरे हेला राम नाम ततसार।
चरणदास यों कहत है, ले ले उतरो पार ॥

२१२ ॥ हेला ॥

बोलत टेढ़ी बात हेला, माया मदमातो रहै।
सबही सों ऐंठो फिरै रे, अरे हेला छण में बेग रिसात ॥
ब्याज बढ़ा दुगुने करै रे, अरे हेला करै चौगुने दाम।
नाना रस के स्वाद ले, खाय फुलावै चाम ॥
कर सों कबहुँ न दान दे रे, अरे हेला शीश न नावै साध।
जिह्वा सों हरि ना जपै, बहुत करै बकवाद ॥
पग सों तीरथ ना रमै रे, अरे हेला सुनै न श्री भागौत।
अकड़ अकड़ मन माहिं यों, जानि बड़ो कुल गोत ॥
परछाहीं देखे चलै रे, अरे हेला बाँकी बाँधै पाग।
सो देही किस काम की, खैहैं श्वान न काग ॥

पुत्र कलत्र हैं घने रे, अरे हेला सुख में करत कलोल।
हरि भक्तन सों नेह ना, कहै क्रोध के बोल॥
धर्म कर्म कछु ना करै रे, अरे हेला नहिं सतगुरु सों प्रीति।
हरि चरचा सों जरि मरै, यह डूबन की रीति॥
जग को साँचो जानि कै रे, अरे हेला हरि को दियो बिसार।
अन्त समय यम त्रास दै, डारै नरक मँझार॥
श्रीशुकदेव ऐसे कही रे, अरे हेला छाँड़ि विषय जंजाल।
चरणदास भजु राम को, सोई उतारै पार॥

२१३ ॥ हेली ॥

यह अवसर फिर नाहिं हेली, राम भजन करि लीजिये।
यह तन छण छण जात है री, अरी हेली ज्यों तरुवर की छाँह॥
पिछले दिन सब खो दिये री, अरी हेली कियो न हरि सों सीर।
रहे सो ऐसो जानिले, ज्यों अंजलि को नीर॥
बचै सो लाहा[1] लीजिये री, अरीहेली सतसंगति के माहिं।
हिलमिल हरियश गाइये, दृढ़ता जी की बाहिं॥
जन्म सुफल जब होयगो री, अरी हेली कुल पारायण होय।
एकरु सौ पीढ़ी तरैं, रसना हरिगुण पोय॥
यही स्मृति यहि वेद है री, अरीहेली यहि साधन को भेव।
चरणदास हिय में धरो, कहिया गुरु शुकदेव॥

२१४ ॥ हेली ॥

और न मीता कोय हेली, समुझि सँभारो रामजी।

१ लाभ।

जीवत की रच्छा करैं री, अरी हेली मुये मुक्त करैं तोहिं ॥
अरु सब स्वारथ के सगे री, अरी हेली अन्त न कोई साथ ।
सुख में सब ही रल मिलैं, दुख में सुनैं न बात ॥
छल करि मन की बूझ ले री, अरी हेली पाछे डारैं घात ।
तिनको तू अपनो कहै, सो द्वेषी है जात ॥
भेद न अपनो दीजिये री, अरी हेली कोऊ कैसो होय ।
हिरदय की हिरदय रहै, हरि ही जानै सोय ॥
कै गुरु अपनो जानिये री, अरी हेली कै सतसंगत बास ।
गुरु शुकदेव बतावई, देख चरण ही दास ॥

२१५ ॥ हेली ॥

यह नहिं अपना देश हेली, ह्याँ नहिं मन को दीजिये ।
अपने घर को चालिये री, अरी हेली करि योगिनि को भेष ॥
कानन मुद्रा योग की री, अरी हेली ज्ञान जटा शिर धारि ।
चोला भक्ति सोहावनो, धीरज आसन मारि ॥
सेली[1] सत वैराग की री, अरी हेली शील विभूति रमाय ।
यत की सींगी[2] कीजिये, बारम्बार बजाय ॥
कर्म जलाय धूनी करो री, अरी हेली झूमो दशवें द्वार ।
अमल सुधारस पीजिये, बाढ़ै रंग अपार ॥
इस बाने पिय को मिलो री, अरी हेली सदा सुहागिनि होय ।
गुरु शुकदेव बतावई, चरणदास बन सोय ॥

१ गुदरी २ सींग ।

* अथ ज्ञान अंग वर्णन *

२१६ ॥ राग करषा ॥

साधो गुरु दया आपको यों विचारा ॥
झूठ अरू साँच को समुझि करि मूल सों,
माया अरु ब्रह्म को किया न्यारा ॥
पाँच अरु तीन गुण देह को ठाठ है,
तासु को लगत है सब विकारा ।
ब्रह्म अडोल अबोल अतोल है,
और निर्लिप्त हरि निर्विकारा ॥
जाके रूप नहिं रेख अरु नाम सूरत नहीं,
सोई निज तत्त्व है निराकारा ।
सुरति अरु निरति दोऊ जहाँ थकि रहैं,
तहाँ बिन भान अति है उजारा ॥
बिना गुरुमुखी कोउ पहुँचि ह्वाँ ना सकै,
कनक अरु कामिनी घेरि मारा ।
चलै सोइ सन्त निर्बाण ह्वै शूरमा,
ज्ञान अरू ध्यान को कर अहारा ॥
आवा अरु गमन की टूटि फाँसी गई,
पायो गुरु भेद गयो तिमिर सारा ।
चरणदास शुकदेव मिले मर्म सब दलमले,[1]
होय रणजीत अविगति निहारा ॥

---

१ नाश करदिये ।

२१७ ॥ राग करषा ॥

साधो ब्रह्म दरियाव नहिं वारपारा ॥
आदि अरु मध्य कहुँ अन्त सूझै नहीं,
नेति ही नेति वेदन पुकारा ॥
मूल प्रकृति सी वहुत लहरैं उठैं,
सकै को पाय गुण हैं अपारा ।
विरंचि महादेव से मीन वहुतै जहाँ,
होयँ परगट कभी गोत मारा ॥
तासु में बुदबुदे अण्ड उपजैं मिटैं,
गुरु दई दृष्टि जासों निहारा ।
छका छवि देखि कै अतीत१ का भेप करि,
जगे जब भाग निरखी वहारा ॥
मरजिया२ पैठिया थाह पाई, नहीं,
थका ह्वाँई रहा फिर न आया ।
गया था लाभ को मूल खोया सबै,
भया आश्चर्य आपन गँवाया ॥
पाल बिन सिंधु अरु निरा आनंद है,
आप ही आप हो निराधारा ।
चरणदास शुकदेव दोऊ तहाँ रलमिले,
तुरत ही मिट गया खोज सारा ॥

१ गुणों से परे २ गोता लगाने वाला ।

२१८ ॥ राग धनाश्री ॥

सहजगति ज्ञान समाधि लगाई ।
रूप नाम जहाँ किरिया छूटी, हूँ मैं रहन न पाई ॥
बिन आसन बिन संयम साधन, परमातम सुधि पाई ।
शिव शक्ती मिलि एक भये हैं, मन माया न हिराई[1] ॥
मगन रहौं दुख सुख दोउ मेटे, चाह अचाह मिटाई ।
जीवन मरण एक सो लागै, जबते आप गवाँई ॥
मैं नाहीं नख शिख हरि राजैं, आदि अन्त मध्याई ।
शङ्का कर्म कौन को लागै, काकी होय मुकताई ॥
सकल आपदा व्याधि टरी सब, दुई कहाँ मो माहीं ।
सब हमहीं रामा नहिं पईये, सब रामा हम नाहीं ॥
नित आनन्द काल भय नाहीं, गुरु शुकदेव समाधी ।
चरणदास निज रूप समाने, यह तो समझ अगाधी ॥

२१९ ॥ राग धनाश्री ॥

निरन्तर अटल समाधि लगाई ।
ऐसी लगी टरै नहिं कबहूँ, करणी आश छुटाई ॥
काको जप तप ध्यान कौन को, कौन करै अब पूजा ।
कियो विचार नेक नहिं निकसै, हरि बिन और न दूजा ॥
मुद्रा पाँच सहजगति साधी, आलस आसन सोई ।
सब रस ब्रह्म मूल जब शोधा, आप विसर्जन होई ॥
भूलो बन्ध मुक्ति गति साधन, ज्ञान विवेक भुलाना ।

१ पता लगना ।

आतम अरु परमातम भूला, मन भयो तत गलताना ॥
अचल समाधि अन्त नहिं ताको, गुरु शुकदेव बताई ।
चरणदास को खोज न पइये, सागर लहरि समाई ॥

२२० ॥ राग सोरठ ॥

हो अविगत जो जानै सोइ जानै ।
सब की दृष्टि परै अविनाशी, कोइ कोइ जन पहिचानै ॥
रेख जहाँ नहिं खिंच सकै रे, ठहरै ना ह्वाँ राई ।
चित्र चितेरा ना सकै रे, पुस्तक लिखा न जाई ॥
श्वेत श्याम नहिं राता पीरा, हरी भाँति नहिं होई ।
अतिअसूघ अदृष्ट अकथ है, कहि सुनि सकै न कोई ॥
सर्व समय अरु सब देशन में, सर्व अंग सब माहीं ।
कटै जलै भीजै नहिं छीजै, हलै चलै वह नाहीं ॥
नहिं गाढ़ा नहिं झीना कहिये, नहिं हलुम नहिं भारी ।
बाला तरुणा बूढ़ा नाहीं, ना वह पुरुष न नारी ॥
नहीं दूर नहिं निकट हमारे, नहीं प्रकट नहिं गूझै[1] ।
ज्ञान आँख की पलक उघारो, जब देखो रे सूझै ॥
वासों उतपति परलय होई, वह दोऊ ते न्यारा ।
चरणदास शुकदेव दया सों, सोई तत्त्व निहारा ॥

२२१ ॥ राग मलार ॥

साधो समुझो अलख अरूपा ।
गुप्त सों गुप्त प्रकट सों परगट, ऐसो है निजरूपा ॥

---

१ छिपा हुआ ।

भीजै नहीं नीर सों वह तत, ताहि शस्त्र नहिं काटै।
छोटा मोटा होय न कबहूँ, नहीं घटै नहिं बाढ़ै॥
पवन कभी नहिं सोखै ताको, पावक तेज न जारै।
शीत उष्ण दुख सुख नहिं पहुँचै, ना वह मरै न मारै॥
इकरस चेतन अचरज दरशै, जा सम तुल नहिं कोई।
ता पटतर कोइ दृष्टि न आवै, वही वही पुनि वोई॥
भीतर बाहर पूरि रह्यो है, अण्ड पिण्ड सों न्यारा।
शुकदेवा गुरु भेद बतायो, चरणहिदासा बारा॥

२२२ ॥ राग पर्ज ॥

गुरू हमारे अलख लखाया हो।

देखत ही ऐसे गये, जल नोंन घुलाया हो॥
नखशिख ढूँढ़ूँ आपको, कहिं आप न पाया हो।
रामहि रामा हो रहा, हम मूल गवाँया हो॥
वरत करैं हम होयँ तो, सब नेम भुलाया हो।
फल चाहनवारो गयो, हरि हेरि[1] हिराया[2] हो॥
ज्ञाता मिटि ज्ञानू मिटै, अरु ज्ञेय मिटाया हो।
सोच समझ सब ही गई, चरणदास नशाया हो॥

२२३ ॥ राग धनाश्री, बिलावल व सोरठ ॥

साधो भाई यह जग यों सत नाहीं।

मीन पहाड़ समुद बिच मिरगा, खेत अकाशे माहीं॥
जल की पोट कोट धूवाँ को, अखिल ब्रह्म को तीरं।

१ ढूँढकर २ खोगया।

बाँझ को पूत सींग शशा[1] को, मृगतृष्णा को नीरं ॥
स्वप्न को भूप द्रव्य स्वप्ने को, अरु जंगल को द्वारं ।
गणिका को शील नाच भुतन को, नारि सों ब्याहत नारं ॥
मावस को शशि रैन को सूरज, दूध नरन की छाती ।
यह सब कहनि कहावनि देखी, चींटी ले भागी हाथी ॥
ऐसेहि झूँठ जगत सच नाहीं, भेद विचारो पायो ।
चरणदास शुकदेव दया सों, साँचहि साँच मिलायो ॥

२२४ ॥ राग रामकली ॥

सतगुरु अच्छर मोहिं पढ़ायो ।
लेखन लिखा न स्याही सेती, ना वह कागज़ मध्य चढ़ायो ॥
ना लग[2] मात[3] न माथे बिन्दी, अरुण पीत नहिं काला ।
एँड़ा बेंड़ा टेढ़ा नाहीं, ना वह आल जंजाला ॥
ताको देखि थकी सब करणी, सबही साधन भागे ।
सिद्धैं भईं भोर के तारे, मुक्ति न दीखै आगे ॥
जाके पढ़े पढ़न सब छूटै, आशा पोथी फारी ।
मैं तो भया करम का हीना, कहै सरस्वति ठाढ़ी ॥
गुरु शुकदेव पढ़ायो अच्छर, अगम देश चटशाला ।
चरणदास जब पण्डित हूये, धारि तिलक अरु माला ॥

२२५ ॥ राग रामकली ॥

वह अच्छर कोइ बिरला पावै ।
जा अच्छर के लाग न बिन्दी, सतगुरु सैंनहिं सैंन बतावै ॥

१ खरगोश २ 'आ' स्वर ३ मात्रा ।

चर ही नाद वेद अरु परिडत चर ज्ञानी अज्ञानी।
बावन अचर चर ही जानौ, चर ही चारौं बानी॥
ब्रह्मा शेष महेश्वर चर ही, चर ही त्रैगुण माया।
चर ही सहित लिये अवतारा, चर ह्वाँ तक जहाँ काया॥
पाँचों मुद्रा योग युक्ति चर, चर ही लगै समाधा।
आठों सिद्धि मुक्ति फल चर ही, चर ही तन मन साधा॥
रवि शशि तारा मण्डल चर ही, चर ही धरणि अकासा।
चर ही नीर पवन अरु पावक, नरक स्वर्ग चर वासा॥
चर ही उतपति परलय चर ही, चर ही जाननहारा।
चरणदास शुकदेव बतावैं, निह अचर है सबसों न्यारा॥

२२६॥ राग भैरव॥

हरि को सकल निरंतर पाया।
माटी भाँड़े खाँड़ खिलौने, ज्यों तरुवर में छाया॥
ज्यों कंचन में भूषण राजै, मूरत दर्पण माहीं।
पुतली खम्भ खम्भ में पुतली, दुतिया तो कछु नाहीं॥
ज्यों लोहे में जौहर[१] परगट, सूतहि ताने बाने।
ऐसे राम सकल घट माहीं, बिन सतगुरु नहिं जानै॥
मेहँदी में रंग गन्ध फूलन में, ऐसे ब्रह्म माया।
जल में पाला पाले में जल, चरणदास दरशाया॥

२२७॥ राग एमन॥

सखी री हिलमिल रहिया पीव।

१ फौलाद में विशेष प्रकार की रेखाएँ।

पुष्प मध्य ज्यों गंध विराजै, पिंड माहिं यों जीव ॥
जैसे अगनि काष्ठ के अन्तर, लाली है मेहँदीव ।
माटी में भाँड़े हैं तैसे, दूध मध्य ज्यों घीव ॥
शुकदेवा गुरु तिमिर नशायो, ज्ञान दियो कर दीव ।
चरणदास कहै परगट दरशो, अमर अखंडित सीव ॥

२२८ ॥ राग सारंग ॥

साधो अचरज निर्गुण राम का ।
ना मर्याद ठिकाना नाहीं, नाहीं द्वारा धाम का ॥
मात पिता कुल गोत न वाके, भेष न पुरुषा वाम का ।
रूप न रेख नहीं कछु किरिया, लेश नहीं ह्वाँ नाम का ॥
सरवन लोचन रसनहि नासा, त्वचा न चोला चाम का ।
आदि न अन्त न अरधै उरधै, नहिं ठिगना नहिं लाँब का ॥
देखा सुना कहा नहिं जाई, नहिं धौला नहिं श्याम का ।
चरणदास शुकदेव सुझावे, नहिं विनशै नहिं जाम[1] का ॥

२२९ ॥ राग सारंग ॥

घट घट में रमता रम रह्यो ।
चेतन तजै भजै जल पाहन, मूरख भ्रम में भ्रम रह्यो ॥
एक अखण्ड रह्यो सबव्यापक, लख चौरासी सम रह्यो ।
प्रकट भानु ऐसे हरि दरशैं, संपुट में नहिं खम[2] रह्यो ॥
आपा जानि भूलि फिर आपन, नखशिख सों नहिं हम रह्यो ।
चरणदास शुकदेवहि रल गयो, वचन विलास न गम रह्यो ॥

१ जन्म लेना २ छिपा ।

२३० ॥ राग मालश्री ॥

तेरी गति अपरम्पार पार कैसे पइये हो ॥
योग युक्ति करि युगता[१] हारे, उनहूँ सुधि नहिं पाई ।
चित बुधि मन की गम जहाँ नाहीं, सुरति थकै थकि जाई ॥
नेति नेति कहि निगम पुकारैं, कहु कोउ कैसे पावै ।
ध्यान न लागै ज्ञान न सूझै, अनभयहू[२] फिरि आवै ॥
निर्गुणरूप निरालम्ब आसन, केहि विधि लखि है कोऊ ।
ब्रह्मा शेष महेश्वर थाके, सनकादिक शिरोमणि सोऊ ॥
वाणी शब्द रहित तुरियापद, गुरु शुकदेव सुनायो ।
चरणहिदास समझ सब बिसरी, खोजत खोज हिरायो ॥

२३१ ॥ राग मालश्री ॥

वा बिन और न कोय वही गुलजारी रे ॥
जग फुलवारी फूलि रही है, नाना रंग अनंत ।
आदिवृक्ष ताकी सब लीला, नितही रहत बसंत ॥
पाँच डार पचरंग हैं रे, शाखा बहुत बिचार ।
अद्भुत गति कछु कहत न आवै, फूले पुष्प अपार ॥
पात फूल फल सोहने रे, ह्वै ह्वै छिपि छिपि जाहिं ।
निश्चल द्रुम इकरस रहै रे, उतपति परलय नाहिं ॥
बिन सींचे बिन मूल को रे, अचरज अधिक सुबास ।
जित तित खिलो शुकदेव है रे, नहीं चरणही दास ॥

२३२ ॥ राग बिहागरा ॥

तेरे बहुत रूप बहु बानी ।

१ योगी २ अनुभव ।

तूही एक अनेक भयो है, जिन जानी जिन जानी ॥
रवि शशि विष्णु महेश्वर तूही, तूही चतुर विनानी ।
ऋषि मुनि देवत सिद्ध तुही है, तूही है ब्रह्मज्ञानी ॥
तुव बिन दूजो और न पइये, गावत वेद पुरानी ।
कोऊ कहै माया है दूजी, तो वह कित सों आनी ॥
तू आकाश पवन अरु पावक, तू धरती तू पानी ।
तीनों गुण तोही सों निकसे, तोही माहिं समानी ॥
दश अवतार तुही धरि आयो, तू इष्टी तू ध्यानी ।
तूही रास तुहि रास खिलइया, तू ठाकुर ठकुरानी ॥
तूही गुरू शुकदेव विराजै, चरणदास सिख मानी ।
गुप्त प्रकट सब तूही तूहै, अद्भुत लीला ठानी ॥

२३३ ॥ राग विहागरा ॥

यह सब एक एक ही होई ।
जाके ऐसी निश्चय आवै, जीवन्मुक्त सोई ॥
जैसे मनका डोर गुहे हैं, काहू माला पोई ।
एकहि श्वाँस सकल घट व्यापक, भूलो कहै जु दोई ॥
हमहूँ वही वही जग सारा, शिव ब्रह्मादिक वोई ।
एकहि ब्रह्म अचल अविनाशी, और न दुतिया१ कोई ॥
जिन समझा तिन आनँद पाया, बिन समझे दिया रोई ।
चरणदास नहिं हरि ही हरि हैं, सब में मैं मैं खोई ॥

२३४ ॥ राग बिहागरा ॥

जबते एक एक करि माना ।

१ दूसरा ।

कौन कथै को सुननेहारा, को है किन पहिचाना ॥
तब को ज्ञानी ज्ञान कहाँ है, ज्ञेय कहाँ ठहराना ।
ध्यानी ध्येय जहाँ नहिं पइये, तहाँ न पइये ध्याना ॥
जब कहाँ बंध मुक्त भुगतइया, काको आवन जाना ।
को सेवक अरु कौन सहायक, कहाँ लाभ कित हाना ॥
जब को उपजै कौन मरत है, कौन करै पछिताना ।
को है जगत जगत को कर्ता, त्रैगुण को अस्थाना ॥
तू तू तू अरु मैं मैं नाहीं, सबही दे बिसराना ।
चरणदास शुकदेव कहाँ हैं, जो है सो भगवाना ॥

२३५ ॥ राग केदारा व सोरठ ॥

सो लखि हम निर्गुण भरि पाई ।
जहाँ न वेद कतेब[1] पहुँचै नहीं ठकुराई ॥
चार वरण आश्रम नहीं कर्म नां काई[2] ।
नरक अरु वैकुंठ नाहीं नहीं तनताई[3] ॥
प्रेम अरु जहाँ नेम नाहीं लगन नां लाई ।
आठ अंग जहँ योग नाहीं नहीं सिद्धाई ॥
आदि अरु जहाँ अन्त नाहीं नहीं मध्याई ।
एक ब्रह्म अखण्ड अविचल माया ना राई[4]
ज्ञान अरु अज्ञान नाहीं नहीं मुकताई ।
चरणदास शुकदेव सम[5] तहाँ दुई जरि जाई ॥

१ कितावें २ आवरण ३ शरीर का तप ४ किंचित मात्र भी
५ बराबर ।

२३६ ॥ राग सोरठ, नट व बिलावल ॥

सो नैंना मोरे तुरिया ततपद अटके ।
सुरति निरति की गम नहिं सजनी, जहाँ मिलन को लटके ॥
भूलो जगत बकत[१] कछु औरै, वेद पुराणन ठटके[२] ।
प्रीति रीति की सार न जानै, डोलत भटके भटके ॥
किरिया कर्म भर्म उरझेरे, ये माया के झटके ।
ज्ञान ध्यान दोउ पहुँचत नाहीं, राम रहीमा फटके ॥
जग कुल रीति लोक मर्यादा, मानत नाहीं हटके ।
चरणदास शुकदेव दया सों, त्रैगुण तजिके सटके ॥

२३७ ॥ राग सोरठ ॥

है कोइ जानै भेद हमारा ।
सब हम में हम सबके माहीं, मैं व्यापक मैं न्यारा ॥
हम अडोल हम डोलत निशिदिन, हम सूक्षम हम भारा ।
हमहीं निर्गुण हमहीं सगुणा, हमहीं दश अवतारा ॥
हमहीं एक बहुत हो खेलैं, हमहीं सकल पसारा ।
हमहीं ज्ञान ध्यान पुनि हमहीं, हमहीं धारणहारा ॥
हमहीं आदि अन्त पुनि हमहीं, हमहीं रूप अपारा ।
महाराज हम वार पार हैं, हमहीं जग उजियारा ॥
हमहीं गुरु शुकदेव विराजैं, हमहि तरैं हम तारा ।
चरणदास घट हमहीं बोलैं, समझै समझनवारा ॥

१ विवेक रहित कथन करना २ थक गये ।

२३८ ।। राग काफी ।।

मैं कोइ अजब हूँ मेरा अजब तमाशा जोर ।
मेरेहि पिण्ड खण्ड ब्रह्मण्डा, मैं पूरण सब ठौर ।।
मैं ब्रह्मा मैं विष्णु महादेव, मैं कमला[1] मैं गौर[2] ।
मैं रवि चन्द्र इन्द्र इन्द्राणी, मैं गरजत घनघोर ।।
मैं गुण तीन पाँच तत मैं हीं, मैं दश-दिशि[3] चहुंओर ।
मैं निहरूप रूप धरि नाना, निशि दिन करत किलोर ।।
मैं गुप्ता मैं मुक्ता परगट, मैं ही भर्म झकोर ।
चरणदास मो बिन नहिं रंचक, दूजा कोई और ।।

२३९ ।।राग बिहागरा ।।

गुप्तमते की बात री जानै सोई जानै ।
पशू ज्ञान जगत को देखो, अन्न भुस एकही सानै ।।
चलनी की गति सबकी मति है, मन में अधिक सयानै ।
गहि असार सार को डारै, निश्चल बुधि नहिं आनै ।।
हूँ गूंगो जग को नहिं सूझै, सैन नहीं कोइ मानै ।
कासों कहौं अरु को सुनै सजनी, कहूँ तो को पहिचानै ।।
सत्य ब्रह्म को जानत नाहीं, मूरख मुग्ध अयानै ।
चरणदास समझत नहिं मोंदू, फिरि फिरि झगरो ठानै ।।

२४० ।। राग बिहागरा ।।

सुनि हो मुक्ति मुक्ति करूँ तेरी ।

१ लक्ष्मी २ पार्वती ३ पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर ,ईशान, पृथ्वी, आकाश ।

वेद पुराण जँजीर जरी[1] है, सबही मत मारग मिलि घेरी ॥
तैं तौ मुक्ति बहुत की कीन्ही, जिन पापन उरभेरी ।
बन्धन सकल छुटाय काट देऊँ, जो आधीन होय तू मेरी ॥
स्वर्ग पताल ठौर नहिं तोको, डोलत पेरी पेरी[2] ।
अचल पुरुष सों जाय मिलाऊँ, तोहि जानि साधन की चेरी ॥
शुकदेव गुरू जब किरपा कीन्ही, तू नाहीं कहुँ हेरी ।
चरणहिदास बासना तजिकै, आपहि आप करी है निवेरी ॥

२४१ ॥ राग बिहागरा व बिलावल ॥

अब हम ज्ञान गुरू से पाया ।
दुबिधा खोय एकता दरशी, निश्चल हो घर आया ॥
हिरदा शुद्ध हुआ बुधि निर्मल, चाह रही नहिं कोई ।
ना कछु सुनूं न परसूं बूझूँ, उलटि पलटि सब खोई ॥
समझ भई जब आनँद पाये, आतम आतम सूझा ।
सूधा भया सकल मन मेरा, नेक न कहूँ अरूझा ॥
मैं सबहुन में सब मोहूँ में, साँच यही करि जाना ।
यही वही है वही यही है, दूजा भाव मिटाना ॥
शुकदेवा ने सब सुख दीन्हे, तिरपत होय अघाया ।
चरणदास निकसा नहिं रंचक, परमातम दरशाया ॥

२४२ ॥ राग मलार व बिहागरा ॥

गुरु बिन कौन डुबोवनहारा ।
ब्रह्म समुंद में जो कोइ बूड़ो, छुटि गये सकल बिकारा ॥

१ दृढ़ता से बँधे हुए २ दौड़ी दौड़ी ।

सिंधु अथाह अगाध अचल है, जाको वार न पारा।
वाकी लहर मिटत वाही में, कौन तरै को तारा॥
त्रैगुण रहित सदा ही चेतन, ना काहू उनहारा[1]।
निराकार आकार न कोई, निर्मल अति निरधारा॥
अक्रिय अलख अरूप अनादी, तिमिर नहीं उजियारा।
तामें अण्ड दिपत[2] ऐसे करि, ज्यों जल मध्ये तारा॥
काल-ज्वाल भै-भूती[3] नाहीं, तहाँ नहीं श्रम भारा।
चरणदास शुकदेव दया सों, बूड़ि गये ही पारा॥

२४३ ॥ राग सोरठ व आसावरी ॥

सतगुरु निजपुर धाम बसाये।
जितके गये अमर हो बैठे, भवजल बहुरि न आये॥
योगी योग युक्ति करि हारे, ध्यानी ध्यान लगावैं।
हरिजन गुरु की दया बिना, यों दृष्टि नहीं दरशावैं॥
पंडित मुंडित चुंडित ढूँढैं, पढ़ि सुनि वेद पुरानै।
जासों वे सब पायो चाहैं, सो वे नेति बखानै॥
जंगम यती तपी संन्यासी, सबही वह दिशि धावैं।
सुरति निरति की गम जहँ नाहीं, वे कहौ कैसे पावैं॥
देश अटपटा बेगम नगरी, निगुरे राह न पाया।
चरणदास शुकदेव गुरू ने, किरपा करि पहुँचाया॥

२४४ ॥ राग सोरठ ॥

हमारे गुरु हरि नगर दिखाया हो।

१ समानता २ प्रकाशित ३ भय की आँधी।

उलटी बाट घाट जहाँ नाहीं, निजपुर वास बसाया हो ॥
चन्द न सूर गगन नहिं तारे, राति दिवस नहिं पाया हो।
नहीं तिमिर जहाँ चाँदनि नाहीं, नहीं धूप नहिं छाया हो ॥
मन सों अगम सुगम नहिं बुधि सों, अनभय[1] अन्त न लाया हो।
और कहो कैसे करि पावै, निगम नेति जेहि गाया हो ॥
है प्रत्यक्ष उदय सूरज ज्यों, संपुट नाहिं छिपाया हो।
बिन गुरुगम के अंजन आँजे, दृष्टि नहीं दरशाया हो ॥
जनक जहाँ शुकदेव विराजैं, चरणदास मिलि धाया हो।
जग की व्याधि लगन नहिं पाई, किरपा करि पहुँचाया हो ॥

२४५ ॥ राग सोरठ ॥

हमारे गुरु मारग बतलाया हो।
आन देव की सेवा त्यागी, अज अविनाशी ध्याया हो ॥
हरि पूरण परसो निश्चय सों, छाँड़ी झूठी माया हो।
इकरस आतम नित ही जानो, क्षणभंगी है काया हो ॥
चाहैं मुक्ति करैं तन किरिया, भर्म अधिक भर्माया हो।
बो करि पेड़ बबूल शूल के, आम कहो किन पाया हो ॥
अपना खोज किया नहिं कबहूँ, जल पाहन भटकाया हो।
जैसे फल सेवत सेमर को, कीर अधिक पछिताया हो ॥
ज्ञान पदारथ कठिन महानिधि, बिन भेदी किन पाया हो।
चरणदास घट सोहं सोहं, तामें उलट समाया हो ॥

---

१ अनुभव।

२४६ ।। राग काफी ।।

इन नैनन निराकार लहा[१] ।

कहन सुनन सूँ कौन पतीजै, जान अजान हो सहज रहा ।।
जित देखो तित अलख निरंजन, अमर अडोल अबोल महा ।
ज्योति जगत बिच झिलमिल झलकै, अगम अगोचर पूरि रहा ।।
अलख लखा जब बेगम हूआ, भर्म कोट जब तुरत ढहा ।
सर्बमयी सब ऊपर राजै, शून्य स्वरूपी ठोस ठहा[२] ।।
जीवन्मुक्त भया मन मेरा, निर्भय निर्गुण ज्ञान गहा ।
गुरु शुकदेव करी जब किरपा, चरणदास सुख सिन्धु बहा ।।

२४७ ।। राग आसावरी ।।

जबसों मन चंचल घर आया ।

निर्मल भया मैल गये सगरे, तीरथ ध्यान जु न्हाया ।।
निर्बासी ह्वै आनँद पाये, या जग सों मुख मोड़ा ।
पाँचों भई सहज वश मेरे, जब इनका रस छोड़ा ।।
भय सब छूटे अब को लूटे, दूजी आस न कोई ।
सिमिटि सिमिटि रहा अपने माहीं, सकल बिकल नहिं होई ।।
निजमन हूवा मिटि गया दूवा, को वैरी को मीता ।
बन्ध मुक्त का संशय नाहीं, जन्म मरण की चीता ।।
गुरु शुकदेव भेव मोहिं दीयो, जब सों यह गति साधी ।
चरणदास सों ठाकुर हूये, छुट गये वाद विवादी ।।

१ देखा २ स्थिर है ।

२४८ ॥ राग असावरी ॥

हम तो आतम पूजाधारी ।
समझि समझि करि निश्चय कीन्ही, और सबन पर भारी ॥
और देवल जहाँ धुँधली पूजा, देवत दृष्टि न आवै ।
हमरा देवत परगट दीखै, बोलै चालै खावै ॥
जित देखौं तित ठाकुरद्वारे, करौं जहाँ नित सेवा ।
पूजा की विधि नीके जानों, जासों परसन देवा ॥
करि सनमान सनान कराऊँ, चन्दन नेह लगाऊँ ।
मीठे वचन पुष्प सोइ जानों, हो करि दीन चढ़ाऊँ ॥
परसन करि करि दरसन पाऊँ, वार वार बलि जाऊँ ।
चरणदास शुकदेव बतावैं, आठ पहर सुख पाऊँ ॥

२४९ ॥ राग असावरी ॥

ऐ मन आतम पूजा कीजै ।
जितनी पूजा जग के माहीं, सबहुन को फल लीजै ॥
जो जो देही ठाकुरद्वारे, तिनमें आप विराजैं ।
देवल[1] में देवत हैं परगट, आछी विधि सों राजैं ॥
त्रैगुण भवन सँभारि पूजिये, अनरस[2] होन न पावै ।
जैसे को तैसा ही परसे, प्रेम अधिक उपजावै ॥
और देवता दृष्टि न आवै, धोखे को शिर नावै ।
आदि सनातन रूप सदा ही, मूरख ताहि न ध्यावै ॥
घटघट सूझै कोइयक बूझै, गुरु शुकदेव बतावैं ।

१ मन्दिर (शरीर) २ रसभंग ।

चरणदास यह सेवन कीन्हे, जीवन्मुक्ति फल पावैं ॥

२५० ॥ राग बिहागरा ॥

सब जग पाँच तत्त्व का उपासी ।
तुरियातीत सबन सों न्यारा, अविनाशी निर्वासी ॥
कोई पूजै देवल मूरति, सो पृथ्वी तत्त्व जानौं ।
कोई न्हावै पूजै तीरथ, सो जल को तत्त्व मानौं ॥
अग्निहोत्र अरु सूरज पूजा, सो पावक तत्त्व देखा ।
पवन खैंचि कुंभक को राखै, वायु तत्त्व को लेखा ॥
कोई तत्त्व आकाश को पूजै, ताको ब्रह्म बतावै ।
जो सब के देखन में आवै, सो क्यों अलख कहावै ॥
परमतत्त्व पाँचों से आगे, गुरु शुकदेव बखानै ।
चरणदास निश्चय मन आनो, विरला जन कोई जानैं ॥

२५१ ॥ राग जकड़ी ॥

ब्रह्म अरूप धरे बहुरूप, कहो कोउ कैसो स्वरूप कहै ।
सबमें है अरु सबसे न्यारा, है कोइ भेद अनूप लहै ॥
कहुँ कहुँ मूरख गुंग भयो है, कहुँ कहुँ बक्ता वेद पढ़ै ।
कहुँ कहुँ राव रंक दुख सुख है, कहुँ कहुँ भोगी भोग करै ॥
कहुँ कहुँ राधे रूप बनावै, कहुँ कहुँ मोहन रास रचै ।
मुड़ि मुड़ि जावै फेरि मनावै, प्यार प्रीति के चाव चहै ॥
कहुँ कहुँ सूरति मोहनि मूरति, कहुँ कहुँ लालन फंद परे ।
कहुँ कहुँ मधुवा[1] कहुँ कहुँ प्याला, कहुँ कहुँ पीवत प्रेम भरे ॥

---

१ मदिरा ।

कहुँ कहुँ ज्ञानी नाना बानी, कहूँ भरम में भूलि रहे।
शुकदेवा गुरु हो समझावैं, चरणहिदासा चरण गहे॥

२५२॥ राग मंगल, सूवा वा विलावल॥

कर्म करि निष्कर्म होवै, फेरि कर्म न कीजिये।
भूलि कै कोई कर्म साधै, उलटि कर मन दीजिये॥
कर्म त्यागे जगै आतम, यह निश्चय करि जानिये।
जब निर्भय पद सुलभ पावै, साँच हिय में आनिये॥
साँच हिय में राखि अवधू, नाम निर्गुण नित जपो।
अग्नि इन्द्री कर्म लकड़ी, पंच अग्नी अस तपो॥
जैसे टूट गहना खोज मेटे, होय सोना अतिसुखी।
ऐसे योग भक्ति वैराग सेती, कर्म काटै गुरुमुखी॥
ज़ासों मिटै आपा आप सहजै, ब्रह्मविद्या ठानिये।
गुरू शुकदेव युक्ति भाषैं, चरणदास पिछानिये॥

२५३॥ राग सोरठ॥

साधो भर्मा यह संसारा।
गतमति[1] लोक बड़ाई उरझे, कैसे हो छुटकारा॥
भर्म पड़े नाना विधि सेती, तीरथ बर्त्त अचारा।
देह कर्म अभिमानी भूले, छूँछ[2] पकरि तत डारा॥
योगी योग युक्ति करि हारे, पण्डित वेद पुराना।
षट दर्शन पग आप पुजावैं, पहिरि पहिरि रँगबाना॥
जानत नाहिं आप हम को हैं, को है वह भगवाना।

१ नष्ट बुद्धि २ असार वस्तु।

को यह जगत कौन गति लागै, समझै ना अज्ञाना ॥
जा कारण तुम इत उत डोलो, ताको पावत नाहीं ।
चरणदास शुकदेव बतायो, हरि नारायण माहीं ॥

२५४ ॥ हेली ॥

यह अचरज की बात हेली, कौन सुनै कासों कहूँ ।
दूर हुतो जब चाव थो री, अरी हेली अब नहिं छोड़ै साथ ॥
जहाँ देखौं तहाँ साँवरो री, अरी हेली तनमन रह्यो समाय ।
अंतर्यामी एक है, द्वितिया ना ठहराय ॥
मत भटकै भय भर्म में री, अरी हेली उलटि आपको देख ।
तोही में हरि बसत हैं, गावत वेद विशेख ॥
जब तू मोसी होयगी री, अरी हेली तब समझैगी बात ।
गूंगे को स्वप्नो भयो, यह सुख कहो न जात ॥
जो चाहै हरि सों मिलो री, अरी हेली गुरु शुकदेव मनाव ।
चरणदास सखी ने कह्यो, आप आप में पाव ॥

२५५ ॥ हेली ॥

हरि पाये फल देख हेली, पावत ही खोई गई ।
जात अटक कुल खो गये री, अरी हेली खोये वरण अरु भेप ॥
जन्म मरण सब खो गये री, अरी हेली बंधमुक्ति गये खोय ।
ज्ञान अज्ञान न पाइये, नेम धर्म नहिं होय ॥
लाज गई अरु भय गये री, अरी हेली साथहि गई उपाधि ।
आशा अरु करणी गई, खोये वाद विवाद ॥
मैं नाहीं हरि ही रहे री, अरि हेली तू दौरत हरि ओट ।

पावैगी जब जानि है, हरि पावन के खोट ॥
गुरु शुकदेव सुनाइया री, अरी हेली चरणदास मन शोच।
सब बातन सों जायगी, रहै न तेरा खोज ॥

२५६ ॥ हेली ॥

यह घर कैसा होय हेली, जितके गये न बाहुरे।
अमरपुरी जासों कहैं री, अरी हेली मुक्तिधाम है सोय ॥
विकट घाट वा ठौर को री, अरी हेली शठ नहिं पावैं पंथ।
गुरुमुख ज्ञानी जाहिं हैं, हरि सों सन्मुख संत ॥
त्रैगुण मत पहुँचै नहीं री, अरी हेली छहौं ऋतु[1] ह्वाँ नाहिं।
रवि शशि दोऊ ह्वाँ नहीं, नहीं धूप नहिं छाहिं ॥
अवधि नहीं काया नहीं री, अरी हेली कलह कलेश न काल।
संशय शोक न पाइये, नहिं माया को जाल ॥
गुरु शुकदेव दया करैं री, अरी हेली चरणदास लहै देश।
बिन सतगुरु नहिं पावई, जो नाना करि भेप ॥

२५७ ॥ हेला ॥

दृष्टि उठा कर देख हेला, ब्रह्म अनादि अरूप है।
आदि नहीं अन्तौ नहीं रे, अरे हेला आप सनातन एक ॥
नहिं धौला काला नहीं रे, अरे हेला हरा पीत नहिं लाल।
तीनों गुण से है परे, नहीं पुरुप नहिं बाल ॥
शस्तर छेदि सकै नहीं रे, अरे हेला पावक सकै न जारि।
नीर भिजोय सकै नहीं, ताहि न व्यापै ब्यारि[2] ॥

---

१ वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर २ पवन।

रेख जहाँ नहिं खिंच सकै रे, अरे हेला राई ना ठहराय।
लेप जहाँ नहिं चढ़ि सकै, सकै नहीं कोइ पाय॥
नहीं दूर निकटौ नहीं रे, अरे हेला नहीं प्रगट नहिं गूप।
गुरु किरपा सों पाइये, सुन्दर बहुत अनूप॥
है अडोल डोलै नहीं रे, अरे हेला है अबोल नहिं बोल।
देश काल सों रहित है, और कहा कहुँ खोल॥
जैसा था सोइ आज है रे, अरे हेला नया पुराना नाहिं।
जासों यह जग है भरो, जग वाही के माहिं॥
शक्ति घनी लीला घनी रे, अरे हेला घने नाम बहु रूप।
त्रै देवा से बहुत हैं, इन्दर से बहु भूप॥
चन्द्र घने सूरज घने रे, अरे हेला घने पिण्ड ब्रह्मण्ड।
सब कुछ आपहि हो रह्यो, निर्मल अचल अखण्ड॥
जनक दियो शुकदेव को रे, अरे हेला उन मोसूँ कहि दीन।
दरश भयो चरणदास को, सदा रहौं लवलीन॥

२५८॥ हेला॥

अचरज अलख अपार हेला, वाकी गति नहिं पाइये।
बहु निषेध[१] जोपै करे रे, अरे हेला तौ जावैगा हार॥
बानी थकि बुधिहू थकै रे, अरे हेला अनुभव थकि थकि जाय।
ब्रह्मादिक सनकादिहू, नारद थकि गुण गाय॥
वेद थके अरु व्यासहू रे, अरे हेला ज्ञानी थके अरु ज्ञान।
शंकर से योगी थके, करि करि निर्मल ध्यान॥

१ नेति नेति।

बहुतक कथि कथि ही गये रे, अरे हेला नेक न निवरी[1] बूझ[2]।
वाचक ज्ञानी कहत हैं, हमने पायो सूझ ॥
पाँचौं इन्द्रिन सों लखै रे, अरे हेला ताको साँच न मानि।
जो जो इन सों देखिये, तिनकी निश्चय हानि ॥
गुरु शुकदेव सुनावई रे, अरे हेला समझ चरणही दास।
अपने ही परकास में, आप रहा परकास ॥

२३६ ॥ राग हिंडोलना ॥

झूलत गुरुमुख सन्त अलख हिंडोलने ॥
नाभि भृकुटी खंभ रोपे, सोहं डोरी लाय।
सुरति पटरी बैठि सजनी, छण आवै छण जाय ॥
मन मनसा दोउ लगे झूलन, धारणा लै संग।
ध्यान झोटे देत सजनी, भलो लागो रंग ॥
सखी सहेली सिमिटि आईं, पींग-पींगन[3] नेह।
बूंद आनँद सब भिगोईं, सघन बरसै मेह ॥
चार-बाणी[4] खड़ी गावैं, महा रँगीली नार।
मुक्ति चारौं मालिनी जहाँ, गुहि गुहि लावैं हार ॥
त्रिगुण बगुला उड़न लागे, देखि बादल लै[5]।
संग पिय के सदा झूलैं, ताते लागै न भै ॥
चरणदास को नित झुलावैं, इस झूले शुकदेव।
शिव सनकादिक नारद झूलैं, करि करि गुरु की सेव॥

१ पूर्ण होना २ बोध ३ प्रेम के कारण पीली हो गई हैं ४ परा, पश्यन्ती मध्यमा, वैखरी ५ लय वृत्ति।

* अथ विविध अंग वर्णन *

२६० ॥ राग मंगल ॥

मन रोगी भयो पिंग[1] कि कुबुधि विकार सों ।
बाढ़ी व्यथा अपार लोभ के भार सों ॥
कर्मभरो[2] मतिहीन छीन छल सों छयो[3]।
पाँच पचीसौं घेरि मोह मद ने दह्यो ॥
कैसे यह दुख जाय कि पूछन को चल्यो ।
तब पूरण गुणवन्त बैद सतगुरु मिल्यो ॥
कर गहि कियो विचार कह्यो समझाय कै ।
जो कछु तेरे रोग सो देहुँ बताय कै ॥
महापाप की ताप चढ़ी तोहिं धाय कै ।
संशय को सनिपात मिल्यो है जाय कै ॥
विषय विषम ज्वर रह्यो जु हिये समाय कै ।
तृष्णा की बहु प्यास रही मन भाय कै ॥
सतसंगति को पत्त[4] कबौं नाहीं कियो ।
इन्द्रिन के रस रोग बिगारि सबही गयो ॥
कुसंगति की संग्रहणी जिय माहीं भई ।
ममता को मल बढ़ो भूख ताते गई ॥
काम क्रोध का कुष्ठ सकल तन छायकै ।
शोक शूल को मूल कलेजे आय कै ॥
माया पवन झकोर सों सूजन बहुत है ।

१ पीला अर्थात् शक्तिहीन २ कर्मों से भरा हुआ ३ भरगया ४पथ्य ।

त्रैगुण के त्रयदोष[1] बात बहकी कहै ॥
चिन्ता ही की चीस[2] उठै दिन रात ही ।
अतिनिन्दा से नींद गई ता साथ ही ॥
शीस गुमान पिराय[3] दरद हिंसा घनो ।
कलह कल्पना भर्म सों रहतो उनमनो[4] ॥
औरौ बड़ी उपाधि बढ़ै तेरी देह में ।
भीजि रह्यो है शरीर पसेव[5] सनेह में ॥
इन रोगन की औषध देहुँ सुनाय कै ।
भिन्न भिन्न मैं कहौं तोहि समुझाय कै ॥
कर्म करंजवा[6] तोड़िकै सत्य गिलोय ले ।
जत[7] ही की अजवायन आनि मिलोय दे ॥
चित्त चिरायता न्याय प्रीत पीपल भली ।
नेम नोंन सैंधे की नीकी सी डली ॥
हित के बर्तन माहिं तिन्हैं भिजोय के ।
परम प्रेम जल तामें डारि समोय दे ॥
शील शिला पर पीसो ज्ञानि उमंग सों ।
पीवत ही सब रोग नसैंगे अंग सों ॥
शुद्ध सुदर्शन चूरण हैगो[8] स्वाद ही ।
ताके पाये जाय जगत की व्याध ही ॥
दया क्षमा सन्तोष यही माजून है ।

१ मन के तीन दोष सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण २ पीड़ा ३ दर्द करता है
४ उदास ५ पसीना ६ एक प्रकार की दवा ७ इन्द्री निग्रह ८ हो गया ।

होय अधिक आनन्द तत्त्वपद को लहै ।।
गुरु शुकदेव बतावै औषध सार है ।
चरणदास जो खाय कष्ट कोइ ना रहै ।।

२६१ ।। राग धनाश्री ।।

मन में दीरघ भये विकारा ।
सतगुरु साहब वैद मिले बिनु, कटै न रोग अपारा ।।
त्रै गुण के त्रै दोष पगा[1] है, काम क्रोध ज्वर जारा ।
तृष्णा वायु उठी उर अन्तर, डोलत द्वारहि द्वारा ।।
विषय वासना पित कफ लागो, इन्द्रिन के सुख सारा ।
सत्संगति रस कड़वा लागे, करत न अङ्गीकारा ।।
सतपुरुषन को कहा न मानै, शील क्षमा नहिं धारा ।
रसना स्वाद तजौ नहिं मूरख, आपनपा न सँभारा ।।
चरणदास शुकदेव मिले जब, औषध ज्ञान विचारा ।
तन मन को सब रोग मिटायो, आवागमन निवारा ।।

२६२ ।। राग केदारा ।।

भाई रे विषम ज्वर जग व्याधि ।
गुरू हमारे दई औषध, खाय रहनी साधि ।।
शुद्ध चूरण है सुदरशन, निबल लखि मोहि दीन ।
खात तन के कष्ट नाशैं, रोग मन ह्वै छीन ।।
ज्ञान योगरु भक्ति त्रिफला, धारणा नैं[2] पाल[3] ।
रहे सत संगति भवन में, आश लगै न व्याल ।।

१ भरा है २ को ३ धारण करो—अभ्यास करो ।

कनक कामिनि पथ[1] बतायो, भूलि कर न अहार।
अति अजीरण होत इनते, बढ़त विकट विकार॥
चरणदास शुकदेव कहिया, औषधी निज सोय।
विषम वेदन[2] होय भारी, जाहि चण में खोय॥

२६३ ॥ सावन का गीत ॥

सखी सजनी हे, तेरो पिया तेरे पास।
अरी बौरी इत उत भटकी क्यों फिरै जी॥
सखी सजनी हे, सुरति निरति कर देख।
अरी बौरी अपने महल रंग मानिये जी॥
सखी सजनी हे, मान अहूँ सब खोय।
अरी बौरी यह यौवन थिर ना रहै जी॥
सखी सजनी हे, बालम सन्मुख होय।
अरी बौरी पिछली अर[3] सब खोइये जी॥
सखी सजनी हे, पिया मिलन को री साज।
अरी बौरी न्हाय सिंगार बनाइये जी॥
सखी सजनी हे, चित की चौकी धराव।
अरी बौरी नायन[4] सुमति बुलाइये जी॥
सखी सजनी हे, मन को कलश बनाव।
अरी बौरी ज्ञानको नीर भराइये जी॥
सखी सजनी हे, चरचा अग्नि जराव।

१ पथ्य २ पीड़ा ३ हठ ४ नाई की स्त्री।

अरी बौरी नीर गरम करि न्हाइयेजी ॥
सखी सजनी हे, योग उबटनो लगाव ।
अरी बौरी कर्म को मैल उतारिये जी ॥
सखी सजनी हे, करणी कँगही[1] बहाव ।
अरी बौरी बेणी मुक्ति गुँथाइये जी ॥
सखी सजनी हे, गुरु के चरण चितलाव ।
अरी बौरी सतसंगति पग लागिये जी ॥
सखी सजनी हे, लाज सिंदूर निकासि ।
अरी बौरी खोलि श्रृङ्गार बनाइये जी ॥
सखी सजनी हे, नवधा भूषण धार ।
अरी बौरी जासों पिया रिझाइये जी ॥
सखी सजनी हे, प्रीति को कजल आँज ।
अरी बौरी प्रेम की माँग सँवारिये जी ॥
सखी सजनी हे, बुधि बेसर सजि लेहि ।
अरी बौरी पान विचार चबाइये जी ॥
सखी सजनी हे, दया कर मेहँदी लगाव ।
अरी बौरी साँचो रंग न उतरै जी ॥
सखी सजनी हे, धीरज चूनरि लाल ।
अरी बौरी नख शिख शील शिंगारिये जी ॥
सखी सजनी हे, काम क्रोध तजि लोभ ।
अरी बौरी मोह पीहर सों जिन[2] करो जी ॥

१ कँघी २ मत करो ।

सखी सजनी हे, पाँच सहेली हों साथ।
अरी बौरी इनको संग न लीजिये जी ॥
सखी सजनी हे, चालो पिया के री पास।
अरी बौरी सुषमन बाट सोहावनी जी ॥
सखी सजनी हे, गगन मण्डल पग धार।
अरी बौरी पीय मिलैं दुख सब हरैं जी ॥
सखी सजनी हे, निर्गुण सेज बिछाव।
अरी बौरी हिलि मिलिके रँग मानिये जी ॥
सखी सजनी हे, पावैगी अटल सुहाग।
अरी बौरी अजर अमर घर निर्मले जी ॥
सखी सजनी हे, गुरु शुकदेव अशीस।
अरी बौरी चरणदास मनसा फलैं जी ॥

२६४ ॥ सावन का गीत ॥

भागी साथिन हे! इहिं भूले री मत भूल।
अरी हेली भर्म भूमि या देश की जी ॥
भागी साथिन हे! बदला माया को री रूप,
अरी हेली कुमति बूँद जित तित परैं जी ॥
भागी साथिन हे! कर्म वृक्ष की री बेलि,
अरी हेली खारी फल लागे विष भरे जी ॥
भागी साथिन हे! दुर्मति हरी हरी दूब,
अरी हेली छल रूपी फूले फूल हैं जी ॥
भागी साथिन हे! त्रैगुण बोलत मोर,

अरी हेली दम्भ कपट बगुला फिरैं जी ॥
भागी साथिन हे ! पाप पुण्य दोउ खम्भ,
अरी हेली नरक स्वर्ग झोटा लगैं जी ॥
भागी साथिन हे ! मैं मेरी बँधी डोर,
अरी हेली तृष्णा पटरी जित धरी जी ॥
भागी साथिन हे ! झूलत चावहि चाव,
अरी हेली नर नारी सब झूलईं जी ॥
भागी साथिन हे ! तपसी योगी गये भूल,
अरी हेली फल चाहत अरु कामना जी ॥
भागी साथिन हे ! आशा झुलावत नारि,
अरी हेली पाँच पचीस मिलि गावईं जी ॥
भागी साथिन हे ! या जग में ऐसी भूल,
अरी हेली चरणदास भूलत बचे जी ॥
भागी साथिन हे ! इत तजि उत को री चाल,
अरी हेली अमर नगर शुकदेव के जी ॥

२६५ ॥ राग बरवा ॥

साधौं री संगत भँवरा[१] दुर्लभ पइये,
लीजे जी तन मन बेंच भँवरा जी ।
जी म्हानैं साधौं री सँगत भँवरा प्यारी ही लागै ॥
आदि अनादी भँवरा कौन लखावै,
अपने सतगुरुजी संतोष भँवरा जी ।

१ मन रूपी भ्रमर ।

जी म्हानैं नरक निवारण सतगुरु प्यारो ही लागै ॥
आपस की चर्चा भँवरा कौन सुनावै,
अपने गुरु भाई जी संतोष भँवराजी ।
जी म्हानै गुरु का तौ छौना[1] भइया प्यारो ही लागै ॥
आछे आछे लच्छण भँवरा कौन जु लावै,
अपनी रहनी जी संतोष भँवराजी ।
जी म्हानै कर्म छुटावन रहनी प्यारी ही लागै ॥
आछे आछे परचा[2] भँवरा कौन दिखावै,
अपनी जुगति जी संतोष भँवराजी ।
जी म्हानै काया जितावन करणी प्यारी ही लागै ॥
आछी आछी वाणी भँवरा कौन उठावै,
अपनी अनभैजी संतोष भँवरा जी ।
जी म्हानै बुधि की तौ माँजन अनभै[3] प्यारी ही लागै
चरणदास को तुरिया भँवरा कौन बसावै,
अपने शुकदेव जी संतोष भँवराजी ।
जी म्हानैं सिर का तो छत्तर शुकदेव प्यारा ही लागै ॥

२६६ ॥ राग विलावल ॥

अजब फकीरी साहबी भागन सों पइये ।
प्रेम लगा जगदीश का, कछु और न चहिये ॥
राव रंक को सम गिनैं, कछु आशा नाहीं ।
आठ पहर सिमटे रहैं, अपने ही माहीं ॥

१ प्यारा शिष्य २ प्रारम्भिक अनुभव ३ अनुभूति ।

बैर प्रीति उनके नहीं, नहिं वाद विवादा ।
रूठे से जग में रहैं, सुनैं अनहद नादा ॥
जो बोलैं तौ हरिकथा, नहिं मौन ही राखैं ।
मिथ्या करुवा दुर्वचन, कबहूँ नहिं भाखैं ॥
जीव दया अरु शीलता, नखशिख सों धारैं ।
पाँचौं चेले वश करैं, मन सों नहिं हारैं ॥
दुख सुख दोनों के परे, आनँद दरशावैं ।
जहाँ जाय अस्थल करैं, माया पवन न जावैं ॥
हरिजन हरि के लाड़िले, कोइ लहै न भेवा ।
शुकदेव कही चरणदास सों, करि तिनकी सेवा ॥

२६७ ॥ राग बिलावल ॥

ऐसा हो दरवेश[१] ही जग को बिसरावै ।
ईमान सबूरी साँच सों सोई बखशा जावै ॥
ज़न[२] ज़र[३] और ज़मीन को दिल में नहिं लावै ।
फिक्र[४] फ़कीरी को बुरा वह ज़िक्र[५] छुटावै ॥
फे[६] फाके[७] का गुण यही राज़क[८] करै यादा ।
काफ़[९] कनाअत[१०] सुख घना आनन्द अगाधा ॥
रे[११] रियाज़त[१२] बलवान है हरि को अपनावै ।
आखिर को दीदार[१३] ही निश्चय करि पावै ॥

१ संत २ स्त्री ३ धन ४ चिन्ता ५ भजन ६ फ़कीर शब्द का पहला अक्षर ७ उपवास ८ भोजन दाता ९ फ़कीर शब्द का दूसरा अक्षर १० संतोष ११ फ़कीर शब्द का तीसरा अक्षर १२ भजन में पिल जाना १३ दर्शन ।

एजद[1] को धारे रहै रहै सब सों नीचा।
शुकदेव कही चरणदास सों पावै पद ऊँचा॥

२६८ ॥ राग विलावल ॥

यह वैरागी जानिये जाके राग न दोष[2]।
निर्ग्रंथ ह्वै जग में फिरै चाहै सिद्धि न मोच्छ॥
पाँचन को एकै करै अनहद में रोक।
त्रैगुण ते ऊपर बसै जहाँ हर्ष न शोक॥
मन मूंडै[3] तन साधि के बाधा सब डार।
तत्त्व तिलक माथे दिपै[4] शोभा अपरम्पार॥
माला श्वास उसास की हिरदय अस्थान।
अलख पुरुष सों नेहरा त्रिकुटी मध्य ध्यान॥
काम क्रोध मोह लोभ ना यही नेम अचार।
शुकदेव कही चरणदास सों करै ब्रह्मविचार॥

२६९ ॥ राग सोरठ व विलावल ॥

जो नर इतके भये न उतके।
उतको प्रेम भक्ति नहिं उपजी, इत नहिं नारी सुतके॥
घर सों निकसि कहा उन कीन्हों, घर घर भिक्षा माँगी।
बाना सिंह चाल भेंड़न की, साधु भये अकि[5] स्वाँगी॥
तन मूंड़ा पै मन नहिं मूंड़ा, अनहद चित नहिं दीन्हा।
इन्द्री स्वाद मिले विषयन सों, बकबक बकबक कीन्हा॥
माला कर में सुरति न हरि में, यह सुमिरण कहु कैसा।

१ दीनता २ द्वेष ३ रोके ४ चमकता है ५ अथवा।

बाहर वेष धारके बैठे, अन्तर पैसा पैसा ॥
हिंसा अकस कुबुधि नहिं छोड़ी, हिरदय साँच न आया ।
चरणदास शुकदेव कहत हैं, बाना पहिरि लजाया ॥

२७० ॥ राग सोरठ ॥

समझ रस कोइक पावै हो ।
गुरु बिन तपन बुझै नहीं, प्यासा नर जावै हो ॥
बहुत मनुष ढूँढ़त फिरैं, अँधरे गुरु सेवैं हो ।
उनहूँ को सूझै नहीं, औरन कहा देवै हो ॥
अँधरे को अँधरा मिला, नारी को नारी हो ।
ह्वाँ फल कैसे होयगा, समझै न अनारी हो ॥
गुरू शिष्य दोउ एक से, एकै व्यवहारा हो ।
गये भरोसे डूबि कै, वे नरक मँझारा हो ॥
शुकदेव कहैं चरणदास सों, इनका मत कूरा[१] हो ।
ज्ञान मुक्ति जब पाइये, मिलै सतगुरु पूरा हो ॥

२७१ ॥ राग जैजैवन्ती ॥

गुरु बिन ज्ञान नाहीं तिमिर नशावै भाई ।
भरमत फिरै लोई[२], जल और पाहन सोई, बात नहीं बूझै कोई, तिनको वह धावै ॥ देवी और देव पूजे, जहाँ कछु नाहीं सूझै, फेरि फेरि जावै दूजे, तहाँ नहीं पावै । वैद्यक को भेद ठानै, जोतिष विचार जानै, काहू की नाहिं मानै, करै मन भावै ॥ भूत टोना जादू सेवै, प्रभु का न नाम लेवै, भक्ति में ना चित्त देवै, गुण

१ झूंठा २ लोग ।

नहिं गावै । श्री शुकदेव कहै, चरणदास होय रहै, सोई मुक्तिधाम लहै, आपा जो उठावै ॥

२७२ ॥ राग गौरी ॥

सब जग भर्म भुलाना ऐसे ।
ऊँट की पूँछ सों ऊँट बँध्यो ज्यों, भेड़ चाल है जैसे ॥
खर[1] का शोक भूंस कूकरकी, देखा देखी चाली ।
तैसे कलुआ[2] जाहिर भैरौं, सेढ़ मसानी काली
गावँ भूमियाँ हित करि धावैं, जाय बराही दौरे ।
सद्दो[3] सरवर इष्ट धरत हैं, लोग लुगाई बौरे ॥
राखैं भाव श्वान गर्दभ[4] को, उनको ल्याय जिमावैं ।
ढेढ[5] चमारन को शिर नावैं, ऊँची जाति कहावैं ॥
दूध पूत पाथर सों माँगैं, जाके मुख नहिं नासा ।
लपसी पपड़ी ढेर करत हैं, वह नहिं खावै मासा[6] ॥
वाके आगे बकरा मारैं, ताहि न हत्या जानैं ।
लै लोहू माथे सों लावैं, ऐसे मूढ़ अयानैं ॥
कहैं कि हमरे बालक ज्यावो[7], बड़ी आयु बल दीजै ।
उनके आगे विनती करतैं, अँसुवन हिरदय भीजै ॥
भोपे-भरड़े[8] के पग लागैं, साधुसन्त की निन्दा ।
चेतन को तजि पाहन पूजैं, ऐसा यह जग अन्धा ॥
सतसंगति की ओर न झाँकैं, भक्ति करत सकुचावैं ।

१ गधा २ मंत्र द्वारा वश में किया हुआ जीवात्मा ३ देवी ४ गधा ५ भंगी
६ थोड़ा सा भी ७ जिवाओ ८ देवी देवताओं के पुजारी ।

चरणदास शुकदेव कहत हैं, क्यों न नरक को जावैं ॥

२७३ ॥ राग गौरी ॥

अरे नर क्या भूतन की सेवा ।
दृष्टि न आवै मुख नहिं बोलैं, ना लेवा ना देवा ॥
जेहि कारण घी ज्योति जलावै, बहु पकवान बनावै ।
सो खर्चें तू अधिक चाव सों, वह स्वप्ने नहिं खावै ॥
रात जगावै भोपा गावै, झूठै मूंड़ हिलावै ।
कुटुंब सहित तोहि पैर परावैं, मिथ्या वचन सुनावैं ॥
ताहि भरोसे जन्म गवाँवै, जीवत मरत न साथा ।
बड़ भागन नर देही पाई, खोवे अपने हाथा ।
चारि बरण में मैली बुधि का, नींच ऊँच क्यों न होई ।
जो कोइ झूंठी आशा राखै, अगति जायगा सोई ॥
ताते सत विश्वास टेक गहु, भक्ति करौ हरि केरी ।
चरणदास शुकदेव कहत हैं, होय मुक्ति गति तेरी ॥

२७४ ॥ राग बिलावल ॥

सब सुखदायक हैं हरी मूरख नहिं जानै ।
मन में धरि धरि कामना, औरन को मानै ॥
एजी जो चाहै सन्तान को, जप लालविहारी ।
सुन्दर बालक होहिंगे, घर के उजियारी ॥
एजी जो चाहै तू धन बना, सेव कृष्ण मुरारी ।
साखि सुदामा की सुनौ, दइ विभव अपारी ॥
एजी जगत बड़ाई जो चहै, सुमिरौ यदुनाथा ।

नीच बहुत ऊँचे भये, जग नायो माथा ॥
एजी जो सिध हूवो ही चहै, करि हिये हरि ध्याना ।
सिद्धि परापत होंहिंगी, चढ़ि है परवाना[1] ॥
एजी चरणदास हूवो चहै, भजिले भगवाना ।
कहैं गुरू शुकदेवजी, होय मुक्ति निदाना ॥

२७५ ॥ राग बिहागरा ॥

साधो निन्दक मित्र हमारा ।
निन्दक को निकटे ही राखौं, होन न देऊँ न्यारा ॥
पाछे निन्दा करि अघ धोवै, सुनि मन मिटै बिकारा ।
जैसे सोना ताय अग्नि में, निर्मल करै सोनारा ॥
घन[2] अहरन कस[3] हीरा निबटै[4], कीमत लाख हजारा ।
ऐसे जाँचत दुष्ट सन्त को, करन जगत उजियारा ॥
योग यज्ञ जप पाप कटन हित, करै सकल संसारा ।
बिन करणी मम कर्म कठिन सब, मेटै निन्दक प्यारा ॥
सुखी रहौ निन्दक जग माहीं, रोग न हो तन सारा ।
हमरी निन्दा करनेवाला, उतरै भव जल पारा ॥
निन्दक के चरणौं की अस्तुति, भाषौं बारंबारा ।
चरणदास कहैं सुनियो साधो, निन्दक साधक भारा ॥

२७६ ॥ राग सारंग ॥

अरे नर कहा कियो तुम ज्ञान ।
गई न हिंसा कुबुधि बड़ाई, राग द्वेष की आन ॥

१ परात्पर स्थिति २ बड़ा हथौड़ा ३ परीक्षा करना ४ परिणाम निकलना ।

प्रभुताई को छण छण दौरो, प्रभु को ना छण एक ।
अन्तर भोग जगत के प्यारे, बाहर साधू वेष ॥
जैसे सिंह गऊ तन धारो, कपटरूप प्रकटायो ।
धोखा खाय पशू आ निकसो, पंजा ताहि चलायो ॥
सुन्दर रूप महा बगुले को, एक टाँग जल ध्यान ।
मन में आशा मीन गहन की, कहाँ मिलैं भगवान ॥
गुरु शुकदेव बतायी मोकों, भीतर बाहर शुद्धि ।
चरणदास वा हरिजन जानौ, ताकी है ब्रह्मबुद्धि ॥

२७७ ॥ राग केदारा ॥

छले सब कनक कामिनी रूप ।
सुर असुर अरु यच्छ गंध्रब[1], इन्द्र आदिक भूप ॥
सावित्री[2] वश कियो ब्रह्मा, पार्वती त्रिपुरारि ।
लीला कारण लछमी सँग, हरि लिये अवतार ॥
रावण से अति बली मारे, मौत जिन वश कीन ।
पशु नरन की को चलावै, ए तो अति आधीन ॥
रूप रस में दे धतूरा, मोह फाँसी डार ।
तप की पूँजी छीनिकै कियो, शृङ्गी ऋषि को ख्वार ॥
माया ठगिनी ठगे सबही, बचे गुरु शुकदेव ।
रणजीता कोइ ऊबरो, करि दास चरणन सेव ॥

२७८ ॥ राग सोरठ ॥

साधो होनहार की बात ।

१ गंधर्व २ सरस्वती ।

होत सोई जो होनहार है, कापै मेटी जात ॥
कोटि सयानप बहु विधि कीन्हे, बहुत तर्क कुशलात ।
होनहार ने उलटी कीन्ही, जल में आग लगात ॥
जो कछु होय होतव्यता भोंडी, जैसी उपजै बुद्धि ।
होनहार हिरदय मुख बोलै, बिसरि जाय सब शुद्धि ॥
गुरु शुकदेव दया सों होनी, धारि लई मन माहिं ।
चरणदास सोचे दुख उपजै, समझे सों दुख जाहिं ॥

२७९ ॥ राग सोठना ॥

टुक रंग महल में आव, कि निर्गुण सेज बिछी ।
जहाँ पवन गवन नहिं होय, जहाँ जाय सुरति बसी ॥
जहाँ त्रय गुण बिन निर्वाण, जहाँ नहिं सूर शसी ।
जहाँ हिल मिल कै सुख मान, मुक्ति की होय हँसी ॥
जहाँ पिय प्यारी मिल एक, कि आशा हुई नसी ।
जहाँ चरणदास गलतान, कि शोभा अधिक लसी ॥

२८० ॥ राग सोठना ॥

सुन सुरत रँगीली हे ! कि हरि सा यार करो ।
जब छूटैं विघ्न विकार, कि भव जल तुरत तरो ॥
तुम त्रैगुण छैल बिसारि, गगन में ध्यान धरो ।
रस अमृत पीवो हे, कि विषया सकल हरो ॥
करि शील संतोष सिंगार, क्षमा की माँग भरो ।
अब पाँचों तजि लगवार, अमर वर पुरुष वरो ॥
कहैं चरणदास पिय देखि, गुरू के पावँ परो ।

२८१ ॥ राग सीठना ॥

जिवआतम बिगड़ी हे ! पुरुष को भूलि रही ।
जब पिय बिसराई हे ! जने जन बाहँ गही ॥
तैं लाज गवाँई हे ! कि पाँचन[१] पकड़ि लई ।
तेरे तीन[२] लगे लगवार[३], पचीसौं संग भई ॥
तैं जनम जनम रहि चूकि, कि यम की मार सही ।
कहै चरणदास बिन लाल, कि भवजल जात बही ॥

२८२ ॥ राग सीठना ॥

टुक निर्गुण छैला सों, कि नेह लगाव री ।
जाको अजर अमर है देश, महल बेगमपुर री ॥
जहाँ सदा सोहागिनि होय, पिया सों मिल रहु री ।
जब आवागमन नहिं होय, मुक्ति चेरी तेरी ॥
कहै चरणदास गुरु मिले, सोइ ह्वाँ रहु बौरी ।
तब सुखसागर के बीच, कि लहरी हो रहु री ॥

२८३ ॥ राग सीठना ॥

तू सुन हे ! लंगर[४] बौरी ।
तू पाँचों बेरि पचीसों घेरी,
विषय वासना की है चेरी, वारी वारी दौरी ।
तैं पिय भूली चौरासी भूली,
अङ्ग अङ्ग के सुख में फूली, माया लाई ढौरी[५] ॥
तैं काम क्रोध सों नेह लगायो,

१ पंच विषय २ तीन गुण ३ पीछे लगने वाले ४ व्यभिचारिणी ५ लाद लाई ।

मन माता सब जग भर्मायो, मोह यार बाँको री ।
चरणदास कहैं शुकदेव बतावैं,
निर्गुण छैला तोहिं मिलावैं, जो टुक चेतन हो री ॥

२८४ ॥ राग सोठना ॥

पर आशा है दुखदाई ।
जिन धीरज सो पति रसिया छाँडो,
बाँको मोह यार कियो गाढ़ो, क्रोध सों प्रीति लगाई ॥
जिन जत सत देवर सों मुख मोड़ा,
दया बहिन सों नाता तोड़ा, सुमति सौक[1] बिसराई ।
जो धर्म पिता के घर सों छूटी,
छमा माय सों यों ही रूठी, कुमति परोसिन पाई ॥
संतोष चचा का कहा न माना,
चची दीनता सों रिस ठाना, माया मधि बौराई ।
चरणदास कहै जब निज पति पावै,
श्री शुकदेव शरण सो आवैं, शील शृंगार बनाई ॥

२८५ ॥ राग सोठना ॥

टुक दरशन दे हरि प्यारे ।
बिन देखे मोहि कल न परत यह देह जरत है, व्याकुल प्राण हमारे
तेरी भौंहँ मटक और प्रेम लटक, हिय अटकी नंददुलारे ।
तेरी सुन्दर सूरति मोहनि मूरति, नैंना अति मतवारे ॥
तुमसो को छैला सदा नवेला, अलबेला बाँका रे ।

१ सौत ।

मैं हूँ चरणदासा तुम सुखरासा, आसा पुरवो आ रे ॥

२८६ ॥ राग सीठना ॥

कहा बाजत करत गुमान, मुरलिया रंग भरी ॥
तैं मोहे मोहन छैल कि, बाँके कृष्ण हरी ।
सुन बांससुता बड़ भाग, तनकसी बन लकरी ॥
कछु टोना कीन्हो है, विचित्तर सुघर खरी ।
निशि बासर लागी रहै, पिया के अधर धरी ॥
व्रज सगरो दियो नचाय, हाथ भर की बँसुरी ।
तेरी तान मधुर सुर हे ! बरसावत प्रेम झरी ॥
सुनिकै धुनि ऋषिमुनि देव, महेश समाधि टरी ।
चरणदास भई सखि हे ! तुही शुकदेव बरी[1] ॥

२८७ ॥ राग सीठना ॥

तुम देखो हरि की लीला
साधो कहन सुनन गम नाहीं ।
वह आप सकल विस्तारै, अरु आप करै प्रतिपारै,
जब चाहै तब ही मारै, या जग में धूम मचाई ॥
वह अद्भुत कौतुक लावै, रंकहि को राज्य दिलावै,
राजा को रंक करावै, यह गति किनहूँ नहिं पाई ॥
वह अचरज खेल मचावै, पाप पुन्य के न्याय चुकावै,
आप देखै और दिखावै, इक इक सों देइ भिराई ॥
जब पाप बढ़न को आवै, हरि आपहि धोय बहावै,

१ स्वीकार करली ।

दुष्टन को मारि भगावै, संतन की करै सहाई ॥
चरणदास कहै जो चाहो, शुकदेव शरण अब आवो,
तुम साँई सों लव लावो, वे देहैं दुःख मिटाई ॥

२८८ ॥ राग सीठना ॥

तेरी छण छण छीजत आयु, समझ अजहूँ भाई ॥
दिन दो का जीवन जानि, छाँड़ि दे गुमराही ।
सुन मूरख नर अज्ञान, चेतता क्यों नाहीं ॥
कहा फूला फिरत गवाँर, जगत झूठे माँहीं ।
कियो काम क्रोध सों नेह, गही है अकड़ाई ॥
मतवारा माया माहिं, करत है कुटिलाई ।
तेरो संगी कोई नाहिं, गहै जब यम बाँहीं ॥
शुकदेव चितावैं तोहि, त्याग दे मचलाई ।
चरणदास कहै भजु राम, यही है सुखदाई ॥

॥ अथ वसंत होरी प्रारम्भ ॥

२८९ ॥ राग वसंत ॥

ऐसे कृष्ण कुँवर खेलत बसंत। जाको सुर नर मुनि पावैं न अंत ॥
संग लिये बहु ग्वाल बाल। अरु फेंटन में भरि भरि गुलाल ॥
सब वस्तर पहिरे लाल लाल। गल सोहत सुन्दर गुंजमाल ॥
कोउ डफ रबाब[1] महुवर[2] मुहचंग। कोउ ताल बजावत है मृदंग ॥
कोउ ढोल तँबूरा वीण चंग। कोउ गावत स्वर दै दै उमंग ॥
जब आई राधिका सखिन साथ। कोउ केशर गागरि लिये हाथ ॥

१ नगारा २ बाजों के नाम ।

गहि छिरके तब ही गोपिनाथ। काहु बेंदी दई हरिजू के माथ ॥
इक काजर नैंनन आँजो आय। मुख चोवा[1] चंदन अबीर[2] लाय ॥
नीलाम्बर प्रभु को दियो ओढ़ाय । हँसि करत परस्पर मन के भाय
यह कौतुक ब्रज बाढ़ो अपार। मिलि नाचत कूदत गोपी ग्वार ॥
लखि मोहि रहीं बहु देवनारि। ऐसो अद्भुत अचरज रस विहारि॥
यह सुख कापै कहो जाय। सनकादिक नारद रहे लुभाय ॥
शुकदेव गुरू ने दियो दिखाय। चरणदास ध्यान में रहो समाय ॥

२६० ॥ राग बसंत ॥

ऐसे पारब्रह्म खेलत बसंत। कबहूँ एक कबहूँ अनन्त ॥
जैसे हाटक[3] एक भूषण अनेक। बरण बरण के धरत वेष ॥
टूटै गहना गल जो जाय। फिरि चाहै तौ फिरि बनाय ॥
आपही विष्णु ब्रह्मा महेश। आपहि धरती आप शेष ॥
आपहि सुर नर मुनिहिं जान। आप धरत अवतार आन ॥
आपहि रावण आपहि राम। आपहि कंसा आपहि श्याम ॥
आपन को चढ़ि मारै आप। आप अपन को जपत जाप ॥
चरणदास इकंगी[4] आपा देख। हरि कहियत हैं तेरे भेख ॥
शुकदेव दया ते पायो भेव। ताते आप अपन की लागो सेव ॥

२६१ ॥ राग बसंत ॥

वह बसन्त रे वह बसन्त ॥
कोइ बिरला पावै वह बसन्त। जाकी अद्भुत लीला रँग अनन्त ॥
जहाँ झिलमिल झिलमिल है अपार। जहाँ मोती बरपैं निराधार।

१ सुगंधित लेप २ गुलाल ३ सोना ४ एकत्व।

जहाँ फूलन की लागी फोहार । जहाँ अनहद बाजैं बहु प्रकार ॥
जहाँ ताल जु बाजै बिना हाथ । जहाँ शंख पखावज[1] एक साथ ॥
जहाँ बिन पग घुंघुरू की टकोर[2]। जहाँ बिन मुख मुरली घनाघोर ॥
जहाँ अचरज बाजे और और । जहाँ चन्द सूर नहिं साँझ भोर ॥
जहाँ अमृत दरवै[3] कामधेनु । जहाँ मान क्रोध नहिं मोह मैन ॥
जहाँ पाँचों इन्द्री एक रूप । जहाँ थकित भये हैं मन से भूप ॥
शुकदेव बतावैं ऐसो खेल । चरणदास करौ क्यों न वासों मेल ॥

२६२ ॥ राग बसंत ॥

खेलो राम नाम लै लै बसन्त । भक्ति करौ मिलि साधु सन्त ॥
मात पिता सुत दारा जान । सब स्वारथ के संगी पिछान ॥
तोहिं जनमत सबहिन घेरो आय । तैं आप अपनपौ दियो बँधाय ॥
श्वास निकसि रहि जाय देह । सब कुटुँब सँघाती भरो गेह ॥
जब सबही मिलिकर तजैं नेह । कहैं बेगि निकासौ रही खेह[4]॥
कहैं खाट बिछौना धो निकास । अरु जारि देहु मुख लै हुतास[5]॥
ऐसे झूठे संग की कौन आस । ताते हरि भजिले तू हर उसास[6]॥
इनसों पगो तजो हरि सो मीत । अपने भले की न करी चीत ॥
शुकदेव कहैं नर अजहुँ चेत । चरणदास तजौ क्यों न जग सों हेत ॥

२६३ ॥ राग बसंत ॥

मेरे सतगुरु खेलत निज बसंत । जाकी महिमा गावत साधु संत ॥
ज्ञान विवेक के फूले फूल । जहाँ शाखा योग अरु भक्ति मूल ॥
प्रेमलता जहँ रही भूल । सतसंगति सागर के कूल ॥

१ एक प्रकार का मृदंग २ शब्द ३ देती है ४ धूल ५ आग ६ श्वास ।

जहाँ भर्म उड़त है ज्यों गुलाल। अरु चोवा चरचै निश्चय वाल ॥
शील क्षमा को बरसै रंग। अरु काम क्रोध को मान भंग ॥
हरि चरचा जित है अनन्त। सुनि मुक्त होत सब जीव जन्त ॥
आन धर्म सब जाहिं खोय। राम नाम की जै जै होय ॥
जहाँ अपने पिय को ढूँढ़ि लेव। अरु चरण कमल में सुरति देव ॥
कहैं चरणदास दुख द्वंद्व जाहिं। जब प्रियतम शुकदेव गहैं बाहिं ॥

२६४ ॥ राग बसंत ॥

खेलो नित बसंत खेलो नित बसंत। मिलि साधुसंग में नित बसंत ॥
जहाँ फूल जु फूले चारि रंग। भक्ति ज्ञान अरु योग अंग ॥
रंग जु चौथा है विराग। विषय वासना देहु त्याग ॥
भँवर होय सूँघै जु कोय। जीवनमुक्ता कहिये सोय ॥
भय औ भ्रम सब छूट जाय। आनँद पद में रहै समाय ॥
चन्दन चरचा अति सुवास। महक रही ह्वाँ आस पास ॥
जिहि सुगन्धि शीतलता होय। ताप तपन सब जाहिं खोय ॥
चरणदास हरि चरण माहिं। शीस दिये बहु पाप जाहिं ॥
प्रीतम सुख देवैं अनन्द। अरु काट निवारैं सकल फन्द ॥

२६५ ॥ राग बसंत ॥

वह देश अटपटा विकट पन्थ। कोइ गुरुमुख पहुँचै होय सन्त ॥
बहुत चले मग चाव चाव। औरन सों कहि आव आव ॥
हमहूँ पहुँचि तुम्हैं दैं बसाय। ऐसो जान्यो सुलभ दाय ॥
बहुतक तपसी कष्ट साध। बहुतक पण्डित पोथी लाद ॥
बहुतक मुण्डित जटा धार। चहुँ ओर पावक जार जार ॥

बहुतक मुण्डित पूजा राखि । बहुतक भक्ता पिछली साखि ॥
बहुतक योगी पवन जीति । हरि मिलिबे की करैं रीति ॥
कायर थाके बाट माहिं । कछु इक आगे चले जाहिं ॥
वे कनक कामिनी लिये घेरि । सो भी उनके पड़े फेरि ॥
कोइ उनसे छुट करि आगे जाय । जहाँ ऋद्धि सिद्धि लेवैं लगाय ॥
शुकदेव कहैं सब डारि आस । ह्वाँ प्रेमी पहुँचै चरणदास ॥

२९६ ॥ राग बसंत ॥

साधौ आतम पूजा करै कोय । जोई करै सोइ मुक्ता होय ॥
नेह नगर में बसै जाय । भवन सवाँरै हित लगाय ॥
तामें सेवा धारै धार । आठ पहर करै बार बार ॥
तन मन वचन सँभारि लेव । सन्मुख देखो अपना देव ॥
दया पुष्प माला बनाव । छमा शील चन्दन चढ़ाव ॥
लिये दीनता हाथ जोरि । साँचे रँग में मन को बोरि ॥
घट घट प्रीतम राख मान । रस भंग न होवै सावधान ॥
प्रसन्नता सोइ धूप दीप । शुकदेव कहैं यों रहु समीप ॥
चरणदास हो संग न छोर । कृष्णमयी लखि चहूँ ओर ॥

२९७ ॥ होरी राग धमारि ॥

मोहन चतुर सुजान मेरे घर, होरी खेलन आयो हो ।
पीत बसन पियरे आभूषण, पीरो तिलक बनायो हो ॥
सखीरी लालहि लाल गुलाल उड़ावत, ग्वाल बाल सँग लायो हो ।
सबके करन कनक पिचकारी, गावत नाचत धायो हो ॥
सखी री आनि अचानक हरि ने मेरे, मुख चोवा लपटायो हो ।

केशर माहीं घोरि अरगजा, मो तन पै ढरकायो हो ॥
सखी री अपने हाथ सवाँरि पान दै, हार हिये पहिरायो हो ।
रीझ रिझा अरु भीज भिजा कर, उर आनन्द बढ़ायो हो ॥
सखी री मैं हूँ वाके जाय अचानक, काजर नैंन लगायो हो ।
मुरली गहि पीताम्बर लेकरि, नीलाम्बर जु उढ़ायो हो ॥
सखी री जा सुख को ब्रह्मादिक तरसैं, शेष पार नहिं पायो हो ।
गोपी कहै चरणदास श्याम की, सो सुख हमें दिखायो हो ॥

२६८ ॥ होरी धमार ॥

साध चलौ तुम सँभारी, जग होरी मच रही है भारी ॥
दम्भ पखण्ड गहे कर में डफ, हूँ बड़ हूँ बड़ की तारी ।
त्रैगुण तार तंबूरा साजे, आशा तृष्णा गतिधारी[१] ॥
पाप पुण्य दोउ लै पिचकारी, छूटत हैं वारी वारी ।
सन्मुख ह्वै करि जो नर खेल्यो, ताके छींट लगी कारी ॥
लोभ मोह अभिमान भरो है, ले माया गागरि डारी ।
राजा परजा भोगी तपसी, भीजि रहे हैं संसारी ॥
कुबुधि गुलाल डारि मुख मींड़ो[२], काम कला पुटली मारी ।
युग युग खेलत यों चलि आई, काहू ते नाहीं हारी ॥
जड़ चेतन दोउ रूप सवाँरे, एक कनक दूजी नारी ।
पाँच पचीस लिये सँग अबला, हँसि हँसि मिलि गावत गारी ॥
चतुरा फगुवा दै दै छूटे, मूरख को लागी प्यारी ।
चरणदास शुकदेव बतावैं, निर्गुण ज्ञान गली न्यारी ॥

१ भाव बताने वाले २ मलते हैं ।

२९९ ॥ होरी राग काफी ॥

ज्ञान रंग हो हो हो होरी ॥

निहरूपी बहुरूप धरे हैं, नाना भेष करो री ।
देखन निकसी अपने पिया को, समझ भवन की पौरी ॥
बुद्धि विचार सिंगार सजो है, निश्चय माथे रोरी ।
जीवन्मुक्त हुलास बढ़ो है, परगट खेल मचो री ॥
खेलत खेलत आपन बिसरो, लागी कौन ठगोरी ।
आपा खोजि राम ही पाये, मैं नाहीं निकसो री ॥
चरणदास नहिं हरि ही हरि हैं, सब आपहि आप रहो री
उपजै कौन कौन अब बिनशै, बंध मुक्त केहि ठौरी ॥

३०० ॥ होरी राग धनाश्री ॥

साधौ घूंघट भर्म उठाय होरी खेलिये ॥

वेद पुराण लाज तजि बौरी, इनमें ना उरझैये ।
शिर सों सकुच उतारि चदरिया, पिय सों रंग बढ़इये ॥
रूप न रेख न सूरति मूरति, ताके बलि बलि जइये ।
अचल अजर अविनाशी सोई, सन्मुख दरशन पइये ॥
सत चेतन आनन्द सदा ही, निर्भय ताल बजइये ।
पाप पुण्य की शंका त्यागो, जहाँ मर्याद न पइये ॥
ओला नीर विचारो जैसे, यों आपन बिसरइये ।
चरणदास वासना तजिकै, सागर बूंद समइये ॥

३०१ ॥ होरी राग सोरठ ॥

हिल मिल होरी खेलि लई हो, बालमाँ घर पाइया ॥

पाँच सखी पचीस सहेली, आनँद मंगल गाइया ।
समझ बूझ का चोवा चरचा, भर्म गुलाल उड़ाइया ॥
दुई गई जब इच्छा कैसी, खेलन सकल बहाइया ।
चरणदास वासना तजिकै, सागर लहर समाइया ॥

३०२ ॥ होरी राग सोरठ ॥

कासूँ खेलै को होरियाँ हो, बालम नाहीं मैं नहीं ॥
अबीर गुलाल अरगजा नाहीं, रंग नहीं गागर नहीं ।
ताल मृदंग झाँझ डफ नाहीं, राग नहीं रागिनि नहीं ॥
फाग महीना वा घर नाहीं, कन्त नहीं कामिनि नहीं ।
चरणदास नहीं तब हरि कहु कैसो, सब कुछ है और कुछ नहीं ॥

३०३ ॥ होरी राग धमारि ॥

आदि पुरुष अविगत अविनाशी, नाना कौतुक लावै रे ।
आपहि आप और नहिं कोई, बहुतक रूप बनावै रे ॥
आपहि मोहनलाल ग्वाल हो, मुरली आनि बजावै रे ।
आपहि ब्रज की बनिता हो करि, बन को दौरी आवै रे ॥
आपहि गोपी कान्ह विराजै, आपहि रास रचावै रे ।
अन्तर्ध्यान होय फिर आपहि, आपहि ढूँढ़न धावै रे ॥
आपहि व्याकुल अप देखन कूँ, लीला प्रेम बनावै रे ।
परगट होय सबन सुख देवै, आपहि रंग बढ़ावै रे ॥
भोर भये जब खेल मिटावै, आप आप रह जावै रे ।
कबहूँ एक अनेक कभूं ह्वै, विधि निषेध गति भावै रे ॥
सत चित आनँद रूप सदा ही, शुकदेव हो समझावै रे ।

चरणदास हो समझि समझि करि, आपहि आनँद पावै रे ॥

३०४ ॥ होरी राग धनाश्री ॥

साधो बुद्धि विवेक सँभारि होरी खेलिये ॥
सांख्ययोग की युक्ति सों, कीजै नित्य अनित्य विचार ।
माया सकल निवारि के रे, आतम रूप निहार ॥
पाँच तत्त्व तीनों गुण परगट, इनको दो दिन फाग ।
इकरस सत पद जानि ले रे, ताही सों मन पाग ॥
निश्चय चोवा लाइये रे, भर्म गुलाल उड़ाय ।
देह करम के रंग की रे, गागर दे ढरकाय ॥
जीवन मुक्ति जु फगुवा पइये, गुरु के चरणन लाग ।
जो कोइ ऐसी होरी खेलै, जाके ऊँचे भाग ॥
चरणदास कहै शुकदेव बताई, हमहूँ खेले जाग ।
प्रियतम प्रियतम जित तित देखे, द्वेष गयो अरु राग ॥

३०५ ॥ होरी राग धनाश्री ॥

सखीरी ततमत[१] ले सँग खेलिये, रस होरी हो ।
निर्गुण निज निर्धार, सरस रस होरी हो ॥
सखी री शील शृङ्गार सवाँरिये, रस होरी हो ।
दुविधा मान निवार, सरस रस होरी हो ॥
सखी री रहनी केसर घोरिये, रस होरी हो ।
बहुरि न ऐसो वार[२], सरस रस होरी हो ॥
सखी री सतगुण कर पिचकारि ले, रस होरी हो ।

१ सार सिद्धान्त २ अवसर ।

तम रज के भर मार, सरस रस होरी हो ॥
सखी री गर्व गुलाल उड़ाइये, रस होरी हो ।
मोह मटुकिया डारि, सरस रस होरी हो ॥
सखी री झिलमिल रंग लगाइये, रस होरी हो ।
चंदन चरच विचार, सरस रस होरी हो ॥
सखी री निश्चल सिन्धु समाइये, रस होरी हो ।
रिमझिम झमक फुहार, सरस रस होरी हो ॥
सखी री शून्य नगर में नृत्तिये, रस होरी हो ।
अनहद झनक झिंगार१, सरस रस होरी हो ॥
सखी री सैन सुरति सों समझिये, रस होरी हो ।
सोहं ब्रह्म खिलार, सरस रस होरी हो ॥
सखी री पाँच पचीसों रल मिलैं, रस होरी हो ।
मंगल शब्द उचार, सरस रस होरी हो ॥
सखी री अलख पुरुष फगुवा लहो, रस होरी हो ।
आपा आप बिसार, सरस रस होरी हो ॥
चरणदास रमइया रमि रह्यो, रस होरी हो ।
दरशो है फाग अपार, सरस रस होरी हो ॥

३०६ ॥ राग धनाश्री ॥

गुरु दूती बिना सखी, पीव न देखो जाय ।
भावै तुम जप तप करि देखो, भावै तीरथ न्हाय ॥
पाँच सखी पचीस सहेली, अति चातुर अधिकाय ।

१ झनकार ।

मोहि अयानी जानिकै मेरो, बालम लियो लुकाय ॥
वेद पुराण सबै जो ढूँढ़े, श्रुति स्मृति सब धाय ।
आन धर्म और क्रिया कर्म में, दीन्हो मोहि भर्माय ॥
भटकत भटकत जब मैं हारी, चरण सखी गहे आय ।
शुकदेव साहब किरपा करिकै, दीन्हो अलख लखाय ॥
देखत ही सब भ्रम भय भागे, शिर सूँ गई बलाय ।
चरणदास जब प्रीतम पायो, दर्शन किये अघाय ॥

३०७ ॥ होरी राग धनाश्री ॥

हरि पिव पाइया सखी, पूरण मेरे भाग ।
सुखसागर आनंद में मैं, नित उठि खेलूँ फाग ॥
चोवा, चन्दन प्रीति के सखी, केशर ज्ञान घसाय ।
पुष्प बास सूँ जो वह भीनों, ताके अंग लगाय ॥
बेरंगी[1] के रंग सूँ सखी, गागर लई भराय ।
शून्य-महल[2] में जायके सखी, पिय पर दई ढरकाय ॥
भरम गुलाल जब कर लियो सखी, बालम गयो दुराय ।
सतगुरु ने अंजन दियो तब, सन्मुख दरशे आय ॥
ताली[3] लाई प्रेम की सखी, अनहद नाद बजाय ।
सर्वमयी पिय पाय के हम, आनँद मंगल गाय ॥
"रमिल प्रियतम ह्वै गये"[4] सखी, दुई गई सब भाग ।
चरणदास शुकदेव दया सूँ, "पायो अचल सुहाग"[5]॥

१ निर्गुण स्थिति २ प्रकृति रहित ३ समाधि ४ तत्त्वतः अभेद
५ भाव में भेद ।

३०८ ॥ होरी राग धनाश्री ॥

मैं तो ह्वाँ खेलूँगी जाय, जित मेरो पिया बसै ।
व्याधि उपाधि न संशय कोई, आनँद ही आनँद लसै ॥
नितही फागुन इकरस होरी, खंडित कबहुँ न होय ।
मुक्ति पदारथ फगुवा पइये, आपा सरवस खोय ॥
जितके रसिया शिव ब्रह्मादिक, खेलत चावहि चाव ।
ऋषिमुनि देवत खेलत निशि दिन, करि करि बहुतक भाव
भाग बड़े उनहीं के जानो, वा पद लागें धाय ।
ज्ञान ध्यान के रंग में डूबे, सोई पहुँचे जाय ॥
गुरु शुकदेव बताई हमको, जबसों बाढ़ी प्रीति ।
चरणदासहू अति ललचाये, सुनि सुनि ह्वाँ की रीति ॥

३०९ ॥ होरी राग धनाश्री ॥

साधो प्रेम नगर के माहिं, होरी होय रही ।
जबसूँ खेली हमहूँ चितदै, आपनहूँ को खोय रही ॥
बहुतन कुल अरु लाज गँवाई, रहो न कोई काम ।
नाचि उठैं कभी गावन लागैं, भूलें तन धन धाम ॥
बहुतन की मति रंग रँगी है, जिनको लागो प्रेम ।
बहुतन को अपनी सुधि नाहीं, कौन करै ऐसो नेम ॥
बहुतन की गद्‌गद् ही वाणी, नैंनन नीर ढुराय ।
बहुतन को बौरापन लागो, ह्वाँ की कही न जाय ॥
प्रेमी की गति प्रेमी जानै, जाके लागी होय ।
चरणदास उस नेहनगर की, शुकदेवा कहि सोय ॥

३१० ।। होरी राग सारंग व धनाश्री ।।

कोई जानै संत सुजान, उलटे भेद कूँ ।

वृक्ष चढ़ो माली के ऊपर, धरती चढ़ी अकास ।
नारि पुरुष विपरीत भये हैं, देखत आवै हास ।।
बैल चढ़ो शंकर के ऊपर, हंस ब्रह्मा के शीस ।
सिंह चढ़ो देवी के ऊपर, गुरु ही की बखशीस ।।
नाव चढ़ी केवट के ऊपर, सुत की गोदी माय ।
जो तू भेदी अमर नगर को, तो तू अर्थ बताय ।।
चरणदास शुकदेव सहाई, अब कहा करि है काल ।
बाँबी उलटि सर्प में पैठी, जब सूँ भये निहाल ।।

।। इति श्री स्वामी चरणदासजी कृत शब्द सम्पूर्णम् ।।



अथ भक्तिसागर वर्णन

(छप्पै, कवित्त आदि)

(१)

छप्पै—श्री व्यास को पुत्र तासु को दास कहाऊँ ।
सदा रहूँ हरि शरण और ना शीस नवाऊँ ॥
साधुन सूँ यह चहूँ मोहि यह बात दृढ़ावो ।
माया जाल संसार तासु सों वेगि छुटावो ॥
अहो श्रीव्रजनाथ विनय सुनि लीजिये ।
चरणदास को भक्ति कृपा करि दीजिये ॥

(२)

गुरु ईश्वर गुरु ईश रीझि गुरु राम बतावैं ।
गुरु काटैं यम फाँस विपति सब अवै नशावैं ॥
गुरु देवन के देव भेव ब्रह्मादि लखावैं ।
गुरु भवसागर तार पार वह लोक बसावैं ॥
चरणदास यह जानिकै सतसंगति हरि को भजो ।
शुकदेव चरण चित लाय कै सो झूठ कानि दुविधा तजो ॥

(३)

पग तब होवैं शुद्ध साधु के मग को धावै ।
हस्त शुद्ध तब होयँ दोऊ कर शीस नवावै ॥
नैंन शुद्ध तब होयँ साधु के दर्शन पावै ।

रसन शुद्ध तब होय राम गुण मुख सों गावै ॥
मन चरणदास सब शुद्ध हो जब चरण परस गुरुदेव के ।
वे आतम तत्त्व विचार दें, कर दर्शन अलख अभेव के ॥

दो० दुख मेटन सुख के करन, चरणदास वे साध ।
दाता ज्ञान विज्ञान के, देवैं मता अगाध ॥१॥
साध मुक्ति नहिं चहत हैं, सिद्धि न चाहत साध ।
स्वर्गलोक नहिं चहत हैं, जिनका मता अगाध ॥२॥

॥ चौपाई ॥

इड़ा पिंगला सुखमन धारो । आसन वज्र नागिनी टारो ॥
दो० द्वादश अंगुल गहो, वेध पट चक्कर लीजै ।
जब बाजै अनहद तूर, जहाँ मन निज करि दीजै ॥

॥ चौपाई ॥

खेचरी मुद्रा त्रिकुटी आवै । अमृत पिवै परम सुख पावै ॥
मेरुदण्ड को प्राण चलावै । शून्य शिखर जब नगरी पावै ॥
जा नगरी में चन्द न भान । पहुँचै साधू चतुर सुजान ॥
जाति पाँति जहँ नाम न नाता । श्वेत श्याम पीत नहिं राता ॥
योग यज्ञ तप जहाँ न दाना । तीरथ वर्त जहाँ नहिं न्हाना ॥
किरिया कर्म जहाँ नहिं पूजा । मैं तू है नहिं एक न दूजा ॥
जहाँ न साँझ द्यौस नहिं राता । एकै ब्रह्म अखण्ड विधाता ॥
दो० चरणदास राम की घाटी, पहुँचै गुरुमत शूरा ।
ओछी बुद्धि वाद बहु ठानै, करणी करै सो पूरा ॥४॥

(४)

छप्पै–बैठ गुफा के मध्य योग की युक्ति विचारै ।
आप अकेलो रहै और ना मनुष निहारै ॥
चार बार नित करै जाप ॐकार अराधै ।
सूक्ष्म करै आहार ओगरो[१] पतलो साधै ॥
आसन पद्म लगाय के सीधो राखै मेर ।
ठोढ़ी हिये लगाइये पलक झाँप करि हेर ॥
दो० कुंभक आठ प्रकार के, तिनमें उत्तम एक ।
केवल कुंभक जानिये, साधै ताहि विशेख ॥५॥
त्रिकुटी में तीरथ अगम, तिरवेणी जेहि नाम ।
न्हाय योग की युक्ति सूं, पूरण हों सब काम ॥६॥
रणजीत कहै जहाँ न्हाइये, त्रिकुटी तीरथ धाम ।
नित परवी जहाँ होत है, मजन करो निष्काम ॥७॥

॥ चौपाई ॥

जा तीरथ को पवन न लागै । जा तीरथ में जन अनुरागै ॥
जा तीरथ में रतन अनेका । पूरे गुरु सों मिल मिल देखा ॥
वा तीरथ में जो कोइ न्हावै । भवसागर में बहुरि न आवै ॥
जहाँ न चन्द सूर नहिं तारे । गुरुगम पहुँचैं अति मतवारे ॥
जा तीरथ का बँधा जो नीर । उज्ज्वल निर्मल गहिर गँभीर ॥
ब्रह्मा विष्णु जहाँ त्रयदेवा । योग युक्ति में लावैं सेवा ॥
बारह मास दामिनी दमकै । सोन[२] पटीला[२] जुगनू[२] झमकै ॥

---

१ जौ का पतला दलिया २ चमकने वाले पतंगे ।

रणजीत मीत जहाँ बासा कीजै। नित अस्नान महासुख लीजै ॥

(५)

छप्पै—अमरी बजरी साध वायु सरने[1] नहिं पावै।
द्वादश अंगुल प्राण सुरत दे ताहि घटावै ॥
मौन गहै नित रहै अल्प सूक्ष्म सो बोलै।
एक बार आहार जँभाई कबहुँ न खोलै ॥
बाँधै सो जाय दृढ़ छीक को अनहद धुनि अति गाजई।
भन चरणदास शुकदेव बल सु योग युक्ति इमि साजई ॥

दो० मन पवना वश कीजिये, ज्ञान युक्ति सों रोक।
सुरति बाँधि भीतर धसै, सूझै काया लोक ॥८॥
मन हिरदै में रहत है, पवन नाभि के माहिं।
इन्द्री रोकै ये रुकैं, और कछू विधि नाहिं ॥९॥

(६)

सूक्ष्म करै अहार जीति धरणी जब लेई।
नीर जीति जब लेय बिंद[2] जाने नहिं देई ॥
मोह लोभ जब तजै अग्नि को जीति मिलावै।
पवन जीति जब लेय गगन को बाँधि[3] चलावै ॥
अरु हर्ष शोक सम करि गिनै पाँच जीत एकै करै।
भन चरणदास साधन गहै होय प्रकाश कारज सरै ॥

दो० गगन मध्य जो कमल है, बाजत अनहद तूर।
दल हजार को कमल है, पहुँचै गुरुमत शूर ॥१०॥

---

१ निकलने २ वीर्य ३ रोककर।

गगन मँडल के कमल में, सतगुरु ध्यान निहार।
चरणदास शुकदेव परसै, मिटै सकल विकार ॥९॥
सहस्रदल के कमल में, रूप अगम अपार।
सोहं सोहं जाप सहजै, होत एक हजार ॥१०॥

(७)

नौ नाड़ी की खैंच पवन लै उर में दीजै।
वज्जर[१] ताला लाय द्वार नौ बन्ध करीजै ॥
तीनौं बन्ध लगाय अस्थिर अनहद आराधै।
सुरति निरति का काम राह चल गगन अगाधै ॥
शून्य शिखर चढ़ि रहै दृढ़ जहाँ जाय आसन करै।
भन चरणदास ताड़ी[२] लगै सो राम दरश कलिमल हरै ॥

(८)

चौथा पद निर्वाण धाम बेगमपुर कहिये।
गुण अतीत जहाँ राम निरखि नैनन सुख लहिये ॥
अद्भै रूप अखण्ड मण्ड मण्डल बहु बंका।
जहाँ काल नहिं ज्वाल शब्द अति उठत निशंका ॥
निज पारब्रह्म चौंरी[३] रची शिव सहित शक्ति फेरी करैं।
भन चरणदास चारौं मुक्ति सो हाथ जोरि पायँन परैं ॥

(९)

मूल कमल में खेलि पिया कूँ देखन चलिये।
उलटि वेध षट चक्र जाइ सतवैं[४] सूँ मिलिये ॥

१ मजबूत २ समाधि ३ विवाह का मण्डप ४ सहस्रदल कमल।

प्राण अपान मिलाय राह पश्चिम की लीजै ।
बंक नाल करि शुद्ध प्राण लै तामें दीजै ॥
मेरु दण्ड चढ़ि जाय जब लोक लोक की गम परै ।
भन चरणदास ब्रह्मण्ड में ब्रह्मदर्शी दर्शन करै ॥

दो० चरणदास यहि विधि कही, चढ़िबे को आकास ।
शोधि साधि साधन अगम, पूरण ब्रह्म विलास ॥१३॥

(१०)

दल असंख्य को कमल रूप जहाँ सत्त विराजै ।
अनन्त भानु परकाश जहाँ अनहद धुनि गाजै ॥
सुन्दर छवि अति हंस[1] सन्त जन आगे ठाढ़े ।
जहाँ पहुँचे कोइ शूरवीर नीशान जो गाड़े ॥
कमल मध्य जो तख्त है शोभा अपार बरणूँ कहा ।
कहैं चरणदास उस तख्त पर आदि पुरुष अद्भुत महा ॥

(११)

छत्र फिरत नित रहत चँवर ढोरत जहँ हंसा ।
जहाँ दरशन करि शिष्य मिटै युग युग का संसा[2] ॥
आवागमन ह्वै रहित मरण जीवन नहिं होई ।
आनि मिले जब चार मुक्ति कहियत है सोई ॥
जहाँ अमरलोक लीला अमर फल अनेक तहाँ पावई ।
भन चरणदास शुकदेव बल सु चौथा पद इमि गावई ॥

१ मुक्तात्मा २ संशय ।

(१२)

जहाँ चन्द नहिं सूर जहाँ नहिं जगमग तारे।
जहाँ नहीं त्रयदेव त्रिगुण माया नहिं लारे॥
जहाँ वेद नहिं भेद जहाँ नहिं योग यज्ञ तप।
जहाँ पवन नहिं धरणि अगिनि नहिं जहाँ गगन अप[१]॥
अरु जहाँ रात नहिं दिवस है पाप पुण्य नहिं व्यापई।
आदि अन्त अरु मध्य है कहै चरणदास ब्रह्म आपही॥

(१३)

जहाँ काल नहिं ज्वाल भर्म नहिं तिमिर उजारा।
जहाँ राग नहिं द्वेष जहाँ नहिं कर्म अचारा॥
जहाँ काम नहिं क्रोध लोभ नहिं मोह नरेशा।
जहाँ मित्र नहिं शत्रु जहाँ नहिं देश विदेशा॥
अरु चरणदास इक ब्रह्म है और न दूजा कोइ तहाँ।
भया जीव सों ब्रह्म जब योग युक्ति पहुँचै जहाँ॥

(१४)

जहाँ आतम देव अभेव सेव कबहूँ न करावै।
इच्छा दुई न द्रोह कर्म नहिं भर्म सतावै॥
जहाँ जाप थाप नहिं आप तहाँ नहिं रूप न रेखा।
जासु जाति नहिं पाँति नारि नहिं पुरुष विशेखा॥
अरु पारब्रह्म पूरण सदा है अखण्ड नहिं खण्डिता।
मन चरणदास ताड़ी लगै सो शून्य शिखर में मण्डिता[२]॥

१ जल २ सुशोभित होना।

॥ चौपाई ॥

ब्राह्मण सो जो ब्रह्म पिछानै । बाहर जाता भीतर आनै ॥
पाँचौं वश करि झूठ न भाखै । दया जनेऊ हिरदय राखै ॥
आतम विद्या पढ़ै पढ़ावै । परमातम का ध्यान लगावै ॥
काम क्रोध मद लोभ न होई । चरणदास कहै ब्राह्मण सोई ॥

(१५)

हुतो आप में आप सृष्टि नहिं देत दिखाई ।
ज्यों पाला जल माहिं धरणि पर लीक लिखाई ॥
भाँडे माटी माहिं कनक में भूषण राजैं ।
तरवर बीरज[1] माहिं माहिं फलफूल बिराजैं ॥
गुण रूप नाम सब ब्रह्म में ॐकार तासूँ भई ।
चरणदास शुकदेव सो वही ब्रह्म माया वही ॥

(१६)

पाँच तत्त्व तेहि माहिं तीन गुण जुदे न होई ।
चित बुधि इन्द्री तहाँ पाप अरु पुण्य समोई ॥
विष अमृत तेहि माहिं भूत अरु देव मुनीश्वर ।
फूल शूल तेहि माहिं यमन अवतार ऋषीश्वर ॥
चरणदास शुकदेव भज ये सब दरशैं दृष्टि अब ।
निराकार निरगुण कहत भूले भटके लोग सब ॥

॥ सवैया ॥

जैसे जल में जल कुंभ[2] बसै जल भीतर बाहर पूरि रह्यो है ।

---

१ बीज २ घड़ा ।

तैसे जल में जल पाला बँध्यो जब फूटि गयो जल आप भयो है ॥
ऐसे जग में वह व्यापि रह्यो किनहूँ कर लोचन नाहिं गह्यो है।
चरणदास कहैं दुई दूरि करो सगरो जग एकहि डोर गुह्यो है ॥
जैसे पट[1] मैल को संग कियो जु गयो सब श्वेत भयो तन कारो।
श्यामस्वरूप आकाश भयो जब धूम धुवाँ जो भयो भौ[2] भारो ॥
माया पिशाचि को संग कियो जब जीव भयो करता करतारो।
शुकदेव कहैं दुइ दूर करो चरणदास सभी इक सूत निहारो ॥

॥ कवित्त ॥

दीसत न वारपार पूरि रह्यो जगत सार[3], ऐसो ही अटल्ल नेक टारो न टरत्त है। ताको तौ नाहिं नाश ठौर ठौर रह्यो भास, जैसे रहत पुष्प वास पास ही रहत्त है ॥ लोचन रह्यो समाय वेदहू सकै न गाय, पुस्तक लिखो न जाय जारो ना जरत्त है। शुकदेव जी की दया चरणदास को प्रकाश भयो, जैसे मैं खोजि पायो पायो ना परत्त है ॥

कई कोटि दुर्गा जहाँ हाथ जोरे रहैं, कई कोटि शंभू जहाँ ध्यान लावैं। कई कोटि ब्रह्मा जहाँ खड़े अस्तुति करैं, शेष नारद नहीं पार पावैं ॥ वेद यश ही कहैं भेद कछु ना लहैं, पंथ की बात वे भी बतावैं। चरणहीदास की आस जितही रहो, कोटि तेतीसहू शीस नावैं ॥

राम ही देव अरु राम देवल भयो, राम ही राम की करैं पूजा। राम ही धर्म अरु भर्म मैं राम ही, राम ही ज्ञान अज्ञान

१ वस्त्र २ भव या भय ३ तत्त्व अर्थात् ब्रह्म।

सूझा ॥ राम ही एक अन्नेक है राम ही, राम परगट भयो राम गूझा[१] । चरणदास शुकदेव सब राम ही राम है, शोधि निश्चय किया नाहिं दूजा ॥

राम ही बीज अरु राम ही पेड़ है, राम ही फूल अरु राम पाती । राम ही भोगिया राम ही योगिया, राम जप तप करै दिवस राती ॥ राम ही नारि अरु राम ही पुरुष है, राम मा बाप अरु पूत नाती । शुकदेव चरणदास सब राम ही राम है, राम ही दीवला राम बाती ॥

राम ही चोर अरु राम ही ठग भयो, राम बटमार अरु राम घाती । राम ही साधु यत सत भयो राम ही, राम रक्षा करै राम साथी ॥ राम ही देह इन्द्री भयो राम ही, मन भयो राम ही सुरत माती । गुरु शुकदेव चरणदास चेला भयो, राम ही सीप अरु राम स्वाती ॥

आप ही वेद अरु आप पण्डित भयो आप कत्तेब[२] अरु आप काजी । आप काशी भयो आप जाती[३] भयो, आप मक्का भयो आप हाजी[४] ॥ आपही बाँग[५] अरु आप मुल्ला भयो, आप पंडा भयो घंट बाजी । चरणदास शुकदेव हरि मुरीद[६] मुरशिद[७] भयो, मुकति और बन्ध सब आप साजी ॥

ब्रह्म ही आदि अरु ब्रह्म ही मध्य है, ब्रह्म ही अंत कूँ वेद गावै । ब्रह्म ही एक अन्नेक है ब्रह्म ही, आपनी दृष्टि में आप आवै ॥ होय दूजा कोई नाहिं ऐसी भई, आप ही आप

१ गुप्त २ किताबें ३ यात्री ४ हज करने वाला ५ शब्द ६ शिष्य ७ गुरु ।

आनँद बढ़ावै। ब्रह्म शुकदेव चरणदास भी ब्रह्म है, ब्रह्म ही ब्रह्म का ध्यान लावै॥

॥ अरिल्ल ॥

आतम ज्ञान बिना नहिं मुक्ता, वेद भेद सब देखा जोय।
ब्रह्मा शेष महेश पूज करि, बस वह लोक रहत नहिं सोय॥
जल पाहन अरु भूत भवानी, पूज पूज भर्मा सब कोय।
चरणदास तत बिरला जानै, आवागमन दुख बहुरि न होय॥

॥ सवैया ॥

न ऊरधबाहु न अंग बिभूति न, धूनी लगाय जटा शिर डारूँ
न मूड़ मुड़ाय फिरूँ बन ही बन, तीरथ बर्त्त नहीं तन गारूँ॥
उलटि लखो घट में प्रतिबिंब सो, दीपक ज्ञान चहूँ दिशि जारूँ।
चरणदास कहै मन ही मन में, अब तुही तुही करि तोहि पुकारूँ॥

॥ कवित्त ॥

तारी जो लगाय देखो वेद अर्थ पाय देखो, भक्ति बिना अखिल ईश कोऊ नाहिं पायो है। दशौं दिशा धाय देखो तीरथ हू न्हाय देखो, भटको सब प्रेम बिना स्मृति यों गायो है॥ हिवारे[1] तन गार देखो करवत[2] सिर मार देखो, ऐसी ऐसी बातन चौरासी भर्मायो है। भाषै चरणदास शुकदेव के प्रताप सेती, आदि पुरुष भक्त हेतु नंद गेह आयो है॥

मूड़हू मुड़ाय देखो जटाहू रखाय देखो, सेवरा[3] कहाय देखो भेदहू न पायो है। श्रवण चिराय देखो नादहू बजाय

१ हिमालय पर्वत २ काशी करवत लेना ३ एक प्रकार के पंथ वाले।

देखो, धूरहू लगाय देखो भर्म सबै छायो है ॥ धूम्रपान भूल देखो कोई भर्म भूल देखो, मोकूँ हरि नाम नीको गुरू जो बतायो है । भापै चरणदास शुकदेव के प्रताप सेती आदि पुरुष भक्ति हेतु नंद गेह आयो है ॥

॥ सवैया ॥

भूलत भर्मत क्रूर फिरै, इन बातन में कह काज सरैगो ।
बैठि रहो हरि मारग में, करता जो करै सोइ होय रहैगो ॥
अपने हित सों जिन तोहि सृज्यो, अलेख बिलोकि के सींच[1] करैगो ।
चरणदास बिचारि कहा भटकै, हरिनाम बिना दुख कौन हरैगो ॥
वही राम वहि श्याम विधाता, वही विश्वंभर पतित तरै ।
वही विष्णु वहि कृष्ण मुरारी, वही निरञ्जन ज्योति धरै ॥
दीनानाथ हरि वह कहियतु है, जो चाहै सो वही करै ।
चरणदास क्यों भटकै मूरख, राम बिना दुख कौन हरै ॥

॥ कवित्त ॥

वही राम मेरो जिन रावण बिनाश्यो जाय, वही राम मेरो जिन लंक परजारी[2] है । वही राम मेरो जिन कंस को पछारयो जाय, वही राम मेरो जिन नाथ्यो नाग कारी है ॥ वही राम मेरो सो डार पात रमि रह्यो, वही राम मेरो जाकी जग में उज्यारी है । चरणदास क्रूर सब संतन को चेरो कहै, वही राम मेरो प्रहलाद पैज पारी है ॥

---

१ पालन करना २ जलाई ३ अथवा ।

॥ कुण्डलिया ॥

वेद पुराणन में सुन्यो संकटमेटन नावँ ।
चरणदास के काज को अब क्यों थाके पावँ ॥
अब क्यों थाके पावँ धाम में हो अकि[1] नाहीं ।
और हमारी कौन गहै या दुख में बाहीं ॥
सकल इष्ट बिसराय खैंचि मन तुम सों लायो ।
इन पाँचन को काढि करो मेरो मनभायो ॥
भीर परी जब दास पर जित तित धारो वेप ।
अगले पिछले करम की अब क्यों न मेटो रेप ॥
अब क्यों न मेटो रेख करम कोई दुर[2] कीन्हों ।
हम कुछ जानत नाहिं तुम्हीं काहे नहिं चीन्हों ॥
अब तुम करो सहाय इन्हों से मोहि छुटावो ।
काम क्रोध मोह लोभ चक्र[3] सों बेगि जलावो ॥

॥ कवित्त ॥

सबही दुख पावैं बेर बेर पछितावैं अब, तोही को गावैं दुख वही काटि दीजिये । अब के दुखारी सब भये हैं भिखारी, सृष्टि काहे को बिसारी प्रभु बेगि दै पसीजिये[4] ॥ जक्त गुनहगार सो तो देखो है विचार अब, ना करो अबार[5] बंदि छोड़ि जो कहीजिये । दिल्ली की अर्ज चरणदास कहै लर्ज[6] शाह नादर को बर्ज अर्ज़ मेरी सुनि लीजिये ।

१ अथवा २ छिपकर ३ सुदर्शन चक्र ४ कृपा करिए ५ देर ६ करुणित होकर ।

यशोदा को लाल देखि मोहन ब्रज बाल देखि, गोपी अरु ग्वाल देखि प्राण वारि दीजिये। माथे पर मुकुट देखि कुण्डल की झलक देखि, घूंघरवारी अलक देखि ललका ही कीजिये॥ बाँकी सी मरोर देखि मुरली की घोर देखि, पैंजनी टकोर देखि देखा ही कीजिये। चरणदास क्रूर देखि नैनन को मूँद देखि, नैनन के बीच देखि यही ध्यान कीजिये॥

पीरो सुथार फेंटो तुर्रा छवि अधिक बनी, करहू में मुरली गहि अधरन पै धारी जू। घेरदार नीमो पीरो प्यारो अंग खुब[1] रहो एक पावँ ठाढ़े सो प्रेम के अहारी जू॥ सबही शृंगार किये राधेजू बायें अंग, ठाढ़ी मुसक्यात प्राण पिया संग प्यारी जू। नवलकिशोर मोर साँवरो सुजान प्यारो, यार चरणदास कीन्हो अटल विहारी जू॥

दो० मनदानिस्तम्[2] हिज्र[3] ने[4], दीगर[5] वस्ल[6] न कोय।
चरणदास गफ़लत उठै, वाहिद[7] वाहिद होय॥१२॥
हिज्र वस्ल दोनों नहीं, नहिं दरिया[8] नहिं मौज[9]।
चरणदास जर्रा[10] नहीं, जो कर देखा खोज॥१३॥

दरिया वाहिद ला-मकां[11], बाजत अनहद बीन।
सकल चरण[12] फ़रज़ंद[13]ना, नहीं संग[14] तावीन[15]॥१४॥

---

१ सुशोभित २ मैं जानता हूं कि ३ वियोग ४ नहीं ५ इसके अतिरिक्त ६ संयोग ७ एक–एकत्व ८ समुद्र ९ लहर १० कण ११ देश रहित १२ चरणदास १३ नंदजी का पुत्र श्री कृष्ण १४ साथी १५ जहां तक दृष्टि जाती है।

दीद[१] सुनीद[२] जहाँ नहीं, तहाँ न काल[३] न हाल[४]।
जौहर[५] जिसम[६] इसम[७] नहीं, चरणदास नहिं खाल[८]॥१५॥

बुरी सिपारस[९] जामिनी,[१०] और सगाई[११] होय।
चरणदास यों कहत है, भूल करो मत कोय॥१६॥

॥ कवित्त ॥

काहेके भक्त ये समान हैं बगले के, ध्यान तो लगायो है मीन के पचावन को। भीतर तो और और विषय वास चरणदास, बाहर तिलक छापे किये जक्त के दिखावन को॥ हरि के गुण गावन को रसना रिसात अधिक, मन तौ हुलसात बाद निन्दा के बढ़ावन को। बहुत बात सीख राखी लोक और बड़ाई को, काया नाहिं शोधी एक रामजी के पावन को॥

यह है कलि काल तामें बिकराल है दुष्ट संग, चरचा गोपाल जाकी निन्दा करैं जानि के। जोई करै भक्ति जाकूँ दुष्ट बहु नाम धरैं, बचन कुबचन कहैं क्रोध मन आनि के॥ देखैं अब जायगो तू परम वैकुण्ठ ही कूँ, बड़ो भयो साधु माला धारि तिलक ठानि के। ऐसे दुष्ट नीचन की बात नहिं मानिये जू, कहै चरणदास वे तो पापी नरक खानि[१२] के॥

आप बड़े नीच करतूत करैं नीचन की, नीचन को संग

१ देखना २ सुनना ३ भूत व भविष्य काल ४ वर्तमान काल ५ आत्मा के ६ शरीर ७ नाम ८ चर्म ९ धन १० स्त्री ११ सम्बन्ध १२ भण्डार।

जिन्हैं भावै उत्पात है। राम नाम सुनत हिये लागत है आगि जान, कोऊ करै भजन ताहि देख जरजात हैं॥ खोंटे भये आप कहैं औरन कूँ खोंटे वे तो, महामोटे पापी माया माहिं इतरात हैं। साधुन के निंदक सो तो परैंगे नरक माँझ, कहै चरणदास दुख पावैं बहुभाँति हैं॥

दो० चरणदास हित सों कियो, ग्रन्थ अनेक प्रकार।
अष्टादश अरु चार को, काढ़ लियो ततसार ॥१७॥

॥ चौपाई ॥

संवत् सत्रहसै इक्यासी। चैत सुदी तिथि पूरणमासी॥
शुक्लपच्छ दिन सोमहि वारा। रचूं ग्रन्थ यों कियो विचारा॥
तबही सूँ अस्थापन धरिया। कछु इक बानी वा दिन करिया॥
ऐसेहि पाँच हजार बनाई। नाम गुरू के गंग बहाई॥
फिर मइ बानी पाँच हजारा। हरि के नाम अगिनि में जारा॥
तीजे गुरु आज्ञा सों कीन्हीं। सो अपने सन्तन को दीन्हीं॥
अद्भुत ग्रन्थ महा सुखदाई। ताकी शोभा कही न जाई॥
तामें ज्ञान योग वैरागा। प्रेम भक्ति जामें अनुरागा॥
निर्गुण सगुण सबही कहिया। फिर गुरू चरण कमल में रहिया॥
जो कोइ पढ़ि पढ़ि अर्थ विचारै। आप तरै औरन को तारै॥
ना मैं किया न करने हारा। गुरु हिरदे में आय उचारा॥
चरणदास मुख सों शुकदेवा। आन कहे चारों ही भेवा[1]॥

१ चार भेद का स्पष्टीकरण पृष्ठ ३७० पर किया है।

दो० जल घृत सूँ रक्षा करो, मूरख हाथ न देव।
ढीलो करि नहिं बाँधिये, ग्रन्थ कहत यह भेव ॥१८॥

सम्प्रदाय शुकदेव मुनि, चरणदास गुरु द्वार।
परमधर्म भागवत मत, भक्ति अनन्य विचार ॥१९॥

॥ पद ॥

जय जय राधे कृष्ण मुरारी, जय जय व्यास सकल गुनगुनी।
जय जय महा विदेह जनकजी, श्री शुकदेव अवतार मुनी ॥
इनको नाम रटे निशि वासर, जीभ रहै हरिभक्ति सनी।
चरणदास सुख वास लहै, नित पास रहै यहि आस बनी ॥

॥ इति श्री स्वामी चरणदासजी कृत भक्तिसागर सम्पूर्णम् ॥



परिशिष्ट भाग

।। श्री शुकदेवाय नमः ।।

अथ श्री स्वामी चरणदास जी कृत

जागरण माहात्म्य

(श्री पद्मपुराण के आधार पर)

।। छप्पै ।।

प्रथम सुमिरि गुरु चरण बहुरि सुमिरूँ हरि चरणा ।
गुरु कूँ करूँ प्रणाम आय साधों की शरणा ।।
गुरु किरपा सों हिरदै ज्ञान और बुधि परकाशे ।
गुरु किरपा सों तिमिर अज्ञान दुरमति सब नाशे ।।
गुरु शुकदेव के चरण चित्त सदा सर्वदा राखिये ।
कहै चरणदास आधीन हो जु दुविधा मन की नाखिये ।।

दो० अब मैं विनती करत हूँ, श्री सतगुरु महाराज ।
दया करो आधीन पर, मो सिर के सिरताज ।।१।।
तन मन न्योछावर करूँ, दोउ कर लेउँ बलाय ।
चरणदास शुकदेव के, चरणन पै बलि जाय ।।२।।
तम अज्ञान मेरो हरो, ज्ञान देउ प्रगटाय ।
कृपा करो मो पतित पै, रहूँ चरण लिपटाय ।।३।।
तुम सो दाता और को, जाहि नवाऊँ शीश ।
मनसा वाचा कर्म करि, तुम हीं मेरे ईश ।।४
शुकदेव गुरू सुन लीजिये, मोकूँ करो सनाथ ।

ज्ञान भक्ति जासे बढ़ै, सो कहिये हो नाथ ।।५।।

।। गुरु वचन ।।

दो० सुनो शिष्य अब कहत हूँ, अद्भुत कथा पुनीत ।
निहचै ताके सुने ते, बढ़े भक्ति और प्रीति ।।६।।
एक समय श्री कृष्ण सों, कहत युधिष्ठिर राव ।
हो हरि अपनी कृपा सों, कछु इक कथा सुनाव ।।७।।
राजा सों श्रीकृष्ण ने, जो कछु कह्यो बनाय ।
सो अब तोसूँ कहत हूँ, सुनो शिष्य चित लाय ।।८।।

।। युधिष्ठिर के बचन श्रीकृष्ण सों ।।

हो हरि मैं पूछत हूँ तोहीं । संशय बेगि मिटावो मोहीं ।।
मोंहि जागरण महात्म्य सुनावो । मेरे पूरण पाप मिटावो ।।
मैं मतिहीन भक्ति नहिं जानूँ । संसारी के सुख में मानूँ ।।
निशिदिन कुटुँब जाल में पाग्यो । हरी कीरतन चित नहिं लाग्यो

।। मंगल छन्द ।।

लागै न चित छिन एक मेरो भक्ति प्रभु कैसे बने ।
निशि दिन वृथा संसार सुख कूँ मानिकै जिय आपने ।।
दो० कुटुँब जाल के कारनै, भ्रमत फिरूँ चहुँ देश ।
एक घड़ी हरि भजन में, नाहिं कियो परवेश ।।९।।

।। श्रीभगवान् के बचन राजा सों ।।

सुन राजा अब तोहि सुनाऊँ । तेरे हित याकी विधि गाऊँ ।।
ग्यारस को व्रत जबही लीजे । करके व्रत जागरण करीजे ।।
जा दिन करे सोई फलदायक । हरि कीर्तन सबतें सुखदायक ।।

कोटि एकादशि को फल लागै । पाप मिटै जो वा दिन जागै ।।
मैं प्रसन्न हो दरशन देहों । आवागमनको दुःख मिटै हों ।।
दो० इक मन शुभ चित होय के, सुन राजा सुज्ञान ।
ताके सरवन करत ही, दूर होय अज्ञान ।।१०।।
आप जगै अरु सबन जगावे । मेरे कौतुक अरु गुन गावे ।।
ताल मृदंग झाँझ मुरली धुन । शब्द करत गावे मेरे गुन ।।
प्रेम मगन हो नृत्य जु करै । मेरे चरणकमल चित धरै ।।
मैं हूं वा सँग गावन लागूँ । नृत्य करूँ वाहू ते आगूँ ।।
दो० श्रीभागौत की कथाकूँ, जो मन सूँ सुन लेह ।
कोटि जनम के पाप सब, हरिहौं निस्सन्देह ।।११।।
अब सुन याकी महिमा जेती । तेरे हित भाषत हूँ तेती ।।
एक भक्त के नेम यहै थो । व्रत एकादशी नित्य करै थो ।।
पूजा की विधि सब ही करिके । नेम धरम चित माहीं धरिके ।।
साधुन की सेवा अति करतो । मेरे चरण ध्यान मन धरतो ।।
भली भाँति सों व्रत करिके जब । जात हुतो जागरण माँहि तब ।।
दो० व्रत एकादशी नित करै, सुनै कथा मन लाय ।
रैन बितावे प्रीति सों, मेरे ही गुण गाय ।।१२।।
एक समय मारग के माहीं । ठाढ़ो हुतो दैत्य बलवाहीं ।।
महाभयानक घोर सरूपा । ओंड़ो मुख ज्यों अन्धो कूपा ।।
बड़ी भुजा दोउ सूँड़ समाना । सन्मुख भक्त के कियो पयाना ।।
दो० जात उतें वा भक्त कूँ, भई दैत्य सों भेंट ।
भली भई तू मोहि मिल्यो, अब तोहि लेउँ लपेट ।।१३।।

दौरचो कूदि मारि किलकारी। हाथ चलाय थाप की मारी॥
थाप दुष्ट की निष्फल गई। देह भक्त की निर्मल भई॥
बहुरि क्रोध करि ठाढ़ो रह्यऊ। मुख पसारि फिर ऐसे कह्यऊ॥
मैं अब तोकूँ जान न देहूँ। भूखो बहुत बेगि तोहि खैहूँ॥
भक्त कहै सुन दैत्य जु भाई। तू या वन सूँ कहूँ न जाई॥
मेरो नेम आज तू राख। भोर आय हूँ हरि हैं साख॥
इही ठौर तू ठाढ़ो रहियो। प्रात भये ही मोकूँ खैयो॥
दो० इक बाचा[१] द्वै बाच हैं, अरु तीन बाच हैं मोहि।
निशि कीर्तन कर प्रात ही, आन देउँ तन तोहि॥१४॥

॥ राक्षस वचन ॥

राक्षस कहै तू कैसे आवै। झूँठ बात सों जीव छुटावै॥
तेरी बाचा कैसे मानूँ। साँच बात तेरी क्यों जानूँ॥
अरे बावरे भयो बावरो। आज बन्यो है मेरो दावरो॥
मेरी बुधि ऐसी क्या सठिया[२]। हाथ परो तोहि छाँड़ूँ बटिया[३]॥
भक्त कहै मैं साँची भाखूँ। यामें कपट न मन में राखूँ॥
चार घरी रैन जब रहै। इहीं ठौर तू मोकूँ लहै॥
दो० जैसे तैसे दैत्य ने, कह्यो बेग ही जाव।
मोकूँ बाचा देय के, भोर भये फिर आव॥१५॥
चल्यो भक्त अति प्रेम सों, नेम निबाहन काज।
सुफल जनम तब जानि हों, करूँ जागरण आज॥१६॥
मन कर तन कर राम रिझाऊँ। अति प्रसन्न हो हरिगुन गाऊँ॥

१ प्रतिज्ञा २ खराब हो गई ३ भोजन।

बहु हुलास सों वेगही चल्यो । रोम रोम फुल्लत मन भलो ॥
उमँग उछाह सों पहुँचो जहाँ । साध सन्त मिल गावें तहाँ ॥
पहुँच्यो आय साधन के तीरा । भजन होत जहाँ गहर गँभीरा ॥
कथा कीरतन सव मिल गावें । ताल मृदंग और वीन वजावें ॥
कोइ नाचत कोइ रीझ रिझावत । कोई प्रेम सों मोद वढ़ावत ॥
इनहूँ बैठ भजन अति कीना । हरि के चरणकमल चित दीना ॥
प्रभु के प्रेम जु विह्वल भयो । भजन करत निरमल ह्वै गयो ॥
ताली ताल वजाय रिझायो । हरिगुन गाय परम सुख पायो ॥
भोर आरती करी सुहाई । चलवे की चिन्ता मन आई ॥

दो० ऐसी विधि सों रैन सव, वीती भजन प्रताप ।
ताके दरशन करत ही, दैत्य भयो निहपाप ॥१७॥

दौरच्यो निकट दैत्य के आयो । जोर दोऊ कर शीस नवायो ॥
कहै भक्त तू अव मोहि खाय । भूखो है तू लेह अघाय ॥
धन्न धन मेरे भाग वड़ाई । यह काया तो कारज आई ॥

दो० देख्यो दिव्य सरूप तव, दैत्य भयो निहपाप ।
कुवुधि वुद्धि सव नस गई, छूट्यो सवै सराप ॥१८॥

दैत्य कहै मैं अव नहिं खाऊँ । इक एकादशि को फल पाऊँ ॥

दो० भक्त कहै एकादशी, कैसे के तोहि देउँ ।
मेरे तो पूँजी यहै, तोकूँ दे कहा लेउँ ॥१९॥

तन मेरो तोहि जा विधि भावे । लेह खाहि मोहि यहो सुहावे ॥

दो० दैत्य कहै जु एकादशी, याको फल तू लेह ।
करि आयो जो जागरन, ताही को फल देह ॥२०॥

भक्त कहै यह हू नहिं देहूँ । तोकूँ दैकै मैं कित जैहूँ ॥
यह शरीर तू क्यों नहिं खावे । जाकूँ खाय परम सुख पावे ॥
फिर बोल्यो दैत्य कर जोरे । बहुत भाँति सों किये निहोरे ॥
अरे साध अब दया करीजे । मोहि इक ताली को फल दीजे ॥
दो० जगत परायन कारनै, प्रगट भये हैं साध ।
इक ताली को फल दियो, हरी दुष्ट की व्याध ॥२१॥
ताली को फल देत ही, दिव्यरूप भयो तास ।
चढ़ बिमान स्वर्गहि गयो, तहँ पायो सुख वास ॥२२॥

॥ श्रीभगवान् के वचन राजा सों ॥

दो० इक प्रसंग तोसों कहूँ, सुन राजा मन लाय ।
ता प्रसंग के सुनत ही, तम अज्ञान मिट जाय ॥२३॥
कलि में प्राणी ऐसे ह्वै हैं । कथा भजन में मन नहिं दैहैं ॥
गनिका नृत्य करैंगी जहाँ । अति हुलास सों जैहैं तहाँ ॥
कुबुधि दृष्टि सों देखें सोई । खरचें दाम मगन मन होई ॥
नेम धरम की बात न भैहे । वृथा बाद कूँ मन ललचै है ॥
जहाँ ज्ञान की चरचा परि है । अज्ञानी तिन सों लर मरि है ॥
धर्म घटे पाप बहु होई । पाप आचरण करें सब कोई ॥
दो० बढ़ि है पूरन पाप जब, घटि है राज प्रताप ।
उमर छीन धन हीन होय, घटै पुण्य बढ़ै पाप ॥२४॥
कुबुध संग ते नरकै जैहैं । भुगतें कष्ट महा दुख पैहैं ॥
असुर जोन को पावें सोई । नीच संग को यह फल होई ॥
दो० इहिविधि कलियुग प्रगट है, साध चहैं नहिं कोय ।

कामी क्रोधी अति छली, तिनकी सेवा होय ॥
सतसंगत तें मोकूँ पावे । निकट रहै मेरे मन भावे ॥
गरभ जोंन नहिं आवै सोई । सतसंगति बिन मुक्त न होई ॥
कथा पुनीत यह तोहि सुनाई । हो राजा तेरे मन भाई ॥
या विधि सों जे कलियुग माहीं । जागरण कर मेरे गुन गाई ॥
तिनको मैं सब दुःख निवारूँ । भवसागर तें वेग उबारूँ ॥
सतयुग त्रेता द्वापर माहीं । करत तपस्या बहु कठिनाई ॥
तबहूँ मेरो दरश न पावै । इती घनी जो प्रीति लगावै ॥
जे कलियुग में कीरतन करैं । पावैं सुख भवसागर तरैं ॥
सुगम रीति यह तोहि बताई । सुन राजा तेरे हित गाई ॥

दो० इहि विधि श्री भगवान ने, राजहि कियो उपदेश ।
पद्मपुराण में यह कथा, कही व्यास योगेश ॥२६॥
पानी का सा बुलबुला, ऐसे सुख संसार ।
भवसागर के तरन कूँ, कीर्तन है ततसार ॥२७॥
पलपल छिनछिन अवधि यह, घटत जात है सोय ।
शुकदेव कहैं या कथा को, सुन लीजो सब कोय ॥२८॥
अहो शिष्य तोसों कही, अचरज कथा अनूप ।
शुकदेव कहैं कोई सुनैं, देखैं हरि को रुप ॥२९॥
श्री सतगुरु शुकदेव कूं, हित सों करु प्रणाम ।
चरणदास को दीजिये, चरणन में विश्राम ॥३०॥

॥ इति श्री स्वामी चरणदासजी कृत जागरण माहात्म्यम् संपूर्णम् ॥

अथ श्री स्वामी चरणदास जी कृत

श्रीधर ब्राह्मण लीला

॥ राग काफ़ी ॥

सुनो रे साधो मोहन की बतियाँ ।
श्रवनन सुन हियरो हुलसत है, शीतल हो छतियाँ ॥
कृष्ण पूतना जब हरि मारी, सुनकर कंस डरायो ।
श्रीधर ब्राह्मण अपने घर को, तासों दुख समझायो ॥
बोल्यो द्विज मोहि आज्ञा दीजे, अब ही गोकुल जाऊँ ।
काज करूँ तेरे मन भायो, हति बालक घर आऊँ ॥
बीड़ा लेकर चलो ब्राह्मण, पहुँचो गोकुल जाई ।
दई अशीस नंद यशुदा नै, जीवो कुँवर कन्हाई ॥
ब्राह्मण रूप देख यशुदा ने, आदर कर बैठायो ।
ले चरणोदक पूछन लागी, किह कारन तू आयो ॥
बोल्यो बचन कपट के जैसे, सहत[1] छुरी लिपटायो ।
तेरे भयो पूत मैं सुनके, तासु देखने आयो ॥
पलना पौढ़्यो ललना अबही, जागै तब दिखलाऊँ ।
तुम बैठो मैं जमुना जाऊँ, न्हाय बहुरि घर आऊँ ॥
सूनो मन्दिर देखि श्रीधर, दाँव[2] पाय उठ धायो ।
मारन कारन कियो मनोरथ, मन में अति हुलसायो ॥
अन्तरयामी उठे अचानक, श्रीधर पकड़ पछारो ।

---

१ शहद २ मौका ।

दे छाती पर जीभ मरोड़ी, नाहिं जीव सूँ मारो ॥
बहुरि दही ले मुख सों मीडो[1], अरु भू में ढरकायो ।
आपन पोढ़ रहे पलना में, यह कौतुक दरसायो ॥
आय जसोमति पूछन लागी, अरे कहा यह कीनो ।
बोल न आवै सैन बतावै, हरि सौंहो[2] कर दीनो ॥
रिसाय खिसाय कर चलो कंस पै, जीभ खोय घर आयो ।
हाँफत काँपत लिखी अवस्था, राजा कूँ दिखलायो ॥
पढ़ कर कंस धुनें मूड़ी[3] कूँ, अब कहा कीजे भाई ।
चरणदास शुकदेव श्याम की, लीला पै बलिजाई ॥

अथ श्री स्वामी चरणदासजी कृत

माखन चोरी लीला

एक समय गोपाल ग्वाल सँग लेकर धाये ।
ग्वारिन गइ जल भरन देख सूने घर आये ॥
छीके पै माखन धरो लीनो ताहि उतार ।
तबही ग्वारिन आय के पकरे कृष्ण मुरार ॥
अचरज गाइए तुम सुनियो सन्त सुजान ॥१॥
तब गह लीने श्याम चली ग्वारिन यशुदा पै ।
सखी और द्वै चार मिली सँग भई जु ताके ॥
बहुत दिनां चोरी करी आज ही आये हाथ ।

---

१ लपेट दिया २ तरफ ३ सिर ।

गुलचा देकर यों कह्यो अब क्यों न भाजो नाथ ॥
अचरज गाइये तुम सुनियो सन्त सुजान ॥२॥
ह्वाँते चाली तुरत बेग माता पै आई ।
तेरो मोहन चपल जु ब्रज में धूम मचाई ॥
एक कहै मेरे घर धस्यो माखन दियो लुटाय ।
एक कहै मेरे शीस तें गागर दइ ढरकाय ॥
अचरज गाइये तुम सुनियो सन्त सुजान ॥३॥
एक कहै गहि चीर हार हिये तें मेरो झटको ।
एक कहै दधि माट चाट धरती पर पटको ॥
एक कहै मोहि घेर के दान लगावे आय ।
तेरो मोहन ढीठ है बरज यशोदा माय ॥
अचरज गाइये तुम सुनियो सन्त सुजान ॥४॥
तब श्रीमोहनलाल मतो मन माँहि बिचारो ।
उनको मन लियो खैंच कछू टोना पढ़ डारो ॥
एक और बालक खरो ताकी पकरी बाँह ।
ग्वारिन के कर में दियो भेद लख्यो कोउ नाँहि ॥
अचरज गाइए तुम सुनियो सन्त सुजान ॥५॥
अपनो हाथ छुटाय दौर माता ढिग आये ।
लीला अद्भुत देख परमसुख मैया पाये ॥
तब हँस यशुदा ने कह्यो कहो ग्वारिनी बात ।
किह कारण आई सबै घर में है कुशलात ॥
अचरज गाइये तुम सुनियो सन्त सुजान ॥६॥

जो देखें कर ओर कहैं यह बालक काको ।
हम गह लाईं कुँवर कान्ह भयो अचरज जाको ॥
सब मिल खिसियानी[१] भईं कहन लगी मुख मोर ।
ना जाने इन कहा कियो ढोटा चित के चोर ॥
अचरज गाइये तुम सुनियो सन्त सुजान ॥७॥
पूरण पुरुष अनादि ईश तिहुँपुर को स्वामी ।
घट घट व्यापक होय रहो हरि अन्तरयामी ॥
ताके कौतुक बहुत हैं कहाँ लौं करूँ बखान ।
चरणदास सुखदेव ने कह्यो भागौत पुरान ॥
अचरज गाइये तुम सुनियो सन्त सुजान ॥८॥

॥ इति श्री स्वामी चरणदासजी कृत माखनचोरी लीला संपूर्णम् ॥

अथ श्री स्वामी चरणदासजी कृत

मटकी लीला

पीरो फैंटा तुर्रो थिरकत[२] नाक बुलाक अधर मटकी ।
मन्द मन्द मुसकात कन्हैया कुण्डल चपला सी झटकी ॥
सब तन कछें[३] सजें आभूषण कटि ऊपर जुलफें लटकी ।
चरणदास देखत मन व्याकुल चट चौपट[४] मटकी पटकी ॥१॥
सुन्दर रूप सलौनी सी अँखियाँ तिलक भाल अलकें लटकी ।
मोरमुकट कुण्डल की झलकें चरणदास हिय में खटकी ॥

१ क्रोधित हुई २ हिलता है ३ पहने हुए ४ सबके देखते देखते ।

मुतियन की माला मुरलीवाला सुध न गई पियरे पट की।
चित चुराय जबही मेरो लीन्हों चट चौपट झटकी पटकी ॥२॥
मुरली की धुन सुन बिरह बान लग आय कलेजे में खटकी।
दधि भाजन ले धरो शीस पर मोहन देखन कूँ सटकी ॥
चरणदास काहू की न माने सास ननद केती[1] हटकी।
चार दिरग[2] जब भये श्याम सूँ चट चौपट झटकी पटकी ॥३॥
हँसता देख मदन मोहन कूँ ग्वारन आपन कूँ ठठकी[3]।
दौर कन्हैया जाय गही जब पकर चीर कर सूँ झटकी ॥
चरणदास हूँ हाहा करती सुन्दर पायन कूँ लटकी।
केतो कहो जु कछु नहिं मानत ले झटकी चौपट पटकी ॥४॥
कहै यशोमति सुनो ग्वारनी तू आई भूली भटकी।
मेरो कान्ह अति बारो[4] भोरो कहा जानें फोरन मटकी।
अधरन दूध नहीं अब सूको बालक बुद्धि वही घटकी।
चरणदास तू झूँठी ग्वारन किन झटकी चौपट पटकी ॥५॥
कहै ग्वारिनी सुनो यशोमत यह गत सुन अपने नट की।
हूँ मारग जात चली अपने मेरी पकर बाँह फोरी मटकी ॥
मैं आप बचाय चली मग औरे चरणदास केतो फटकी।
वह चातुर श्याम लखै सब नारिन ले झटकी चौपट पटकी ॥६॥
रात निहारे झिलमिल तारे चन्द चाँदनी रही छिटकी।
निकस भवन से भजो कन्हैया हाथ लिए दधि की मटकी ॥
चरणदास हूँ पाछे परिया वन कुंजन कुंजन भटकी।

१ कई वार २ नेत्र ३ रुक गई ४ छोटा।

दधि मोरा खाय गार मोही दे चट चौपट मटकी पटकी ॥७॥
कहे यशोमति सुनो ग्वारिनी राह गहो वंशीवट की ।
पकड़ कन्हैया भीतर लाऊँ मारूँ एक भली चटकी ॥
कहा करूँ वीर[1] मानत नाहीं बाहर जात घनों हटकी[2] ।
चरणदास जो चाहे सो लै जो मटकी चौपट पटकी ॥८॥

अथ श्री महाराज साहब श्री स्वामी चरणदासजी कृत

दान लीला

दो० ब्रजबनिता और श्याम की, लीला कहि शुकदेव ।
चरणदास जाके सुने, बढ़ै भक्ति को भेव ॥
बालचरित्र गोपाल के, पढ़त हियो हुलसाय ।
चरणदास कहै सन्त जन, गावो मन चित लाय ॥
एक समय ब्रजभामिनी, मिल दधि बेचन जात ।
मारग रोक्यो साँवरे, लिये लकुटिया हाथ ॥
माँगन लागे दान जब, मोहन बाँके छैल ।
हँसकर बोली ग्वालिनी, तू छाँड़ हमारी गैल ॥
अरे तू कैसो माँगे दान, मोहन साँवरे ।
हम मागें दधि को दान, गूजरि बावरी ॥
चल्यो जारे कृष्ण मुरार, गऊ चरावरे ।
तुम ठाढ़ी रहो री गँवारि, याही ठाँवरी ॥

---

१ बहिन २ हठीला ।

दो० भली भाँति सों देहु तो, रार सबै मिटि जाय ।
जो तुम मानों नाहिनैं, तो मैं ग्वालहिं देउँ सिखाय ॥
ऐसो को है लाल जू, छुवे हमारी छाँह ।
सुन पावेगो कंस जो, तुम भाजो और ठाँह ॥
को है कंस कहाँ को राजा, मोकूँ कहा डराव ।
वाहू मार निकसि हूँ, तुम अबै पुकारो जाव ॥
हम जानत तुम अति बलदाई, प्रगटे मदन गुपाल ।
मुख छोटो बातें बड़ी, तुम काहे बजावत गाल ॥
तीन लोक चौदह भुवन, और सकल विस्तार ।
मेरे मुख की डाढ़ में, सदा रहै निरधार ॥
कहा बड़ाई करत हो, वन के पींचू[1] खाय ।
गऊ चरावो ग्वाल संग, तुम बातें करत बनाय ॥
एक एक की मटकी छीनूँ, देहूँ दही लुटाय ।
कहा गरब की बात ये, तुम बोलत नैंन नचाय ॥
सुनहु कुँवर नन्दराय के, हम बरसाने की ग्वार ।
ठाकुर है वृषभान ह्वाँ, तोहि जानत सब संसार ॥
पहल बोहनी के समय, मेटो नाट[2] हमार ।
भोर ही कहा झगरो करो, तुम एहो ब्रज की नार ॥
बड़े जगाती[3] भये हो, ढोटा मदन मुरार ।
कान[4] करत हैं महर की, नहिं देंह प्रीत की गार ॥
हम नन्दलाल कहावई, या जग के सिरताज ।

१ एक प्रकार का जंगली फल २ नाहीं करना ३ कर लेने वाला ४ लिहाज ।

लेहूँ हाँसिल मही को, तुम दान देहु मेरो आज ॥
इती रार क्यों करत हौ, ठाली कोऊ नाहिं ।
मारग हमरो छाँड़ दै, हम फिर अपने घर जाहिं ॥
कंस क्रूर मतिहीन के, भै तें क्यों डरपाव ।
अपने आभूषण कोई, मोपै गहने धर धर जाव ॥
रतन जटित गहनेन को, तुम कहा जानों सार ।
गुंजमाल पहरत सदा, मुरली के बजावनहार ॥
इन बंशी मोहे सबै, ब्रह्मा और महेश ।
सुर नर मुनि सनकादि हूँ, इन्द्रादिक नारद शेश ॥
कहा सराहो आपही, काँधे काँमर राख ।
कर लकुटी तनियाँ[1] पहर, चोरी को माखन चाख ॥
कोटि कोटि ब्रह्माण्ड हैं, रोम रोम के माँहि ।
ऐसी है यह कामरी, जाकूँ जोगी देख लुभाँहि ॥
जब हम घरतें नीकसी, दहनी फरकी आँख ।
छींक्यो किन्हूँ तराक[2] दे, देखो भई सँकारे[3] ही काँक[4] ॥
हमहूँ जब घर ते चले, सुगन भयो बन माहि ।
तुम सों भेंट भई अबै, हम लूट दही सब खाँहि ॥
ऐंचातानी जिन करो, टूटें मोती हार ।
छूटें लर बिखरें धरन, फिर बीनत होय जँजार ॥
दाऊ की सौं खात हूँ, बिन लिये जान न देऊँ ।
टूटे तो लूटें सखा, मैं तो गोरस को रस लेऊँ ॥

१ बगलबंधी २ जोर से ३ प्रातः काल ४ खटपट ।

रस को चसको जो परो, मसको घर क्यों न खाव ।
छोटे अति खोटे महा, कहा सीखे करन चबाव[१] ॥
हमरे तो यही नेम है, तुमसों कह्यो सुनाय ।
प्रेम प्रीति की रीति को, रस कैसे छाँड़ो जाय ॥
चरणदास है चरण को, मान लेउ घनश्याम ।
काहू विधि छाँड़ो हमें, करजोर करें परनाम ॥
क्योंहूँ जान न पावहो, अहो सयानी नार ।
चरणदास कहै लालजू, ऐसे बोले बचन सँभार ॥
बातें कहा बनाय के, कविता करत बखान ।
हा हा अब घर जान दै, मेरे प्यारे चतुर सुजान ॥
हा हा खा कैसे छुटौ, छाँडूँ नाच नचाय ।
देखूँ तो कैसो जम्यो, नेक दीजे दही चखाय ॥
उठ बोली इक ग्वारिनी, भौंह मटक मुसकाय ।
पीवो गोरस पेट भर, तुम दोऊ कर ओक बनाय ॥
बैठ ऊकडू चाव सों, कीनी ओक[२] बनाय ।
पीवन की इच्छा करी, मन में अति ही ललचाय ॥
मटकी सों डहकाय के, गूँठा दियो दिखाय ।
कहो स्वाद बतलाइये, कछु मीठो है मनभाय ॥
भलैं भलैं चुपकी रहो, अब द्यूं स्वाद बताय ।
रैता[३] पैता[३] मनसुखा[३], और सबकूँ लियो बुलाय ॥
दूरही सों बातें करो, जिन छूवो मटकी आय ।

१ मुँहजोरी २ अंजली ३ श्रीकृष्ण के सखाओं के नाम ।

पकड़ ले चलें नन्द पै, तेरे गुलचा दोय लगाय ॥
तबै लाड़ले सखनकूं, दीनी सैन बताय।
चटपट मटकी झटक कै, गटक लई दधि जाय ॥
कर ठोढ़ी धर यों कहैं, दइया[1] इन कहा कीन।
अहो लाल ठाढ़े रहो, तुम काहिलियो दधि छीन॥
हम तो चाह्यो पहल ही, दही नैक सो लैन।
तुम चतुराई ठान कै, लगी मोंहि अँगूठा दैन ॥
कहा कहैं घर जाय कै, सुन हो नन्द किशोर।
तैं लूट्यो सगरो दही, और भाजन डारे फोर ॥
अरस परस झगरें सरस, नेह बढ्यो दोउ ओर।
केलि करें ब्रजनागरी, नटनागर कुंवर किशोर ॥
प्रेम मगन ग्वारिन भई, बाढ़ो अधिक अनन्द।
सरवस दे पाँयन परी, तब मेटे सब दुख द्वन्द ॥
अचरज लीला कृष्ण की, कहाँ लग करूँ बखान।
चरणदास शुकदेव दयासूं, पावै पद निज अस्थान ॥
जो कोऊ यह लीला सुनत, गावत करत विलास।
अमरलोक निहचय मिलै, तहाँ पावै नितही बास ॥

इति श्री महाराज साहब श्री स्वामी चरणदासजी कृत
दानलीला सम्पूर्णम् ॥

---

१ दैव।

अथ महाराज साहब श्री स्वामी चरणदास जी कृत

काली नथन लीला

॥ राग माँझ ॥

सतगुरुजी के चरण मनाऊँ जासें बुधि परकाशे ।
ज्ञान बढ़े मन निर्मल होवे दुबिधा दुरमति नाशे ॥
बहुरि ईश करतार गुसाईं तुमको शीश नवाऊँ ।
चरणदास करजोर कहत है चरण कमल चित लाऊँ ॥
प्रेमकथा की बात अनोखी सुनो सन्त चितलाई ।
श्रीशुकदेव कहैं राजा सों अद्भुत चरित कन्हाई ॥
मनमोहन प्यारे की बतियाँ चरणदास मन भाई ।
कालीनथन श्यामजू कीनों लाकी माँझ बनाई ॥
एक समय हरि चिन्ता कीनी विषधर अति दुखदाई ।
ग्वाल बच्छ जल पीवन जावें तिनकूँ बहुत सताई ॥
वा काली को गर्व निवारूँ जल सों काढ़ निकारूँ ।
चरणदास हरि कियो मनोरथ जल निर्मल कर डारूँ ॥
चले आपही ग्वाल गाय ले यमुना ओर कन्हाई ।
पहुंचे बेग जाय वाही ठाँ घर छाँड़ो बल भाई ॥
हुतो किनारे वृक्ष कदंब को तापर चढ़े मुरारी ।
सोवत ही सूँ जाग्यो काली दई श्याम जब तारी ॥
उठ्यो रिसाय शब्द किन कीनो को आयो या ठाईं ।

पक्षीहू कोउ कैसे आवे पवन गवन ह्यां नाहीं ॥
अद्भुत चरित सुनत मोहन के मिटै पाप के भारा ।
चरणदास कहै गोविन्द प्यारे कूद परे जलधारा ॥
दियो हलाय दोऊ कर सों जल काली महा रिसायो ।
चरणदास कहै भली नींद सों जाग कोप कर धायो ॥
लिपट्यो आय क्रोध कर गाढ़ो सुन्दर श्याम शरीरा ।
देव सबै देखन को आये लीला श्री बलबीरा ॥
फन हज़ार विषधर ने काढ़े देखें सबै गुवाल ।
गिरे विकल होय सब मुरझाये बिन सुन्दर गोपाल ॥
कछू उदास भये ब्रज के जन मन में अति उकलावें ।
चरणदास कहै नन्द यशोदा अपने देव मनावें ॥
विधना आज सुगन कछु हमको नीको लागत नाहीं ।
कृष्णकुँवर बन गये अकेले बिन बलरामा भाई ॥
चलिये अबै सबै बन धाई मोहन की सुध लावें ।
खान पान विष सम लागत हैं जबलौं खबर न पावें ॥
व्याकुल होय तुरत उठि धाये आये जमुना तीरा ।
देखें तो सब ग्वाल खरे हैं नाहीं है बलबीरा ॥
पूछन लगे सखन सूँ सबही कित गयो प्राणपियारो ।
चरणदास कहै बेग बताओ जीवनप्राण हमारो ॥
बोल न आवै भये पूतरे बिन हरि वे सब ग्वाला ।
कैसे उत्तर दें उनहीं कों सुध न रही तिहि काला ॥
ढूँढ़त ढूँढ़त सबही हारे क्यों हूँ कै सुधि पाई ।

चरणदास कहै जो देखें तो जल में खरे कन्हाई ॥
यह गति देखी जब सबही ने मुरझ परे भू माहीं ।
कैसे कहूँ अवस्था उनकी विकल भये तिहि ठाईं ॥
माय यशोदा अतिही व्याकुल जल में कूद्यो चाह्यो ।
चरणदास बलदेव पुत्र ने माता कूँ समझायो ॥
अहो मात सुन बात हमारी धीर धरो मन माहीं ।
किते कंस के दूत पछारे याकूँ भय कछु नाहीं ॥
जब यह बात सुनी माता ने प्राण गयो तन आयो ।
चरणदास कहै सब ब्रजवासी यह सुन के सुख पायो ॥
कहैं शुकदेव परीक्षित सों जब मोहन ऐसे जान्यों ।
मो कारन ये सबही व्याकुल शोच शोच दुख मान्यों ॥
तब तिरभंगी लालबिहारी ऐसे भेद बिचारो ।
लटक मटक झटपट काली के फन ऊपर पग धारो ॥
मुरली अधर धरैं कर माँहीं मधुर मधुर सुर गावैं ।
बाजे बजें तीस छह[1] छबि सों देव पुहप बरसावैं ॥
तत थेइ थेइ सांगीत कला सब घुँघरू की गति न्यारी ।
ऐसे कियो छीन बल वाको नाचत कुंजबिहारी ॥
काली भयो विकल बहु जबही मन में यही विचारो ।
मेरो गयो सकल बल तनको अब मैं यासों हारो ॥
यह तो महाबली बनमाली ऐसो और न कोऊ ।
इन सब मेरो गरब बहायो बल हर लीनो सोऊ ॥

१ छत्तीस ।

तबै नाग की नागिन आई सुता गोद में धारे ।
हरि को शीश नवा विनती करि कर जोरें उच्चारे ॥
अहो नाथ त्रिभुवन के स्वामी तुमको जो जन धावैं[१] ।
चरणदास कहै मुक्त होय कर सो निर्भय पद पावैं ॥
हो हरि इन क्रोधी पति मेरे तुम्हरी गति नहिं जानी ।
कर्महीन ये महा मूढ़मति शठ अति ही अभिमानी ॥
पै हम जानत हैं मन माहीं यह तो है बड़ भागी ।
जा रज को सनकादिक धावैं सो याके शिर लागी ॥
यह बिनती थोरी सी प्यारे बहुत मान कर लीजे ।
मो पति दीन हीन बुध मति को दान जीव को दीजे ॥
जो पति कोढ़ी अन्ध होय तो नारी ईश्वर जानै ।
चरणदास पतिवर्त्ता सोई नारी पिय मन मानै ॥
पै धन[२] धन है यह मेरो पति भागवान मन भायो ।
जाके संग प्रताप तिहारो मैं हूँ दरशन पायो ॥
अब याहि छाँड़ बड़ो जस लीजे प्राण जीवन बनवारी ।
चरणदास कहै बिनती सुनके हुए दयाल मुरारी ॥
करुणासिन्धु कृपा को सागर दुख को मेटन हारो ।
ह्वै दयाल काली के ऊपर जीवत ताहि उबारो ॥
चरणदास कहै हरि उठ बोले मन में शंक न लावो ।
कुटुम्ब सहित तुम अब ही ह्यां सों उदधिपुरी[३] को जावो ॥
मेरे चिन्ह चरण के तेरे माथे अधिक सुहावें ।

१ ध्यावैं २ धन्य ३ समुद्र में रमणक द्वीप ।

जाको दरशन गरुड़ देख के तोकूँ शीश नवावें ॥
चरणदास कहै ऐसे हरि ने काली को वर दीनों ।
तव विषधर ने कर परिकरमा गवन सिन्धु को कीनों ॥
काली नथन श्यामजू करके कालीनाथ कहाए ।
चरणदास कहै हरि दरशन सों ब्रजजन आनँद पाए ॥
यह हरि कथा यथामति गाई जो सुनके मन लावे ।
विषधर को भय नाहीं व्यापै अन्त परमपद पावे ॥

इति श्री महाराज साहिव श्री स्वामी चरणदासजी कृत कालीनथन-लीला सम्पूर्णम् ॥



चीर हरण लीला

॥ पद ॥

पैयाँ लागूँ मोहन प्यारे दीजे म्हारो चीर,
जाड़ो[1] लागै छै जी म्हाँने जमुना के तीर।
कहाँ सीखे ऐसी टेव अहो वलवीर,
हम अबला ठाढ़ी नगन शरीर ॥
कदम के ऊपर बैठे वसन चुराय,
माखन लै लै खाते हमसों सौ सौ हा हा खाय।
विनती करते अति शीस नवाय,
राखिये अब लाज हमारी हूजिये सहाय ॥
तब बोले अन्तरयामी अन्तर उघार,
लै लै जावो वस्त्र अपने एहो व्रज की नार।
प्रेम की भक्ति करी तुम सुकुमार,
प्रेम के आधीन फिरौं भक्तन के लार ॥
अपनो भायो कियो प्यारे श्याम सुजान,
वस्त्र दे दीने सखी छाँडी कुल की कान।
तन मन माहीं रमें कृष्ण भगवान,
प्रीति की परीक्षा करी नन्द जू के कान ॥
यशोदा को छैया श्याम भैया वलदेव,
मान लई सत्य प्रीति सखियन की सेव।
हरि की लीला कही शुकमुनि देव,
चरनदास सखी पायो निज भेव ॥

---

१ सर्दी।

चौबन लीला

॥ राग सोरठ ॥

हरि पै जान दै पति मोकूँ ।
घेरी आय बाट के माहीं, कहा कहूँ अब तोकूँ ॥
या मथुरा की बहु ब्रजनारी, बिजन अधिक बनाए ।
लै लै भेंट चली मोहन कूँ, निकट गाँव हरि आए ॥
मो कारन यह सखी सहेली, हैं इक ठौरी ठाढ़ी ।
बाट निहारैं बेगि पधारैं, प्रीति श्याम सूँ बाढ़ी ॥
चौबे बोल्यो मूरख नारी, तू सुध बुध क्यों खोवे ।
अपनो पुरुष तजै जो तिरिया, कुल की लाज डुबोवे ॥
तातें इनको संग छाँड़के, चल अपने घर माहीं ।
हम तो विप्र सबन तें ऊँचे, यामें संसो नाहीं ॥
चौबन कहै सुनो हो स्वामी, मोहि लाज नहिं भावै ।
बिगड़ै काज लाज सूँ मेरे, बिरथा बाद बढ़ावै ॥
तुमहूँ नहिं या तन के साथी, देखा समझ बिचारा ।
वे दीनन के नाथ कहावैं, पतित उधारनहारा ॥
हठ नहिं कीजे आज्ञा दीजे, अबहीं उलटी आऊँ ।
हाहा तुम्हरी आज्ञा सेती, प्रभु को दरशन पाऊँ ॥
तबहिं रिसाय पकर कर ल्यायो, पग में बेड़ी डारी ।
खैंच दई कोठे के भीतर, पट[1] दे साँकल मारी ॥
फिर बोली मंदिर के अंदर, सुन हो साँच हमारो ।

१ किवाड़ ।

जीवत बहुरि मिलूं नहिं कबहूँ, देखूं मुख न तुम्हारो ॥
जानत हूँ तू बड़ी हठीली, भई बिषै रस बौरी ।
मारूँ खड्ग निकासूं तेरी, अबै प्रेम की डोरी ॥
तब तो चलीं सबै वे नारी, याकी आशा त्यागी ।
तज के देह गई आगे ही, वह वनिता बड़भागी ॥
हरि रीझे जब चरनों लाई, भौसागर सूं त्यारी ।
चरणदास शुकदेव कहत हैं, करी प्रेम हित प्यारी ॥

अनुराग लीला

॥ राग हेली ॥

नन्दलला की बात हेली, कहा करूँ नहिं कह सकूँ ।
सकुच लगै जो मैं कहूँ री, अरी हेली मो पै कह्यो न जाय ॥
अपने अटा जो हूँ चढूं री, अरी हेली सौंही[1] देखै आय ।
लालच लागो ही फिरै, मुरली की टेर सुनाय ॥
मोहिं देख हकधक रहै री, अरी हेली गहरे लेत उसास ।
दोहा गाय वियोग का, अति ही होत उदास ॥
जब जमुना जल कों चलूं री, अरी हेली देखत टोकत जाय ।
मैं न लखूं वा ओर कों, मेरी गागर चोट चलाय ॥
धूप माहिं जो हूँ चलूं री, अरी हेली करै मुकुट की छाँह ।
हँसै हँसावै दूर सों, मेरी गहै अकेले बाँह ॥

---

१ सीधे सामने ।

वह मोपै मोहित भयो री, अरी हेली मेरो हू मन ललचाय ।
प्रीति लगी दोउ ओर सों, मत घर वर छुट जाय ॥
कुल मेरो लाजो सबैरी, अरी हेली बुरो कहो सब लोग ।
मैं अपने बस ना रही, लगो प्रेम को रोग ॥
देखत ही सुख ऊपजै री, अरी हेली ओट भये दुख होय ।
चरणदास हरि की भई, नैंन लुभाने दोय ॥

रास लीला

॥ राग हेली ॥

रास रच्यो नंदलाल, हेली वृन्दावन के माँहि ।
संग विराजै राधिका री, अरी हेली अपने पिय के नाल ॥
मुरली मधुर बजाई री, अरी हेली सुनत भई बेहाल ।
जेती व्रजबाला सबै, तन की रही न सँभाल ॥
खान पान बिसराय के री, अरी हेली उमँग चली बन माँहि ।
जो नहिं मानै साँच तू, वे देखो दौरी जाँहि ॥
शरद रैन अति सोहनी री, अरी हेली फैलो पूरन चन्द ।
चतुरानन मुनिजन रिषिन, मोहे सनक सनन्द ॥
पशु पक्षी मृग हू थके री, अरी हेली शंकर छोड़्यो ध्यान ।
बाढ़ी निशि शशि हू थक्यो, रंभा भूली तान ॥
तीसरु छै बाजे बजैं री, अरी हेली राग रागनी साथ ।
तत्त थेइ थेइ झुनकार सों, नाचैं गोपीनाथ ॥

अब हम तुम दोऊ चलैं री, अरी हेली जहाँ शुकदेव दयाल।
चरणदास होय देखि हैं, अद्भुत चरित गुपाल ॥

होरी लीला

॥ राग हेली ॥

होरी खेलै साँवरो, हेली ग्वाल वाल लै संग।
कोऊ ढफ ताल वजावई री, अरी हेली कोऊ वीन मुहचंग
लाल वसन सवके वनेरी, अरी हेली लाल लाल ही पाग
नाचत कूदत चाव सों, गावत आये फाग ॥
गैल रोक ठाढ़ो भयो री, अरी हेली काहू जान न देत।
सैंन वताय सखान कों, छीन मटकियाँ लेत ॥
वहुरि आप रंग सों रंगै री, अरी हेली चोवा देत लगाय।
अवीर गुलाल और अरगजा, मुख पर दे लपटाय ॥
हो हो हो होरी कहै री, अरी हेली छोड़ नाच नचाय।
हा हा हा करवाय कै, फगुवा देत मँगाय ॥
प्रेम प्रीति रस वस करै री, अरी हेली वाँकी चितवन डार।
चरणदास शुकदेव की, लीला अपरम्पार ॥

गोपी विरह लीला

॥ राग हेली ॥

धन्य कुवजा को प्रेम हेली, जिन हमरो पिया वस कियो।
हमकों तज मथुरा गये री, अरी हेली वाको राख्यो नेम॥

कहा कहिये अकरूर सों री, अरी हेली ले गयो हरि कूँ नाल ।
हूँ विरहन बौरी भई, व्याकुल और वेहाल ॥
वे सुख रास विलास के री, अरी हेली छिन इक भूलत नाँहि ।
बाँकी चितवन लाल की, कसक उठे हिये माँहि ॥
वन वन विहरत सँग फिरे री, अरी हेली घर घर माखन खाय ।
अब हरि हम सों बीछुरे, तासूँ कहा बसाय ॥
दूत दले वहु कंस के री, अरी हेली हमरो करी सहाय ।
इन्दर बरस्यो कोप सों, जब हमें लिये बचाय ॥
कैसे निठुर कठोर हैं री, अरी हेली नेह लगाय गए भाज ।
छाय रहे वाहू देश में, कृष्ण कुँवर महाराज ॥
ऐसो दिन कव होयगो री, अरी हेली दरश दिखावें श्याम ।
तन की तपत बुझाय है, आनन्दघन घनश्याम ॥
जो शुकदेव दया करें री, अरी हेली जब मन होवे धीर ।
चरणदास की पीर को, आय हरें बलबीर ॥

॥ राग हेली ॥

मेरे मन की पीर हेली को समझै और को सुनै ।
जब सों बिछुरो साँवरो री, अरी हेली तब सों विकल शरीर ॥
सुधि बुधि सब विसराइया री, अरी हेली देह सुहात न चीर ।
निशिदिन मग जोवत रहूँ, कहाँ रहे हरि हीर ॥
क्यों कर जीवन होयगो री, अरी हेली रंचक रह्यो न धीर ।
छिन छिन गति भई और ही, कहा करूँ हे बीर ॥

फूल गंध आवै नहीं री, अरी हेली लागत कठिन करीर[1] ।
मित्र बिना चित्र सी भई, ज्यों मछली बिन नीर ॥
रोम रोम घायल भई री, अरी हेली लगो प्रेम को तीर ।
कृष्ण वैद बिन को करै, औषध की तदबीर ॥
जो कबहूँ किरपा करैं री, अरी हेली वे शुकदेव गँभीर ।
विरह बिथा चरणदास को, मेटैं श्री बलवीर ॥

॥ राग मंगल, सुहा व बिलावल ॥

चरणदास पिय मोहन प्यारे, मोपै कछु टोना कियो ।
देखत ही सुधि रही न सखी री, खैंच मन को ले गयो ॥
ताही दिन तें भई बौरी, नींद और गई भूख है ।
चित को चिन्ता अधिक बाढ़ी, तन गयो सब सूख है ॥
कहा करूँ कासूँ कहुँ सजनी, लाज की मारी मरूँ ।
एक दिन सखी बरस बीते, विरह पावक में जरूँ ॥

॥ राग मंगल, सुहा व बिलावल ॥

चरणदास शुकदेव प्यारे, कृपा मोपै कीजिए ।
मोहन के ढिग जाय सजनी, मोहिं सुधि आ दीजिए ॥
बिथा मोरी सब सुनावो, ओड[2] सूँ सब दुख कहो ।
वह तुम्हारे लिए तरसे, तुम क्यों ना उनकूँ चहो ॥
ज्यों बने त्यों पिय मिलावो, दरस मोहिं दिखाइए ।
कछू छल बल बनें तो, सजनी संग ही ले आइए ॥

१ करील-कैर का पेड़ २ प्रारम्भ से ।

संयोग लीला

॥ राग मंगल सुहा व विलावल ॥

चरणदास भल भाग सजनी, लाल हम घर आइयो ।
जिन सखी मेरे पिय मिलाये, सो सदा सुख पाइयो ॥
मेरे मन को सुख जो दीनो, तन की तपत बुझाइया ।
मोहन के सँग रली मानी, आनन्द मंगल गाइया ॥
एक सँग जब भोजन कीनो, और ले बालम कहो ।
वा समय की कथा अद्भुत, वह समो[1] सखी नित रहो ॥

वेनी गूथन लीला

॥ राग मंगल सुहा विलावल ॥

चरणदास पिय सखी तेरी, लाग चरणन सूँ रही ।
दासि अपनी जान मोहन, आप कर वैनी गुही ॥
प्रीतम वेनी गुहन लागे, मैं सखी दरपन लियो ।
पीठ पाछे मुख छिपा कर, मंद मंद मुसका दियो ॥
गुह चुके जब पीठ कर धरो, हूँ सखी पाइन परी ।
जा समय पर गुही वैनी, सदा रहियो वह घरी ॥

---

१ समय

॥ श्री श्यामा श्याम ॥

अथ श्री महाराज साहिब श्री स्वामी चरणदासजी कृत

कुरुक्षेत्र लीला

(श्री मद्भागवत दशम स्कन्ध अध्याय ८२ वां के आधार पर)

॥ अष्टपदी छन्द ॥

अपने गुरु शुकदेव कूँ शीस नवाय कैं।
साधो कहूँ कथा भागौत सुनो चित लाय कैं॥
चरणदास के इष्ट कृष्ण गोपाल हैं।
दुःख हरन सुख करन सु दीनदयाल हैं॥
दसम स्कन्ध बिषे यह कथा सब गाइ है।
राजा परीक्षित कूँ शुकदेव सुनाइ है॥
राज सिंहासन ऊपर बैठे थे हरी।
काहू ने सूरज ग्रहन की चरचा आ करी॥१॥
जब श्री मोहनलाल मतौ मन में कियो।
न्हान चलैं कुरुक्षेत्र सबन सों यों कह्यो॥
तब अधिकारिन कूँ बुला आज्ञा दई।
बेग करो सामा[1] चलबे की यों कही॥
नगर द्वारिका लोगन कूँ उत्सव भयो।
सब काहू ने ठाठ चलन ही को ठयो[2]॥
हाथी और हथनाल[3] घोड़े और पालकी।

---

१ सामान-तैयारी २ बनाया ३ हाथियों का रथ।

ऊँट कजावे[1] साज[2] डोले[3] और नालकी[4] ॥२॥
रथ चंडोल[5] सँवारे सबै बनाय कै।
सखी सहेली लई माँहि बैठाय कै॥
तोप रहकले[6] बान जु आगे चलाइया।
खच्चर और घुरनाल[7] को अन्त न पाइया॥
नौबत[8] और सहनाय[9] नफीरी[9] बाजई।
तुरही[9] और करनाय[9] भेरि धुन गाजई॥
ध्वजा पताका निसान बने मन भावने।
रंग सुरंग फरकैं सुनहरी सुहावने ॥३॥
रुक्मिनि और पटरानी आठों साथ ही।
चाले सेन सिंगार द्वारिकानाथ ही॥
राजा राना संग चले बहु साज सों।
हौदा सों हौदा मिलाय और गजराज सों॥
तीस और छः बाजे बजैं आनन्द सों।
पण्डित गुनी महन्त चले जु घमण्ड सों॥
सेना को दल जात न काहू पै गिनों।
मानों उमड़ो मेघ चहूँ दिसि चौगुनों ॥४॥
वेगही पहुँचे जाय क्षेत्र के माँहि ही।
कई जोजन[10] लौं कटक[11] परो वा ठाँहि ही॥

१ बन्दूक सिप ही सहित ऊँट २ सजाए ३ पर्दे वाली स्त्रियों के लिए बंद डोली ४ एक प्रकार की पालकी ५ घोड़ों की गाड़ी ६ छोटी तोप ७ घोड़ा गाड़ी ८ नगारा ९ भिन्न २ प्रकार के बाजे १० चार कोस ११ सेना।

राजन कूँ आज्ञा दई उतरो सबै ।
करि परनाम जु आये डेरों में तबै ॥
सकल कुटुँब सँग न्हाये मोहन लाल हू ।
दान दिये बहु भाँतिन के तिहिं काल हू ॥
रंक सबै राजा भये वा दान सों ।
विप्र पढ़ें धुन वेद जु बहु सनमान सों ॥५॥

॥ दोहा ॥

कर अस्नान भोजन कियो, पहरे बसन बनाय ।
चरणदास कहैं सभा में, जदुपति बैठे आय ॥

—: श्री कृष्ण वचन :—

बातन हूँ में बात जु व्रज की आइया ।
बोले श्री जदुनाथ परम सुख पाइया ॥
व्रजबासिन की सुध जु कहूँ कोइ पावई ।
हम सों कहियो आय यही मन भावई ॥

॥ अष्ट पदी ॥

कृष्ण कुँवर की सबै कही जो बनाय कै ।
व्रजबासिन की बात सुनों चित लाय कै ॥
अब व्रजबासिन बात कहूँ मन भावती ।
प्रेम प्रीत रसरीत जु सबै सुहावती ॥
नन्द महर वृषभान गोप हू आइया ।
कीरति जसुधा आदि सबै तहाँ धाइया ॥
श्री राधा संग आई बहु व्रज बाल हू ।
गइयन बछरन साथ आये सब ग्वाल हू ॥६॥

उतरे आछी ठौर मगन मन होय के ।
हरि के चरनों माँहि सुरति समोय के ॥
तबै अचानक बात कही कोउ आय के ।
ग्रहन न्हान घनश्याम हू आये धाय के ॥
देवकी और वसुदेव कुटुंब सँग आइया ।
नगर द्वारिकावासी सबही धाइया ॥

—: ब्रजवासियों का प्रेम :—

यह सुन के नन्दादिक कूँ आनन्द भयो ।
खान पान गये भूल हिये में सुख छयो ॥७॥
दौरो ढूँढ़ो जाय कहाँ हरि ऊतरे ।
हम तो उन बिन भये काठ के पूतरे ॥
एक कहै देखैं पहिचानें अकि नहीं ।
लाज मानि हैं वे हमरे तन देखहीं ॥
राजा हूवे जाय द्वारिकानाथ हैं ।
जदुवंसी कुल माँहि तो जादव नाथ हैं ॥
सकल खण्ड के राजा शीस निवावई ।
हम तो मूढ़ गँवार कैसे जानें पावई ॥८॥
राजाहू नहिं जाने पावैं द्वार लों ।
खाहिं छरिन की मार पौर रखवार सों ॥
होनी होय सो होय चलैं अरराय[१] कै ।
मारहु खाते जायँ धसैं दरराय[१] कै ॥

१ जबरदस्ती से चले जाना ।

आये सुन गोपाल सबै सुख पाइया।
ग्वाल गोप व्रजबाल जु अंग न समाइया॥
धन धन है दिन आज भैया हरि आइया।
कहैं परस्पर बात ऐसे बनाइया॥९॥
एक कहै वाहि गहि वृन्दावन लै चलैं।
एक कहै हम दाँव आज लैहैं भलैं॥
(कहै एक सुनो रे भैया हरि आवई।)
कहै एक चुप रहो आवन देहु तौ।
अपने नैंनन देख मिलो सुख लेहु तौ॥
रौल[1] बोल सुन गाय चक्रित सी हो रही।
श्रवन देके बैन थकित सब होगई॥
हरि बिन जोवे[2] धेनु भई दुख पाय सी।
दूधहीन तन छीन रही मुरझाय सी॥१०॥
कूदत फाँदत चौंकी सुन यह बात ही।
मन आनन्द बढ़ाय फूली न समात ही॥
हरष मान बछरन कूँ लातें मार ही।
मुख में थन नहिं दैहैं जु झिझक बिडारही[3]॥
बछरा कहैं कहा भयो इन गाइयाँ।
भूखे राँभत फिरें और डकराइयाँ॥

१ शोर २ देखती है ३ चमकती है।

धौरी धूमर साँवर और उजागरी ।
कजरौटी और पीरी सबतें आगरी ॥११॥
श्री मोहन की प्यारी गायें रसभरी ।
हरि से रहती नाहीं न्यारी पल घरी ॥
लकुटी धर कांधे चल्यो इक ग्वारिया ।
तनियाँ पहरें खोहि[1] सिर पै डारिया ॥
सेना के माँहीं फिरै ज्यों पेखनों[2] ।
देखें पूछें लोग कहै कैसो बन्यों ॥
काहू पूछ्यो कहो आपनी बात हो ।
कित तें आये और कहो कहाँ जात हो ॥१२॥
बोल उठ्यो वह ग्वार जु ब्रज तें आइया ।
आये हैं सब गोप यह भेद बताइया ॥
यह सुन जादौ एक दौर हरि पै गयो ।
आये ब्रज के लोग श्याम सों यों कह्यो ॥

—: श्री कृष्ण का ब्रज वासियों से प्रेम :—

सुनी हेत की बात जु यह मनमोहना ।
चकित थकित भये प्रेम मगन प्यारे सोहना ॥
सुरत बिसार संभार फेर सुधि आइया ।
नैंनन नीर प्रवाह को अन्त न पाइया ॥१३॥
लाल भई दोउ आँख बहुत जल धार ही ।
गद गद कंठ उसास को वार न पार ही ॥

१ कामली-छोटा कम्बल २ देखनेवाला ।

सुधकी लै लै बात कहत नहिं आवई।
है सुपनो अकि साँच कि अकिसत भावई ॥
मोहि खिलायो गोद जु लाड़ लड़ाय कै।
जैहूँ अपने नन्द जसुधा माय पैं ॥
लरकाई फिर होय तौ वह सुख पाइये।
खेलूँ अँगना जाय दही फिर खाइये ॥१४॥
देवकी और वसुदेव बिसर दोऊ गये।
आँसू पर आँसू गिर भीज बसन नये ॥
श्याम सुन्दर को प्रेम उमड़ सरिता बही।
भक्तों की कर सुरत चरणदासा कही ॥
रोवत कान्ह सुजान कही कोउ जाय के।
दौर देवकी माय चकित भई आय के ॥
कुँवर लाडलो कान्ह काहे कूँ रोवई।
आय देवकी बात पूछती यों भई ॥१५॥
मुख ऊपर कर फेरि पोंछ आँसू सबै।
तोपै वारी जाँव बलैयाँ ल्यूँ अबै ॥
बहुरों जल की धार नैंनन भर आवई।
थँम नहिं सकत जु प्रेम प्रवाह बहावई ॥
कहत पुकार पुकार कहा भयो पूत कूँ।
जानें कही कछु बात ल्यावो वा दूत कूँ ॥
दुःख हरन सब जगत को मेरो लाल है।
कैसे रोवत जात भयो बेहाल है ॥१६॥

नन्द यशोदा माय जु आगे होहि गो ।
उन के आगे मुझे जाड़े कूँ गोकलो ॥
तेहू सुनाय जनाये यशोदा नन्द को ।
एतो सुख क्यों भयो जु आनन्दकन्द को ॥
आगे ह्वै जु गये सुधि उनकी आवती ।
गोकुल देखन चाहि महा सुख पावती ॥
यह सोच है ताल चाहे दरसन को ।
दरस करे हम देखें माय और बाप को ॥१७॥
दोनों देवकी मात और वसुदेव जी ।
मात बाप मिलवे की चाहैं देहु जी ॥
मिलते देहैं जबै बधाई देहुगे ।
बैठि गोद के माँहि परम सुख लेहुगे ॥
बोले कृष्ण मुरारि मात सुन लीजिये ।
जगत पिता कहा चन्नु बधाई दीजिये ॥
तन मन सब कुछ चन्नु गयो ब्रजचन्द मैं ।
सो तन तुमही दियो नन्द जु आनन्द मैं ॥१८॥
पूछत राजा परीक्षित श्री शुकदेव कूँ ।
तीन लोक को नाथ कह्यो ऐसे जु क्यों ॥
तब बोले शुकदेव न संशय मान तू ।
भक्तों वस भगवान यह निश्चै जान तू ॥
साध यहीं सोई करे यह भेद अगाध है ।
हरि साधों के माँहि माँहि हरि साध है ॥

कोई सखी रनवास में बात सुनाइया ।
सिंहासन पर रोवत श्याम कन्हाइया ॥१९॥
सरवन सुन यह बात सबै हक धक रहीं ।
सबही दौरी आय कि परदौं लग रहीं ॥
चिक के भीतर खरी सकुच और लाज सों ।
मधुर बचन कह पूछत ए रौवें जु क्यों ॥
बोल उठी जब माय देवकी बात हू ।
व्रजबासी मिल आये ग्रहन की जात हू ॥
दूध पिवाय हँसाय जु लाड़ लड़ाइया ।
सो जसुमति और नंदहु व्रज तें आइया ॥२०॥
माय हेत की बात सुनी गोपाल ने ।
यातें रुदन कियो है मेरे लाल ने ॥
महा मूढ़ अज्ञान कंस के त्रास तें ।
पठियो थो मैं उन के घर या आस तें ॥
याकी ढीठी और मचलाई सब सही ।
माखन चोर्यो सब ग्वारिन को और मही ॥
काहू तें लरतो भिरतो काहू तें भाजतो ।
अब सूधो हो गयो भयो महाराज तो ॥२१॥
प्रीत पुरातन जान आई व्रज नागरी ।
सुन्दर रूप सरूप सबन तें आगरी ॥
सब रानी मुसकाय बात ऐसे कही ।
धन धन धन हैं भाग आज हमरे सही ॥

रुक्मिनि और सतभामा वचन सुनाइया ।
राधाजू कूँ लीजे श्याम बुलाइया ॥
वृन्दाबन की लीला सब दिखलाइये ।
ब्रज बनिता और ग्वालहिं बेग बुलाइये ॥२२॥
पीताम्बर और लकुट मुकुट माथे धरो ।
गुंजमाल हू पहर रूप नटवर करो ॥
मिल गावो और नाचो अति ही हुलास सों ।
हमको आनन्द दीजे रास बिलास सों ॥
ये बातें सुन श्याम रोवते हँस परे ।
अति आतुर उठ चाले भाजे गहवरे[1] ॥
सिंहासन तें उठे पीव नाँगे[2] भले ।
कोऊ लियो नहिं संग अकेले ही चले ॥२३॥
निर्विकार निर्लेप जु माया सूँ परे ।
प्रेम प्रीत बस होय चले दौरे खरे ॥

—: श्री कृष्ण और ब्रजवासियों का प्रेमोन्माद :—

बात सुनी ब्रज लोगन आवें हैं हरी ।
लागे करन सिंगार धूम अति ही परी ॥
इक इक सूथन[3] द्वै द्वै जन पहरन लगे ।
एक पाग द्वै गोप बाँध रस में पगे ॥
इक सारी द्वै नारी पहरन कूँ लगी ।
हरषत बरषत प्रेम प्रीत रंग में रंगी ॥२४॥

१ घबराकर २ नंगे पैर ३ पायजामा ।

॥ दोहा ॥

कोउ मुतियन माला पहर, कोऊ चन्दन हार ।
चरणदास कहै ब्रजनागरी, ऐसे कियो सिंगार ॥

॥ अष्टपदी छन्द ॥

दिष्ट परे जसुधा की आवत श्याम जू ।
फूलत भई मन माँहि देख घनश्याम जू ॥
लटक चाल पर वारी जाऊँ लालजू ।
आज धन्न हैं भाग आए गोपाल जू ॥
(फूले अंग न समाहि गोप सब यों कहैं ।)
इक कूदत इक कूकत उछरत डोलते ।
इक रोवत इक हंसत बचन मुख बोलते ॥
एकन मूंगन माला लई उतार कैं ।
गुंजमाल ता पलटे दी पहिनाय कैं ॥२५॥
त्यों त्यों ह्वै मन मुदित श्याम मन भावते ।
ज्यों ज्यों निज सिंगार ग्वाल पहरावते ॥
हेम[1] बरन पीताम्बर ग्वालन ले लिये ।
कारो कामर कान्ह कों ता पलटे दिये ॥
जदुबंसी सब देख रीझ हँस हँस परे ।
दुख सुख अचरज पेख बचन मुख से कहैं ॥
सबको करत समोध[2] चले यदुराज ही ।
दरशन तात और मात करन के काज ही ॥२६॥

१ स्वर्ण २ संबोधन ।

गये जसोधा माय पै जा पाँयन परे ।
व्रजनारिन बहु भीर सबन दर्शन करे ।।
गई सकल सुधि छुवत पगन सों हाथ के ।
मन गहबर[१] भर नैन आये जदुनाथ के ।।
जसुमति लीन्हे खैंच हिये सों लाइया ।
सँग सोवन के द्योस तबै सुधि आइया ।।
मुख चूँबै चितवै तकै मुरझाय कै ।
फिर फिर वारनैं जाय माय उर लाय कै ।।२७।।
एक कहै इहि भाँति छाँड़ हो भीर को ।
देखन देहु सुजान श्याम बलवीर को ।।
सुन्दर मुख को देख मुदित जसुधा भई ।
राज चिन्ह औ रेख भई आनन्दमई ।।
बोली जसुमति माय कुंवर जदुराज सों ।
तू क्यों रोवे लाल कहो किह काज को ।।
कहत जसोधा माय सुनौ मेरी बात कों ।
इक छिन न्यारे न होहु हमारे साथ लों ।।२८।।
इह विध बाबा नन्द हू मोहन सों मिले ।
बालापन की बैस[२] हुते उन संग हिले[३] ।।
नन्द महर गोपाल लखे मन भावते ।
होय विकल तिहि काल नैंन भर आवते ।।
मूँद रहे दोउ नयन सुनै नहीं बैन कों ।

१ गंभीर भाव से २ उमर ३ घनिष्ठ सम्बन्ध ।

जैसे बालक होय भचल गए चैन सों ॥
देखत मोहनलाल उठे घुरराय[1] कै ।
तवहीं पकरे पाँव नन्द के आय कै ॥२९॥
गदगद बानी कंठ बात नहिं कह सकै ।
ए कहा जानै रोय श्याम मुख सब लखै ॥
इक कूकत इक कूदत धरती में परै ।
एक मगन हरि दरस तें सुध बुध ना धरै ॥
कहै एक हम धन्न लखैं गोपाल जू ।
एक कहै छाँड़ो भीर लखैं नन्दलाल जू ॥
ऊपर गिरत संभार बहुरि पग को धरै ।
योंही सुरन अकास बिमानन सों भरै ॥३०॥
चेते जब सुधि आय आपने गातकी ।
अद्भुत लीला मिलन बधाई तात की ॥
जिहि नाते के लोग भाँति वाही मिले ।
अननाते[2] हू मिलत कमोदिनि ज्यों खिले ॥
ना कोउ नातो मानैं न मन में आनई ।
लोकलाज ब्योहार नहीं पहिचानई ॥
ठेल पेल इक कूद निकस के धावई ।
परसत मोहन पाँय परम सुख पावई ॥३१॥
एक दौर घनश्याम को कहत सुनाय कै ।
हा हा मोहि दिखाव लखैं चित लायकै ॥

१ शीघ्रता से घबराकर दौड़ना २ विना सम्बन्ध ।

कहै एक हम देखें सुन्दर मोहना।
रूप सरूप अनूप चित्र ज्यों सोहना॥
कहैं एक सिल झुण्ड जाय हूँ धाय कै।
दौर गहूँगी पाँय माथ सिर नायकै॥
इक ठाढ़ी तिहि ठाँव लाल घूँघट किये।
अतिही व्याकुल चित्त बहुत चिन्ता हिये॥३२॥
मन में अधिक उदास उसासें दुख भरी।
भेद न काहू देत लखै सब तन खरी॥
कहै एक इह भाँति जो श्याम दिखावई।
मेरे सबही अंग के भूषन पावई॥
छोटी कहत सुनाय हमें उचकाव हो।
अपनो श्याम सुजान नेक दिखराव हो॥
बड़ी बड़ी जे नार सोई सुख पावई।
हम नान्हीं क्यों भई यही पछतावई॥३३॥
ललिता अति परवीन सखिन के संग में।
आई छबि सों रँगी प्रेम के रंग में॥
दरशन कर सुख पाय पाँय को गह रही।
पुरातन प्रीति जनाय चुँहटिया भर लई॥
ताकत नैंन निहार धीर नाहीं धरे।
कर ललचौहैं नैंन लजौहैं रस भरे॥
चंद्रावलि तिह भाँति आई छबि धार कै।
पाँयन लायो शीस सरूप निहार कै॥३४॥

भाल चरन घस होठ लगाये पाँय कै।
चाँपो हरि को पाँय सु दाँत लगाय कै॥
मीठो काटन काट सनेह बढ़ाइया।
पाछै तरवा चाट के प्रेम जनाइया॥

—: श्री राधा का सर्वोत्कृष्ट प्रेम :—

तब श्रीराधा कुँवरि चली हरि दरस कों।
मिल सखियन के झुण्ड श्याम घन परस कों॥
राधा विरह वियोग तपत परबल भई।
ल्हुकत[1] कँपत सब गात जु हरि के ढिग गई॥३५॥
तप्त नीर दोऊ नैन ढुरैं धरती परै।
घूँघट में अकुलाय तरफ[2] फटकी[3] मरै॥
ते अँसुवा की बूँद परी द्वै आय के।
मानों चिनगी आग परी हरि पाँय पै॥
कीनों श्याम विचार कौन यह बिरहनी।
तप्त इती तन माँहि विपता हिये घनी॥
चरन छुवें दृग नीर सीतल सलता[4] बही।
इन लच्छन जानी कुँवरि राधा यही॥३६॥
दुर दुर[5] हरि के पाँय परै बल्लाइयाँ[6]।
मुरमुर वारम्बार वारनैं जाँइयाँ॥
उते रही गह पाँय प्रीत अधिकार सों।

१ अपने आपको छिपाती हुई २ तड़फना ३ हृदय फटना ४ सरिता (नदी)
५ छुप छुप कर ६ जोर से रोना।

सीस उठायो नाँहिं न देइ संभार सों ॥
मन में हरि तिय चरन कों सीस नवावई ।
मस्तक दे वहि ठौर न फेर उठावई ॥
जब इह भावना भाव श्याम मन में धरो ।
तब हरि पग तें कुँवरि शीस न्यारो करो ॥३७॥
अंतरयामिनि कुँवरि जान हरि जीय में ।
सोरह सहस रनिवास बिसारो हीय तें ॥
मन में निश्चय धार यही हरि जानियाँ ।
सब रानिन सिरमौर कुँवरि उर आनियाँ ॥
अति व्याकुल सब अंग परी मुरझाय कै ।
यह गति देखी लाल लई उठि धाय कै ॥
अति अचेत सुध नाहिं बदन पियरी परी ।
अँग आवत परसेव[1] होत सियरी[2] खरी ॥३८॥

—: श्री राधा प्रेम पर श्री कृष्ण की मुग्धता :—

जब केहू सुधि आय चेत तन जागिया ।
अति गहबर[3] हिए होय के हुलकी[4] लागिया ॥
सखियन यह गति देख उरहनों बहु दियो ।
डरप सकुच मन माँहि कुँवरि घूँघट कियो ॥

—: श्री बलदाऊ जी का ब्रजवासियों से मिलन :—

योंही[5] दाऊ बलदेव लैन हरि आइया ।
बाहन नाना भाँति संगही ल्याइया ॥

१ पसीना २ ठंडी ३ गम्भीर ४ हिचकी ५ इतने में ही ।

जथा जोग सब लोग मिले अति चावसों ।
आनँद उर न समाय प्रीति के भाव सों ॥३९॥
नन्द जसुधा माय दोऊ बिनती करैं ।
अब हम दरशन पाय इहाँ तें ना टरैं ॥
पुत्र न ऐसो विचार न और विचारिए ।
चरनन संग जो लाग न मार बिडारिए ॥
हम ह्याँहीं रह जाँहि न तुम्हरो खाँहिगे ।
तुम्ह ते न्यारे होत तभी मर जाँहिगे ॥

—: श्री कृष्ण और गऊओं का परस्पर अनुराग :—

गइयाँ हूँ बिन दूध सूख भई दूबरी ।
आतुर ह्वै हरि दरस करन सब ऊबरी[1] ॥४०॥
कहै हमारी बात पशुन की को कहै ।
अन्तरगत की पीड़ हमारी को लहै ॥
क्यों हमको गोपाल दयाल बिसारिया ।
काहे पशू की जौन में हमको डारिया ॥
यह कह गइयाँ सिमट घरेरा[2] हो दियो ।
जित तित तें मिल आय अरेरा[3] ही कियो ॥
करके ऊँची नार कान गौ रंभही ।
आपन दौरत और बच्छन दौरावही ॥४१॥
देखत हरि को रूप मचल सी सब गईं ।
मनमोहन कर प्रीत अंक में भर लईं ॥

१ उतावली हो गई २ घेरा देना ३ अड़जाना ।

हित कै फेरत हाथ पीठ और देह पै।
हेरत हरि को रूप सबै अति नेह कै॥
लै लै उनको नाम जु श्याम बुलावई।
देख दूबरो गात आँसू भर आवई॥
गायन नाते[१] कहत श्याम बहु प्रीत सों।
हरषत सगरे लोग देख इहि रीति को॥४२॥
नातिन[२] धूमर गाय की यह खंजन[३] भली।
जिन सुख दीन्हो मोहिं बहुत हम सों हिली॥
बेटी काजर गाय की धौरी जानिए।
धौरी की सिरमौरी सुता पिछानिए॥
ब्रजवासिन को प्रेम सबन सों आगरो।
चरणदास भागौत में देख उजागरो॥
कही न कैहुं जाय श्याम की गुन कथा।
जैसे सों त्यों मिले सकल जीवन जथा॥४३॥
द्वारावासी[४] लोग सकल अचरज करैं।
देखत रस संजोग हिये आनन्द भरैं॥
बलदाऊ और श्याम चले आनन्द सों।
ब्रजवासी ले संग सु तारे चंद ज्यों॥
बाहन नाना भाँति सबै तहाँ आइया।
राज तेज की चाल सों ठाठ चलाइया॥
हेम छरी कर माँहिं जु रतन जराइया।

१ सम्बन्ध २ पौत्री ३ गाय का नाम ४ द्वारिका वासी।

ते राजन के गात पौरियन[1] लाइया ॥४४॥

—: ब्रजवासी और द्वारिका वासियों का प्रेम मिलन :—

ब्रजबासी सब लोग जु पहुँचे आय के।
उतरे सबही जाय निकट जदुराय के॥
आज्ञा दई घनश्याम न काहू रोकियो।
भीतर गये ब्रज लोग अधिक हरषो हियो॥
बिछे बिछौना बहुत जु नाना भाँति के।
तहाँ दीन्हे छुटकाय हितू जदुनाथ के॥
देवी[2] और बसुदेव जु मिलबे को चले।
नंदहु अरु वसुदेव दोऊ प्रीतम मिले॥४५॥
नैंनन नीर प्रवाह नहीं थाँभो थँभै।
जसुमति देवी देख लोग रोवत सबै॥
सुनो देवकी बात जु साँची हौं कहूं।
लाख करो नहिं जाँव सदा ह्याईं रहूं॥
जथा जोग सब लोग मिले उठ धाइकैं।
मुदित भये मन माँहि दरस हरि पाइकैं॥
कहैं श्री वसुदेव सुनो नंदराय जू।
तुम्हें मिले सुख होय सकल दुख जाय जू॥४६॥
कीन्ही कृपा अपार बहुत उपकार में।
तुम तें उरन न होंहि कभूँ संसार में॥
राम कृष्ण अभिराम तुम्हीं हमको दिये।

१ पहरेदार २ देवकी जी।

तुम्हरे ही परताप सों ए राजा भये ॥
सब गोपी ब्रजबाल देवकी पग परी ।
कुँवरि राधिका जान तभी अंकों भरी ॥
राधा अपनो सीस जु पाँयन पै धरो ।
देवी पकरी बाँह करो सनमुख खरो ॥४७॥

ठोडी गह जब रूप अनूपम देखिया ।
सब रानिन के रूप को राजा पेखिया ॥
अपने मन के माँहि तबै देवी कही ।
हरि पै कैसी भाँति सु यह छोड़ी गई ॥
तिहिं औसर सब बोल बहू देवी लई ।
जसुमति मिलबे काज सबै धाई गई ॥
श्रीरुक्मिनि परवीन जु दुलहिन रस भरी ।
व्रज दूलह सों आय यही बिनती करी ॥४८॥

हौं करि हों चित लाय हमारे मन यही ।
श्रीराधा सनमान श्याम सों यों कही ॥
आज्ञा दई घनश्याम संग ले जाइये ।
श्रीराधा संजोग सों आनन्द पाइये ॥

रूप, गुण की सीमा श्रीराधा का
द्वारिका महिषियों द्वारा स्वागत

श्रीरुक्मिनि परबीन जु राधा ढिग गई ।
बाँह पकर हँस भेट उठा कै सँग लई ॥

अपनी ओट छिपाय राधिकै ले चली ।
कापै बरनी जाय घूँघट की छबि भली ।।४६।।
रुक्मिनि ऐसी भाँति कियो रस प्रीति सों ।
ज्यों हरिजू के साथ प्रेम परतीति सों ।।
रुक्मिनि की किहि भाँति बड़ाई को कहै ।
सुखदाई घनश्याम को सुखदाई वहै ।।
हरिजू की रुचि जान बहुत ही सुख दियो ।
सखी सहेलिन सहित अधिक आदर कियो ।।
एक एक ब्रजनारि रूप की आगरी ।
निरख अचंभो थकित रही सब नागरी ।।५०।।
सुख देबे को श्याम तहाँ पग धारिया ।
हरखत आये प्रेम प्रीति बिस्तारिया ।।
तब सतभामा आदि कहैं रानी सबै ।
हरिजू हमहिं दिखाव कुँवरि राधा अबै ।।
एक बैस इक भाँति एकही गुन कथा ।
रूप अग्र है कौन सबै एकै जथा ।।
सतभामा बहु बार जु हा हा खाइया ।
राधा घूँघट माँहिं तबै मुसकाइया ।।५१।।
सतभामा अति चतुर हिये में जानियाँ ।
घूँघट उठत निहार कुँवरि पहिचानिया ।।
मानो देव कुमारी आय के ब्रज वसी ।
नीलाम्बर के माँहिं मनो दामिन लसी ।।

नैंक निहारत रूप रही मुरझायकै ।
सब रानिन देखी जाय सुडीठ लगाय कै ॥
तब हँसकै घनश्याम घूँघट खुलवाइया ।
सब रानिन के रूप को गर्व घटाइया ॥५२॥

सतभामा तब आइ राधिका ढिग खरी ।
राधा सकुचत नार[1] नहीं ऊँची करी ॥
ठोडी गह जब नार जु ऊँचै उठाइया ।
स्वास सुगंधन साथ सहन[2] सब छाइया ॥
भवन चतुरदस माँहि जु छवि अभिराम ही ।
श्रीराधा को दई तभी हरिजू सभी ॥
राधा रूप निहार सबन तन देखिया ।
धन्न परस्पर जान सरूप बिसेखिया[3] ॥५३॥

धन्न धन्न मुख भाख थकित सी ह्वै गई ।
सब नारी वा देख आप हारी गई ॥
तब निज मन के माँहि जु पतिव्रत आनियाँ ।
अपनी पतिव्रत रीति अधिक कै जानियाँ ॥
सोई दुलहिन होय जु पतिव्रत धारई ।
अपने पति सों प्रीति सदा बिस्तारई ॥
तब राधा यह बात सभी मन में लही ।
अपनी प्रीत अधिकार सकुच नाहीं कही ॥५४॥

१ गर्दन २ चौक या दालान ३ विशेष ।

—: श्री कृष्ण द्वारा श्री राधा तत्त्व का निरूपण :—

यह सुन के जदुनाथ जु ऐसे बोलिया ।
सबके नीकी भाँति जु हिय दृग खोलिया ॥
एकँ टौना जान सकल जग माँहि है ।
इह सम टौना और दूसरो नाँहि है ॥
ब्रजभूमि सें एक यहै टौना आइया ।
सो मैं मूरतवंत तुम्हैं दिखराइया ॥
मन बच करकै मोहिं जु चाहै बस करै ।
श्रीवृषभानुकुमारि की सेवा चित धरै ॥५५॥
रुकमिनि के मन माँहि जु सुनके आइया ।
यह टौना वड़ भाग सों हमने पाइया ॥
रुकमिनि तन मन आप कुँवरि राधे दियो ।
राधा को मन मुदित प्रीति सों कर लियो ॥
तबही भूषण सरस जु रुकमिनि के हुते ।
पहिरे राधा कुँवरि जु मनमाने तबै ॥
रुकमिनि अपने हाथ भूषण पहिराइया ।
इह विधि टौना डार कै प्रीति बधाइया ॥५६॥
और सखी जे साथ सिंगार सिंगारिया ।
सतभामा मन माँहि जु कुढ़ कुढ़ हारिया ॥
अष्ट सुगंधि मँगाय आपने हाथ सों ।
ले रुकमिनि सब लाये राधिका गात सों ॥
अतिही शुद्ध सँवार जबै भोजन भये ।

नंद जसोधा पास तबै मोहन गये ॥
रुकमिनि नाना भाँति करे बिंजन सबै ।
अनगिन स्वाद न जाहिं गिनाए तासु में ॥५७॥
भोजन को जब बैठे हेम के थार ही ।
एक और जदुकुलनि एक ब्रज नार ही ॥
कपट बचन बहुभाँति जु सतभामा कहै ।
मुख मीठी मन चोख अधिक हिये में लहै ॥
कही करो जिन और परोसो लायकै ।
दूध दही बहु भाँति मही जु मँगाय कै ॥
खोटी जिय में जानि कुढ़ी रानी सबै ।
श्रीराधा सुन बैन जु मुसकानी तबै ॥५८॥
भोजन सुखद कराय कुँवरि सुखरास कों ।
पौढ़ारी ले सेज सु अधिक विलास सों ॥
अपने अपने गेह सबै रानी गईं ।
रुकमिनि राधा साथ करत बातें रहीं ॥
निसि भइ ऐसी भाँति हिलत और मिलत ही ।
सिज़्या[१] जोगाजोग[२] बिछाई ललित ही ॥
तब हरि अपने आय मन्दिर पग धारिया ।
सबको सुख अधिकाइके दुःख निरवारिया ॥५९॥
रुकमिनि राधा कुँवरि कूँ सेज सुवाइ ही ।
आई हरि के पास पलोटन पाँइ ही ॥

१ शैय्या २ यथायोग्य ।

पाँय पलोटत नींद श्याम को ना परी।
सुन्दर राधा सेज पै तरफत है परी॥
रुकमिनि से कहो श्याम काज इक कीजिये।
राधा आवत नाँहि नींद सुन लीजिये॥
हौं तो वाको भेव जीय को जान हूँ।
बारेपन की टेव सभी पहचान हूँ॥६०॥
जब सोवन की बेर वाहि को आवई।
वहु मेवन के ढेर सु माय करावई॥
पै राधा को नींद नहीं कबहूं परै।
जब लगही वह पान दूध को ना करै॥
तातें वाको नींद न कबहूं आवई।
मो बिन यह सुधि और सु को हिय लावई॥
पाँय पलोटत माँहि तबै उठ धाइया।
रुकमिनि राधा सेज पै तरफत पाइया॥६१॥
डार कटोरे माँहि जु दूध पिवाइया।
हलबल[1] में भली भाँति न दूध सिराइया[2]॥
तातो दूध पिवाय कै आई रुकमिनी।
दाबन लागी पाँय श्याम के दुलहनी॥
दाबन चरन सरोज जभी कर में गह्यो।
सीतकार कर पाँय खैंच हरि जू लियो॥
रुकमिनि कह्यो तिहि काल कहा हमने कियो।

१ जल्दी में २ ठंडा किया।

सो जु करी किह काज खैंच क्यों पग लियो ॥६२॥
तातो हो वह दूध पिये तें पग जरे ।
हमरे पाँयन माहिं अबै छाले परे ॥
राधे पीवे दूध तुम्हारो पग जरो ।
हम सों ऐसी बात अटपटी जिन करो ॥
राधा हमरे ध्यान सदा अभिलाखई ।
निशदिन चरन सरोज हिये में राखई ॥
तातो पीवत दूध पगन ऊपर परो ।
रुकमिनि तातें चरण हमारो ह्याँ ज़रो ॥६३॥
रुकमिन मानी बात जु मनमोहन कही ।
ब्रजबासिन के प्रेम मगन मन ह्वै गई ॥
बहुरि कही हम नाहिं तुम्हें हरि भावई ।
मम हिरदै में चरन कमल नहिं आवई ॥
बोले हरि मम चरण नहीं तुम होय में ।
निशदिन तो पग बसत हमारे जीय में ॥
बोली रुकमिन कुँवर सुनो घनश्याम जू ।
सब सुखदायक नाथ संपूरन ,काम जू ॥६४॥
मन्दिर मन्दिर भोग सदा भोगत रहो ।
व्याप न सकत वियोग सकल बिधि सुख लहो ॥
रुक्मिन को कियो राजी खुसी बहु प्रीति सों ।
राधा की अब सुनो प्रेम की रीति कों ॥
सेज पै राधा कुँवरि विरह की बावरी ।

कहत सखिन सों बोल लाव री लाव री ॥
मनमोहन घनश्याम कहाँ अब तक रहो ।
जो इक छिनहूं होत नहीं न्यारो भयो ॥६५॥
ऐसे कह उठ बैठ रही मुरझाय कै ।
फिर गिर रही इहि भाँति तरफ दुख पाय कै ॥
बहुत भाँति कही बात सखी समुझावई ।
मन में धारो धीर आवें तो आवई ॥
इतने ही में आय श्याम पग धारिया ।
पाँयन खुरको[1] सुनत विरह निरवारिया ॥
हिलत मिलत भुज मेल ग्रीव में प्रीत सों ।
वृन्दावन की केलि करत वाही रीत सों ॥६६॥
लागे करन विलास कुँवरि संग चाव सों ।
भूले सब रनिवास प्रेम के भाव सों ॥
प्रेम कथा दोउ ओर की अस्तुति गावई ।
चरनदास बलि जाय प्रेम कछु पावई ॥

—:कौरव पांडवों का द्वारिका वासियों तथा व्रज वासियों से मिलन:—

भोर भये वह ठाँव जु कुन्ती आइया ।
अपने सगरे पुत्र संग ही लाइया ॥
तिह सों पूछत श्याम बहुत कुसलात है ।
पाँयन धारो सीस जु मिलबे की भाँत है ॥६७॥
कुन्ती भाषत बैन सुनो भगवान जू ।

१ आवाज ।

तुम सम या जग माँहि को चतुर सुजान जू ॥
इतने द्योसन माँहि कभू नहिं सुध करी ।
दुरजोधन के बैर बिपत बहु हम भरी ॥
हौं यह अपने जीय विचारत ही रहूँ ।
तुम भ्रातन को नाथ नहीं भूलत कभूं ॥
बोले तब बलराम मात तुम सत कही ।
दुख में होय सहाय हितू बंधू वही ॥६८॥
तोपै हमहूं चैन कभू नाहीं रहो ।
जरासन्ध के त्रास समंद बासा लहो ॥
बहुरो भीषम और विदुर ज्ञानी महा ।
बहुते और नरेश सबन दरशन लहा ॥
मिले परस्पर आय सबै घनश्याम सों ।
अस्तुति लागे करन श्याम अभिराम कों ॥
कहत धन्य जग माँहि यह जादों वंश है ।
इन सम और न कोय जु हरि को अंश है ॥६९॥
जनमे जिनके माँहि कृष्ण गोपाल हैं ।
दरस परस सुख देत सबन प्रतिपाल हैं ॥
फिर बोली ब्रजबाल श्याम सेती कहैं ।
आईं दरशन काज न्हान सों ना हमें ॥
तमको लख जदुराज सकल विधि दुख गये ।
चार पदारथ आज हमें प्रापत भये ॥
पहिले ऊधो आय जोग समुझाइया ।

तब हमरे मन माँहि कछू नाँहि आइया ।।७०।।
अब मोहन मुख देख हिये निश्चै भयो ।
ऋषि मुनि जोगीश्वरन यह सुख नाहीं लहो ।।
यह सुन बोले श्याम सुनो व्रजनागरी ।
तुम हो परम सुजान सकल गुन आगरी ।।
जे सुख तुम्हरे साथ जो हमने पाइया ।
गृह वन बहुती भाँति सों खेल मचाइया ।।
अब इहि संपति माँहि प्रगट जो देखिये ।
सुपने हूं के माँहि न वह सुख पेखिये ।।७१।।
सर्व आत्मा रूप हमैं चित में धरो ।
सब जीवन को जीव हिये निश्चै करो ।।
तुम तो सुमिरो मोंहि सदा चितलाय कै ।
हम रहि हैं तुम पास प्रीति के भाय कै ।।
आतम ही सें रूप आत्मा देखिये ।
यह अध्यातम ज्ञान हिये अवरेखिये[1] ।।
समझायो इहि भाँति सकल व्रजबाल को ।
सुफल जनम जग माँहि भजें गोपाल को ।।७२।।
कूपरूप[2] संसार सों बाहर ऊबरै ।
श्रीनन्दलाल कृपाल प्रीति डोरी गहै ।।
कहैं गुरू शुकदेव परिक्षित राज सों ।

१ अनुभव करना २ कुए के समान ।

श्याम हुते उँहीं ठाँव जु सुख के साज सों ॥
पांडौ पुत्र पवित्र और कौरौं जहाँ ।
आये दरशन पाय मुदित बैठे तहाँ ॥
जिनके सुमिरन ध्यान सकल दुख भागई ।
आधि व्याधि कछु पीड़ न कबहूं लागई ॥७३॥
तिन को दरस सुख परस जु कोऊ जन लहै ।
तिहि की महिमा अधिक रसन कैसे कहै ॥
जितने राजा भूप हुते वह ठाँव ही ।
अस्तुति लागे करन बहुत मन भावई ॥
परमहंस है नाम सकल संसार में ।
तुम तें चारों बेद प्रगट जु संचार में ॥
रक्षा करन धेनु विप्र की तुम इहाँ ।
लीनों है औतार जगत के साँइयाँ ॥७४॥
आदि अन्त और मध्य संपूरन काम हो ।
तुम्हीं को हम करत सदा परनाम हो ॥
इहि विधि अस्तुति करत हुते राजा सभी ।
पातक तज पग परस महा पदवी लही ॥
द्रौपदी रानी बहुरि तहाँ जो आइया ।
जाकी महिमा अधिक सकल जग गाइया ॥
पटरानिन के बीच बैठी इक साथ ही ।
तिनसों लागी कहन बात इहि भाँति ही ॥७५॥
हरि जू जैसी भाँति ले आये व्याह कै ।

सो सब हमरे पास कहो समझायकैं ॥
रानी रुक्मिनि चतुर प्रथम बोली तबै।
सुनहो द्रौपदी जान बात हमरी अबै ॥
धन्न हमारे भाग आज ही लेखिये।
सहज ही तुम्हरो दरस नैंन भर देखिये ॥
जो तुम हाँसी करो नहीं इहि बात सों।
तो हम ब्याह की बात कहैं भली भाँति सों ॥७६॥
देस चंदेरी नगर सकल जग जानिये।
तहाँ शिशुपाल नरेश सु प्रगट बखानिये ॥
भई सगाई मोंहि प्रथम ही वाहि सों।
साजी सगरी सौंज भली विधि ब्याह कों ॥
आयो वह भूपाल साथ बहु भूप ले।
बाँधो कंगन हाथ बहुत हुलसो हिये ॥
कुल की सारी रीति करी बहु भाँति ही।
मम हिरदे में बसत श्याम दिन रात ही ॥७७॥
अन्तरजामी लाल हिये की जानकैं।
कुन्दनपुर में आये दीनता मानकैं ॥
रथ के ऊपर बैठ गरज कर धाइया।
सब राजन के अग्र हमें हरि लाइया ॥
हरि की सेवा माँहि बहुत सुख मानियाँ।
हम तो अपनो भाग धन्न कर जानियाँ ॥
पुनि सतभामा चतुर बात अपनी कही।

मणि की सगरी कथा बखानी सब वही ॥७८॥
बहुरो अपनो ब्याह जामवन्ती कह्यो।
जामवन्ती की कथा सबै जिहि विधि भयो॥
पुनि कालिंदी कहत सभी निज काथ को।
रानी द्रौपदी सुनो हमारी बात को॥
हरि चरणन की आश धरी निज हीय में।
जल में कीनो बास प्रीत धर जीय में॥
इक दिन अर्जुन सहित श्याम पग धारिया।
पानि ग्रहन कर मोहि सकल दुख टारिया ॥७९॥
बहुरों बोली चतुर मित्रबिंदा तभी।
रानो द्रोपदी बात सुनो हमरी सभी॥
जब तें सुध भई मोहि तभी मन में करो।
हरि चरणन को ध्यान और चित ना धरो॥
मम भ्रातन गति मोहि लखो इहि रीति सों।
हरि को दीन्हो ब्याह भलो विधि प्रीति सों॥
हों अपने जिय माँहि यही इच्छा लहूं।
और हूँ जन्मन माँहि मैं हरि चरनन रहूं ॥८०॥
पुनि सीता इहि भाँति वचन उच्चारिया।
सात वृषभ की कथा सकल विस्तारिया॥
भद्रा कहत सुनाय सुनो रानी द्रौपदी।
मैं हूँ कृष्ण की बात सुनी सरवन सभी॥
मन सें कीन्हों नेम और नाहीं भजूँ।

निशिदिन हरि की सेव सदा जिय में सजूँ ॥
जान पिता यह बात ब्याह हरि को दई ।
इच्छा मन के माँहि सकल पूरन भई ॥८१॥
सेवें हरि के चरन सु मन चित लायकै ।
सुभग भाग जिहि नारि सुफल ह्वै आइकै ॥
पुनि बोली इहि भाँति लछमना गुन भरी ।
अपने ब्याह की बात सकल बरनन करी ॥
तात हमारे काज स्वयंबर ही कियो ।
मैं हरि चरणन ध्यान हिये में गह लियो ॥
आये तहाँ घनश्याम दीन पहिचान कै ।
पानि ग्रहन कियो मोहि आपनी जानकै ॥८२॥
हौं दासी घनश्याम की वा दिन तें भई ।
आधि व्याधि तज सकल बिथा जी की गई ॥
अब तुम देहु असीस मोहिं भली भाँति सों ।
जनन जनम जगदीश सेवों दिन राति हौं ॥
बोली राजकुमारि बहुरि सुख पायकै ।
सोरह सहस सौ नारि सु वचन सुनाय कै ॥
भौमासुर हो दइत हमें बहु दुख दियो ।
हम सबहुन को घेर आन इकठो कियो ॥८३॥
चित में गह हरि शरन यही मनसा धरी ।
चरणन को धर ध्यान बहुत विनती करी ॥
तबही पहुँचे आय जगत के साइयाँ ।

भौमासुर को मार सभी जु छुटाइयाँ ॥
तब तें सेवा माँहि नाथ हमको लियो ।
सब दासिन की दासी हमैं सब को कियो ॥
जो पै कृपा अगाध श्याम हम पर करैं ।
हम रंचक अभिमान नहीं जिय में धरैं ॥८४॥
गर्व करै जो नारि कभू घनश्याम सों ।
दुख पावे बहु बार गोपिका वाम ज्यों ॥
प्रेम कथा अति गूढ़ की अस्तुति कहा करूँ ।
चरनहि दासी होय शीस चरनन धरूँ ॥
व्रजवासिन के भाग बड़े जिय जानिये ।
केहूँ बरने न जाहि योंहीं सत मानिये ॥
गृह बन जिनके संग रहै दिन राति ही ।
कीन्हे बालचरित्र उहाँ बहु भाँति ही ॥८५॥
व्रजबासी नर नारि सकल विधि सुख दिये ।
सकल मनोरथ काम श्याम पूरन किये ॥
पुनि सतभामा बोल तभी पूछन लगी ।
सुनहो द्रौपदी बात एक रस में पगी ॥
हम तो अपनी ब्याह कथा सबही कही ।
अब तुम भाखो बात हमारे चित यही ॥
पाँच जनन किहि भाँति तुम्हैं जु विवाहिया।
अद्भुत लीला सुनत हिये में आइया ॥८६॥
तब बोली इहि भाँति द्रौपदी गुन भरी ।

हमरे तात विचार प्रतिज्ञा यों करी ॥
फिरत मत्स्य को वेध जु कोई जन करै ।
द्रौपदी पावै सोई वचन यह ना टरै ॥
देश देश के नृप सबै तहाँ आइया ।
अपने पुत्र विचित्र संग ही लाइया ॥
धनुष बान निज हाथ तहाँ सबहुन लियो ।
फिरत मत्स्य को बेध किन्हू नाहीं कियो ॥८७॥
अर्जुन अपने हाथ धनुष जबही लियो ।
ताही छिन के माँहि मत्स्य बेधन कियो ॥
या विधि मोहि विवाहि मुदित मन लाइया ।
अपनी कुंती माय कूँ शब्द सुनाइया ॥
माता एके वस्तु भली हमने लही ।
बाँट लेहु तुम पाँच मात ऐसे कही ॥
तातें पाँचों भ्रात मोहि ब्याहो तहाँ ।
प्रगट देह कर पाँच जीव एकै जहाँ ॥८८॥

॥ दोहा ॥

चरनदास विस्वास सों, कही कथा सुखरास ।
पढ़ै सुनै जो प्रीति सों, पावै परम हुलास ॥

॥ अष्टपदी छन्द ॥

कहैं गुरू शुकदेव परिक्षित राज सों ।
श्री वसुदेव के यज्ञ करन के काज कों ॥
रानी द्रौपदी पास हुती रानी सबै ।

सुनी सकल की बात जु उन भाखी तबै ॥
गाँधारी तिहि संग सुभद्रा जानिये ।
कुंती तिनके बीच उहाँ मन आनिये ॥
सब गोपिन लिये संग जसोधा माय ही ।
तिनहुँ श्याम की बात सुनी मन लाय ही ॥८९॥
सुन अचरज की बात चकृत मन में भई ।
हिय में बिसमै होय थकित सी ह्वै रही ॥
कहै धन्न ये नारि सकल बड़ भाग हैं ।
नित प्रति जिनके अंग श्याम सँग लाग हैं ॥

—: श्री कृष्ण द्वारा ऋषियों का पूजन और स्तवन :—

और सकल ऋषिराज सबै तहाँ आइया ।
मनमोहन घनश्याम को दरशन पाइया ॥
नारद वेदव्यास ऋषिन के राज ही ।
विश्वामित्र पुलस्त और भारद्वाज ही ॥९०॥
गौतम और वशिष्ठ सतानन्द जानिये ।
परशुराम अभिराम शिष्यन संग मानिये ॥
अत्रि अंगिरा और मारकंडे तहाँ ।
दत्तात्रेय विचार सकल आये जहाँ ॥
वामदेव अरु जाग[१] भाग[२] भृगु आइया ।
गर्ग आदि बहु नाम गिने नहिं जाइया ॥
हरि जू तिनकों आप बहुत आदर कियो ।

१ याज्ञवल्क्य २ ऋषि का नाम ।

विधि सों पूजा साज परम सुख ही दियो ॥६१॥
दोऊ कर को जोड़ जगत के साइयाँ।
लागे अस्तुति करन बहुत मन भाइयाँ॥
दुर्लभ दर्शन होंहि ऋषिन के जगत में।
देवन प्रापत नाहि वड़ी सी शक्ति में॥
जनम सुफल अब आज हमारो ही भयो।
जो हम सहजहि माँहि दरस तुम्हरो लह्यो॥
हरि भगतन के दरस की महिमा को कहैं।
जनम जनम के पाप छिनक में ना रहैं॥६२॥
जो जन सेवा देव बहुत हित कै[1] करै।
तिनमें श्रीभगवान नहीं मन में धरै॥
महा अधम है सोइ यही मन आनिये।
मूरख ताहि समान नहीं पहिचानिये॥
नारायण सब बीच हिये में धारिये।
सूरज चंद की सेव जु कुछ विस्तारिये॥
पृथ्वी जल और पवन अगनि आकाश कों।
देखै इन के बीच सु जगतनिवास[2] कों॥६३॥
जो जन ऐसी भाँति सों पूजा नित करै।
सुफल कामना होय जु कुछ इच्छा धरै॥
याही विधि हरिभक्त सकल पहिचानिये।
हरि तें इनको भिन्न कभूँ नहिं जानिये॥

१ करके २ भगवान।

यह नर देही जान अपावन है महा ।
जाको परथम बास नरक ही में भया ॥
गंगाजल सम नाहिं सलिल सरितान को ।
यह विचार नहिं होय मूरख अज्ञान को ॥६४॥
राजन ऐसी भाँति जगत के साँइयाँ ।
बहु अस्तुति उँह ठाँव करी मन भाइयाँ ॥

—: ऋषियों कृत श्री कृष्ण की स्तुति :—

सकुचे सब ऋषिराय सुनी जब बात को ।
सब मिलि ऐसी भाँति कहैं जदुनाथ को ॥
तुम जगजीवन नाथ सु जगत निवास हो ।
हम दासन के दास तुम्हारी आस हो ॥
ऐसी विधि जदुनाथ जु तुम अस्तुति करो ।
हमको भ्रम बहु होय समझ कछु ना परो ॥६५॥
जगतगुरू जगदीश जगत प्रतिपाल हो ।
सबके सिरजनहार सकल रिछपाल हो ॥
सब देवन के देव तुम्हीं जदुराज जू ।
हम नहिं जानत भेव श्री महाराज जू ॥
तुम माया सब जगत सभी पर छाइया ।
तो[1] गति अगम अपार अन्त नहिं पाइया ॥
ताते बहुती भाँति भर्म मन आनई ।
तुम्हरो भेव अगाध कौन विधि जानई ॥६६॥

१ तव—आपकी ।

तुम्हरी अद्भुत शक्ति सकल घट पूर है।
तुम्हरो रूप अरूप सबन तें दूर है॥
कोऊ तुमको आप पिता कर जानई।
कोऊ अपनो पुत्र हिये में आनई॥
सबके पालनहार सकल के ईश हो।
कैसे चरित तुम्हार कहैं जगदीश हो॥
दरस परस सुखदान तुम्हारो जानिये।
तुम किरपा सों बात यही पहिचानिये॥९७॥
धरती भार अपार उतारन काज ही।
प्रगटे भक्तन हेत श्री जदुराज ही॥
बानी तुम्हरी वेद स्मृति संसार में।
तुम्हरी गति नहिं चीन्ह परत निर्धार[1] में॥
भक्तन ही के संग सदा जोई रहै।
भक्ति पदारथ पाय मुक्ति सोई लहै॥
तुम्हरी भक्ति अनूप सकल सुखरास है।
कोऊ जन नहिं होत कभी जु निरास है॥९८॥
तुम प्रभु पूरन काम कृपाल दयाल हो।
तुमको करत प्रनाम सुनो गोपाल हो॥
पारब्रह्म भगवान धरम के धाम हो।
तातें अस्तुति करत विप्रन की श्याम हो॥
ना तो हम मन माँहि चहत दिन रैन का।

१ वास्तव में।

तुम्हरे चरन सरोज सुखद की रैन[१]का ॥
पारब्रह्म प्रभु ईश हमारे हो तुम्हीं ।
सब दासन के दास तुम्हारे हैं हमीं ॥६६॥
तुम कारन बहुभाँति जु हम जप तप करैं ।
मन में अपने ध्यान तुम्हारो ही धरैं ॥
सबही बिधि जग माँहि तुम्हीं सुखदान हो ।
तुमकों करत प्रनाम सुनों भगवान हो ॥
सबही घट के माँहि रहो इहि भाँत में ।
जैसे पावक रहत गुप्त सब काठ में ॥
तुमको श्री वसुदेव नहीं पहिचानिया ।
पुत्र जान बहुभाँति हिये हित मानिया ॥१००॥
निद्रा आलस होत जभी नर रूप को ।
सुध बुध नाहीं रहत रंक और भूप को ॥
सोवत ही के माँहि सुपन जो देखिये ।
जीव दिष्ट[२] के साथ जु कौतुक पेखिये ॥
जो पै श्री भगवान भेव नहिं जानिये ।
देखनहारो सुपन को ना पहिचानिये ॥
ऐसे सगरे जीव भर्म मानैं सदा ।
प्रभु पूरन को रूप सु पहिचाने कहा ॥१०१॥
तुम्हरी किरपा होय जभी जदुनाथ जू ।
दिव्य दिष्ट नर लोय को आवै हाथ जू ॥

१ रेणु-रज २ दृष्टि ।

सब जादों कुल बंस मोह लिपटानिया ।
तुमरी गति अति गूढ इन्हू नहिं जानिया ।।
जानो अति ही हीन हमारी शक्ति को ।
करैं कौन विधि नाथ तुम्हारी भक्ति को ।।
तुम्हरे चरन सरोज जु सुखदाई महा ।
जिहि सों आधि और व्याधि नहीं व्यापत सदा ।।१०२।।
कृपा करो घनश्याम सकल हम दास पै ।
तिन चरणन के पास हमारो निवास कै ।।
वानप्रस्थ जे लोय तुम्हीं को धावई ।
जप तप कै[1] मन आप तुम्हीं सों लावई ।।
तुम्हरो रूप अपार ध्यान कर देखई ।
अपनो जीवन जनम सुफल कर लेखई ।।
ज्यों गज चींटी आदि जु लघु दीरघ सबै ।
सब वपु जीव समान जान लीजै अबै ।।१०३।।
दीपक को दृष्टान्त यही जु विचार है ।
लघु दीरघ सब ठाँव वही उजियार है ।।
कोऊ जन यह बात न जिय में आनई ।
तन में जिय किह ठाँव रहत को जानई ।।
तैसें श्री घनश्याम सदा सुखरास ही ।
निसिदिन श्री वसुदेव के गेह निवास ही ।।
राजन राम और श्याम जगत सुखदान जू ।

१ करके ।

सुनकै ऐसी बात लगे मुसकान जू ॥१०४॥

—: श्री नारद जी का श्री वसुदेवजी को उपदेश :—

पुनि बोले सुख पाय श्री नारद तभी ।
कहत सुनो वसुदेव वचन मेरे सभी ॥
कर्म नाश नहिं होय जु कर्मन कीजिये ।
यह निश्चै कर आप हिये धर लीजिये ॥
हरि की सेवा माँहि जोई जन चित धरै ।
मन में अपने नाँहि कछू इच्छा करै ॥
तिहि के कर्म कट जाँहि छिनक में जानिये ।
मुक्त होय कुछ संस नहीं उर आनिये ॥१०५॥
जो जन प्रभू को पूजिकै इच्छा फल चहै ।
पाप करै तिहि माँहि मुक्ति कैसे लहै ॥
श्रीभगवान के काज कर्म सब कीजिये ।
ताको फल जो होय उन्हीं कूँ दीजिये ॥
हौं ही कहत न बात यह अपने जीय सों ।
कहत सबै सुज्ञान[१] जु पण्डित हीय सों ॥
ऐसी विधि के कर्म जोइ जन साजई ।
कर्म बन्ध तें छूट मुक्तपुर राजई ॥१०६॥
जो तुम कहो यह बात कि हम ग्रहचारी हैं ।
जोग जुगत के काज नहीं अधिकारी हैं ॥
तो तुमको इक बात कहूँ समुझायकै ।

१ विवेकी लोग ।

कर्म जोग को पंथ कहूँ मन लायकै ॥
जो कुछ पुन्न और दान सदा ही तुम करो।
नेम धर्म व्रत और जु कुछ मन में धरो ॥
तिनको फल जो होय सु हरि कूँ दीजिये।
इच्छा मन के माँहि कछू नाँहि कीजिये ॥१०७॥
सो हरि तुम सों होय न न्यारो जानिये।
सदा बसत गृह माँहि तुम्हारे मानिये ॥
या विधि नारद वचन कहे वसुदेव सों।
तब उनही मन मुदित पहिचानों भेव कों ॥

—: श्री वसुदेवजी का यज्ञ करना :—

बहुरौं श्री वसुदेव वचन ऐसे कहो।
सुनहु विप्रसुर[1] ज्ञान बात चित में लहो ॥
हमको दीक्षा देहु जज्ञ के काज की।
इच्छा पुरवें मोंहि जु सुख के साज की ॥१०८॥
विप्रन सुन यह बात बहुत सुख पाइया।
वसुदेव सों अभिषेक तभी जो कराइया ॥
जज्ञ करन वसुदेव बैठे सब साज सों।
संग लीन्हीं दोउ नारि जज्ञ के काज कों ॥
ल्याये जज्ञ की सौंज सबै जादों तहाँ।
सुर विमान चढ़ व्योम आये देखन उँहाँ ॥
किन्नर और गंधर्व गुनी आये सभी।

१ देवर्षि।

हरि के गुन बहु भाँति सबन गाये तभी ॥१०९॥
ब्रह्मा सम वसुदेव तहाँ जु विराजई ।
गुरु ज्यों सब उँह ठाँव रिषीसुर राजई ॥
सोभित तहाँ जदुराज राम सुख साजही ।
होत जज्ञ भली भाँति जु उनके काजही ॥
बैठे बहुते विप्र और पण्डित जहाँ ।
श्री वसुदेव ने दान बहुत दीन्हे तहाँ ॥
ऐसी विधिसों जज्ञ कियो चित लायकै ।
कर स्नान जो दान दिये मन भाइकै ॥११०॥
सब राजन को आय तभी पूजा दई ।
सबकी पूरी आस जु कुछ इच्छा भई ॥
सुर किन्नर गंधर्व तहाँ जो आइया ।
आयसु ले निज धाम सभी जु सिधाइया ॥
कौरों भीषम आदि और उन साथ कै ।
बहुतै और नरेश हितू जदुनाथ के ॥
अस्तुति श्री जदुराज की मिल सबहुन कही ।
नमस्कार करजोर सबन आयुस लही ॥१११॥

—: व्रजवासियों का द्वारिका वासियों से विदा होना :—

श्री वसुदेव सुजान वचन भाषन लगे ।
व्रजवासिन के साथ प्रीत रस में पगे ॥
तुम तो प्रान समान हमारे हो सबै ।
तुम तें कैसी भाँति होंहि न्यारे अबै ॥

या बिधि कहत सुनाय प्रेम की बात ही।
नैनन नीर प्रवाह भीजो सब गात ही॥
व्रजबासी व्रजभूमि न जानैं कूँ करैं।
चलबे की सुन बात धीर नाहीं धरैं॥११२॥
सुन राजा जदुराज जगत प्रतिपालही।
रहे परब के काज जु केतक काल ही॥
बहुत दिना जो भये कुरुक्षेत्र में अरैं।
ना व्रजवासी जाँहि न हरि उठनैं करैं॥
तब देवी इहि भाँति श्याम सों यों कही।
तोहि कछू इह ठाँव में सुधि बुधि है रही॥
बहु असुरन के माँहि बसे द्वारापुरी।
कहिबे तें यह बात तोहि लागै बुरी॥११३॥
चलो जाव घर और बेग सुधि लीजिये।
नातो ऐसें राज काज सब छीजिये॥
यह सुन कैं घनश्याम नंद को बोल कैं।
बोले छबि अभिराम हिये को खोल कैं॥
कही धन्य ए द्योस जु तुम दरशन लहैं।
तुम तें न्यारे होन नहीं कबहूँ चहैं॥
तुम तें बिनती करत कँपत सब गात है।
हम से ऐसी कहत न आवत बात है॥११४॥
रक्षक नाहीं कोय द्वारिका में उहाँ।
जो तुम आज्ञा होय तो अब जावें तहाँ॥

इक परदेश में बास रिपुन के बीच ही ।
ना तो तुम्हरो पास नहीं छोड़ें कभी ॥
यह कारन मन लाय के आज्ञा दीजिये ।
आपन हूँ व्रज जाय गौधन सुधि लीजिये ॥
देख नंद और मात जसोधा ओर ही ।
रोवें नार[१] निवाय कै नंदकिशोर ही ॥११५॥
तक मुख रोवन लगे जसोधा नंद हू ।
परो ग्रीवके बीच प्रीत को फंद हू ॥
कहैं कन्हैयालाल हमें तू राख ले ।
लोटन लगे तिहि काल वचन यह भाख कै ॥
नँद कहैं घनश्याम हमें संग लेहु जू ।
जसुमति को गृह काज जान किन देहु जू ॥
जसुमति कहै नंदराय सों तुम गृह को चलो ।
साजो घर और बार करो कारज भलो ॥११६॥
लोक बंध की लाज सभी तज डार हूँ ।
निशिदिन या व्रजराज कों नैंन निहारहूँ ॥
दूर करो मत मोहिं देवकी माइ जू ।
हौं तुम्हरे व्रजराज कुँवर की धाइ[२] जू ॥
धाइन को बहु भाँति सूँ आदर कीजिये ।
असन बसन धन धाम भली बिधि दीजिये ॥
गौधन और धन सकल हमारो लेहु जू ।

१ गर्दन २ शिशु का पालन करने वाली ।

नित प्रति मोहनलाल कों देखन देहु जू ॥११७॥
पाँच सात मिल बात जु ऐसी विधि कहैं ।
सबहुन जानें देहु सु हम ह्याँहीं रहैं ॥
सब मिलि ऐसी भाँति मतो मन में करें ।
तब उत भेटैं कौन पायँ काके परें ॥
भाषें श्री वसुदेव जु हम केतो कहैं ।
ये तो केहू भाँति कहे नाहीं लगें ॥
हम सबही बहु भाँति जु कहि कहि हारई ।
प्रेम प्रीति भर भार टेक नहिं टारई ॥११८॥
तब अपनी घनश्याम माया विस्तारिया ।
जासों सब ब्रह्मण्ड में कौतुक धारिया ॥
सो माया व्रज लोगन ऊपर डारिया ।
तब चलबे की सौंज सबन जु सँभारिया ॥
चलो चलो अब बेग सभी मुख तें कहैं ।
राम राम परनाम नहीं रसना लहैं ॥

—: श्री राधा का प्रेमोन्माद :—

जिहि माया करतार सकल जग बस कियो ।
सो माया नहिं फेर सकत राधा हियो ॥११९॥
माया अति बलवंत न कोऊ सम करैं ।
प्रेम राधिका अग्र धीर नाहीं धरैं ॥
चींटी निरबल अधिक कहा बल धारई ।
जब हस्ती पग माँहि पकर कै डारई ॥

व्रजबासी सब लोग बाट व्रज की लई ।
गृह कारज के माँहि सबन की मति छई ॥
राधा रुकमिनि गेह रही ठहराय कैं ।
चलबे की चित नाँहि रही मन लायकैं ॥१२०॥
तब हरिजू रनवास सबै जु बुलाइया ।
विनती कर मृदु बैन सभुन समझाइया ॥
राधा अति परबीन चतुर चित जानई ।
हठ दृढ़ गहकै और बात नाँहि मानई ॥
कहै सुनैं को बात सो कासों भाषई ।
केहूँ कैसी भाँति मरन अभिलाषई ॥
विष भख अपने पेट कटारी ही करूँ ।
ना तो अबही बूड़ सरोवर में मरूँ ॥१२१॥
मृत्यु अकाल विचार नेक धीरज गहै ।
केहूँ विधि जदुनाथ को नित दरशन लहै ॥
कूद परी जल माँहि सरोवर के तहीं ।
महा तपत उर माँहि भई सीतल नहीं ॥
कंठ कुँवरि परमान भयो जल सब तहाँ ।
अति गंभीर अधीर नीर जो हो उहाँ ॥

—: श्री सत्यभामा द्वारा धर्मोपदेश :—

तब सतभामा बोल उठी इहि भाँति सों ।
मन की घुंडी खोल जीव की बात सों ॥१२२॥
चाहत लीन्हों कंथ परायो चोरकै ।

चितवत बारही बार नैंन की कोरकैं ।।
जब लग हे घनश्याम बाल गोपाल ही ।
तब लग देखे चरित तिहारे ख्याल ही ।।
क्यों नहि ब्रज को जाव रहो घर बैठ कै ।
बाद[1] परायो गेह चहत हो पैठ कै ।।
अब तो यह जदुनाथ जगत नायक भये ।
ग्वाल गवाँर तुम्हार बात लाइक[2] रहे ।।१२३।।
तजैं नहीं कुल लाज बंधु की हीय सों ।
जे कुलनारि बिचार करैं यह जीय सों ।।
मात पिता जिहिं गेह जाहि के सँग दियो ।
उन दुख सुख में साथ सदा ताको कियो ।।
मरत जियत नहि छाँड़ पुरुष के सँग रहैं ।
ये लक्षन कुल बधू पुरानन में कहैं ।।

—: श्री राधा द्वारा प्रेम तत्त्व का वर्णन :—

तब श्रीराधा बोल उठी इहि भाँति सों ।
सतभामा चित लाय सुनो इह बात कों ।।१२४।।
वेद पुराणन माँहि जु ऐसे गाइया ।
जिन पायो जग माँहि प्रेम तें पाइया ।।
जे प्रेमी जन होंहि सकल सिरमौर हैं ।
तिन पाछें हरि फिरत जैसे चक[3] डोर हैं ।।
अब तुम सुनहु बनाय प्रेम की रीति कों ।

१ जबरदस्ती २ योग्य ३ चकरी ।

दिव्य दृष्टि कर देखो हिय में प्रीति सों ॥
जिन हरिजू के साथ जु नातो मानिया ।
मन्दभाग जग माँहि कछू नहिं जानिया ॥१२५॥
नाते पै मत भूल न धोखे में परो ।
बर्न कुलीन बिचार गर्व मत चित धरो ॥
मात पिता जो नेम बतायो चाव सों ।
सब जग लीन्हों नेम प्रीति के भाव सों ॥
अब तो सब संसार जो प्रेम बखानई ।
प्रेम नेम को भेद कछू नहिं जानई ॥
जिंहि बन में सिंहराज विराजत प्रेम है ।
तिंहि बन तैं गजराज ज्यों भाजत नेम है ॥१२६॥
तू अजान नहिं जाने न नेक हूँ मानई ।
हरि जानें यह रीति कि रुकमिनि जानई ॥
यह त्वै[1] जग के माँहि प्रगट कीरति भई ।
तेरे पिता हरि बाद दोस चोरी दई ॥
मणि की चोरी काज जु हरि कितहूँ गये ।
मणि पाई उहँ ठाँव खिस्याने सब भये ॥
तैं तो हरि के काज कहा कारज कियो ।
जग उपहास[2] पै हास सीस ऊपर लियो ॥१२७॥
कर अग्नारी[3] अग्नि दई भाँवर जहाँ ।
ऐसी बिधि सों ब्याह भयो तुम्हरो तहाँ ॥

१ तेरी। २ हंसी ३ यज्ञ की वेदी ।

ऐसी बिधि को ब्याह नहीं कोऊ करै।
ऐसे ब्याह को गर्ब कहा मन में धरै ॥
जग में ऐसो ब्याह जहाँ तहाँ पाइये।
पै यह प्रेम को ब्याह कठिन मन लाइये ॥
मो सम नहिं तेरो प्रेम चढ़ावत भौंह क्यों।
हरि सों बूझ यह बात देह हरि सौंह हो ॥१२८॥
सुनकर बोले बात तभी व्रजनाथ जू।
राधा भाषत साँच सभी यह बात जू ॥
जबही सुने इहि भाँति बचन जदुराय के।
बिन रुकमिनि सब और रहीं खिसयाइ[1] के ॥
बहुरौ श्री घनश्याम बचन ऐसे कहो।
राधा प्यारी बैन हमारे चित लहो ॥
जल भीतर तें निकस बाहरें आव हो।
जो चाहत मन माँहिं सु हमें बताव हो ॥१२९॥
राधा कहत सुनाय बचन इक पावहूँ।
तब हों जल तें निकस बाहरें आवहूँ ॥
कही तबै घनश्याम जु कछु माँगो अबै।
सो सब तुमकों देहुँ जु तुम इच्छा सबै ॥
बबा नन्द की सहस दुहाई[2] जानियो।
तुम्हरे चरन की सौंह हिये में आनियो ॥
बोली राधा तबै वृन्दावन जाँव जू।

१ लज्जित २ सौगंध।

कै नित रहों तहाँ संग, कै नीर समाव जू ॥१३०॥
यों ही करूँगो प्यारी कहो जग साइयाँ ।
श्री राधा मन भयो आनंद बधाइयाँ ॥
परमानन्द सुख पाय धरी मन धीर ही ।
आई बाहर निकस सरोवर नीर ही ॥
रुक्मिनि नौतन चीर अनूप मँगाइया ।
राधा जू के अंग सकल पहराइया ॥
राधा जी को प्रेम कि बिसवै बीस है ।
चरणहिदासा वार कि तन मन सीस है ॥१३१॥

—: श्री राधा कृष्ण का क्षेकुरुत्र से अन्तर्धान होना :—

गुप्त भईं राधा कुंवर वृन्दावन आइया ।
श्री ब्रजदूलह कुंवर संग ही ल्याइया ॥

—: ब्रज तथा ब्रज लीला की नित्यता :—

तहाँ आय बहु भाँति सु भोगे भोग ही ।
नित बिहार जहाँ होत जानत सब लोग ही ॥
वेइ वृक्ष वेइ कदम जमुन के कूल ही ।
वेई कमल सरोज कमोदिनि फूल ही ॥
वेई जमुना नीर सु परम रसाल ही ।
जहाँ क्रीड़त आनँद सों मोहन लाल ही ॥१३२॥

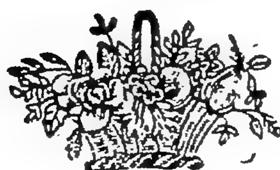
—: द्वितीय कृष्ण रूप प्रगट होकर द्वारिका जाना :—

दूजो कृष्ण सरूप और परगट भयो ।
सो रानी पटरानी देवकी सँग गयो ॥

—: फल स्तुति :—

यह लीला सुखरास सुनै जो गावई ।
पूजै मन की आस परम सुख पावई ॥
लीला परम पुनीत भक्ति की रीत सों ।
चरणदास कहि भाष भली विधि प्रीत सों ॥
जो बाँचै चित लाय कोई सरवन करै ।
भक्ति परापत होय हिये आनँद भरै ॥१३३॥
प्रेम भक्ति के भाय[१] यह लीला गाइया ।
चरन कमल चित लाय परम सुख पाइया ॥
अरज करै चरनदास सुनो शुकदेव जू ।
जनम जनम द्यो भक्ति करूँ गुरु सेव जू ॥

इति श्री कुरुक्षेत्र लीला अष्टपदी छन्द श्री महाराज साहिव श्री श्यामचरणदास जी कृत संपूर्णम्
॥ श्री राधाकृष्णार्पणमस्तु ॥



फुटकर पद, कवित्त आदि

॥ राग परभाती ॥

और ख्याल सब छाँड बावरे, गोविन्द के गुण गावरे ॥
श्री हरि कथा सुनी नहिं कबही, चाले जन्म गुमाव रे ।
बिना भक्ति चौरासी लख में, फिर फिर गोता खाव रे ॥
सत्संगत की नाव बैठ के, उतर चलो दरियाव रे ।
पैली पार मिलें हरि प्रीतम, ज्ञान की बल्ली लगाव रे ॥
नौधा भक्ती करो कृष्ण की, अनहद ताल बजाव रे ।
चरणदास शुकदेव कहत हैं, जोति में जोति मिलाव रे ॥

॥ ग़ज़ल ॥

मुझे कृष्ण के मिलने की आरज़ू[१] है ।
शबो-रोज़[२] दिल में यही जुस्तजू[३] है ॥
नहीं भाती हैं मुझको बातें किसी की ।
सुनी जब से उस यार[४] की गुफ्तगू[५] है ॥
नहीं मुझको मतलब जहाँ[६] में किसी से ।
चुभा जब से दिल में सनम[७] ख़ूबरु[८] है ॥
जो आशिक[९] है उसका नहीं उससे गाफिल[१०] ।
तड़फता अज़ल[११] से खड़ा रूबरू[१२] है ।

---

१ इच्छा २ रातदिन ३ खोज ४ प्रियतम ५ बातचीत ६ दुनियाँ ७ प्रेमपात्र ८ सुन्दर ९ प्रेमी १० असावधान ११ सृष्टि के आदि १२ सामने ।

शराबे मुहब्बत पिई जिसने यारो।
हुआ दो जहाँ में वो ही सुर्खरू[१] है॥
सभी आशिकों पै किया करम[२] तूने।
मु[३] आसी[४] पै तेरा नहीं दिल रजू[५] है॥
जहाँ देखे रनजीत वहीं है वो हाज़िर।
हर एक गुल[६] में उसकी मिली मुश्कबू[७] है॥

॥ राग काफी ॥

बंशीवारे सों लगन मोरी लाग गई।
हूँ आवत ही अपने घर कूँ, सहज अचानक भेंट भई॥
ठाढ़ो रहत सखा सँग लीये, सघन कदम्ब की छाँह छई।
कहा बरनूँ साँवरे की शोभा, शेष थको छबि जाय न कही॥
अलक झलक माथे तिलक विराजै, शीस जरकसी[८] पाग नई।
फेंटा ऊपर तुर्रा थिरकै, गल माला कर मुरली लई॥
हँस टौना कियो श्याम सलौने, प्रेम ठगौरी मोपै डार दई।
चितवन में मेरो मन हर लीनो, बौरी हुई कछु सुधि न रही॥
तन व्याकुल जियो उमड़ो ही आवे, रोम रोम हरी रूप मई।
चरणदास कूँ शुकदेवा गुरु, भक्ति दान वर द्योह यही॥

॥ राग सोरठ ॥

अँखियन कहा नीकी करी!
श्यामसुन्दर छवि निरख के, जहाँ जाय अरी॥

---

१ कृतकृत्य—सफल २ कृपा ३ मुझ ४ पापी ५ ध्यान देना ६ फूल
७ कस्तूरी की सुगंध ८ जरी के कसीदे की।

लोक की सब लाज छूटी, कुल की दूर धरी।
अतिहि व्याकुल धीर नाहीं, रहत अँसुवन भरी ॥
तजों खान अरु पान सोवन, प्रेम की लागी लरी।
विरह पीड़ा उठत निशिदिन, हिये पावक जरी ॥
नेह वाके भई बौरी, ढूँढ़ी गरी गरी।
चरणदासि शुकदेव के, अब कौन फंदे परी ॥

॥ राग धनासरी ॥

मोहन बाँसुरी में टेरो री ॥
तामें होकर टोना कीन्हो, सरवन सुनि हियो घेरो री।
जब सूँ विरह बिथा तन दौरी, परवस है मन मेरो री ॥
व्याकुल हो देखन कूँ धाई, नैनन सूँ मग हेरो री।
श्याम सुन्दर बिन कछु न सुहावे, कोई मिलावे नेरो[१] री ॥
शुकदेव सखी तुम पै बलि जाऊँ, करुँ निहोरो[२] तेरो री।
चरणदासि होय रहूं तिहारी, कछू सुनावो ब्योरो री ॥

॥ राग भैरवी ॥

नैनन साँवरो रह्यो छाय।
दशहुँ दिशि सखि श्याम दीखत, और ना दरसाय ॥
स्वप्न जाग्रत श्याम सूझै, और नाहिं सुहाय।
श्याम मुख सों बोल निकसत, उठत हिय सों हाय ॥
श्याम बिन छिन चैन नाहीं, जिया अति अकुलाय।
चरणदासि शुकदेव गुरु मोहि, श्याम देहु मिलाय ॥

---

१ नजदीक २ प्रार्थना।

॥ राग काफ़ी ॥

मुकुट पर वारी रे नागरनन्दा ।

सब सखियन में यों हरि राजैं, ज्यों तारन में चन्दा ॥
वृन्दावन की कुंज गलिन में, खेलत बाल गोविन्दा ।
चरणदास चरणन को चेरो, चरण कमल रज वन्दा ॥

॥ पद ॥

पीले प्याला हो मतवाला, प्याला प्रेम हरी रस का रे ॥
जो दम जीवे हरि गुन गा ले, धन जोबन सुपना निशि का रे ।
पाप पुन्य को भोगन आया, कौन तेरा और तू किसका रे ॥
बालापन खेलन में खोया, तरुण भये त्रिय के वश का रे ।
वृद्ध भया कफ वायु ने घेरा, खाट पड़ा मारे मसका रे ॥
नाभि कमल में है कस्तूरी, कैसे भरम मिटे पशु का रे ।
बिन सतगुरु इतना दुख पाया, जैसे मृग भटके वन का रे ॥
भवसागर जो उतरा चाहै, छाँड कामिनी का चसका रे ।
चरणदास शुकदेव कहत हैं, नख शिख सर्प भरा विष का रे ॥

॥ राग काफी ॥

बाजत घुंघरू की झनकारी हो ।

नृत्यत अजब अनोखी गति सों, कृष्ण कुंवर गिरधारी हो ॥
मुकुट जटित सिर अधिक विराजत, अलक झलक घुंघरारी हो
तान मान[1]सुर ताल मधुर धुन, तत्त तत्त ततकारी हो ॥
उघरत[2]गति सांगीत कला सब, पग नूपुर झुनकारी हो ।

---

१ गायन के बीच लय का समय २ प्रगट होना ।

जुगल स्वरुप रूप अद्भुत धर, विहरत दे दे तारी हो ॥
रसिक शिरोमणि लाल मनोहर, सन्तन को रखवारी हो ।
चरणदास शुकदेव श्याम के, चरणकमल पर वारी हो ॥

॥ राग आसावरी ॥

हरि जी बहुतक पतित उधारे ।
हों[१] भी साख तुम्हारी सुनकै, लागो चरणन लारे ॥
बालमीकि बद्धक[२] बनवासी, जाति वरन कुल हीनां ।
तुम परसाद भए रिषिराजा, सात काँड जस कीनां ॥
स्योरी[३] सरस करी रिषि मुनि तें, जूठे फल तुम खाये ।
महिमा अधिक करी आपन सों, सो जस परगट गाये ॥
अजामील कामी अति पापी, सुत हित नाम उचारो ।
तनक एक साधन संग मिलकै, हरिपुर धाम पधारो ॥
गनिका अधम सकल जग जानें, सो तुम पार लँघाई ।
कालू सदना और रैदासा, बहुत किये मुकताई ॥
करमा जात जाटनी कहिये, किरिया सुचि नहिं जानी ।
पनहीं पहरें करी खीचरी, सो तुम्हरे मन मानी ॥
लोक बड़ाई करनी छोड़ी, तेरो ही ध्यान लगायो ।
चरनदास कहै टेक पकड़ कर, गुरुमुख सरनें आयो ॥

॥ शब्द ॥

"मुरशिद[४] मेरा दिल[५] दरियाइ[६]", दिल के अन्दर खोजा ।

---

१ मैं २ वधिक ३ शिवरी ४ सद्‌गुरु ५ मन ६ व्यापक—सद्‌गुरु मेरे व्यापक हैं तथा प्रत्येक हृदय में विराजमान हैं ।

जिसके अन्दर सत्तर[1] काबा[2], मक्का[3] तीसों रोजा[4] ॥
चौदह तबक़[5] औलिया[6] तिस में, भेद न होय जुदाई ।
सहस कमाल[7] नमाज़ में ठाडे, दरशन जहाँ खुदाई[8] ॥
हवा[9] न हिर्स[10] खुदी[11] नहिं खूबी[12], अनलहक्क[13] जहाँ बानी
बिन चिराग[14] खाने[15] सब रोशन[16], जिसमें तख़्त[17] सुभानी[18] ।
बिना अबर[19] जहाँ बहु गुल[20] फूले, बिन अंबर[21] जहाँ बरसे ।
बिन सरोद[22] तम्बूर बजें जहाँ, चश्मे[23] हो मन[24] दरसें ॥
तिस दरगाह[25] मसल्ला[26] डारे, बैठे क़ादर[27] क़ाजी[28] ।
न्याव करैं सीने[29] की पूछें, रक्खें सब को राज़ी ॥
जिसके फल दीदार[30] किये से, नादिर[31] होय फ़कीर ।
मारे[32] काल[33] कलन्दर[34] जब लौं, मनवा धरे न धीर ॥
ऐसा हो जब कमला[35] होई, तब्र कमालपद[36] पावे ।
साहिब मिल साहिब को दरसे, ज्यों जल बूँद समावे ॥
ऐसा हो सोइ पीर[37] कहावे, मनी[38] मान[39] सब खोवे ।
चरणदास जमीं पर रोशन[40], पाँय पसारे सोवे ॥

१ बहुत से २ मुसलमानों का सबसे बड़ा तीर्थ ३ वह शहर जिसमें काबा है ४ तीस दिन के उपवास ५ आसमान ६ एक उच्च श्रेणी के फ़कीर ७ कामिल = सिद्ध ८ भगवान का ९ कामना १० तृष्णा ११ अहंकार १२ सुन्दरता १३ अहंब्रह्मास्मि १४ दीपक १५ घर १६ प्रकाशित १७ सिंहासन १८ भगवान का १९ बादल २० फूल २१ आकाश २२ एक बाजा २३ आँखें २४ मन ही नेत्र बनकर देखता है २५ कब्र २६ वह फर्श जिस पर नमाज़ पढ़ी जाय २७ पुलिस का हाकिम २८ न्यायाधीश २९ मन की बात ३० दर्शन ३१(अ) नादिरशाह बादशाह (ब) अनुपम ३२ जीते ३३ मृत्यु ३४ अवधूत फकीर ३५ पूर्ण ३६ पूर्णत्व-पूर्ण स्थिति ३७ सद्गुरु ३८ अहंकार ३९ प्रतिष्ठा ४० विख्यात ।

॥ पद राग सोरठ ॥

नारायण नारायण रटो निज मूल ।
थोड़ा सा जीवन घनी सी भूल ॥
आया था कुछ लाहा[१] कारन, लगा यहाँ तू पूँजी हारन ।
आगे साह लगेगा मारन, अब तू कर ले जिय का सूल[२] ॥
जिन हरि तेरी रक्षा कीनी, तातो पवन लगन नहिं दीनी ।
तैं वाकी सेवा नहिं कीनी, पानी से तू किया अस्थूल ॥
अब तू बिसर गया उस पिय कूँ, गर्भ माँहिं सुख दीया जिय कूँ ।
तल मूड़ी ऊपर कूँ पाँव, जठर अगनि में रहा तू भूल ॥
अब तुम सुमरो श्री पति देवा, छिन में पार लगावें खेवा ।
जब जम आवै जिय के लेवा, हाथ में फाँसी अरु तिरशूल ॥
चरणहिदास कहै हित चित की, यह संसार खानि है विष की ।
जगत बड़ाई है दिन दस की, दया अमरफल पाप बबूल ॥

श्री गंगा जी के पद



गंगा स्वर्ग लोक सूँ आई ।
बावन जी के पग सूँ प्रगटी, शिव की जटा समाई ॥
कलियुग मध्य बहुत पतितन के, निस्तारन कूँ धाई ।
अधम उधारन पाप निवारन, तारन तरन कहाई ॥
तब भागीरथ करी तपस्या, शंकर भये सहाई ।

१ लाभ २ उसूल—सिद्धान्त ।

किरपा करि कर जब ही दीन्हीं, भागीरथी कहाई ॥
अति ही पावन सब मन भावन, कहाँ लौं करुँ बड़ाई ।
धूप दीप ले करौं आरती, फूल अरु पान चढ़ाई ॥
दरशन करके शीस नवावों, अन्त परम पद पाई ।
चरणदास हरि चरनोदक की, शुकदेव महिमा गाई ॥

॥ राग झँझोटी ॥

ऐसे कीजे गंगा का अस्नान ।
पाप प्रतिग्रह[1] नाहीं लीजै, दया धर्म उर आन ॥
भजन ध्यान अरु कथा कीर्तन, सेवा पूजा दान ।
या विधि सों जो दरशन करि हैं, पावें मुक्ति निदान ॥
अस जो कूद करै जल गदला, विषै वासना ठान ।
मेला जान तमाशे जावै, फल नहिं रंचक मान ॥
हरि चरनोदक प्रगट भयो है, यह निहचै जिय जान ।
चरणदास शुकदेव कहत हैं, करो प्रेम सूँ पान ॥

॥ राग हेला ॥

गंगा जी की धार हेला पाप कटन कूँ आर[2] है ।
जो कोइ न्हावे प्रीत सूँ रे, अरे हेला उतरे भव जल पार ॥
जेते तीरथ और हैं रे, अरे हेला तिन में है सरदार ।
प्रगटी प्रभु के चरन सों, महिमा अगम अपार ॥
अकाल मौत पावे नहीं रे, अरे हेला निहचै मन में धार ।
शीस नवा दरशन करो, मिटैं कष्ट के भार ॥

---

१ दान २ आरा—करौंत ।

बहुरि जोनि आवे नहीं रे, अरे हेला कहैं शुकदेव पुकार।
चरणदास अँचवन करो, हरि चरनोदक सार॥

॥ आरती ॥

आरती गंगा माई की कीजे। बस वैकुंठ महा सुख लीजे॥
स्वर्गलोक सूँ गंगा आई। शिव की जटा में आन समाई॥
सेवा कर भागीरथ लीनी। मृत्युलोक में परगट कीनी॥
फूल पान मिष्टान चढ़ावो। कर कर दरशन शीश नवावो॥
शीश छुवाय न्हाय जो कोई। पाप कटैं और निर्मल होई॥
चरणदास शुकदेव बखानी। पतित उधारन सुरसरि जानी

॥ राग मांझ ॥

मोहन जी तुम साहिब मेरे, मैं हूँ दासि तिहारी।
तन मन धन सब तुम पर वारूँ, बार बार बलिहारी॥
तुम बिन हमरो कोऊ नाहीं, यह सरवन सुन लीजे।
चरणदास को चरनन सेती, नैक जुदो नहिं कीजै॥१॥
हूँ तो चरणकमल लिपटानी, तुम क्यों न पकरो बाहीं।
जैसे लगन है मेरे मन कूँ, तेरे मन कूँ नाहीं॥
ऐसी प्रीत करो मोहन जी, निपट कपट की सानी।
चरणदास पिय मो मनमानी, मैं पिय मन नहिं मानी॥२॥
पिय प्यारे जी जुलफ तिहारी, नागन सी अति कारी।
डस गई हिरदै माँझ हमारे, ता दिन दृष्टि निहारी॥
ताको विष नख सिख लौं वाढ़ो, विथा पीर अति भारी।
चरणदास लहरें मोहन बिन, उतरत नाहिं उतारी॥३॥

छाती दरकी गवन सुन्यो जब, तन व्याकुल मन कंपो।
भई अचेत गिरी धरनी पर, नैंनन दोऊ पल झंपो॥
फिर आई सुरति आह कर बोली, नैंनन नीर बहायो।
चरणदास हिय लग्यो उमाहो, घर अंगना न सुहायो ॥४॥
मोहन ने मेरो मन मोह्यो, देखत कछु कर डारो।
ताही दिन तैं भई बावरी, ए सखि रोग बिचारो॥
फिर फिर उठत गिरत धरनी पर, लगन लहर लहराई।
चरणदास कहु जीवन कैसो, विरह भुवंगम खाई ॥५।
विरह विथा नख सिख सूँ दौरी, तन में रह्यो न लोहू।
मित्तर दौर वैद कूँ लावें, रोग न जानत कोऊ॥
मनमोहन के रूप लुभानी, गिरी शहद ज्यों मक्खी।
चरणदास अब जतन कहा है, तब नहिं अँखिया रक्खी ॥६॥
लटक चाल सुंदर तन निरखत, मुखपर शसि बलिहारी।
नैंन ढरारे बाँकी भौहैं, जुलफ भुवंगम कारी॥
हँस हँस वचन बान मोंहि मारे, लगे कलेजे माहीं।
चरणदास कसकत निशि दिन अब, क्योंही निकसत नाहीं ॥७॥
मोहन लटक चलन चष चंचल, रूप सरूपम भारी।
घर सूँ आँगन आँगन सूँ घर, भुनक भुनक भुनकारी॥
हँसते भरें फूल मानों पाँती, बात कहत जानों मोती।
चरणदास घायल मायल भये, देख परस गति जोती ॥८॥
मोहन जी दोउ जुलफ सँभारो, साँपन सुत मतवारे।
भूमत रहत कपोलन ऊपर, श्याम भुवंगम कारे॥

विष के भरे नाग के छौना, मन कूँ डर जु हमारे।
चरणदास को हीयो डसि है, तब को लहर उतारे ॥६॥
पिय प्यारे जी कोप न कीजे, तुम कूँ नहिं बन आवे।
तेरी भौंह मरोरन आगे, मेरो जी डर जावे॥
वचन कठोर कहो जनि मुख सूँ, बरछी अनी जु लागे।
चरणदास अब थरहर काँपै, एजी मोहन तेरे आगे ॥१०॥

कवित्त आदि

॥ सवैया ॥

जुगता धरि ध्यान धरैं जिसको, तपसी तन गारि के खाक लगावैं।
चार सु वेद न पावत भेद, बड़े तिरदेव नहीं गति पावैं॥
अकास पताल मृत्यु लोक ही में, जाको नाम लिये सबही सिर नावैं।
चरणदास कहै ताकूँ गोपसुता, कर तारी दै कर नाच नचावैं॥

॥ कवित्त ॥

पीताम्बर की मेखला मुद्रा किए कुंडल की, चन्दन की विभूति लाये देखो इक जोगिया। मुरली की नाद पूरें शब्द तौ कहै अलेख, दधिहू की भीख माँगै सबही विध भोगिया॥ वाको स्वरूप आली अटको है मेरे चित, कछु ना सुहात अब भयो तन रोगिया॥ कहै चरणदास दोऊ नैना तो डिगम्बर भए, मिलत नाहीं प्यारो मन भयो है वियोगिया॥

॥ सवैया ॥

निसिबासर ध्यान करें प्रभु को, रसना रस सूँ हरि नाम पढ़ी।
जमनातट जाय अस्नान करें, नित सेवा करें इक पाँय ठढ़ी॥

दीनानाथ तुम्ही हम दीन प्रभू, मोहि नाथ अनाथजु कीजे बढ़ी।
चरणदास कहै सुता भीषम की, हरि नाम लिये सुख सेज चढ़ी ॥

॥ कवित्त ॥

वेद हूँ कूँ मानें अरु पूजें पुरान हूँ कूँ, गीताहू समझैं जो गुरु ने समझाई है। ब्राह्मण के पाँय लागूँ मारूँ मुख पण्डित को, वेद को छिपाय भेद औरे गत गाई है ॥ पढ़ पढ़कै अर्थ करैं हिये माँहि नाहिं धरैं, करैं ना विचार सब दुनियाँ भरमाई है। कहैं सो तो करैं नाँहि पण्डित ये कलि माँहि शुकदेवजी के दास चरणदास गति पाई है ॥

लीला हैं अनन्त नाम रूप हैं अनन्त जाके, शक्ति हैं अनन्त वारपार हू न पायो है। महिमा अपार रहे देव मौन धार मुख, जै जै उचार निज शीशहू नवायो है ॥ ब्रह्मा से अनन्त सोऊ वेद को उचार करैं, नारद अनन्त जाको गुणा-बाद गायो है। कहै चरणदास सोई नन्द को दुलारो प्यारो, दे दे नवनीत ब्रजबालन नचायो है ॥

वेद विधि जग्य भोग अरप्योहू लेत नाहिं, ग्वालन को दधि झूठो खोस[1] खोस खायो है। जाको भै मान लोकपालहू नवावें शीस, सो तो भक्ति भाव बस हाऊ तें डरायो है ॥ जाकी माया बस जीव बँधे तिहुँ लोकहू के, सो तो प्रेम बस होय ऊखल बँधायो है। कहै चरणदास नंदनन्द ब्रजचन्द प्यारो, नवनीत काज ब्रज ग्वालनी नचायो है ॥

१ छीन छीन कर।

नेति नेति कहि ताहि वेदहू बखान करें, ब्रह्मा आदि सुर मुनी निसदिन ध्यायो है। शेषहू रटत जाको पावत न ओर छोर, ताहि को यशोदा मैया गोद में खिलायो है॥ शिव सनकादि ताहि खोज खोज हारि रहे, व्रजवाला प्रेम बस रासहू रचायो है। कहै चरणदास शुकदेव के प्रताप सेती, आदि पुरुष भक्ति हेत नन्द गेह आयो है॥

जाको ब्रह्मा वेद माँहि गावत हैं नेति नेति, ताहि व्रज ग्वालबाल ख्यालहू खिलायो है। शिव सनकादि ताको पावत न आदि अन्त, ताहि पूत कहि बाबा नन्द ने लड़ायो है॥ जाकी शक्ति आसरे खड़े हैं ब्रह्मण्ड पिण्ड, ताको व्रजनारी पाँय चलन सिखायो है। कहै चरणदास शुकदेव के प्रताप सेती, आदि पुरुष भक्ति हेत नन्दगेह आयो है॥

जीवत मरजाय उलट आप में समाय, मन कहीं नहीं जाय यह ऐसी दिलगीरी है। करै बिपिन बास नहिं जानत जो भूख प्यास, मेटी पर आस और परम सबूरी है॥ परम-तत्त्व को बिचार चिन्ता सब डार, हरि रसमें मतवार यह ऐसी अमीरी है। कहै चरणदास दोनों दीन में पुकार यार, सबही आसान एक मुशकिल फ़कीरी है॥



अथ श्री महाराज साहिब श्री स्वामी चरणदासजी कृत

नासकेत लीला

अथ प्रथमोऽध्याय:

दो० जै जै श्रीमुनि व्यासजी, जै जै गुरु शुकदेव।
तुम किरपा सूँ कहत हूँ, नासकेत को भेव ॥१॥
आय बैठ हिरदै बिषै, मो मुख कहो बखान।
तुमतो जानत हो सबै, मैं हूँ मूढ़ अजान ॥२॥
चरणदास हो कहत हूँ, भाषा परम पुनीत।
सुन सुन आवै नीति पर, छूटै सकल अनीत ॥३॥
नर नारी सुन लीजिए, अद्‌भुत कथा सुजान।
पाप पुण्य की ओर सूँ, जो कोइ होय अजान ॥४॥
त्रेतायुग की यह कथा, संस्कृत्त के माँहि।
नासकेत ही नाँव है, मैं भाषूँ ले छाँहि[1] ॥५॥
नीमषार[2] ही के विषे, कथा कही जो सूत।
शौनक आदि ऋषी सबै, सुनत भए मिल जूथ ॥६॥

—:सूत उवाच :—

वैशंपायन इक समै, बैठे गंगा तीर।
अति प्रसन्न उज्ज्वल दिशा, निरखत सुरसरि नीर ॥७॥
राजा जनमेजय तबै, किया जु तहाँ अस्नान।

१ आश्रय २ नैमिषारण्य क्षेत्र।

मोती सोना आदि बहु, दिया विप्रन कूँ दान ॥८॥
प्राछत मेटन काज ही, नेम लिया जो एक ।
ब्रह्मचर्य रूपी जु तप, बारह बरस की टेक ॥९॥

॥ सोरठा ॥

ब्राह्मण ऋषों समेत, वैशंपायन पास ही ।
गया जु करि बहु हेत, कछु पूछन की आस धरि ॥
पाँडव वंश मंझार, उपजा हुवा जु भूप यह ।
बोला वचन सँभार, वैशंपायन साथ ही ॥

—: जनमेजय उवाच :—

करि डंडौत वचन यों भाषा । अरु चरनन पर मस्तक राखा ॥
सीस उठा मुख तका सुभागे । फिर यों अस्तुति करने लागे ॥
हे बुधिवान बड़े तुम चातुर । भक्ति तपस्या में अति आतुर ॥
सर्व शास्त्र तुम नीके जानों । धरम दया नीके पहिचानों ॥
व्यासदेव के शिष बहु प्यारे । जोगी महा जगत सूँ न्यारे ॥
दिव्य कथा पूछत हूँ तोही । पाप संपूरन काटन सोई ॥
किरपा करि संदेह मिटावो । भिन्न भिन्न करि सभी सुनावो ॥
जनमेजय यों पूछन कीना । रणजीत कहै ऋषि उत्तर दीना ॥

—: वैशंपायन उवाच :—

दो० सुन राजा अद्‌भुत कथा, कहूँ तुम्हारे हेत ।
इस में संशय है नहीं, सर्व पाप हरि लेत ॥१०॥
राजा कथा पुरान की, शुभ है सुनने जोग ।
और ऋषीश्वर भी सुनो, तन-मन नासै रोग ॥११॥

एक ऋषी जो पहिले भया। धर्मनीक उज्ज्वल मन छया ॥
उद्दालक जिह नाम बखानो। तपसी ब्रह्मा का सुत जानो ॥
वेद अर्थ का जाननवारा। इन्द्रीजित जोगेश्वर भारा ॥
हिरदा शुद्ध ब्रह्म बुद्धि जाकी। तेजवंत सुन्दर छबि ताकी ॥
जाका आश्रम सुन्दर नीका। ऋषि मुनि करकर शोभत टीका ॥
भाँति अनेक वृक्ष जहाँ सोहैं। फूलन भरे अधिक मन मोहैं ॥
हरि हरि बेलि रही लिपटाई। बोलत भँवर महा सुखदाई ॥
हंस आदि पक्षी वहु सोहत। मोर चकोर कोकिला सोहत ॥
दो० अरु पक्षो ह्वाँ बसत हैं, शुभ शुभ भाँति अनेक।
शोभा सब वरनूँ कहा, अधिक एक तें एक ॥१२॥
उड़ि बैठे पक्षी जहाँ तरवर। कँवल भरे सोहैं तहाँ सरवर ॥
आश्रम सुखदाई बरनां सो। उद्दालक उस ठौर रहै सों ॥
तेजवंत सूरज ज्यों राजें। जिनके दरशन पातक भाजें ॥
तप की शोभा दस दिसि छाई। देवलोक में भई बड़ाई ॥
छयासी सहस बरस तप कीनो। लोक वेद में ना चित दीनो ॥
एक पाँव सूँ ठाड़े रहै। जाड़ा गरमी पावस सहै ॥
अधिक तपस्या गाढ़ी कीन्हीं। जाकूँ सुरपति सुन अरु चीन्हीं ॥
इन्दर भूप डरा मन माहीं। तन में धीरज रहा जु नाहीं ॥
दो० सकल विकल बहुतै भई, धीरज रहा जु नाहिं।
काँप काँप बेगी गया, ब्रह्मलोक के माहिं ॥१३॥
जा ब्रह्मा का दरशन लीना। साष्टाङ्ग परनाम जु कीना ॥
फिर बिरंचि आदर बहु कीया। अरघ और आसन जो दीया ॥

भय करि दुखी इन्द्र हो रहा । ब्रह्मा आगे अस्थिर भया ॥
नैन उदास दीन मुख कीयें । विरंचि ओर को तन मन दीयें ॥

—: ब्रह्मोवाचः—

हे इन्दर तू कैसे आया । दुखी दीन मुख क्यों जु बनाया ॥
भय उपजा कासों तोहि भारी । आसन क्यों काँपा बलकारी ॥

—: इन्द्र उवाच :—

इन्दर कहै सुनो विधि करता । तुमही या जग के हो भरता ॥
वही कहूँ जासूँ भय खाया । तुम्हरे चरन निकट ज्यों आया ॥
दो० मुनि उद्दालक पुत्र तव, तिरलोकी विख्यात ।
तप जु करै भू लोक में, एक पाँव दिन रात ॥१४॥
तप करतें बहु चिर भया, तातें हिया डरात ।
आसन काँपत है घनों, धीरज नाहिं धरात ॥१५॥
यातें कहो उपाव ही, कित जाऊँ मैं भाज ।
अमरावती नगरी सहित, सौंपा ह्वाँ का राज ॥१६॥
अरु सौंपूँ तिरलोक हू, कहाँ रहूँ मैं जाय ।
कहा करूँ ऋषि तेज सूँ, भय व्यापो अधिकाय ॥१७॥

—: सूत उवाच :—

दो० इन्दर के सब बचन सुनि, बोले विधि मुसकाय ।
धीरज धर भय मत करै, सुखी रहो हरखाय ॥१८॥
उद्दालक जो तप करै, मुक्ति हेत सत मान ।
नहीं कामना राज की, यह निहचै कर जान ॥१९॥
मो सुत है धरमातमा, बड़ा तेज दिव्यरूप ।

तीन लोक परसिद्ध है, तप करके सुन भूप ॥२०॥
तू निहचल हो राज कर, इन्द्रपुरी को जाय ।
अरु तेरे संदेह जो, देहूँ बेग मिटाय ॥२१॥
ब्रह्मा ही के वचन सुनि, खुसी होय सुख पाय ।
गया जु इन्दर लोक में, आनन्द अधिक बढ़ाय ॥२२॥
अब सुन ब्रह्मा जू की दाया। पिप्पलाद को निकट बुलाया ॥
सभी भाँति कर वह समझाया । उद्दालक के पास पठाया ॥
तप निरबर्त[1] करन के काजे । पिप्पलाद मुनि आय बिराजे ॥
उद्दालक उठि आदर कीना । बड़े भाव सूँ आसन दीना ॥
चरन धोय कर पूजा कीन्ही । नमस्कार कियो कर आधीनी ॥
और कही तुम ह्याँ पग धारे । कौन हेत कहिये मुनि प्यारे ॥

—: पिप्पलाद उवाच :—

पिप्पलाद कहि सुन ऋषि राये । सहजे हम दरशन कूँ आये ॥
बड़ी तपस्या का धन तेरे । पै संदेह उठा इक मेरे ॥
दो० नारि सुधारी ऋषि सबै, तप करैं अधिक अत्यन्त ।
तप धन ही के जोर सूँ, रहैं जु सदा अचिन्त ॥२३॥
सबके आश्रम में सुत नारी । सुन्दर भवन महा सुख भारी ॥
तुम्हरे तिरिया ना संताना । यह हम अचरज बहुतक माना ॥
पुत्र बिना कुल वंश न चालै । सोत[2] बिना सूकैं ज्यों तालैं[3] ॥
वंश नष्ट सूँ आगै नाहीं । पितर देवता रीते[4] जाहीं ॥
होंहि न परसन नीकैं जानो । तातैं उपजावन सुत ठानो ॥

२ समाप्त तरना २ स्रोत—झरना ३ तालाव ४ खाली ।

जीवत मरतैं काज सँवारै। भला पुत्र हो दो कुल तारै॥
दीपक सूँ दीपक ज्यों लागे। ऐसे वंश चलै यों आगे॥
जो कोइ पुत्र बिना है हीना। वाका जगत सुन्न अरु छीना॥
दो० वाकूँ घर सूँ काम क्या, खोवन वंश अऊत[1]।
सूर्ये किरिया को करै, अगति जाय हो भूत॥२४॥
वेद माँहि ऐसे लिख राखा। ब्रह्माजू ने परगट भाखा॥
याकूँ समझ जतन अब कीजे। उपजावन पुत्तर मन लीजे॥
ब्राह्मण श्रेष्ठ तोहि मैं जानों। मेरे वचन साँच करि मानों॥

—: उद्दालक उवाच :—

मुनि उद्दालक ऐसे कहिया। ब्यासी सहस बरस तप रहिया॥
रहूँ सुस्थिर मन में नहिं आवे। तिरिया पुत्तर को उपजावे॥
हे पिप्पलाद चित्त ना धरूँ। तिरिया का सँग कैसे करूँ॥
नेम वर्त को कैसे हारूँ। भवसागर में मन क्यों डारूँ॥
नरक माँहि वेही नर जावें। टेक वर्त कूँ जो बिसरावें॥
दो० जिन छोड़ा है नेम को, खोया तप का मूल।
छोड़ छोड़ फिर जग लिया, ताके मुँहडे धूल॥२५॥
लिखा वेद में नरकों जैहै। दुनिया तज दुनिया फिर लैहै॥
कई भाँति के दुख उठि लागैं। आवत हैं वाही के आगैं॥
हो अतीत फिर घर में आवें। तीन लोक में भरमत धावें॥
मुकति ठिकाना वाकूँ नाहीं। जाय परै चौरासी माहीं॥
नारी सुत कछु काम न आवैं। अंत समय छाँई रह जावैं॥

[1] बिना संतान।

कोई किसी का संगी नाहीं। मारग में मिल मिल उठ जाईं ॥
तातें जग कूँ मिथ्या देखा। सुत नारी का झूँठा लेखा ॥
यातें करूँ न मन में आवे। धोखे में अब को भरमावे ॥
दो० मैंने तप धारन किया, कैसे छाँडूँ ताहि।
हाँसी होवे जगत में, अपकीरति हो जाहि ॥२६॥
फिर पिप्पलाद जु बोला ऐसे। आप स्वारथी भाषैं जैसे ॥
हे उद्दालक ! यह सुन लीजे। जुक्ति अजुक्ति विचार ही कीजे ॥
जो कोइ संतति सूँ है हीना। वाका धर्म सदा है छीना ॥
अरु जिनकी तप सूँ रुचि नासी। सो दे भिष्टल नरक निवासी ॥
हम तेरा तप नाहिं छुटावें। बलकी उलटा धर्म बढ़ावें ॥
सुत उपजावन ही के हेता। नारी संग करै जो जेता ॥
इन्द्री स्वाद सदा नहिं धावें। रितु के समय दान दे आवें ॥
वाकूँ पाप दोष नहिं लागै। ब्रह्मा वचन जु भाषैं आगै ॥

—: वैशंपायन उवाच :—

दो० ऐसे कहि पिप्पलाद मुनि, गए ब्रह्मा के पास।
सभी सुनाई जो हुती, वाकी सबै सुबास ॥२७॥
ब्रह्मा की आज्ञा लई, और किया परनाम।
ऋषी गए अस्थान कूँ, पूरन करि के काम ॥२८॥
हे राजा ऐसे भई, उद्दालक तप माहिं।
विघ्न हुवो चिंता लगी, हिरदै तिरिया छाँहि ॥२९॥
दुखी रहै सोचत रहै, नित यों करै विचार।
को कन्या कित सों लहूँ, अरु जाऊँ किस द्वार ॥३०॥

इस कारन ब्रह्मा पै जाऊँ । यह सब अपनी बात सुनाऊँ ॥
मो भागन सुत है अकि नाहीं । ऐसे पूछूँ जाय गुसाईं ॥
चल्यो चल्यो ब्रह्मा पै आयो । हाथ जोर के शीस नवायो ॥
ब्रह्मा बहुतक आदर कीनो । बैठन कारन आयसु दीनो ॥
कहो ऋषीश्वर कैसे आये । कौन अर्थ कारज क्या लाये ॥
इन्द्रीजीत अरु तुम निरवासी । कैसे आये हमरे पासी ॥
कहै उद्दालक सुन हो नाथा । पूछूँ बात नवाऊँ माथा ॥
यह परसँग पूछन को आयो । मेरे संतति लिखी बतावो ॥

—: ब्रह्मोवाच :—

दो० तब ब्रह्मा भाषत भये, सुनहो यही विचार ।
तेरे पुत्तर होयगा, वंश बढ़ावन हार ॥३१॥
बचन हमारा साँच हो, हिरदै राख निहार ।
पहिले पुत्तर आय है, ताके पीछे नार ॥३२॥
सोई सुता रघुवंश की, पतिबर्ता धर्म रूप ।
गोत बढ़ावन हार हो, सुन्दर अधिक अनूप ॥३३॥
हे ब्राह्मण अब जाइए, अपने आश्रम माँहि ।
परजापति करतार सें, तू चिंता करि नाँहि ॥३४॥

—: उद्दालक उवाच :—

ऋषिने कही जोर कर दोई । नारी बिना पुत्र कस होई ॥
ऐसी कहीं भई विपरीता । पाछे नारी पहिले पूता ॥
मिथ्या वचन करो तुम हाँसी । मैं सकुचा मन भया उदासी ॥
उद्दालक के वचन सुने जब । विधि ह्वाँ अन्तरधान भये तब ॥

गया देख ब्रह्मा को ह्वाँईं। ऋषि आया अस्थल के माँहीं॥
अपने मन में ऐसे ताकी। ब्रह्मा हम सूं झूंठी भाषी॥
कौन भाँति बनि है यह बाता। पहिले पुत्तर पाछे बनिता॥
सोच सोच भया अधिक उदासा। उद्दालक कहै चरणहीदासा॥

इति श्री नासकेत उपाख्याने श्रीरणजीत गुसाईं जी कृत
उद्दालक चिंता वर्णनो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

—: वैशंपायन उवाच :—

दो० वैशंपायन यों कही, हे राजा बड़ भाग।
जानत हो सब शास्त्र तुम, भक्ति विषै अनुराग ॥१॥
वह ब्राह्मण अभिलाष सुत, फिर लागा तप ध्यान।
परम पुरुष का धांवना[1], हिरदै माहीं थान[2] ॥२॥

नारी की मन आशा रहै। काहू से मन की नहिं कहै॥
रात दिना चिन्ता मन माहीं। छिन इक तिरिया भूलत नाहीं॥
सब तन काम जगै दुखदाई। जैसे सूता सिंह जगाई॥
उसी वासना बीज[3] खिसाही[4]। होनहार की यही दशा ही॥
वह बीरज कर माहीं लीन्हाँ। कँवल फूल माँहि धर दीन्हाँ॥
मुँद गया कुशा माँहि लिपटाया। फिर वह गंगा बीच बहाया॥
ब्रह्मा जू की आज्ञा दया। तैरा कँवल जु बहता भया॥

---

१ ध्यान २ स्थिर करके ३ वीर्य ४ स्खलित हुआ।

आगै सुनो कहै रणजीता । जैसे कारज भया पुनीता ॥
दो० नग्गर एक सुहावना, गंगा निकट सुथान ।
राजा रघु ह्वाँ का धनी, तेजवंत ज्यों भान ॥३॥
सतजुग बीत जु त्रेता लागा । तब राजा रघु भया सुभागा ॥
कुल में पूरा धर्म उजागर । दयावंत अरु किरपा सागर ॥
जाकी परजा सब सुख पावै । नित ही समाँ[१] काल[२] नहिं आवे ॥
धनवन्ते सुन्दर नर लोई । बड़ी उमर के रोग न कोई ॥
राजा जित का रघु सतवादी । निहकंटक निरभय जिह गादी ॥
सूरबीर दाता सुखदाई । जाकी जग में बहुत बड़ाई ॥
चंद्रवती थी पुत्री ताकी । धुर[३] सूं कथा कहूँ मैं वाकी ॥
जन रणजीत कहै सुन लीजै । सबही श्रोता ह्याँ चित दीजै ॥
दो० सुंदर मंदिर सोहना, दिपत विराज हुलास ।
चूने लीपा सेत ही, जित कन्या का बास ॥४॥
रंग महल जहाँ चित्तरकारी । ऊँचा महल झरोखे बारी ॥
महा सुन्दरी कंचन बरनी । सुघड़ चतुर देखत मनहरनी ॥
नख शिख ज्यों विधि आप सँवारी । गुनवंती अरु रूप उज्यारी ॥
दिवियों[४] विषे न कन्या ऐसी । गंधर्बियों विषे न कहिये जैसी ॥
आसुरी[५] विषे जु देखी नाहीं । ना कहिये तिरलोकी माहीं ॥
वैसा रूप न हुआ न होगा । वा कन्या कै जोगन जोगा ॥
बड़ी अप्सरा चार पिछानों । रंभा और उरवसी मानों ॥
और तिलोत्तमा तीजी नारी । और मैनका चौथी प्यारी ॥

१ धन धान्य की मृसद्धि २ अकाल ३ आरम्भ ४देवाङ्गनाओं ५असुरों की स्त्रियोंमें ।

दो० ये जो चारों अप्सरा, स्वर्ग हि माँहि अनूप ।
उनसैं भी बहुतै सरस, वा कन्या का रूप ॥५॥

दस हजार जो कन्या औरी । वाके पास रहैं करजोरी ॥
सो वह कन्या सखियों साथी । परन बाँधि गंगा नित न्हाती ॥
न्हाय सदा ही भोजन करती । सखियों सहित सुखी जो रहती ॥
एक दिना ऐसी गति भई । चढ़ि सुखपाल गंग कूँ गई ॥
भाँति भाँति के भूषन साजैं । मुतियन के गल हार बिराजैं ॥
आगे पीछे दहिने बावें । चढ़ी तुरंगन कन्या जावें ॥
कोइ कोइ धुजा चँवर कर धारैं । बस्तर भूषण रूप सँवारैं ॥

दो० बाजे बहुतक सँग बजत, अरु गावत ही गीत ।
नगार सैनिक सी चली, ज्यों थी नित की रीति ॥६॥

जा पहुँची गंगा तट ठाँहीं । क्रीड़ा करन लगी जल माहीं ॥
ब्रह्मचारिन शुभ लक्षण धारी । रूप प्रकाश रही है भारी ॥
गंगा जी में ठाढ़ी भई । उसी पद्म कूँ देखत भई ॥
दिव्य सुगंध जु तैरत जावे । सूरज चंद किरन सरमावे ॥
नर क्या छूय सकै सो वाकों । कँवल जु तेजवंत है ताकों ॥
कन्या देख अचंभै रही । निज सखियन सों ऐसे कही ॥
इसी फूल के निकटै जावो । पकड़ हाथ सूँ मोपै लावो ॥
आज्ञा सूँ कन्या गहि ल्याई । चन्द्रवती लीनों हरषाई ॥

दो० कुशा माँहि सूँ खोलकर, सूँघा नाक लगाय ।
उसमें जो वीरज हुता, पैठा नाभि मँझाय ॥७॥

सखियों सहित न्हाय कर आई । जानी ना हरि की चतुराई ॥
पहल महीने फूलन आये । दूजे मास अंग पलटाये ॥
मास तीसरे मोटी काया । चौथे उदर बड़ा होय आया ॥
पँचवें रोम पलट जो गए । अस्थन कछू श्याम जो भए ॥
छठै सातवैं ऐसा भया । पेट जो बड़ा बहुत हो गया ॥
कन्या उदर देख भई बौरी । तेज भिष्ट भया गति मति औरी ॥
सकल विकल मन व्याकुल नैना । शोक सिंधु में परी अचैना ॥
धीरज तजकै रोवन लागी । चरनदास कहै दुख में पागी ॥

दो० निज कन्या पूछन लगी, है शुभ क्यों रोवंत ।
सुख दीन्हे करतार ने, दुख कहु क्यों होवंत ॥८॥
हमैं बतावो बेग ही, तन मन में उकलन्त ।
तुम कूँ रोवत देख के, हमकूँ कष्ट अत्यन्त ॥९॥
सखियों के सुन वचन ही, रोवत उत्तर दीन ।
कहूँ अचम्भे की सभी, अचरज ही कूँ चीन ॥१०॥

मैं कुल माहिं अकीरत वारी । भई सुनो री सखी पियारी ॥
अरु दूषन रघुवंश मँझारी । अदिष्ट गर्भ मोहि भयो विकारी ॥
मैं नहिं जानूँ क्या हो गया । भारी दुख हिये माहीं छया ॥
अरु देखो रघु महलों माहीं । देवत आय सकै कोइ नाहीं ॥
गंधर्व असुर न आवन पावै । मनुषों की तो कौन चलावै ॥
बड़ा अचंभा भारी भय है । तीन लोक में हुई न ह्वै है ॥
सुनिकै सखी सबै मुरझानी । पीरे बदन भई सब स्यानी ॥
मींढन लगी जू करसूँ करही । इक दाँतों बिच अंगुली धरही ॥

दो० व्याकुल होकै तुरत ही, गई रानी के पास ।
हाथ जोड़ ठाढ़ी भई, होकर बहुत उदास ॥११॥
और कही जी दान द्यो, तो हम कहैं सुनाय ।
अचरज की सी बात ही, कहते जीव डराय ॥१२॥

—: रानी उवाच :—

रघुरानी कही कन्या जानो । अभै दान दियो निहचै मानो ॥
जथा जोग कहु कन्या अबही । कछु मत राखो भाखो सबही ॥
जब कन्या ऐसे करि बोली । कहि नहिं सकैं कहा कहैं खोली ॥
रोम खड़े हों सब तन काँपै । अचरज बात कहा कहुँ तापै ॥
चन्द्रवती के महलों माहीं । गंधर्व देवत सकै न आई ॥
मानुष की तो सामर्थ क्या है । उन महलों में आया चाहै ॥
ऐसी ठौर अचंभा भया । तुम्हरी कन्या को गर्भ रह्या ॥
जब कन्याओं ऐसे कही । रानी सुन दुखिया वह भई ॥
दों० व्याकुल हो धरनी गिरी, रही न कछू संभार ।
शोक माहिं पीड़ित भई, रघुराजा की नार ॥१३॥
उन कन्याओं ताहि उठाया । धीरज दे ताकूँ बैठाया ॥
रानी कन्या रुकसत कीनो । आप गवन राजा सन दीनो ॥
जा राजा पै वचन उचारे । सकल शास्त्र के जानन वारे ॥
स्वामी अभै दान जो पाऊँ । तो अचरज की बात सुनाऊँ ॥

—: राजोवाच :—

राजा कही अभै तुम पावो । यथा योग्य सब बात सुनावो ॥
भूप वचन सुन रानी बोली । डरप सकुचती मुख सों खोली ॥

: रानी उवाच :

कन्या तुम्हरी दूषित जानो । चन्द्रावती ऐसे पहिचानो ॥
जाके गर्भ अचिरज भया है । सोपि कछू न जात कह्या है ॥
दो० क्रोधवन्त राजा भया, सुन रानी के बैन ।
और कछू उन ना कियो, रक्त बरन भये नैन ॥१८॥
राजा सेवक लिए बुलाई । क्रोधवन्त ह्वै बात सुनाई ॥
या कन्या को ले तुम जाओ । जंगल माहिं छोड़ि के आवो ॥
सुनकर सेवक आयसु लीना । बनोवास कन्या कूँ दीना ॥
भयानक जंगल अति ही उजारा । व्याघ्र सिंहन का जहाँ चारा ॥
दसों दिशा लख व्याकुल भारी । कहै कि विधि क्या विपता डारी ॥
यौं अधीर ह्वै नहीं कुँवारी । ज्यों हरिणी संग सूँ भई न्यारी ॥
कहैं रनजीत हिये के माहीं । ऐसी दुखी कहिं तहूँ नाहीं ॥

इति श्री नासकेतोपाख्याने चरणदास कृते कन्या त्यागो नाम
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

—: ऋषिआगमनवर्णन :—

दो० ऐसे कन्या दुखित थी, इतने ही के माँहि ।
फिरता आया एक ऋषि, करी दया की छाँहि ॥१॥
सत्त धर्म में था वह पूरा । तप के माँहीं अधिको सूरा ॥
हुता जु श्रेष्ठ मुनियों के माहीं । लैन फूल फल आया व्हाँहीं ॥
उलटा जब आश्रम कूँ चाला । लिये फूल फल कुशा कृपाला ॥

रोवत कन्या दिष्ट निहारी । चक्रित भया कौन यह बारी ।।
जाग्यवलक चिता करि देखा । मन में किए विचार अनेका ।।
यह दमैनती कै घिरताची । कै रंभा है सुन्दर आछी ।।
कै तिलोत्तमा चित्तरलेखा । कै इन्द्राणी है जु मैनका ।।
देवसुता कै राजकुमारी । ऐसे सोच कियो ऋषि भारी ।।
दो० छवि गुण रूप अधिक तहाँ, ससिवदनी अधिकाय ।
अंग अंग सुन्दर सबै, शोभा कही न जाय ।।२।।
सुन्दर कन्या देख कर, अचरज मन में लाय ।
जाग्यवलक पूछत भये, ऐसे वचन सुनाय ।।३।।
हे कन्या ! तू कित सूँ आई । है तू कौन पिता को माई ।।
कौन काज जंगल के माहीं । आप अकेली सँग कोई नाहीं ।।
सिंघ जरक भेड़ा इहि ठाईं । सो तोकूँ भक्षन करि जाईं ।।
फिर कन्या वह ऐसे बोली । अपनी विपति कही सब खोली ।।
हे ब्राह्मण ! क्या पूछै मेरी । मैं कुल बैरिन दुखी घनेरी ।।
राजा रघु की मैं हूँ बेटी । पिछले पापन मोहिं लपेटी ।।
बिन जानैं भयो गरभ दुखारी । पिता मोहि निरजन बन डारी
शोकवान सो आतुर भारी । दुख में पीड़ित हिये मँझारी ।।
दो० यों कन्या के वचन सुन, दुखी भयो ऋषिराय ।
सब अंगन संतप्त हो, बोला फिर दुहराय ।।४।।

—: ऋषिरुवाच :—

हे देवी ! तू धर्म की, बेटी मैं करी आज ।
मेरे आश्रम के विषे, चल के सदा विराज ।।५।।

परमेश्वर हित सेव ही, तहाँ करूँ चितलाय ।
कंद साग फल लायकै, आगे धरूँ बनाय ॥६॥

जब प्रसन्न होय सँग भई, आई आश्रम माहिं ।
चरणदास कहै रहने लगी, कोई अँदेसो[1] नाहिं ॥७॥

बहुत दिना रहते हुए, गरभ भयो दस मास ।
जब उकताई देह सों, दुख मानौं बहु तास[2] ॥८॥

जब जान्यों परसूत[3] का, समाँ जु पहुँचा आय ।
भवन बिसारो सकुच सों, पहुँची बन में जाय ॥९॥

गंगा जी पुनि ह्वाँई बिराजै । निर्मल जल शुध अधिकी राजै ॥
नमस्कार जाकर उन कीनो । सरन लई चित नीकै दीनो ॥
पारब्रह्म कूँ लिया संभारी । अरु कहि तुम पर जाऊँ वारी ॥
फिर सूरज कूँ नीकै धाया । जगपालन तुम दिन के राया ॥
अरु कहि विष्णु जगत के स्वामी । घट घट के तुम अंतरजामी ॥
महादेव अरु गौरा माई । सभी देव मम करो सहाई ॥
जो मैं शुद्ध वंश में उपजी । हूँ मैं शुद्ध शुद्ध ही शुभ जी ॥
रघु मम पिता मात सतवंती । उनकी पुत्री मैं कुलवंती ॥

दो० जो मेरी या देह में, पाप नहीं है मूर ।
तो जैसे गर्भ रहा है, उस मारग हो दूर ॥१०॥

अहो विधाता जगतपति, यही अरज सुन लेह ।
मेरा वचन जु साँच है, तो सिताब[4] सुख देह ॥११॥

---

१ शंका-भय २ उससे ३ प्रसव—जन्मने का ४ शीघ्र ।

—: वैशंपायन उवाच :—

कन्या को करुना सुनी, जग जीवन करतार।
तबै गर्भ वह उदर सों, आया कंठ मँझार ॥१२॥
कंठ सूं आया सीस में, छींक भई तिहिं बार।
तबही निकसा बाहरे, नासा ही के द्वार ॥१३॥

आई छींक सभी दुख टारे। बालक जनम्यो नासा द्वारे ॥
तातें नासकेत भया नाऊँ। द्योस घड़ी धनि धनि वह ठाऊँ ॥
भूमि परत ही बालक बोला। अपना भेद सभी तिन खोला ॥
हे माता ! सतवंती धरमी। मन में धीरज रख सुभ करमी ॥
नासकेत मम नाम बखानौं। जोग सिद्धि में पूरन जानौं ॥
विधि के बचन जु पूरे भये। उद्दालक सूं आगे कहे ॥
ब्रह्मा का सुत है उद्दालक। ताही का जो मैं हूँ बालक ॥
उपजा वाके बीरज सेती। कही साँच मानियो जेती ॥
बालक वचन सुने जब माई। वह बहुती अचरज में आई ॥

दो० जबै मोह वश होय कै, गोदी लिया उठाय।
फिर मुख में अस्तन दियो, खुशी भई अधिकाय ॥१४॥

बालक शोभा कहा बखानूँ। रूपवंत अरु धुर सूँ ज्ञानूँ ॥
ऋषि के आश्रम ही के माहीं। पालन लगी जिसी के ताईं ॥
लज्जा दुख लिये रहै सुभागा। इक दिन बालक रोवन लागा ॥
थाँभा थँभै न क्यों ही कैसे। कीया क्रोध सुभागी जैसे ॥
हे पुत्तर रोवत क्यों भारी। तोही कारन वन में डारी ॥

—: वैशंपायन उवाच :—

हूवा था जब एक बरस का। रूपवंत गुणवंत सरस का ॥
क्रोध सहित माता मन आई। वहीं पिटारी एक बनाई ॥
तामें बालक कूँ पौढ़ाया। कुशा घास तापै लिपटाया ॥
दो० गही पिटारी आय कर, गंगा दिया बहाय।
तब कन्या उस पुत्र कूँ, ऐसे कहा सुनाय ॥१५॥
कौन गरभ का मैं नहीं जानूँ। तेरे पिता कूँ मैं न पिछानूँ ॥
जाके बीरज भया उपाव्। ताही के ढिग बह कर जा तू ॥
जब बालक वह बहता चला। आगे सुन होतब की कला ॥
बालक आया बहते बहते। जहाँ ऋषीश्वर बहुतक रहते ॥
उद्दालक रहता था ह्वाँही। तेजवन्त तपसी अधिकाई ॥
लखी पिटारी आवत सबही। पर लीनी उद्दालक तबही ॥
लाकर राखी अपने ठाँहीं। आप लगा शुभ कर्मों माहीं ॥
वेद करम सबही करि लीन्हें। पित्तर कारज भी सब कीन्हें ॥
दो० शुभ कर्मों से छूटकर, खोला फेरि पिटार।
जो देखे तो पुरुष इक, सुन्दर अधिक अपार ॥१६॥
गुणवन्ता अरु लक्षण धारी। ध्यान जोग में था बलकारी ॥
उस बालक को ऐसे लहिया। ज्ञानवान ऋषि जब यों कहिया
हे बालक अब बस तू यहाँ ही। मेरे सुन्दर आश्रम माहीं ॥
ऐसे कहि राखा धर्मशाला। लागा बहुरि करन प्रतिपाला ॥

इति श्री नासकेतोपाख्याने पिता पुत्र संयोगो नामं
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

—: वैशंपायन उवाच :—

एक दिना वाकी महतारी । गया क्रोध जब बात विचारी ।।
जिहि कारन बहुतै दुख पाया । सो बालक मैं गंग बहाया ।।
सोच सोच मन में पछताई । गंगा कूल ढूँढ़ने धाई ।।
व्याकुल भई रोवती चाली । अपनी बुधि कूँ देती गाली ।।
चलती चलती पहुँची तहाँ । उद्दालक रहता था जहाँ ।।
तहाँ अपना बालक ही पाया । भरिकै अंकों गले लगाया ।।
दो० देख बहुत परसन्न हो, कही घोस धनि आज ।
ढूँढ़न कूँ निकसी हुती, सो भए पूरन काज ।।१।।
यों कहि फिर बैठी वह बाला । बालक लिपन लगो जज्ञसाला।।
कन्या कही लीप कहा करिहो । को कारज या ऊपर सरिहो।।

—: नासकेत उवाच :—

जब बालक कही पिता हमारे । आज्ञा दे वन ओर सिधारे ।।
तातें लीपत हूँ जज्ञशाला । आय करैं जज्ञ मधिकाला[1] ।।

—: माता उवाच :—

कन्या कही पुत्र तुम मेरे । ला मैं लीपूँ बदले तेरे ।।
जब बालक लीपन नहिं कीन्हा । सकल सौंज माता कर दीन्हा ।।
चित्त दे लीपा सुन्दर बाला । और दिना सूँ नीकी शाला ।।
चरणदास कहै फुल्लित भई । गंगा न्हान करन कूँ गई ।।

---

१ मध्याह्न कालीन ।

दो० तब उद्दालक आइया, बन ते अपनी ठाँहि ।
बालक सों धनि धनि कहा, खुशी भये मन माँहि ॥२॥

—: उद्दालक उवाच :—

पुत्तर झाड़ू भली दे, लीपन किया बनाय ।
अगनिहोत्र का मंड[1] ही, नई भाँति दरसाय ॥३॥
बहुत खुशी तो पै भया, सुन्दर मन्दिर देख ।
ऐसा लीपा ना कभी, जैसा आज बिसेख ॥४॥

—: नासकेत उवाच :—

पिता सुनो लीपन करम, मैं नहिं कीया आज ।
मेरी माता आइया, जिन यह कीया काज ॥५॥

—: उद्दालक उवाच :—

हे पुत्तर तेरी जो माई । कारज करिकै कित कूँ धाई ॥
नासकेत सुनि ऐसे कही । गंगा ओर न्हान कूँ गई ॥
सुन यह वचन खुशी ऋषि भयऊ । बहुरूँ अगनिहोत्र चित दियऊ
करि करि करम जु बोलत भया । पुत्तर का कर कर में लिया ॥
फिर वासूँ कही गंगा जावो । अपनी माता कूँ ले आवो ॥
आदर करके परसन करूँ । पुष्प मूल ले आगे धरूँ ॥
वचन पिता के सुनि वहाँ गया । हाथ जोरि माता सों कह्या ॥

—: नासकेत उवाच :—

हे माता चल आश्रम माहीं । जहाँ मम पिता बसो तुम ह्वाँहीं ॥
कंद साग नीकै करि पावो । ऐसे सुख सूँ द्योस बितावो ॥

---

१ मंडप ।

—: माता उवाच :—

सुनि चन्द्रावती कहा विचारा। क्यों सुत वचन अजोग उचारा ॥
सुनि करि रोम उठै तन सारे। बिना धर्म का वचन कहा रे ॥
आगे भी किन्ह यह जस लीया। माता दान पुत्र ने कीया ॥

दो० जग में ऐसी रीत है, पिता करै जो दान।
कै कन्या का भ्रात ही, कै मामूँ परवान ॥६॥
नासकेत चुपका भया, मन माँहीं सकुचाय।
उठ आया ऋषि पास ही, सबही दिया सुनाय ॥७॥

हे पुत्तर उन आछी भाखी। धर्मशास्त्र में योंही राखी ॥
कही उद्दालक फिर ह्वाँ जइए। मेरे मुख सों ऐसे कहिए ॥
कौन वंश में जन्म तुम्हारा। कैसे उपजन भया हमारा ॥
कौन काज कों तुम यहाँ आई। यह सब बातें पूछो जाई ॥
बचन पिता के सुन वह धाया। माता कूँ जा शीस नवाया ॥

—: नासकेत उवाच :—

फेर कही सुन मेरी माता। पूछन कूँ पठयो मम ताता ॥
काकी धी[1] को पिता तुम्हारो। कैसे तुम्हरे जन्म हमारो ॥
ह्याँ आवन को कारन को है। सत्त सत्त कहो ज्यों करि जो है ॥

—: माता उवाच :—

दो० चंद्रवती यों बोलिया, सुन पुत्तर परवीन।
जो तू पूछत है मुझे, मैं कहुँ चित दे चीन्ह ॥८॥
परालब्ध के जोग तें, करम भया जो जान।

१ किसकी लड़की।

सो मैं तोसों कहत हूँ, साखी इक भगवान ॥९॥
सूरज ही के वंश में, रघु राजा परसिद्ध ।
मैं हूँ बेटी तासु की, शुभ करनी सब बिद्ध ॥१०॥
चूने लीपे मंदिर माहीं । रहती हुती सोक कछु नाहीं ॥
दस हजार कन्या ढिग रहती । भाँति भाँति मम सेवा करती ॥
एक समै मैं गंगा गई । जहाँ जाय कै न्हाती भई ॥
लिपटा कुशा कमल इक आया । पकड़ा खोला नाक लगाया ॥
वामें बीरज मैं नहिं जाना । नाक छेद हो उदर समाना ॥
वासों मोकूँ गरभ रहा था । सखियों लखि मम मात कहा था ॥
फिर रानी राजा सों कह्यो । पिता बनोबास मोहि दियो ॥
रोवन लगी बहुत दुख पाया । वहाँ ही एक तपस्वी आया ॥
दो० बेटी कर धीरज दिया, ले गया आश्रम माहिं ।
ह्वाँ सुख सों रहने लगी, सोच रहा कछु नाहिं ॥११॥
हे पुत्तर उपजा तू ह्वाँही । नासा के मधि जन्म्यो आई ॥
तातें नासकेत धर्‌यो नाऊँ । पलने लगे बहुरि वहि ठाऊँ ॥
बरस दिना के हो सुख पागे । घुटनों पैरों चलने लागे ॥
इक दिन रुदन किया तुम भारा । मैं किरोध करि गंगा डारा ॥
दो० तभी रोस मोहि आइया, लीन्ही तुला बनाय ।
तामें तोहि सुलाय कै, दीन्हों गंग बहाय ॥१२॥
चार बरस पीछे सुधि आई । बड़ी भई जब मैं पछताई ॥
जिहि कारन बन लिया बसेरा । सुख छुट कै दुख हुवा घनेरा ॥
उपजा मोह क्रोध सब भागा । मन में तू बहु प्यारा लागा ॥

कलप कलप जिय रहा न जाई। तब उठ ढूँढन ही कों धाई ॥
ढूँढत ढूँढत अब तोहिं पाया। आँख सुखी हुई हिया सिराया ॥
सुन रे पुत्तर यह मम बाता। जाय कहो तुम अपने ताता ॥
नासहीकेत उलट जब आया। पिता कूँ सबही भेद सुनाया ॥

—: वैशंपायन उवाच :—

दो० सुनि उद्दालक हुलस मन, ब्रह्मा वचन संभार।
चले संग ले बालका, जित चन्द्रावति नार ॥१३॥

गये जहाँ बैठी बड़भागी। मन सकुचा उठ चरनौं लागी ॥
चरनों से दोउ नैन छुवाये। कही धन्न हम दरशन पाये ॥
देख ऋषीश्वर ने सुख पाया। हँस करि ऐसे वचन सुनाया ॥
चलिये रहिये सुत के पाहूँ। मैं राजा रघु के ढिग जाऊँ ॥
तीनों मिल आश्रम में आये। करि भोजन सबही हुलसाये ॥
नासकेत चन्द्रावति बाला। दोनों राख चला धर्मसाला ॥
भोर भये अरु बहुत संवारा। उद्दालक ने गवन विचारा ॥
चरनदास कहै मन धरि आसा। जा पहुँचा राजा रघु पासा ॥

दो० राजा बहु आदर कियो, सिंहासन बैठाय।
चरनों सिर धरि यों कहा, कृपा करी तुम आय ॥१४॥

—: उद्दालक उवाच :—

उद्दालक कह्यो बचन अनूपा। देखे पिरथी पर बहु भूपा ॥
तो सम राजा और न दूजो। तेरी बड़ी आरवल हूजो ॥

—: राजोवाच :—

हाथ जोर कर पूछी बाता। किहि कारन आये तुम नाथा ॥

मन में हो सो आज्ञा दीजै । वही कामना हम सूँ लीजै ॥

—: उद्दालक उवाच :—

ऐ राजा मोहिं कछू न चहिये । सभी त्याग जंगल में रहिये ॥
मैं आयो यह इच्छा मेरी । कन्या माँगन आयो तेरी ॥
बंस बढ़ावन ही के काजा । मोसे सुनो साँच यह राजा ॥
जाकूँ दीजे मोहि परनाई । अपने मन की खोल सुनाई ॥

—: राजोवाच :—

राजा कही न बेटी मेरे । पूरे वचन करूँ जो तेरे ॥
एक हुती सो खाई काला । मरी गई छूटो जंजाला ॥

—: उद्दालक उवाच :—

उद्दालक कहि सुनो हमारी । अब लग जीवत सुता तुम्हारी ॥

—: रघुरुवाच :—

राजा चौंक कही मुसकाई । वह कन्या कित है ऋषिराई ॥
मोहि दीखत अचरज सी बाता । यह तुम बोल कह्यो कुसलाता ॥

—: उद्दालक उवाच :—

दो० ऋषि ने कह्यो चन्द्रावती, मेरे आश्रम माहिं ।
सुत समेत वहाँ छोड़ कर, मैं आयो इहिं ठाहिं ॥१५॥

ब्रह्मा बचन जु पूरे भये । जो हम कूँ उन आगे कहे ॥
कहा कि पहिले बेटा पैहै । जिह पाछै नारी हू अइ है ॥
ऋषि ने पिछली कहि समझाई । आदि अन्त लौं सबै सुनाई ॥
वंश हेत ब्रह्मा पै धायो । विधि ने ऐसे बचन सुनायो ॥
पहिले पुत्तर पाछे तिरिया । तेरे भागन में यों धरिया ॥

यों कहि अन्तरधान विचारा । मैं निज अस्थल आन सँभारा ॥
फिर रह कर तप ही आराधा । मन में रहै वासना व्याधा ॥
ताते वीज टरा कर लीना । ताकूँ पदम माँहि धर दीना ॥
कुशा लपेटी गंग वहाया । तो कन्या न्हाती ह्वाँ आया ॥
वाकूँ सूँघा कर में लिया । बीज चढ़ा गर्भ रहि गया ॥
नासा द्वार जनम जिन लीया । नासहोकेत नाँव धर दीया ॥
कर कर कन्या क्रोध वहाया । ऐसे पुत्तर पहिले आया ॥
फिर वह वाकूँ ढूँढ़न धाई । ऐसे मो अस्थल में आई ॥
ब्रह्मा बचन न टारे टरैं । कोटि उपाव जु प्रानी करैं ॥
ऋषि मुनि देवत दैयत[1] सारे । समरथ कौन जु वाकूँ टारे ॥
उद्दालक सब खोल सुनाई । रनजीत कहै राजा मन आई ॥

—: वैशंपायन उवाच :—

दो० तिस उपरांत जु भूप कूँ, अचरज भयो हुलास ।
फिर उठकै महलों गया, रानी ही के पास ॥१६॥

खुशी खुशी रानी सूँ बोला । ऋषि का कहा सभी जो खोला ॥
रानी साँच मानियो सोऊ । ब्रह्मा वचन जु पूरे होऊ ॥
सुन रानी हियरे हुलसाई । अरु आपस में वात सुनाई ॥
राजा निकस द्वार फिर आया । ऊद्दालक कूँ निकट बुलाया ॥
भक्ति सहित हँस कर यों बोला । वचन प्रीति के कहे अमोला ॥
सुन्दर रथ अरु सेवक मेरे । लेजा अपने संग सवेरे[2] ॥
चन्द्रवती अरु बालक ल्यावो । ऐसे कही सितावी आवो ॥

१ दैत्य २ शीघ्र ।

ऋषि सुन बचन खुशी जो भया। रथ सेवक ले अस्थल गया॥
दो० रैन रहे अस्थान पर, गवन बिचारा भोर।
दोनों रथ बैठाय कर, चाला वाही ओर॥१७॥
चला चला राजा पै आया। राजा देख बहुत सुख पाया॥
राजा रघु अरु वाकी रानी। दोनों ने मिल सुता पिछानी॥
दो० रोकर जब माता मिली, लीन्ही कंठ लगाय।
अरु नारी परिवार की, सभी मिली जो आय॥१८॥
जब पण्डित कूँ लिया बुलाई। साहा काढ लगन धरवाई॥
किया विवाह दान बहु दीना। कपड़े गहने सेज नवीना॥
दासी दासे दीने साथी। रथ घोड़े करहे अरु हाथी॥
सोने मँढ़े सींग दई गइया। दूध भरी जो भैंसैं दइया॥
अरु बहु भाँती दीने दाना। दीनी भौम बहुत सुख माना॥
विदा करत जोरे दोउ हाथा। बिनती करी जु पिरथीनाथा॥
नमस्कार कर ठाढ़ो भयो। जब ऋषि हँस कर ऐसे कह्यो॥
कही उद्दालक सुन हो राजा। हस्ती घोड़े हम कहा काजा॥
गहने कपड़े हम कहा करिहैं। इतना दान कहाँ ले धरिहैं॥
सकल दहेज दिया ऋषि फेरी। एक न राखा चेरा चेरी॥
चरनदास कहै कछू न लीया। उलटा सभी फेर जो दीया॥
दो० नासकेत चन्द्रावती, बैठा कर रथ माँहि।
दोनों ही कूँ ले गया, अपने आश्रम ठाँहि॥१९॥
तब ह्वाँ सुख सों रहने लागे। सरस नेह में तीनों पागे॥
रनजीत कहै यह कथा पुरानी। जाकी महिमा ऋषिन बखानी॥

मनुष देवता पंडित गावैं । धरमनीक सुन कर हुलसावैं ॥
जित जित और पुरानन गाई । पाप मिटावन अरु सुखदाई ॥
निरी धरम की नवका जानो । सुन्दर अधिक पवित्तर मानो ॥
भक्ति भाव कर सुनै जु कोई । भव जल पार उतरि है सोई ॥

इति श्री नासकेतोपाख्याने चन्द्रावती विवाहो नाम
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पंचमोऽध्यायः

—: वैशम्पायन उवाच :—

दो० वैशंपायन ने कहा, सुन जनसेजय भूप ।
तप करतें ऋषि दे दिया, सुत कूँ श्राप अनूप ॥१॥
कहा कि जा जमलोक कूँ, भारी कीया पाप ।
नासकेत लिया मानकै, उद्दालक का श्राप ॥२॥

—: जनमेजय उवाच :—

फिर जनमेजय पूछिया, हे बिप्पर सुन लेह ।
सुत कूँ दीया श्राप क्यों, मो मन यह संदेह ॥३॥
सुत कूँ दैना श्राप जो, दुर्लभ सी यह बात ।
ऊपर अपनी आतमा, कैसे सोहै घात ॥४॥

कौन प्रयोजन दिया सरापी । कैसे गया जमपुरी आपी ॥
कैसे देख देख सब आया । मो से सबही कहो सुनाया ॥
किसा नरक है जित दुख दावैं । किसा स्वर्ग है जहाँ सुख पावैं ॥

—: वैशम्पायन उवाच :—

बोले वैशम सुनि हो राजा । दिया सराप जौन ही काजा ॥

—: वैशंपायन उवाच :—

जाकर ह्वाँ सूँ आया जैसे । चित दे सुनो कहूँ अब तैसे ॥
एक दिना उद्दालक राया । नासकेत कूँ बचन सुनाया ॥
मैं रहुँ घर तुम बन कूँ जावो । कन्द फूल फल लकड़ी लावो ॥
अगनि होत्र जासूँ हम करि हैं । शुभ करमों के कारज सरि हैं ॥
पिता की आज्ञा लेकर धाये । चले चले बन माहीं आये ॥
जिन ह्वाँ एक सरोवर देखा । कमल भरे ता माँहि बिसेखा ॥
आसपास द्रुम हैं बहु भाँती । फूले फले सुगन्ध सुहाती ॥
नाना पंछी बोलैं बानी । सुन्दर ठौर देख मन मानी ॥
जित ह्वाँ विधि सूँ करि अस्नाना । देवत पितर पूजन ठाना ॥

दो० नईवेद फल फूल सों, जिनको परसन कीन ।
रनजीता यों कहत है, अँजली सों जल दीन ॥५॥
फिर यों मन में आइया, बैठ धरूँ हरि ध्यान ।
आराधन प्रभु को करूँ, ऐसो उपजो ज्ञान ॥६॥

तहाँ बैठ कर आसन कीनो । हरि के ध्यान माँहि मन दीनो ॥
जोग ध्यान की जुगत विचारी । सुरति लीन भइ लागी ताड़ी ॥
दो अरु तीस दिना यों रही । बहुरू आप सहज खुल गई ॥
जबही घर की चिंता आई । पिता की आज्ञा चित में छाई ॥
तातें बेग चला ह्वाँ आया । देख पिता कूँ शीस नवाया ॥
देख पिता पुत्र की ओरी । बचन क्रोध कहा वा ठौरी ॥
अग्निहोत्र में विघ्न भया था । यातें बचन कठोर कहा था ॥

—: उद्दालक उवाच :—

रे पापी तू कित सूँ आया । मेरा आयसु सभी भुलाया ॥

मैं भेजा फल फूल ही काजे। अग्निहोत्र के करने साजे ॥
अग्निहोत्र का तैं किया नासा। वा दिन मो मन रहा उदासा ॥
दो० अग्निहोत्र है देवता, परसन ब्रह्मा आदि।
पित्तर मुनि तिरपत भवैं, सुखदाई धर्म आदि ॥७॥
वचन पिता के सुन लिए, बोले नासहीकेत।
समझावत हो जो अबै, पुत्तर ही के हेत ॥८॥

—: नासकेत उवाच :—

सुनो पिता यह जानो दाई। अग्निहोत्र बंधन जग माहीं ॥
जनम मरन के भय का दाता। सुख का नास करन ए बाता ॥
जोग समान और कछु नाहीं। जग समुद्र जासूँ तिर जाई ॥
ब्रह्मा इन्दर आदिक देवा। जोग ही करिकै यह सिधि लेवा
सिद्ध होन का ऐसा कोई। और उपाय न दूजा होई ॥

—: उद्दालक उवाच :—

हे पुत्तर ऋषि बड़े निहारे। अधिक तपस्या करनेवारे ॥
तिनहूँ अग्निहोत्र कूँ धारा। जान पवित्तर हिये मँझारा ॥
ऐसे वेद माँहि लिख राखा। रनजीत कहे उद्दालक भाखा ॥
दो० अग्निहोत्र ही के बिना, ब्रह्म जज्ञ नहिं होय।
अति पुनीत यह करम है, करो चाव सों सोय ॥९॥

—: नासकेत उवाच :—

नासकेत कहै वचन हमारे। सुनो पिताजी कहूँ विचारे ॥
अग्निहोत्र कर सुरग सिधारै। फेर जन्म पिरथी पर धारै ॥
करमों ही से आवै जावै। बिना जोग नहिं थिरता पावै ॥

पाप पुण्य दोऊ बेड़ी पग में । इन कूँ तोड़ चलैं हरिसंग में ॥
भक्ति जोग अरु निर्मल ज्ञानो । इन सूँ मुक्ति होय सत जानो ॥
तीनों में सरधा जोइ करै । निहचै भवसागर सूँ तरै ॥
बास लहै चौथे पद माहीं । जनम मरन फिर होवे नाहीं ॥
कर्म करै अरु फल कूँ चाहै । मुक्ति न पावै दुख सुख दाहै ॥

—: वैशम्पायन उवाच :—

वैशंपायन कहत है, सुन जममेजय भूप ।
उद्दालक सुन वचन कूँ, भया तमोगुन रूप ॥१०॥
अरु मुखसों कहि पापी दोखी । तैंने खोटी कही अनोखी ॥
है जु पिता का दूषक भारी । बेग जाउ जमलोक मँझारी ॥
ब्रह्म दण्ड तू मारा गया । तू जमलोक जोग ही भया ॥
फिर सुनकर वह नासहि केता । बड़े श्राप भू गिरा अचेता ॥
फिर चेतन होय ऐसे भाखा । पिता श्राप सीस पर राखा ॥
जाऊँगा जमलोक अवारूँ । तुम्हरी आज्ञा कबहुँ न टारूँ ॥
गिरा पुत्तर कूँ मुनि जब देखा, ऋषि व्याकुल भया अधिक विशेखा
शोक घने सूँ तपत भया है । बहु विलाप दुख घना छया है ॥
दो० हाय पुत्र मम आतमा, मैं तोहि दीनो श्राप ।
मैं क्रोधी अज्ञान हूँ, लिया ढाँप मोहि पाप ॥११॥
हे पुतर धर्मराय जहाँ है । मारग दारुण दुःख तहाँ है ॥
और नरक ह्वाँ है भयमाना । वैसी ठौर न तोकूँ जाना ॥
छोटा बालक डर ह्वाँ भारी । दुःख भुगतत है नर अरु नारी ॥
मोकूँ अरु अपनी माता कूँ । हमें छोड़ के ह्वाँ मत जा तू ॥

ऐसे वचन पिता जब बोले। नासहीकेत दीन हो बोले॥

—: नासकेत उवाच :—

एहो पिता डिगा मत मोकूँ। नमस्कार बहुते करूँ तोकूँ॥
ध्यान तुम्हारो हिरदै धरि हूँ। वचन तुम्हारे कूँ सब करिहूँ॥
सत से सूरज तपता मानों। सत सूँ पिरथी कूँ थिर जानों॥
सत सूँ अगनि जलत है सोई। सत सूँ चन्दा अस्थित होई॥
सत सूँ लोक रहत ठहराई। सत सूँ धर्म सदा बिरधाई॥
सत सूँ यह ब्रह्माण्ड खड़ा है। सत सूँ सत्तो सूर अड़ा है॥
हे महाराज साख कहूँ एका। एक समय विधि कियो विवेका॥
अश्वमेध जज्ञ सहस जु लीने। इक पलड़े में राख जु दीने॥
दूजे पलड़े में सत राखा। भारी भया साँच यह साखा॥

दो० जज्ञ पलड़ा ऊँचे गया, सत पलड़ा रहा भार।
सत करिकै जो रहित नर, सो मसान सम धार॥१२॥

ज्यों मसान तज दीजिए, वा नर कूँ यों त्याग।
सत्य जतन कर राखिये, सत हो सेती लाग॥१३॥

स्वर्ग सत्त सूँ पाइये, सत ही यों गति होय।
सत्य धर्म सैं हीन नर, जाहि नरक कूँ सोय॥१४॥

तातें शोक निवारिये, बुधि को थिर करि लेहु।
मैं जाऊँ जमलोक कूँ, येहि जु आज्ञा देहु॥१५॥
ठौर ठौर कूँ देखकर, आऊँ चरनों पास।
बेगहि आ दरशन करूँ, मत हो नेक उदास॥१६॥

—:वैशंपायन उवाचः—

वैशंपायन कहत हैं, हे राजा सुज्ञान।
नासकेत कहि पिता सूँ, फिर भया अन्तर धान ॥१७॥
इतनी कहि फिर गवन विचारा। गया जोग बल लगी न बारा॥
ऐसे जम के लोक पधारा। धरमराय का दरस निहारा॥
सिंहासन के ऊपर राजै। अगनि पुंज ज्यों तेज विराजै॥
जब इन हाथ जोड़ दोउ लीया। अस्तोत्तर[1] धर्मराय का कीया॥
भक्ति भाव कर जुक्ति संभारै। लिये दीनता लज्जा धारै॥
धरमनीक परबीन महाई। रनजीत कहै तिरलोक बड़ाई॥

इति श्रीनासकेतोपाख्याने यम दर्शनो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

—: वैशम्पायन उवाच :—

दो० पैठि सभा के बीच में, दीठ[2] बुद्धि उद्दार[3]।
पण्डित बहुत विराजई, विद्या का उजियार ॥१॥
सारदूल[4] से भूप सुनि, बालक कियो बनाय।
अस्तोत्तर धर्मराय का, सो अब कहूँ सुनाय ॥२॥

—: नासकेत उवाच :—

नमस्कार धर्मराय कूँ, सर्व पिता महिदेव।
तीन लोक रक्षा करन, सकल हरन निरलेव ॥३॥
सूरजसुत मरजाद धरि, नीति शास्त्र के रूप।

१ स्तुति २ दृष्टि ३ उदार ४ सिंह के समान अर्थात् महा शक्तिशाली।

धर्म अधर्म विचारि कै, न्याई अधिक अनूप ॥४॥
सब पित्रों के नाथ हो, पूजें सब सुर आदि।
बुद्धिमान धर्मात्मा, सतवादी बिन वाद ॥५॥
कान्त[1] बड़ी अरु निर्मला, महा पवित्तर देह।
परजावों[2] के पति बड़े, नमस्कार मम लेह ॥६॥
अधिकारी धर्म ध्यान के, लक्ष्मीवान सुजान।
नमस्कार मम लीजिए, बहुरूपी बहु ज्ञान ॥७॥
नमस्कार मम लीजिए, पाप मिटावन हार।
वेल बढ़ावन धर्म के, अस्तुति बारम्बार ॥८॥

—: वैशंपायन उवाच :—

वैशंपायन ने कहा, सुन राजा यह सिक्ष।
अस्तोत्तर ऋषि सुत कियो, पापदहन परतिक्ष ॥९॥
यह अस्तोत्तर सुन खुसी, बोला धर्महि राय।
हे ब्राह्मण परसन भयो, पूछत हूँ हरषाय ॥१०॥
क्यों कर आया कहाँ सूँ, कै किन दिया पठाय।
कै तू आया आप सूँ, हम कूँ कहो सुनाय ॥११॥
जब यों पूछा धर्महि राया। रे बालक तू ह्याँ कित आया ॥
बिना बुलाये ना कोइ आवे। अरु आपनी देह नहिं लावे ॥

—: नासकेत उवाच :—

दो० नासकेत ऐसे कही, दीनों पिता सराप।
अब तू जा जमलोक कूँ, यों मैं आयो आप ॥१२॥

१ तेज २ प्रजा-रैयत।

पिता सराप आप ही आयो । तुम्हरे दरशन कर सुख पायो ॥

—: यम उवाच :—

धरमराय सुन बचन उचारा । धनि धनि बालक परन तुम्हारा ॥
आज्ञा मान पिता की आए । हम तुम पै बहुतै हरषाए ॥
हे बुधिमान कहा तोहि चहिए । मन में हो सो हम सों कहिए ॥
सुख सों बिचर जमपुरी माहीं । बर माँगै सो लै अब ह्याँहीं ॥

—: नासकेत उवाच :—

अहो देव तू परसन मोपै । तो इक बर माँगू मैं तोपै ॥
सुन्दर नगर तुम्हारा कैसा । सभी दिखावो जित जित जैसा ॥
चित्रगुपत कूँ मोहिं मिलावो । ह्याँ का सब ही भेद जनावो ॥
दो० पतितन कूँ दुख होत है, धरमी सुक्ख निवास ।
एहू ठौर दिखाइए, मैं चरणन को दास ॥१३॥
तिहिं उपरान्त धरम ही राया । किंकर अपना कूँ जु सुनाया ॥
या बालक कूँ सँग ले जावो । चित्रगुपत ही कूँ जु मिलावो ॥
यह ब्राह्मण है पण्डित भारा । सत धर्म का जानन वारा ॥
आप पिता के ह्याँ चलि आया । याको नगरी देहु दिखाया ॥
चित्रगुप्त कूँ या जा दीज्यो । मेरी आज्ञा सूँ यों कीज्यो ॥

—: वैशंपायन उवाच :—

ऐसे दूतन सों कहि दीया । नासकेत को जब सँग लीया ॥
चित्रगुप्त के जाके द्वारे । द्वारपाल सों वचन उचारे ॥

—: दूत उवाच :—

धर्मराय ने हमैं खिदाया[1] । नासकेत कूँ संग पठाया ॥

[1] भेजा ।

दो० चित्रगुप्त के पास ही, जाय कहो यह बोल ।
सुन कर गए सिताब ही, बात कही सब खोल ॥१४॥
चित्रगुप्त सुनिये महाराजा । धर्मराय भेजे इस काजा ॥
इस ब्राह्मण को संग पठाया । दूतन साथ पोलि[1] पै आया ॥

—: चित्रगुप्त उवाच :—

पूछो जाय सिताबी वाकों । कै भीतर ले आवो ताकों ॥

—: वैशंपायन उवाच :—

द्वारपाल सबकूँ ले गया । चित्रगुप्त का दरशन भया ॥
चित्रगुप्त दूतन सों पूछा । तबही दूत बचन कहे गूछा[2] ॥

—: दूत उवाच :—

हे बड़भाग सुनो करि दाया । धरमराय ने हमैं पठाया ॥
यह ब्राह्मण आया बुधिवाना । सत्य धर्म दृढ़ में अति स्याना ॥
पिता सराप जम्पुरी आया । याका चाव करो मन भाया ॥

—: चित्रगुप्त उवाच :—

दो० चित्रगुप्त यों बोलिया, सुन ब्राह्मण महाराज ।
तो इच्छा पूरी करूँ, खोल कहो अब काज ॥१५॥

—: नासकेत उवाच :—

जानत हो सब नरन की, गुप्त प्रगट जो बात ।
कछू नहीं तुम सूँ छिपा, द्योस करो कै रात ॥१६॥
तेजवंत प्राकर्म ही, बड़े तुम्हारे काज ।

१ दरवाजा २ गुप्त ।

देखा चाहूँ जमपुरी, अरु सब ह्याँ के साज ॥१७॥

अरु इक मन की खोल सुनाऊँ। दुख सुख ह्याँ के देखा चाहूँ ॥

—: चित्रगुप्त उवाच :—

धरमराय को बचन हमारो। हे दूतो ! तुम हिरदै धारो ॥
ठौर ठौर सब जाय दिखावो। संगहि रहो फेर ह्याँ ल्यावो ॥
इसे नरक दुख पवन न लागे। रक्षा सों ले जाहु सुभागे ॥

—: वैशंपायन उवाच :—

चित्रगुप्त की आज्ञा पाई। सगरी नगरी जाय दिखाई ॥
नासकेत देखत ही जाई। ठौर ठौर देखी हित लाई ॥
सात स्वरग अरु नरक अठारा। भिन्न भिन्न कर देखा सारा ॥
सब दिखाय फिर लाये पासा। नमस्कार कर होय हुलासा ॥

—: चित्रगुप्त उवाच :—

दो० चित्रगुप्त कही दूत सों, पूरी भई जु आस।
अब याकूँ ले जाइए, धरमराय के पास ॥१८॥
सुनकै तुरत ही ले गए, नमस्कार करि जाय।
धर्मराय वा देख कै, बोले अधिकी भाय ॥१९॥
आधा आसन ही दिया, बैठाया कर चाव।
चरन धोय पूजा करी, जान किया ऋषि भाव ॥२०॥

—: यम उवाच :—

धरमराय हँस बचन सुनाए। सभी देख कहो सुख सूँ आये ॥
नासकेतजी ठौर निहारी। तुमने देखी नगरी सारी ॥

—: नासकेत उवाच :—

तुम किरपा सों स्वर्ग निहारे । अरु हम देखे नरक अठारे ॥
पापी पुन्यी सब ह्वाँ देखे । अरु उनके फल सभी विसेखे ॥
अब इक अरज और सुन लीजे । घर जाने की आज्ञा दीजे ॥
माता दुखी पिता दुख भारू । जाय मिलूँ दुख सब ही टारूँ ॥
उनसूँ वचन किया था आगूँ । देख जमपुरी चरनों लागूँ ॥

दो० नमस्कार कर यों कही, देखो सब ही भेव ।
अब मात पिता पै जाय हूँ, मोकूँ आयसु देव ॥२१॥

—: यम उवाच :—

धर्मराय कही आछी बाता । वचन कह्यो यह मोहिं सुहाता ॥
अब हम तोकूँ यह बर दीना । होगा अमर सदा परवीना ॥
अरु काया बूढ़ी नहिं होगी । हमरे बर तें रहै निरोगी ॥

—: वैशंपायन उवाच :—

नासकेत बर ले सिर नाया । मात पिता ढिंग बेग ही आया ॥
चला जोगबल लगी न बारा । एक पलक में जैसे तारा ॥
रोवत माता कूँ जहाँ पाया । पिता शोक में था अधिकाया ॥
पुत्तर कूँ जब आया देखा । उद्दालक भया खुशी विशेखा ॥
पिता और चन्द्रावति माई । हरषमान बहु करी वधाई ॥

—: उद्दालक उवाच :—

दो० जनम करम पूजा सभी, सुफल भए मम आज ।
पुत्तर का मुख देख तें, सभी गए दुख भाज ॥२२॥

उद्दालक कहि वाकी मा सूँ । देख जमपुरी आया ह्वाँ सूँ ॥

जोग तपस्या बल कूँ देखो । अपने मन में कर कर लेखो ॥
जमपुर गया देख अरु आया । ह्वाँ का भेद सभी जो लाया ॥
यों कहि नासकेत कों ताका । पूँछूं बरनन करि सब वाका[1] ॥
किसी जमपुरी देखी कैसे । कैसा मारग आया जैसे ॥
कैसा देखा वह जमराया । कहा पिया अरु क्या तुम खाया ॥
जो जो देखा सो अब कहिये । हमसे सभी कहा जो चहिये ॥
नरक माँहि दुख कैसे कैसे । सुरग माँहि सुख जैसे जैसे ॥

दो० अपनी आँखों देखकर, तुम आये या ठौर ।
सुन सुनकै जानत हुते, सभी ऋषीश्वर और ॥२३॥

—: नासकेत उवाच :—

नासकेत जोरे दोउ हाथा, कहने लागे ह्वाँ की बाता ॥
तुम किरपा जमलोक सिधारा । बहु देवन का दरस निहारा ॥
चित्रगुपत ही अरु धर्मराया । उनहूँ का मैं दरशन पाया ॥
सर्व लोक दण्ड देने वारा । सोई काल मैं लिया विचारा ॥
जम के दूत बड़े बलवाना । जिनकी सूरत भाँति जु नाना ॥
धर्मराय को जा मैं चीन्हा । अस्तुति कर कर परसन कीन्हा ॥
उन मोकूँ बर दिया असोगा[2] । कहा कि अजर अमर तू होगा ॥
अरु कहि जाहु पिता के पासा । जब मैं आया तुम्हरा दासा ॥

इति श्रीनासकेतोपाख्याने पिता पुत्र संवादो नाम
षष्ठोऽध्याय: ॥६॥

---

१ उसका २ शोक रहित ।

अथ सप्तमोऽध्यायः

—: वैशम्पायन उवाच :—

दो० हे राजा ताही समय, ऋषि आये वा ठौर ।
नासकेत के दरस को, काज न कोई और ॥१॥
रघुराजा को आदि दे, अरु आये बहु भूप ।
ऋषि राजा बहु आइया, अचरज सुना अनूप ॥२॥
अचरज लखि कहने लगे, आपस ही के मांहि ।
गए जमपुरी आइया, ढील लगाई नांहि ॥३॥
पूछन उद्दालक घर आये । नासकेत ह्वाँ की सुधि लाये ॥
इक इक ऋषि कूँ यों पहिचानों । बलती अगनि तेज ज्यों जानों ॥
इक ऐसे पखवारे मांही । रणजीत कहै वे भोजन खाई ॥
एक जु ऐसे मास उपासी । जग भोगन सों रहैं उदासी ॥
इक जल मांहि तपस्या करई । इक पचअगनी तप कूँ धरई ॥
एक अधोमुख तप को साधै । इक सूरज ही को आराधै ॥
एक स्वास को जान न देई । कुंभक साध रहैं हैं वेई ॥
रहै एक जो पवन अहारा । एकौ निराहार व्रत धारा ॥
दो० एक पाँव बाजे खड़े, बाजे ऊरध बाहु ।
बाजे मौन गहे रहैं, ऊँचे फल की चाहु ॥४॥
बाजे नगन शरीर हैं, बाजे करैं जु होम ।
बाजे साधैं जोग ही, लखिकै उत्तम भौम ॥५॥
कोइ चान्द्रायण बर्त कर, रहै जु तप के मांहि ।
कोइ इक सूखे पात जो, तरुवर ही के खांहि ॥६॥

ऐसे ऐसे ऋषि सबै, नासकेत ढिग आय ।
पूछन की इच्छा सहित, दरशन ही के चाय ।।७।।
सब ही सुन मिलबे कूँ धाये । नासकेत उठ शीस नवाये ।।
मिल कर बैठे आश्रम माहीं । नासकेत सूँ पूछत जाईं ।।
जो जो अपनी आँखों देखा । सो सो हम सों कहो बिसेखा ।।
जो तुम देख जमपुरी आये । समाचार ज्यो ह्वाँ के लाये ।।

—: ऋषि उवाच :—

दो० ऐसे ऋषि पूछत भए, नासकेत सूँ बात ।
ह्वाँ का सब विस्तार ही, कहिये हमरे साथ ।।८।।
ह्वाँ के मनुष्यन की कहो, क्रोधवन्त कै शान्त ।
कडुवे कै मीठे वचन, ज्ञानवन्त कै भ्रान्त ।।९।।
कैसा पाप पुण्य का भेदा । कैसा जीवन कूँ ह्वाँ खेदा ।।
कैसा नरक स्वरग का बासा । कहा कहा ह्वाँ जम की त्रासा ।।
ह्वाँ का सबही करो बखाना । एक दिना हमहूँ कूँ जाना ।।
सुखी होन की चाल बतावो । धरम करम हम कूँ समभावो ।।
ह्वाँ का भेद कछू मत राखो । कहँ कहाँ लौं सब तुम भाखो ।।
जम लेरो कूँ कैसे आवैं । या प्रानी क्यों कर ले जावैं ।।
दुख सुख कहा बाट के माहीं । केते जोसन में ले जाईं ।।
यों कह कर मुख ताकन लागे । नासकेत जब भाषन लागे ।।

—: नासकेत उवाच :—

दो० नासकेत जब यों कही, सुनो ऋषीश्वर साख ।
जो जो देखा जमपुरी, सभी कहत हूँ भाख ।।१०।।

सुनो ऋषीश्वर चित अब दीजै । अब मैं कहूँ सबै सुन लीजै ॥
महाभयानक दुख बहु भारै । सुन कर रोम उठै तन सारै ॥
पिता सराप गया मैं ह्वाँई । धर्मराय थे ललित तहाँई ॥
मैं अस्तुति करि परसन कीना । आधा आसन उन मोहि दीन्हा ॥
देवत बहुल सातुकी[1] देखे । बलतकार[2] जमदूत बिसेखे ॥
चित्रगुपत मैं नैंन निहारा । सबकूँ शिक्षा देनेवारा ॥
अरु मैं दीन होय वर पाया । कही अमर होगी तो[3] काया ॥
पिता दया मैं फिर ह्याँ आया । कहूँ जु ह्वाँ की सबै सुनाया ॥
दो० सुन्दर नगर सुहावना, जमपुर ताका नाम ।
सहस जोजन विस्तार है, सत्य न्याव की ठाँव ॥११॥
महा भयानक कोट निहारा । जोजन पाँच भीत उचियारा ॥
दक्षिण दिशा ताहि कूँ जानौ । तिसके द्वारे चार पिछानौ ॥
जैसे कर्म करै जो कोई । तैसे द्वारे वड़ि[4] है सोई ॥
परथम जमगण जग में धावें । या प्रानी कूँ लेणे आवें ॥
जैसे पाप करै नर लोई । जम सूरत बनि आवे वोई ॥
याकूँ मार पकड़ ले जावें । जैसे कर्म किये भुगतावें ॥
दो० या प्रानी जा भाँति के, लीन्हे पाप लगाय ।
वा भाँती जम आय हैं, भय को रूप बनाय ॥१२॥
कोई सूकर पर चढ़ आवै । काँधे गदा बहुत डरपावै ॥
कोई चढ़ै सिंघ की पीठा । कर में गुरज[5] बुरी ही डीठा ॥
कोई जम चढ़ आवै भैंसे । बुरी आँख अरु ऊँचे केसे[6] ॥

१ सात्विकी २ बलवान ३ तेरी ४ घुसना ५ अस्त्र विशेष ६ बाल ।

कोई आवै जरक सवारी । दाँत बड़े मुगदर लिये भारी ॥
कोई मुरदे के चढ़ि काँधे । खैंच कमाण तीर ही साँधे ॥
कोई कुत्ते पर चढ़ि धावे । हाथों फाँसी सीस घुमावे ॥
कोई आवै गधा पलानैं[१] । काढ़ै जीभ बुरे ही बानैं ॥
जग में बुरे कर्म जिन कीन्हें । तिन कूँ यों आवत जम चीन्हें
बुरी बुरी सूरत बनि आवैं । कहाँ लग कहूँ बहुत भय लावैं ॥
दो० बुरे कर्म पापी करैं, जिनकी यह गति जान ।
भले कर्म जो करत हैं, तिनका करूँ बखान ॥१३॥
जो जग में पुण्यात्मा, चरणदास सुख पाय ।
तन छूटे गण पारषद, सुख सूँ ही ले जाय ॥१४॥
गण आवन को रूप बखानूँ । भिन्न भिन्न जैसे मैं जानूँ ॥
कोई आवत ऐसे देखा । धरि आवै तपसी का भेखा ॥
कोई रूप वैशनों[२] आवै । गल माला अरु तिलक बनावै ॥
कोई भ्रात पिता के रूपा । कोई आवैं गुरू सरूपा ॥
कोई करत कीरतन धावै । हरि के गुण गावत ही आवै ॥
कोई आवै माला फेरत । वा प्रानी कूँ हित सूँ हेरत ॥
कोई रथ विमान ले आवै । हरि गुरु का कोई नाम जपावै ॥
कोई पालकी घोड़े ल्यावै । कोई हाथी लीये आवै ॥
शुभकर्मी कूँ तहाँ चढ़ावैं । सुख देते जमपुर ले जावैं ॥
दो० मृत्युलोक सूँ राह जो, जमपुर ही की जान ।
छयासी सहस जोजन सबै, इतनों है परमान ॥१५॥

१ सवारी पर २ वैष्णव ।

आठ ठौर है कष्ट की, वाही मारग मांहि।
दुख सुख ही भुगतावते, जमगण ले ले जांहि ॥१६॥
जब प्रानी की छूटै देही। सब मिल आवैं कुटुम्ब सनेही ॥
बाँध जोड़ कर अरथी करैं। चार मनुष्य के काँधे धरैं ॥
ले जावें मरघट के माँहीं। मुँह झुलसें अरु देह जलाई ॥
तब ह्वाँ नेक नहीं ठहरावें। अपने अपने घर कूँ जावें ॥
जबही जुदे होयँ परिवारी। मात पिता सुत धन अरु नारी ॥
पाट पटम्बर हीरे मोती। सबही अलग होंय कुल गोती ॥
बाग महल हाथी अरु घोड़े। सबने पीठ दई मुख मोड़े ॥
राज कटक अरु मुलक भौम ही। दूर होय सब तेज जौम ही ॥
बीर भतीजे अरु यह देही। रनजीत कहैं कोइ नांहि सनेही ॥
जूवे हारा धाड़ी लूटा। ऐसे चाला सबसें छूटा ॥
दो० जिन कारन बहु पाप करि, लाता दरब कमाय।
अपना कर कर जानता, देता तिन्हें खिलाय ॥१७॥
वे वाके होवें नहीं, तोड़ि कहैं यह बात।
जैसा कीया सो लुणैं, हम तेरे नहिं साथ ॥१८॥
सबही मिल कहने लगैं, हम तेरे अब नांहि।
पाप पुण्य जो कुछ किया, सो ही संगहि जांहि ॥१९॥
जगत ठाठ जब ऐसे कहै। तब प्रानी हकधक हो रहै ॥
जबही मूँडी धुनने लागे। कहै मांहि क्यों इनके पागे ॥
हाय हाय मैं कछु नहिं कीया। राम भगति में मन नहिं दीया ॥
जिन कारन बहु पाप कमाये। सो मेरे अब काम न आये ॥

साधु संग के माँहि न मिलिया । दया धर्म की राह न चलिया ॥
भला कर्म सबही बिसराया । खोटे कर्मन सूँ चित लाया ॥
सोच सोच सब ओर निहारे । कोई न संगी हुवा हमारे ॥
यों प्रानी पछतावा करै । जम मारै लै आगे धरै ॥
चरणदास कहै कछु न बसावै । ऐसे बाँधा जमपुर जावै ॥
दो० पकड़ बाँध जम ले चलैं, गल में डार जंजीर ।
पापी जीवन दुख सहित, देत घनी ही पीर ॥२०॥
जो जी हैं पुण्यातमा, सो वे सुख सूँ जाँहि ।
तिन कूँ गण ले जात हैं, जम नहिं छूवैं छाँहि ॥२१॥
दो हजार जोजन मग माँहीं । सहजरूप दुख सुख ह्वाँ नाहीं ॥
जम ले जावैं सो डर लागै । अति भयवान रूप हैं ताकै ॥
अरु इक पैंडा[१] लीजै जाना । एक सहस जोजन परमाना ॥
बहुतक सिंघ दिष्ट में आवैं । तिनकूँ देख देख डरपावैं ॥
जो साधों का दरशन लाभै । ताकूँ भय ह्वाँ कभूँ न व्यापै ॥
आगे पाँच सहस ही जोजन । तीक्षण काँटे हैं वह खोजन[२] ॥
लोहे की सी कीलें पैनी । चुभचुभ जाय महादुख दैनी ॥
वह पैंडा है अति दुखदाई । जाँहि कष्ट सूँ लोग लुगाई ॥
अरु धरमी जी सुख सूँ जावैं । दिये दान सब आगै आवैं ॥
रथ चंडोल पालकी म्याना[३] । हाथी घोड़े और बिमाना ॥
ऐसी विधि के बाहन आवैं । उन ऊपर चढ़ि बाट लँघावैं ॥
चरणदास कहै जो ह्याँ देवैं । ताका बदला आगे लेवैं ॥

---

१ मार्ग २ मार्ग ३ चौकोर पालकी ।

दो० जोजन दोय हजार ही, पैंडा बालू रेत ।
दान जिन्हों पनहीं करी, सो लंघि हैं सुख सेत ॥२२॥
आगै बारह सहस ही, जोजन खाँडे धार ।
महा विषम वह बाट है, पाप पुण्य ही लार ॥२३॥
घोड़े के या बैल के, रथ देवे जो कोय ।
वह पैंडा सुख सूँ लंघै, ताकूँ दुख नहिं होय ॥२४॥

वाके आगे जल ही आवै । रुक रहा भरा थाह नहिं पावै ॥
चहूँ ओर डर ही डर लागै । आठ सहस जोजन वह जागै ॥
भूमि दान जिन दीया होई । सुख सूँ जाय पार हो सोई ॥
ऊँचा दान किया फल लावै । पग सूँ धरती लगती जावै ॥
जल सूँ उतर चलै जो आगै । राह अँधेरी डर बहु लागै ॥
तीस सहस जोजन मग जानौ । तामें कष्ट अधिक पहिचानौ ॥
बिजली चमक गरज बहु मानों । परलय की सी निश्चित आनों ॥
दान किये दीवे[1] तहाँ आवें । सो प्रानी चाँदिन में जावें ॥
पचभीषम[2] तुलसी के ठाईं । कै ठाकुरद्वारे के माहीं ॥
कै सतगुरु के भवन मँझारे । बाट माहि कै दीपक जारै ॥
ब्राह्मण कै घर कै धर्मशाला । कै तीरथ पर दीवा बाला[3] ॥

दो० प्रानी इसही दान सों, चाँदनी ही में जायँ ।
रनजीत कहै सुख सूँ लँघै, उसही अँधेरे माँहि ॥२५॥

आगै भयानक ऊबट बाटा । उतर चढ़न के बहुतक घाटा ॥

१ दीपक २ कातिक मास के अंतिम पांच दिनों में ३ जलाया ।

वहुतक डर जहाँ आगै आवैं । प्रानी अति व्याकुल हो जावैं ॥
कहा कहूँ वहुतै दुखदाया । जाकूँ देखे काँपै काया ॥
आठ सहस जोजन मग सोई । तामें धीरज रहै न कोई ॥
आगै तप्त भान की जारै[1] । सो तो जोजन सहस अठारै ॥
वा पैंड़े में तो सुख पावैं । कुवे वावड़ी ताल खुदावैं ॥
कै पो[2] देवे मारग माहीं । प्यासे जल कूँ नाटै[3] नाहीं ॥
धर्मशाला में रखै भराई । कै ब्राह्मण घर दे पोंहचाई ॥
ठाकुरद्वारे माँहि भरावै । कै गुरुद्वारे भर पहुँचावै ॥
कै सुन्दर से भवन वनाये । दिये दान जिन ह्वाँ फल पाये ॥
वाट माँहि जो वृक्ष लगावे । ऐसा दान काम ह्वाँ आवे ॥
आय परापत जल ह्वाँ होवै । तपत प्यास प्रानी की खोवै ॥
छयासी सहस जोजन मग गहिया । भिन्न भिन्न मैं तुमसों कहिया
दो० जमपुरी के निकट है, ताको करूँ वखान ।
वैतरनी नद्दी जहाँ, सौ जोजन परवान ॥२६॥
पीप रकत ता माहीं भरिया । प्रानी थरहर[4] धीर न धरिया ॥
वीछू कीड़े साँप घने ही । दुख सों उतरे पाप सने[5] ही ॥
जो अपने स्वामी कूँ मारै । और ब्राह्मन कूँ हन डारै ॥
प्यास लगै जव ऐसे करै । रकत पीप[6] पी तृष्णा हरै ॥
वैतरनी कोइ सकै न देखा । तामें लहरैं उठैं अनेका ॥
जाके हले[7] जीव वे सारै । तल ऊपर कभी लगैं किनारै ॥
अग ह्वाँ रक्षा करै न कोई । नाते हितू न संगी होई ॥

१ जलावै २ प्याऊ ३ इनकार करे ४ कांपना ५ भरे हुए ६ मवाद ७ हिलने से ।

कृत्तघनी बिस्वासी घाती। निज धर्मन के होय न साथी ॥
दो० बिना विचारे करत है, बरत करै जो भंग।
मिथ्या वाद करै घना, रँगे लोभ के रंग ॥२७॥
सो वै नदी ही के माहीं। गिरते देखे पतित तहाँ हीं ॥
पतितों दीखे राध-रकत[1] की। पुनवारे[2] कूँ घीव शहत की ॥
जिसने दीया अन्न ही दाना। और बसे तीरथ अस्थाना ॥
और नहात है गंगासागर। दृढ़ व्रत अपना रखै उजागर ॥
पोथी धरम शासतर केरी। लिखा लिखा दे दान घनेरी ॥
साधों के चरितों की इक्ष्या[3]। सतगुरु सेती लेवे दीक्ष्या ॥
जिन गौदान करे शुभ बारा। ताकी पूँछ पकड़ हो पारा ॥
घने मनुष मैं उतरत देखे। बहुत सिताबी सुनों विसेखे ॥
दो० वाके आगै गिरि बड़ा, धरमसैल जिह नाँव।
सोने का निर्मल इसा, जों बिलोर की दाँव ॥२८॥
पतितन कूँ दीखै नहीं, दीखै तो भय रूप।
देखत है पुन्यात्मा, सुन्दर महा अनूप ॥२९॥
इति श्री नासकेतोपाख्याने महामार्ग स्थान नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अथाष्टमोऽध्यायः

—: ऋषिरुवाच :—

दो० फेर ऋषीश्वर बोलिया, नासकेत महाराज।
मारग की जो तुम कही, नीके समझी आज ॥१॥

---

१ मवाद और खून २ पुण्यात्मा ३ इच्छा।

अब कहिए धर्मराय की, और सभा की खोल।
तुम दाता सुखदान हो, मीठे तुम्हरे बोल ॥२॥
सभी करैं परनाम हो, हमतो चरणही दास।
सुनवे को मन चाव करि, आ बैठे तुम पास ॥३॥

—: नासकेत उवाच :—

नासकेत कर जोर कर, ऐसे बोले बैन।
तुम चरणन की रेनुका, हमरी है सुखदैन ॥४॥
नासकेत कहि दास तुम्हारे। तुम ह्याँ आये भाग हमारे॥
धरमराय की सबै सुनाऊँ। और सभा की खोल दिखाऊँ॥
दो० जम नगरी वा पास ही, जिसके द्वारे चार।
छोटे नग्गर और वहु, वाही के मंझार ॥५॥
रतन जड़े जहाँ वहुते भाँती। वा नगरी की अति ही काँती॥
वहुत अपसरा नृत्य करत हैं। बाजे वजत गीत उचरत हैं॥
ताते सुन्दर होय रहा है। फूल बिछे वहु भूमि महा है॥
सभा माहिं धर्मराय निहारा। ज्यों तारों में चन्दा सारा॥
ऋषि जोगी तिह पास विराजें। किन्नर गन्धर्व अति छवि छाजें॥
विद्याधर तिन के ही पासा। वड़े सरप रहें उमँग हुलासा॥
अत्रेय मैत्रेय भारद्वाजा। भृगु मरीच दधीच सुराजा॥
गौतम दुरवासा महा जोगी। चिवन पुलस्त सुमित्र असोगी॥
गालव जातूकरन महामति। धर्म अधर्म विचार करैं नित॥
और ऋषीश्वर बहु सतवादी। धरमराय ढिग जिनकी गादी॥
वारह सूरज को सम रूपा। वस्तर पहिरैं रतन अनूपा॥

चतुर वेद के पढ़ने वारे । अरु मीमांसा जानन हारे ॥
बहुत शास्त्र आप बनाए । धर्म काज जग माँहि चलाए ॥
धरमराय उन के ही माँहीं । शोभावंत अधिक छबि पाईं ॥
सिरपर सुन्दर मुकट धरे ही । बहुत भाँति के रतन जड़े ही ॥
तेज कहूँ ज्यों बारह भाना । करै न्याव ज्यों दूध अरु पाना ॥
प्रानी कूँ जमगण ले जाईं । खड़ा करैं जाकर वह ठाईं ॥
धरमराय कहै ह्वाँ ले जावो । चित्रगुपत ही कूँ दिखलावो ॥
पाप पुण्य का लेखा करै । प्रानी किया सु दुख सुख भरै ॥
छिपकर अरु परगट ज्यो कीया । चित्रगुप्त ने सब कह दिया ॥
पाप पुण्य सब कह समझावै । धर्मराय जब न्याव चुकावै ॥
कहै कि पहले भुगतै पापा । नरक माँहि फिर देहु संतापा ॥
दो० नरक अठारह हैं जहाँ, जिन किये जैसे पाप ।
वैसे माँहीं डाल हैं, तैसो तिन्हैं संताप ॥६॥
ऐसा जमपुर चार दुवारे । भाँति भाँति के न्यारे न्यारे ॥
पूरब दिशा एक है द्वारा । दूजा पच्छिम ओर निहारा ॥
तीजा उत्तर दिशा सुनाऊँ । चौथा दक्षिण ओर बताऊँ ॥
कहूँ द्वार पूरब की जानूँ । जाकी महिमा सभी बखानूँ ॥
जिन प्रानी ऐसे कर्म कीने । कपड़े लकड़ी जाड़े दीने ॥
पानी गर्मी माँहि पिलाये । रस्ते में जिन वृक्ष लगाये ॥
थके मनुष बाहन चढ़वाये । भूखे कूँ भोजन करवाये ॥
गुरु के सेवन की ब्रत लीनी । अरु साधन की संगत कीनी ॥
उत्तम तीरथ किये सँभारी । दया धरम हिरदय में धारी ॥

कथा कीरतन वरत विसेखे। पूरव द्वारे वढ़ते[१] देखे॥
साथ अप्सरा हरि गुण गावैं। करत कीरतन ही ले जावैं॥
दो० पूरव द्वारे की कही, सुनों ऋषीश्वर चैन।
पच्छिम द्वारा अब कहूँ, सो भी है सुख दैन॥७॥
जिन मात पिता की आज्ञा मानी। पर निन्दा कवहूँ नहिं ठानी॥
नित्त प्रती कुछ कीया दाना। परधन कूँ विष्ठा सम जाना॥
काम क्रोध जिनके नहिं मोहा। काहू से राखैं नहिं द्रोहा॥
परतिरिया मन में नहिं लीनी। नारायन की पूजा कीनी॥
वे पच्छिम द्वारे हो जावें। अपने लक्षन सूँ सुख पावें॥
द्वार तीसरे की सुन वाता। सभी सुनाऊँ ताकी काथा॥
जो प्रानी हैं पर उपकारी। पर कारज हित दुख सहैं भारी॥
अपने कारज ढील लगावैं। पर कारज कूँ उठ उठ धावैं॥
आपन दुख सह परसुख दीना। जीवत परमारथ ही कीना॥
आप धर्म कर और करावैं। हिरदय दया नाम चित लावैं॥
सो जावें उत्तर ही द्वारैं। साधरूप गण तिनके लारैं॥
दो० विष्णु भक्ति की नेष्ठा, साधु विप्र की सेव।
धर्म वरत में दृढ़ रहै, सिर पर रख गुरुदेव॥८॥
अरु भले कर्म जिन कीने नाहीं। खोटे कर्मन के पड़ माहीं॥
सो चौथे द्वारे हो जावैं। वाट माँहि जम वहुत सतावैं॥
पाप किये जिन ऐसे ऐसे। सवही खोल वताऊँ तैसे॥
दुष्ट वड़े तन मन दुखदाई। सव जीवन सूँ करैं वुराई॥

१ वुनते।

चौपाये कूँ बहुतै मारैं। छिपकर पर घर ही कूँ जारैं॥
पक्षी पकड़ फन्द में डारैं। जीव हतन को मन में धारैं॥
हरे बिरछ कूँ जो वे काटैं। अरु चोरी कर लूटत वाटैं[1]॥
गऊ ब्राह्मण को कर घातैं। मात पिता सूँ टेढ़ी बातैं॥
दो० जार करम हित सूँ करैं, गरभ गिरावैं जान।
परनिन्दा बहुती करैं, महा मूढ़ अज्ञान॥६॥
और वे हैं विस्वासी घाती। बोलैं झूँठ महा अपराधी॥
झूँठी साख भरैं न लजावैं। पर घर ही सूँ धन ठग लावैं॥
जाका नूण खाय वा मारैं। रस्ते माँहि आग हू डारैं॥
खुशी होय पर की कर हाँसी। मन में राखैं सब सूँ गाँसी॥
डिंभ कपट छल भगल अहारा। जो कुछ किया सो नाहि विचारा॥
साधु संग में मन नहिं दीन्हा। गुरु का कहा पंथ नहिं चीन्हा॥
बेमुख होय आमना[2] त्यागैं। दुनियाँ के दुख धंधे पागैं॥
वेद पुरानन को नहिं मानैं। शास्त्तर की निन्दा ही ठानैं॥
पाप अनेक करत नहिं डरैं। मन में पाप पापधुन धरैं॥
औगुन ग्राही गुन नहिं पकड़ैं। दीन होय जासों बहु अकड़ैं॥
धरम जु अपने स्वामी केरा। ताकी निन्दा करैं घनेरा॥
पर की चुगली हित कर करैं। गुरु के बचन न हिरदै धरैं॥
ऋण देवैं अरु ब्याज बढ़ावैं। ताका धान खुशी हो खावैं॥
ब्याज लैन में भारी हान। निरफल जाय करै जो दान॥
हाय हाय कर जनम गँवावै। सब कुछ रख संतोष न आवै॥

१ मार्ग २ वेद मार्ग।

संकल फाँसी जिन गल माहीं। दक्षिण द्वारे होते जाईं॥
दो० दक्षिण द्वारे और हैं, सबै नरक दुखदाय।
अति कलेश जहाँ होत है, पतितन कूँ ह्वाँ जाय॥१०॥
सुनों ऋषी अब कान दे, जमदूतों का रूप।
काले सुरमे की तरह, अति ही घोर सरूप॥११॥
जित पापी हाहा करैं, होरहा अति ही शोर।
अंधकार ऐसा जहाँ, सूझै निसि नहिं भोर॥१२॥
जहाँ किरम[१] कुत्ते अरु कागा। बीछू रीछ अरु काले नागा॥
अरु काँटे लोहे सम भाला। चीते गिद्ध सिंह बिकराला॥
जम के दूत जहाँ बलकारी। लोहे के मुगदर कर भारी॥
जासूँ पतितन के सिर मारैं। त्राहि त्राहि कर बहुत पुकारैं॥
उस द्वारे में नरक घनेरे। सो मैं अपनी आँखों हेरे॥
सुनत रोम ठाढ़े हो जावैं। कँपै कलेजा अति थहरावैं॥
सुनो ऋषी मैं कहूँ जु सारी। देख डरा उपजा भैकारी॥
नरकों माँहि जीव बहु भरिया। सो देखत बहुतक जहाँ गिरिया
दो० नरक हजारों हैं जहाँ, हाय हाय ही होय।
जीव पुकारत हैं पड़े, आगे सुनिये सोय॥१३॥
तिनही में जो हैं बड़े, नरक अठारह मुख्य।
नांव बखानूँ जिनन के, अरु ह्वाँ के सब दुख्य॥१४॥
पहिले कुँभीपाक सुनावें। जीवन कूँ ता माँहि पकावें॥
दूजा नरक अबीची[२] खोला। लहर उठे जी खाहिं झकोला॥

१ कीट २ नरक का नाम।

रौरव महा नरक जो भारा । जी रोवें बहु करैं पुकारा ॥
चौथा गुड़जिम नरक महा रे । गुड़ रस ज्यों औटत है ह्वाँ रे ॥
कूपनरक कूये सम जानों । लोहू पीप भरा है मानों ॥
महा कीट नरक बतलाऊँ । तामें कीड़े भरे बताऊँ ॥
असि पत्तर वन[1] नरक कहीजे । खाँडे की सम पात लहीजे ॥
नरक सुदारुण है भय भीता । तेज बड़ा तीक्षन दुखदीता ॥

दो० एक नरक निरस्वाँस है, तहाँ घुटे जो स्वाँस ।
ऐसा दुख ह्वाँ होत है, ज्यों ठगसारी फाँस ॥१५॥

कुल संकुल जो नरक है, ताही कूँ सुन लेह ।
पापी कूँ संकलों सहित, जकड़े वाकी देह ॥१६॥

सूचीमुख पापी जो पावै । सुई छेक मुख हो गिर जावै ॥
महाघोर नरक अति भारी । तामें भै है अधिक अपारी ॥
सूल ही रूप नरक कूँ जानौं । सूली की ज्यों ताहि पिछानौं ॥
नर्क अग्निकुण्ड महा तपत है । ताकूँ देखै हिया कँपत है ॥
नरक तेल जंत्र जो देखा । कोल्हू की सम ताहि विसेखा ॥
दुःखद दुख की खान घना है । नरक वही दुखरूप बना है ॥
अंधकार जो नरक बताऊँ । महा अँधेरा तहाँ सुनाऊँ ॥
नरक बिलोचन वही कहावे । जहाँ जाय अंधा हो जावे ॥

दो० अति गरमी जाड़ा घना, भ्यानक खग सुन लेह ।
परबत सूँ दें डारि कै, सस्तर छेदैं देह ॥१७॥

---
१ तलवार के जैसे तीखे पत्तों का वन ।

ऐसे ऐसे दुख घने, पतितन बारम्बार ।
खोटे कर्मन के किये, दुखी लखे नर नार ॥१८॥

इति श्री नासकेतोपाख्याने नरक वर्णनो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अथ नवमोऽध्यायः

—: ऋषिरुवाच :—

दो० नरक इकट्ठे तुम कहे, नासकेत महाराज ।
जुदे जुदे बरनन करो, हमैं सुनावो आज ॥१॥

—: नासकेत उवाच :—

नासकेत कहै सबै सुनाऊँ । एक एक कूँ जुदा दिखाऊँ ॥
सभी ऋषीजी ह्याँ चित दीजै । नरकों की गति सब सुन लीजै ॥
पहिले कुँभीपाक कहत हूँ । ता डर सू हरि ध्यान धरत हूँ ॥
जा जा पापी जहाँ परत हैं । जम जिन कूँ बहु मार धरत हैं ॥
उन पापी जो पाप कमाये । सो तुम सूँ अब कहूँ सुनाये ॥
गऊ ब्राह्मण पशु बहु मारैं । पक्षी आदि जीव हनि डारैं ॥
दान करत भाँजी[1] जो मारैं । अरु ब्रह्मचारी का तप टारैं ॥
और गरीबन कूँ हन डारैं । और मित्र का घात विचारैं ॥
सो वे कुँभी नरक मँझारी । जाय परत हैं नर कै नारी ॥
कुंभीपाक कहूँ परवाना । जाका मुख है घड़े समाना ॥
सोलह जोजन तल बिस्तारा । वह दुख पावे गिरने हारा ॥
बड़े बड़े कीड़े लग जाहीं । महा दुर्गंध बुरी तिह माहीं ॥

१ रोक लगावे ।

तामें वहुत बरस दुख पावै । पाप भुगत कर वाहर आवै ॥
दूजा नरक अवीची आगै । वामें गिरै पाप अस लागै ॥
दो० अधम संग जो पै करैं, कन्या डारैं मार ।
अभक्ष भक्ष गुरु कूँ हनै, गर्भ गिरावै नार ॥२॥
जो कोइ आवै पाहुना, अपने घर के माँहि ।
अन जल की पूछी नहीं, आदर दीया नाँहि ॥३॥
नरक अवीची में दुख भारी । पापी भुगतें नर कहा नारी ॥
वहुत बरस निकसन कूँ लागै । जैसी करै सो आवै आगै ॥
तीजा नरक महा भयकारी । रौरव नाम जहाँ डर भारी ॥
ताकूँ देख कँपत है देही । शुभ कर्मों बिन कौन सनेही ॥
दो० जामें तप्ती रेत है, सूरज सदा तपाय ।
इकरस जलता ही रहै, नैंक न कभू सिराय ॥४॥
रोवें जीव अनेक पड़े ही । कबहूँ बैठें कबहुँ खड़े ही ॥
अति व्याकुल तिनकों दुख भारा । त्राहि त्राहि कर उठैं पुकारा ॥
करम कहूँ उनके अब कीये । ता पापन सूँ वामें दीये ॥
पहल नारि सूँ भोग विचारैं । रूप ढरै तब मन सूँ डारैं ॥
राज विषै जिन न्याव न कीना । अपनी परजा कूँ दुख दीना ॥
बिन औगुन डाँडै[1] अरु मारै । करैं कुन्याय बंध में डारैं ॥
अरु जिन ब्राह्मण वेद पुराना । पढ़ि पढ़ि के कछु भेद न जाना ॥
वेदन में के कर्म न कीने । पाखण्ड कर कर ही द्रव्य लीने ॥
आन देव अरु गिरह पुजाये । हरि ओरी कूँ नाँहि लगाये ॥

१ दंड देना ।

पेट काज भ्रम डारत डोलै । अपने स्वारथ मिथ्या बोलै ॥
दो० ब्राह्मण क्षत्री वैश्य जो, अरु शुद्दर जग माँहि ।
अपने अपने धरम की, राह सँभारत नाँहि ॥५॥
राह वेद की चलते नाहीं । बेमरजाद रहैं जग माहीं ॥
संक्रायत व्यतिपात न जानैं । द्वादसी मावस ना पहिचानैं ॥
समय पायहु दान न दीया । रसना हरि का नाम न लीया ॥
तिथि अरु परबी समै न साधी । चौका न्हान तजा अपराधी ॥
संयम पूजा कछू न जानी । बेमुख चाल चला मनमानी ॥
तरपन अरु नित नेम न कीना । गायत्री में चित नहिं दीना ॥
अरु पूरा सतगुरु नहिं करि हैं । रौरव नरक माँहि सो परि हैं ॥
चौथा नरक सो गुड़ जिम जानौं । औटत रहत कड़ाहा मानौं ॥
दो० जामें पापी जीव ही, परत आय ही आय ।
जिन पापों से गिरत है, सो मैं कहूँ सुनाय ॥६॥
जो काहू के बसन चुरावै । विद्या पढ़ गुरु कूँ बिसरावै ॥
काहू कारज भाँजी मारै । अरु काहू का बुरा विचारै ॥
सक्कर काहू की हर लावै । और लोह गुड़ नूण चुरावै ॥
गुड़ जिम नरक सु भुगते सोई । तामें अधिक महादुख होई ॥
दो० कूप नरक है पाँचवाँ, जाका करूँ बखान ।
तामें लोहू पीप है, कूवे की सम जान ॥७॥
तापै काग बहुत घिर रहिया । बड़ी चोंच लोहे सम घरिया१ ॥
तामें पापी कूँ गहि डारै । तिर आवै वह चोंचही मारै ॥

१ गढ़ी हुई-बनी हुई ।

बड़े पतित मूरख अभिमानी । जनम पाय हरि भक्ति न जानी ॥
पूरा सतगुरु ढूँढ़ न कीना । परमेश्वर का नाम न लीना ॥
साधन की संगति नहिं कीनी । कथा कीरतन सुरत न दीनी ॥
अरु दासी सँग गमन करत है । सो भी याही नरक परत है ॥
हिरदय दया क्षमा नहिं आई । मनुषा देही रतन गँवाई ॥
या सम पाप और कहा होई । कूप नरक में डूबै सोई ॥
महा कीट छठा जो देखा । कूए की ज्यों ताहि बिसेखा ॥
तामें विष्ठा बहुतै भरिया । कुलबुलाट कीड़ों ने करिया ॥
बड़े बड़े कीड़े ता माहीं । पापी के तन में चिपटाहीं ॥
भली वस्तु जिन छिपकर खाई । आप अकेले दिया न काही ॥
आपही आप सुगन्ध लगाई । काहू का लिया अन्न चुराई ॥
अरु ऐसे बहु पाप कमावै । सो महाकीट नरक में जावै ॥

दो० नरक सातवाँ जानिये, असिपत्तर बन नाम ।
दरखत[1] की सम है बड़ा, पात दुधारे[2] श्याम[3] ॥८॥

ज्यों तरवार पात वे पैने । पतितन कूँ भारी दुख दैने ॥
पापी कूँ वा नीचै लावै । खड़ा करै नाहीं बैठावै ॥
पात झड़ैं खाँडे सम लागैं । कटै माँस हाड़ ही ताकैं ॥
त्राहि त्राहि जहाँ हो रही भारी । सुनकर चेतै नाहिं अनारी ॥
सुनो ऋषीश्वर और तमासा । देखा धरमराय के पासा ॥
काहू जम का कोयल बाहन । कोऊ काग चढ़े ही जाहन[4] ॥

१ वृक्ष २ दोनों ओर धारवाले ३ काले रंग के पत्ते ४ जाते हैं ।

कोऊ हिरन चढ़ा ही जावै। कोऊ गीदड़ चढ़ा डरावै॥
उनके मुख विकराल बने हैं। नाना विधि भये रूप ठने हैं॥
काला रंग कठोर बड़े ही। अधिकी तामस भौंह चढ़े ही॥
नेतर लाल डरावन तीखे। दुखदाई वे पापी जी के॥
तन माहीं दुरगन्ध जु आवै। लाँबी काया अति डरपावै॥
मोटी देही ऊँचे केशा। बहुतों का मुख करहे[1] भैंसा॥

दो० बहुतों के मुख श्वान से, बहुतों के मुख बाघ।
बहुतक चीते मुख बने, बहुतों के ज्यों नाग॥९॥
आनन बहुत बिलाव से, बहुतन के मुख बैल।
घोड़े से मुख बहुत हैं, चित खोटे तन मैल॥१०॥
थोरे से बरनन किए, अरु मुख नाना रूप।
तन माहीं जो रोंगटे, दीखत हैं बिड़[2] रूप॥११॥

काहू के कर में तिरशूला। काहू के कर जलता पूला[3]॥
काहू हाथ में तीक्षण बरछी। कै तोपैं तलवारैं तिरछी॥
बहुतों के कर मुगदर भाले। गदा कुल्हाड़े हैं विकराले॥
बहुतों के कर मूसल लाठी। बहुतों के कर लोहे साठी[4]॥
और गोफन[5] है हाथों तिनके। और और कर सस्तर जिनके॥
सस्तर लियें जु गिनती नाहीं। ऐसे दूत लखे ऊँह ठाँहीं॥
धरमराय की आज्ञा साथा। छेदत हैं पतितन के गाता॥
मारै बाँधै दया न नेको। महा कलेश तहाँ मैं देखो॥

१ गधा विशेष २ भयानक ३ बँधी हुई घास ४ एक अस्त्र विशेष ५ पत्थर फेंकने की गिलोल।

दो० नासकेत ऐसे कही, नैनों देखी बात ।
रनजीता यों कहत है, सभी ऋषों के साथ ॥१२॥
और दूत घोरी[1] मुख तिनका । पैनी डाढ़ कान बड़ जिनका ॥
मोटे होठ खड़े जो केशा । नैंना लाल अगनि के भेशा ॥
ऐसे जम पतितन के ताहीं । डारैं असिपत्तर बन माहीं ॥
कामी क्रोधी जो नर जावैं । उन कूँ वै बहु त्रास दिखावैं ॥
जो कोइ काटै हरिया पीपल । और चुरावै बाड़ी में फल ॥
काटैं वृक्ष जीव दुख देवैं । झूँठी साख भरैं दरब लेवैं ॥
राखा बरत भंग कर डारैं । गुरु का धरम सीस नहिं धारैं ॥
ऐसे पाप करैं वजमारे[2] । नरक सातवें जा हत्यारे ॥
इति श्री नासकेतोपाख्याने नरक वर्णनो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः

—: नासकेत उवाच :—

दो० नरक सु दारुण और है, महा कष्ट की खान ।
जहाँ कामी नर नार ही, भुगतै वह दुख मान ॥१॥
बहुतै खंभ नारि की सूरत । बहुतै पुरुष रूप की मूरत ॥
जो कोइ परतिरिया गल लावैं । जिनको जलते खम्भ मिलावैं ॥
कहैं कि अपना कीया भोगो । अब क्यों मन में मानत सोगो ॥
वा नारी कूँ लेह पिछाना । जाके संग बहुत सुख माना ॥
विरथा मनुषा देह गँवाई । तुम तें खर कूकर अधिकाई ॥

१ भयंकर २ ठग ।

जो नारी पर पुरषा माती । खोटा करम किया वा साथी ॥
जिनके कारन खंभ तपाये । बहुती लाल किये उर लाये ॥
जम कहैं यह तो जार तुम्हारे । इनकी सूरत लेहु निहारे ॥
जिनके संग काम बस रतियाँ । तुम तें भली गधी अरु कुतियाँ ॥
आगै से सूझा नहिं तुम कूँ । कै तुम सुना नहीं था हम कूँ ॥
भुगतो याही नरक मँझारी । निकसन की आवै नहिं बारी ॥
किया जो काम अजोग निरारा[1] । परमेश्वर का आयसु टारा ॥

दो० जरते थंभों बाँधकर, मार कहै जम ओह[2] ।
जो कुछ कीया जगत में, जाका फल अब लोह ॥२॥
त्रास इसी जमलोक का, सुनता था अकि नाहिं ।
तन मन सूँ लागा रहा, मैथुन ही के माँहि ॥३॥
परबी अरु दिन बरत के, किया जो मैथुन कर्म ।
विषय भोग बौरा भया, भूला शील अरु धर्म ॥४॥

निरस्वाँस नरक विकरारा । जामें पतितन कूँ दुख भारा ॥
ऐसे पापन सों ह्वाँ जावै । जो वे गुरु की वस्तु चुरावै ॥
ब्राह्मण तथा देवता होई । इनका अंश चुरावै कोई ॥
बूढ़े अरु बालक का लीया । माल चुराय बहुत दुख दीया ॥
कै बूढ़ी कै विधवा नारी । तिनका दरब चुराय अनारी ॥
जाय परत है नरक मँझारा । श्वाँस रुकै जहाँ दुःख अपारा ॥
दसवाँ कुल संकुल जो देखा । तामें दुख है अधिक विशेखा ॥
ब्राह्मण क्षत्री शुद्र वैशा । भारी पाप किया जिन ऐसा ॥

१ लोक वेद से विरुद्ध २ दुख से उच्चरित शब्द ।

मांस खाय मदिरा जिन पीया। सो वा नरक माँहि गहि दीया ॥
मारा जीव मांस ले खाया। जाका पातक बहुत बताया ॥
मोल मँगाय लाय जो खावैं। सो भी पापी बहु दुख पावैं ॥
उसी ठौर मैं यही निहारा। भ्यानक अधिकी दुख ह्वाँ भारा ॥
अगनिरूप जलते द्रुम देखे। दस जोजन लांबे जु बिसेखे ॥
जोजन पाँच घेर बिस्तारा। एक एक का न्यारा न्यारा ॥
संकल सूँ ह्वाँ बाँधै पापी। हाहा शब्द कहैं संतापी ॥
जम लोहे की लाठी मारैं। मुगदर सों सिर फोर ही डारैं ॥
उनका चिमटों चाम उपाड़ै। सीसा तावै १ मुख में डारै ॥
वे तो जलते अधिक पुकारैं। ज्यों ज्यों जम तामस२ कर मारैं ॥
दो० नरक ग्यारवाँ कहत हूँ, सूचीमुख है नाम।
तहाँ अधिक दुख होत है, महा बुरी वह ठाँव ॥५॥
जहाँ जाय कै पापी पड़ई। जो कोइ ऐसे करम करैई ॥
जिन्हों पराई नारी मारी। अरु सतगुरु की निन्दा धारी ॥
धर्म शास्त्र अरु वेद पुरानी। इनहूं की निन्दा ही ठानी ॥
तीरथ की निन्दा मुख लावै। सो सूचीमुख नरक ही जावै ॥
नरक जु महाघोर इक नाऊँ। सो विकराल भयानक ठाऊँ ॥
ता में शूकर सिंह अरु कागा। रहैं भेड़िया काले नागा ॥
जिसने पाप किये बहुभारी। सो जावे वा नरक मँझारी ॥
करम कमाये खोटे खोटे। ऐसे पाप किये जिन मोटे ॥
जो कोइ बैठ बाट कै माहीं। एक एक कूँ देखत जाईं ॥

१ पिघलता हुआ गर्म २ क्रोवित होकर।

पर तिरिया की ओरी झाँकै । जिनकी काग निकासत आँखें ॥
जो कोइ बन में आग लगावें । जिनका माँस सिंह ही खावें ॥
जो कोइ पापी गाँव ही जारै । तिनकी देह भेड़िया फाड़ै ॥
परघर कूँ जो पावक लावैं । शूकर जिनके हाथ चबावैं ॥
जाने[1] विष देकर नर मारे । खावैं तोड़ नाग ही कारे ॥
ऐसे वाही नरक मँझारा । वे दुख पावैं अधिक अपारा ॥
चरनदास कहै नासहीकेता । भाषत है जो कुछ ह्वाँ देखा ॥
दो० शूलरूप इक नरक है, शूली की ज्यों जान ।
पाप किये जिन राज में, सोई गिरत हैं आन ॥६॥
मिरगन कूँ जिन तीर चलाये । करी शिकार मार ले आये ॥
नाहक[2] नर शूली पर दीये । हेत दरब के ताचन[3] कीये ॥
जो वा नरक माँहि ले बासा । बहुती दीखै अधिको त्रासा ॥
करमन का फल छूटै नाँहीं । देखैं अपनी आँखों ह्वाँ हीं ॥
दो० और नरक है चौदवाँ, नाँव अगनि ही कुण्ड ।
ताहि लखै हियरा डरै, तप्त महा परचण्ड ॥७॥
पापी प्रानी कूँ ह्वाँ डारै । पड़ै नाँहि तो जम बहु मारैं ॥
कहै पापी मैं बहुत पियासा । जल प्याकै फिर देवो त्रासा ॥
दूत कहैं सुन रे मति हीना । तैं तो दया धरम नहिं चीन्हाँ ॥
जनम पाय यह भी नहिं कीना । काहू कूँ जल दान न दीना ॥
जैंवत ग्रास न दीया पापी । नेवज[4] की रोटी नहिं थापी ॥
ब्राह्मण कबहूँ नाँहि जिमाया । गुरुभाई को नाँहि खवाया ॥

१ जिसने २ व्यर्थ ३ ताडन—दुख देना ४ वहन वेटी को पहले दिया जाने वाला भोजन ।

अगनि माँहि आहूत न जानी । भूखे कूँ दिया अन्न न पानी ॥
धृग धृग रे मूरख नर लोई । अपना किया भुगत अब सोई ॥
बिन भुगते छुटकारा नाहीं । क्यों नहिं गिरता याके माहीं ॥
अब तुम अगनि कुण्ड कूँ झेलो । कोई न संगी भुगत अकेलो ॥
दो० ग्रहन जु सूरज चन्द का, तामें किया न दान ।
पेट भरा ज्यों बैल सम, करी न पुण्य पहिचान ॥८॥
इति श्री नासकेतोपाख्याने नरक वर्णनो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथैकादशोऽध्यायः

—: नासकेत उवाच :—

नरक तेलजंत्र इक नाऊँ । कोल्हू सूरत ताहि सुनाऊँ ॥
तामें पतित गिरत हैं जाई । करम किये ए लोग लुगाई ॥
जो कोइ चोरी निन्दा करै । भूमि पराई लेत न डरै ॥
खेत बिराना[1] मूसै[2] चलिकै । परतिरिया कूँ छीनैं बलकै ॥
सो तो तेलजंत्र के माहीं । पिल पिल पापी बहु दुख पाहीं ॥
दुखद सोलवाँ वा भुगतावैं । घीव तेल ज्यो मनुष चुरावैं ॥
भक्ति छुटावे निगुरा करै । झूँठे अवगुन काहू धरै ॥
वाकूँ तेल कड़ाहे तलैं । अपने नैंनन देखे भलैं ॥
मदिरा अचवैं आमिष[3] खावैं । तिनकू ताता तेल पिलावैं ॥
नरक सतरवाँ लेहु पिछाना । अन्धकार ज्यों करूँ बखाना ॥
दो० जो राकस[4] वे जीव हैं, बड़ी आरबल देह ।

१ दूसरे का २ चोरी करना ३ माँस ४ राक्षस ।

तन ऊँचा बल है घना, तहाँ परत हैं वेह ॥१॥

सुनौ कहूँ जो कुछ ह्वाँ देखा । सो तुम सूँ राखूँ नहिं नेका ॥
अस्थान काल का एक निहारा । जो मनुषों का करै संहारा ॥
महा भयानक वह अस्थाना । बड़े कष्ट सूँ हो ह्वाँ जाना ॥
देखा दूत एक ह्वाँ भारी । जाका तन मोटा बलकारी ॥
दहने कर में दण्ड जु वाकै । बावैं में फाँसी है जाकै ॥
आँखें रकत रूप बिकरारा । अरु भैंसे पर है असवारा ॥
अरु जो किंकर है वा पासा । उनका भी तन काल ही का सा ॥

दो० और नाम किरतांत है, उसी काल का जान ।
अरु जो वाके दूत हैं, सो किरतांत पिछान ॥२॥

एक समय वह धरम ही राजा । अपने दूतन सूँ कहो काजा ॥
आज्ञा ले जमदूत पधारे । दैतराज देखा तन भारे ॥
दूतन सस्तर तहाँ चलाये । दैतराज वै मार भगाये ॥
अरु दैतों ने बहुतक कूटे । भई लराई सस्तर टूटे ॥
धरमराय पै भागे आये । ह्वाँ के कौतुक सबै सुनाये ॥
कही कि दैतन हम कूँ मारा । नैक न माना हुकम तुम्हारा ॥
धरमराय सुन बहुत रिसाया । कालरूप कूँ निकट बुलाया ॥

दो० कहा कि बाहों के बली, इनके संग ह्वाँ जाव ।
दानों सहित जु भूप कूँ, मार पकड़ ले आव ॥३॥

जम की आज्ञा ले वह काला । जै जै शब्द कहत उठ चाला ॥
वाके संग दूत घन चाले । अति भै मान महा विकराले ॥

अपने अपने सस्तर तोलैं । चलौ चलौ आपस में बोलैं ॥
काल वही जिनका है नायक । पतितन कूँ भारी दुखदायक ॥
खाँडा है दहिने कर माहीं । चन्द्रहास तिह नाँव कहाईं ॥
फाँसी लिये जु बायें हाथा । ऐसे गया दूत ले साथा ॥
दूत काल के अरु वे दाने१ । जुद्ध करने लागे घमसाने ॥
मुगदर बज्जर२ लाठी मारैं । गदा जु फाँसी सेल सँभारैं ॥
दो० खड्ग सिला पत्थर बड़े, अरु मुष्ठों की मार ।
दोऊ ओर से चलत हैं, तन की नाँहि सँभार ॥४॥
ऐसा जुद्ध करै न डरावैं । देखत रोम खड़े हो जावैं ॥
अन्त यहीं दूतौं वे मारे । दैत्यों के नायक जो हारे ॥
और काल ने डंडौं मारे । तड़फैं बहुत धरन पै डारे ॥
मुगदर गदा मार बस लाये । बाँध फाँसि यों पकड़ चलाये ॥
धरमराय के आगे कीने । तब राजा वै नीकें चीन्हें ॥
फिर कही इनकूँ लेकर धावो । चित्रगुप्त ही पै ले जावो ॥
आयसु ले फिर ह्वाँईं आये । चित्रगुप्त कूँ जाय दिखाये ॥
चित्रगुप्त ने किया विचारी । बड़ पापी हैं ये सब भारी ॥
दो० दूतौं ने जतनों सहित, बाँधा सावहीधान ।
भाग न जावैं छूटकै, बलवन्ते परवान ॥५॥
फिर वे नरक माँहि डलवाये । उनकूँ बहुते त्रास दिखाये ॥
ह्याँ सूँ काढ़ैं बहुती बारा । फिर दें अगनि कुण्ड में डारा ॥
ऐसे दैतन कूँ भी देखा । पाप पुण्य का देवैं लेखा ॥

१ दानव २ वज्र ।

तातें सुनो ऋषौ परबीना । रहै नहीं धनवंता हीना ॥
ना रहै बली न बूढ़ा बारा । काल सभी का खानेवारा ॥
कै घर में कै बन के माहीं । काल कहीं छोड़त है नाहीं ॥
काल बली की फिरै दुहाई । कोइ न छोड़ा रंक अरु राई ॥
ना कोई संगी ना कोई साथी । बहुतों गहि गहि छोड़ी बाथी[१] ॥

दो० तातें या संसार में, चित्त न लावो कोय ।
या निहचै कर जान लो, अपना कोई न होय ॥६॥

मूये पाछै काकूँ रोवैं । सुपना सा देखें जब सोवैं ॥
जब जागें तब कोइ न कोई । ऐसी भाँति जगत यह होई ॥
छोटी बड़ी आरबल जानौ । यह सब काल चरित्तर मानौ ॥
व्याधि रोग में यह[२] को[३] परै । काल खेल यह सबही करै ॥
सबही सिष्ट[४] कालमुख माहीं । कोटि जतन सूँ बचै जु नाहीं ॥
इसी जगत का ऐसा लेखा । ज्यों स्वाँगी धर नाचै भेखा ॥
जैसे बाट बटेऊ जावैं । छाँहि वृक्ष की टुक ठहरावैं ॥
फिर वह धूप माँहि ही धावैं । जब लग नाँहि ठिकाना पावैं ॥

दो० थोड़ा सुख संसार का, तामें दुःख अपार ।
चित मत दीजो तास में, मैं कहूँ बारम्बार ॥७॥

साध संगत गुरु चरन मनावो । तातें काल चपेट न खावो ॥
हरि की ओरी चित्त लगावो । यातें मुक्ति ठिकाना पावो ॥
दो० नरक विलोचन अब कहूँ, सो अठारवाँ जान ।

१ साथ छोड़ना २ यहाँ ३ कोई ४ सृष्टि ।

वे पापी वहाँ परत हैं, जिनकी दिष्ट कुध्यान ॥८॥

राह चलत नहिं जीव निहारैं । बाजे देखैं तो भी मारैं ॥
परतिरिया जो देखत जावैं । करैं मनोरथ बहुत लुभावैं ॥
क्रोध दिष्ट साधुन कूँ देखैं । तिनकी निन्दा करैं बिसेखैं ॥
देख किसी का पड़दा खोलैं । बिषै तमासे ही में डोलैं ॥
साधु गुरू की ओर न झाँकैं । ठाकुरद्वारे प्रीति न राखैं ॥
विधवा नारी काजल आँजै । आन पुरुष ही के वै काजै ॥
ऐसे जो हो लोग लुगाई । तिन्हैं नरक यह अति दुखदाई ॥
गिरतैं बिन आँखन हो जावैं । चीसैं बहुत महादुख पावैं ॥
रणजीत कहै उन नैंन निहारा । कहा ऋषिन सूँ लखि विस्तारा ॥
और अनूठा नरक बताऊँ । सो पिरथी ऊपर दिखलाऊँ ॥

दो० सो याही मृत्युलोक में, देखा अपने नैंन ।
यह परगट परतिक्ष है, पापी कूँ दुख दैंन ॥९॥

जग में नरक कहूँ अब खोलैं । महा कँगाल माँगते डोलैं ॥
नागे भूखे और जड़ाये । जूता ना जिनके ही पाँये ॥
पेट भरन कूँ जतन करत हैं । वहुत पचैं ना उदर भरत हैं ॥
हैं दारिद्री नित ही रोगी । अँधरे कोढ़ी निस दिन सोगी ॥
ऐसे देखो जो नर नारी । सब कूँ जानौं नरक मँझारी ॥
जो कोइ पड़े बंध के माहीं । जीवत नरक माँहि भुगताईं ॥
खोटा करतैं नाहिं डरावैं । जिन कूँ प्यादे जम लेजावैं ॥
औगुनगारे कूँ बहु मारैं । पाछै जकड़ बंध में डारैं ॥

दो० निरख परख निहचै करो, मन में लीजै जान ।
अपनी आँखों देख लो, मैं जो किया बखान ॥१०॥
इति श्री नासकेतोपाख्याने यम शासनो नाम एकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

—: ऋषिरुवाच :—

कहैं ऋषीश्वर सुनि हो दाता । नासकेत तुम परम गियाता ॥
जग में बसना दीखै ऐसा । रैन समै वृक्ष पक्षी जैसा ॥
राह माँहि ज्यों थका बटाऊ । बैठ छाँहि फिर चलै उठाऊ ॥
आवागवन यों जगत मँझारा । हमकूँ डर लागत है भारा ॥
तू जमलोक देख कर आया । हमकूँ ऐसा ज्ञान डिढाया ॥
अब इक बात पूछत हैं औरी । सभी ऋषीश्वर दोउ कर जोरी ॥
याका उत्तर हमकूँ दीजे । हमें सनाथ आज तुम कीजे ॥
सबै पाप का फल दिखलाया । सो सब हमरे निहचै आया ॥
दो० पुण्य करन के फलन को, अब तुम कहो विचार ।
जो जो देखो नैंन ही, सुख पावत नर नार ॥१॥
जो ये लोग दान पुन्य करैं । फल पावैं कहा जब यह मरैं ॥
किरपा कर कर सबही कहिये । हमकूँ भी ह्याँ कीया चहिये ॥

—: नासकेत उवाच :—

नासकेत जब वचन उचारा । सो सो कहूँ जु नैंन निहारा ॥
जग में सील दया ही मुखिया । पुण्यदान सूँ होवै सुखिया ॥
जो नर इन सेती चितलावैं । वाट माँहि बहुतै सुख पावैं ॥

कोमल राह बिरछ बहु फले। महा सुगन्ध छाँहि उन तले ॥
फल खाने कूँ मारग माहीं। चढ़े बिमानन ऊपर जाईं ॥
मनुषा जनम पाय जिन कीन्हा। जीवत दान कछू ह्याँ दीन्हा ॥
आय मिलत हैं मारग माहीं। सुख आनन्द सूँ खाते जाईं ॥
जिन जीवों ऐसे पुन कीन्हे। दूध दही घृत दिये नवीने ॥

दो० नाना भाँति मिठाइयाँ, अरु मेवा दई जान।
नाना विधि भोजन दिये, सोई मिलत हैं आन ॥२॥
जो कुछ करै सो आपकूँ, पर कूँ करै न कोय।
अपना कीया पाय है, नीच ऊँच क्यों न होय ॥३॥

आगे बाजे बजते जावैं। हरिजस अधिक नायका गावैं ॥
ऐसै जावैं स्वरग मँझारै। लैन अप्सरा आवैं द्वारै ॥
निरत करत भीतर ले जावैं। सिंहासन ऊपर बैठावैं ॥
धरमनीक कूँ देखें कोई। उठ उठ आन मिलत है सोई ॥
बहुतक जहाँ अप्सरा नारी। दिव बस्तर दिव भूषनधारी ॥
चोवा चन्दन कोई लगावै। कोई चाव सों पवन ढुरावै ॥
कहै कै हमतो तुमरी दासी। हम तुम रहैं सदा ही पासी ॥
एक साथ मिल हरिगुन गावैं। करैं विलास परम सुख पावैं ॥

दो० केलि करैं स्वर्ग लोक में, जिन किये ऐसे दान।
जुदे जुदे चरनदास अब, ताको करै बखान ॥४॥

जिन तलाव अरु कुए खुदाये। बाट माँहि जिन द्रुम लगाये ॥
अरु जिन ऐसे दत्तव कीने। बहुत दान विप्रन कूँ दीने ॥
सोना रूपा मूँगे मोती। पन्ना हीरा उज्ज्वल जोती ॥

माणक चुन्नी और नगीना । दान जवाहर का जिन दीना ॥
गहने भाँडे सिज्या दीनी । मन्दिर भूमि दान जिन कीनी ॥
ताँबा और कपूर सुहाये । अन्न दान भोजन जिन खवाये ॥
ऐसी बस्तें देनेवारे । जाय बसत हैं स्वर्ग मँझारे ॥
पहिले धरमराय पै जावैं । गण सुख सूँ ले ले ही धावैं ॥
दो० खड़ा करैं धर्मराय ढिग, कर कर बहुती चाव ।
तब राजा ऐसे कहैं, स्वर्गलोक ले जाव ॥५॥

इति श्री नासकेतोपाख्याने स्वर्ग मार्ग वर्णनो नाम
द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

—: नासकेत उवाच :—

दो० अब स्वर्गों का कहत हूँ, जुदा जुदा ही नावँ ।
शुभकर्मन सूँ पाइये, ऐसी उत्तम ठावँ ॥१॥
पहिला स्वर्ग सुहावना, है कुबेर का लोक ।
यक्ष गन्धर्व जहाँ अपसरा, भोगी महा अशोक ॥२॥
लोक बरुन की छवि घनी, रतन जड़े अस्थान ।
बाग घने शोभा घनी, बड़े सुखों की खान ॥३॥
इन्दर की अमरावती, रही स्वर्ग छवि धार ।
नृत्य करत हैं अप्सरा, अधिकी जहाँ बहार ॥४॥
रोग बुढ़ापा भय न ह्वाँ, जो कोइ पहुँचे जाय ।
रतन जड़े मन्दिर मिलैं, भोगैं भोग अघाय ॥५॥

सोमलोक में सुख घना, पावै अति ही चैन।
रनजीत कहै वहाँ जाय कर, देखे अपने नैन ॥६॥
आदित्य लोक में भोग है, नाना विधि सुखदान।
दिव्य देही पावै जहाँ, अधिकी रूप निधान ॥७॥
शिव का लोक सुहावना, शोभा कही न जाय।
जो जैसी इच्छा करै, तैसा ही फल पाय ॥८॥
सभा मुनिन की ललित है, तीरथ मूरति धार।
सब परबत देही धरैं, घनी अप्सरा नार ॥९॥
ब्रह्मलोक सबसूँ बड़ा, तेजवन्त अधिकाय।
अति उज्ज्वल निर्मल महा, दृष्टि नहीं ठहराय ॥१०॥
दमकें मन्दिर रतन के, नाना विधि के भोग।
वही बसैं वहाँ जाय कै, जो साधैं तप जोग ॥११॥
सात स्वर्ग बरनन करे, सूक्षम कहे जनाय।
जिस करनी सों जाय वहाँ, सो अब कहूँ सुनाय ॥१२॥

सुनो ऋषीश्वर सबै सुनाऊँ। धर्मिष्ठों के भोग बताऊँ॥
धर्मी पुरुष बसत जा ह्वाँई। नाना सुख आनन्द तहाँ ही॥
दूध दही घृत अरु पकवाना। सहित जहाँ मेवा है नाना॥
दिव्य गहने जहाँ रतन जड़ाऊ। रेशम बस्तर अधिक सुहाऊ॥
जहाँ अप्सरा सेव करत हैं। आज्ञा माहीं खड़ी रहत हैं॥
अद्भुत बाजे बहु बाजत हैं। महा विनोदी तहँ राजत हैं॥
जो कोइ कूवा ताल खिनावै। और बावड़ी बाग बनावै॥
सुरग माँहि वह आनन्द पावै। बहुत काल मृत्युलोक न आवै॥

दो० भूमि गऊ अरु हेम का, और बसन दे दान ।
सो वे धरम प्रभाव ते, रहैं स्वर्ग सुखमान ॥१३॥

आनन्द करते देखे भारा । कहूँ जो अपने नैंन निहारा ॥
जिन नर गुरु की सेवा करिया । हरि की पूजा मन में धरिया ॥
मात पिता का सेवन कीना । यथाशक्ति कछु दान जु दीना ॥
कन्द मूल फल अन्न जु दीया । विप्र साधु का आदर कीया ॥
हरष मान भोजन जो खवाया । चलती बारी शीस नवाया ॥
तब वह दान बिरध[1] हो फलै । सोई आय प्रानी कूँ मिलै ॥
सुख पावै तुष्टै आनन्दा । जो कोइ बोवै धर्म का कन्दा[2] ॥
जो कोइ पुन्य दान ह्याँ देवे । कुबेरलोक जाका फल लेवे ॥

दो० कियो अगनिहोत्र सदा, कियो जज्ञ अरु दान ।
काम लालसा ना कियो, जती रहे वे जान ॥१४॥

सब जीवन की दया विचारैं । काहू दुख देवें नहिं मारैं ॥
तन मन वचन रहैं सुखदाई । देवैं अन्न दान हरषाई ॥
वेद पुरान सुनैं सुख पावैं । कथा कीरतन सों मन लावैं ॥
बोलैं साँच तपस्या करैं । साधैं जोग पाप सब हरैं ॥
गुरु साधन के दरशन धावैं । अरु सरधा[3] सों तीरथ न्हावैं ॥
सो वे बरुण लोक के माहीं । प्रानी जा बहुतै सुख पाहीं ॥
जो कोइ चतुर पुरुष कहलावै । कृत्त[4] जतन कर दरब कमावै ॥
चहिये वह नित दानहि देवै । ह्याँ जस ह्वाँ बहुते सुख लेवै ॥

१ वृद्धि—बढ़कर २ जड़ ३ श्रद्धा ४ धर्मानूकूल आजीविका

दो० पनही नाँगे देत हैं, प्यासे पानी देत।
चरणदास यों कहत है, फल पावन के हेत ॥१५॥
भाँड़े बस्तर घोड़े हाथी। गौवाँ देवें बच्छों साथी॥
देवें ऊँट पलाने[1] साजें। सो जा इन्दर लोक बिराजें॥
बहुतक भोग करें वा ठाईं। रथ विमान चढ़ि रमें तहाँ हीं॥
मोर लगे काहू रथ साथा। हंस लगे काहू विख्याता॥
कइयों के हाथी अरु घोड़े। कइयों के सारस के जोड़े॥
अपने धरम दान के कीये। देवत होय स्वरग सुख लीये॥
देवसुता बहु सेवा करें। धरमनीक को हित बहु धरें॥
जिनका रूप जानिये ऐसा। अगनि तपा सोना है जैसा॥
शुद्ध फटिक ज्यों निर्मल देहा। रतन जटित हैं जिनके गेहा॥
कंठ माहिं रतनों की माला। महारूप धारें वे बाला॥
दो० बाजे सुघड़ बजावहीं, निरतें अति चतुराय।
धरमनिकों के कारनें, अस्थापी धरमराय ॥१६॥
ह्वाँ जो है धर्मात्मा, चढ़े विमानों देख।
जहाँ इच्छा तहाँ जात हैं, क्रीड़ा करें अनेक ॥१७॥
अन्न दान के किये ते, पावें अमृत भोग।
तातें सबही नरन कूँ, दान ही देना जोग ॥१८॥
जो नारी ऐसा प्रण धारें। पतिव्रता हो धर्म सँभारें॥
पहिले सर्व कुटुंब को खवावै। पीछे बचा आपहू खावै॥
अरु अपने पति कूँ नित सेवे। सो वह इन्द्रलोक फल लेवे॥

---

[1] ऊँट पर बैठने की काठी सहित।

देही दिव्य रूप धरि रहिया। सुन्दर एक विमान जु लहिया॥
रतन जड़े घर माँहि बिराजैं। आठों सिद्धि खड़ी छबि छाजें॥
शील बरत में साँची नारी। पति की आज्ञा कबहुँ न टारी॥
तिरदेवा सूँ अपने पति कूँ। अधिक जानती है वह हित सूँ॥
परपति के वह जाय न नीरा। सबकूँ जानै बाप अरु बीरा॥
अन्य पुरुष के छुवे न मोती। अपने पति की पहिरे पोती[1]॥
तिरलोकी जाकूँ सिर नावै। जहाँ तहाँ वह अस्तुति पावै॥
स्वर्ग माँहि सुख लेनेवारी। शुभ लक्षण सब बात सँवारी॥
पति के संग लगी ही रहै। काहू से पीया की नहिं कहै॥
दुख विपता में संग न छाँडै। अपने पति ही सूँ हित माँडै॥
बुरा भला पति कूँ नहिं जानै। हरि ही की सम ताहि पिछानै॥
बुरी भली आज्ञा जो करै। सबही मानै नेक न टारै॥
कोढ़ी अँधरा जो पति वाका। चित सूँ सेवन करै जो ताका॥
पुरुष मरै जावै जग सेती। वाके संग जलै कर हेती॥
पति कूँ कष्ट होय दुख मानै। वाका सभी आपना जानै॥

दो० शुभकर्मी भर्ता भवै, कै षटकर्म[2] करै।
मान भंग नाहीं करै, सेवा चित्त धरै॥१६॥

भर्ता पुण्य करै सुख मानै। पाप करै जग दुख हिये आनै॥
ऐसे कर्म करै जो नारी। पति समेत जा स्वर्ग मँझारी॥
इन्द्रलोक में जाय बिराजै। सहस चौकड़ी लौं वहाँ राजै॥
रतन जड़े भूषन रहैं पहिरैं। मुतियन के हिये हार जु लहरैं॥
इति श्री नासकेतोपाख्याने स्वर्ग वर्णनो नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥

१ काच के बने हुए बारीक मणियें-पोत २ प्रातः काल के षट्कर्म।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

—: नासकेत उवाच :—

दो० ब्रह्मभोज जो देत हैं, जज्ञ करैं चित लाय।
और तपस्या करत हैं, अपने तन को ताय ॥१॥
जेठ मास पंच अगनी तापैं। चार ओर ही पावक आपैं ॥
पँचवीं अगनि सीस पर भाना। यह पँच अगनी लेह पिछाना ॥
पूस माह में ऐसे धारे। सहस धार के लेने वारे ॥
टिगटी पर मटका धरवावैं। सहस छेद तामें करवावैं ॥
जल भर वा तल बैठें सोई। ऐसा कष्ट करैं जो कोई ॥
सो वे रतन जड़े घर पावैं। सोमलोक में बहु हुलसावैं ॥
दो० सोने का जो दान दे, सूरलोक कूँ जाय।
अरु कपड़े का जो करै, वाही लोक रहाय ॥२॥
आसोज अरु कातिक जब आवैं। तिनमें विप्रन कूँ भुगतावैं ॥
खीर खाँड़ भोजन करवावैं। साधू ब्राह्मण नोंत जिमावैं ॥
दक्षिणा दे टीका जब काढ़ैं। वाका धर्म अधिक ही बाढ़ैं ॥
पौह माह दे लकड़ी दाना। बहु विधि देहिं जडावल[1] नाना ॥
बैसाख चैत ऐसा जिन कीया। अन्नदान मँगतों कूँ दीया ॥
जेठ साढ़ जिन पानी प्याये। सोरन[2] दान दिये मनभाये ॥
ते जिय जावैं स्वर्ग मँझारी। आनन्द पावैं अधिक अपारी ॥
दान दिये फल आगे आवैं। नाना भोग करैं सुख पावैं ॥
जिन पति संग जलाई काया। याहू का फल अधिक बताया ॥

१ सर्दी से बचने के लिए रजाई आदि २ स्वर्ण।

साठ करोड़ बरष वह नारी । रहै सूर के लोक मँझारी ॥
सो वह दिव[1] मारग कूँ पावै। पति सूँ कर जोरे ही जावै ॥
शुभ मग माहीं वृक्ष घने ही । सूरज तुल्य बिमान बने ही ॥
नदियाँ दूध सहित दधि घी की। अरु मीठे जल ही की नीकी ॥
दो० जहाँ पटंबर[2] बादले, अरु बसनन की छाँहि ।
सूरज ही के लोक कूँ, ह्याँ होकर वे जाँहि ॥३॥
जो सूरज के सेवक जानों । सूरही लोक बसत मन आनौं ॥
सुखदाई जानों वह लोका । जहाँ बसैं कुछ रहै न शोका ॥
अरु बाजों के शब्द जहाँ हैं । गन्धव लाखों रहत तहाँ हैं ॥
बस्तर भूषन पहिरे आवैं । गावैं नाचैं ताहि रिझावैं ॥
दो० जो सेवक महादेव के, पहुँचैं वाके लोक ।
सुख सेती जहाँ रहत हैं, निर्भै अधिक असोक ॥४॥
पर कन्या का ब्याह रचावैं । परमारथ के हेत करावैं ॥
बिप्पर[3] बालक देह जनेऊ । ऐसे कारज में चित देऊ ॥
अरु कोइ ऐसा कारज आवै । परकारज को उठ उठ धावै ॥
स्वरगलोक पावत है सोई । भावैं नर नारी क्यों न होई ॥
बिना दान शिवलोक न पावै । धरमहीन कैसे कर जावैं ॥
रतन जड़े नाना छवि वाकी । सब शोभा बरनूँ कहा जाकी ॥
जो ब्रह्मा के सेवक होई । वाके लोक बसत हैं सोई ॥
आनँद करै महा सुख पावैं । ब्रह्मलोक को जो कोइ जावैं ॥
जो ब्राह्मण अपना धर्म राखैं । करैं सुकर्म झूँठ नहिं भाखैं ॥

१ दिव्य २ रेशमी वस्त्र ३ ब्राह्मण ।

वेदपाठ साधैं षट करमन । संध्या गायत्री अरु तरपन ॥
ऋतुवन्ती नारी पै जावैं । और दिनाँ चित नांहि लगावैं ॥
सब मनुषों से हित कर बोलैं । निंदा त्याग भली मुख बोलैं ॥
शील दया हिरदै में धारैं । सो ब्रह्मा के लोक पधारैं ॥

दो० ज्यों क्षत्री धर्म आपने, सावधान जो होय ।
बस्ती की रक्षा करै, लोग दुखी नहि कोय ॥५॥

अपना अंश बाँट कर लेवैं । साधू ब्राह्मण गऊ जु सेवैं ॥
साधन की सेवा चित धरैं । रन में जूझैं सनमुख मरैं ॥
सो वे स्वर्गलोक कूँ जावैं । भोगैं भोग बहुत सुख पावैं ॥
वैश्य शीलजुत गऊ चरावैं । साधु ब्राह्मणन कूँ सिर नावैं ॥
बोलैं साँच बणिज के माहीं । सत ब्योपार झूँठ कछु नाहीं ॥
शूदर अपने धर्म सँभारी । साँचे दयावन्त उपकारी ॥
सेवक गऊ बिरामन[१] केरा । अपने गुरु का मन सों चेरा ॥
कोइ अतीत और गुरुभाई । सेवा करै बहुत चित लाई ॥
ऐसे चार बरन जो लेखे । चढ़े विमान जात मैं देखे ॥
और जिन्होंने लक्षमी धाई[२]। लोक कामना पहुँचैं जाई ॥

इति श्री नासकेतोपाख्याने स्वर्ग वर्णनो नाम
चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

१ ब्राह्मण २ आराधना की ।

अथ पञ्चदशोऽध्याय:

—: नासकेत उवाच :—

जिस जिस देवत कूँ कोइ धावै । ताके लोक माँहि वह जावै ॥
ठाकुर[१] का कोइ भक्ता लसै । वाके लोक माँहि जा बसै ॥
करै विनोद महासुख भारी । कै हो पुरुष और कै नारी ॥
दिया जिन्हौं दधि दूध मिठाई । भोजन दिये महा सुखदाई ॥
दिया घीव रस सोना रूपा । छाया करी हरी जिन धूपा ॥
मोती माणक गुली[२] कपूरा । दिये दान जिन बस्तर पूरा ॥
बहु बिधि दान करैं जो केता । तीरथ बर्त करैं अरु जेता ॥
जाका फल मन में नहिं धरैं । सब ठाकुर कूँ अरपन करैं ॥
दान करैं हरि के हित बोवैं । सो बैकुण्ठ परापति होवैं ॥
तातें अपनो भला करीजै । धर्म पंथ में सदा रहीजै ॥
गुरू ब्राह्मण कूँ जो मानै । जो गृहस्थ कूँ बेद बखानै ॥
जो गृहस्थ के साधू आवै । देखत उठकै सीस नवावै ॥
आदर आसन दे बैठारै । मुख सूँ मीठे बचन उचारै ॥
जथाशक्ति भोजन करवावे । कंद मूल जैसा घर पावै ॥
जिन साधों का सेवन चीन्हा । देवत पित्तर पूजन कीन्हा ॥
साधु समान जगत के माहीं । और धरम कोइ दीखै नाहीं ॥
जिनकी अस्तुति राम बखानी । वेद पुराणन में हो जानी ॥

दो० एक समय धरमराय सब, लीने दूत बुलाय ।

१ श्री भगवान २ खोपरा का गोला ।

कहा कि तिरलोकी बिषै, हरिजन हैं अधिकाय ॥१॥
एक बात यह जाने रहियो । मेरा कहा जो नीकै लहियो ॥
साधुरूप कूँ ऐसे जानो । हरि की देह मिले पहिचानो ॥
वे तो हैं परमेश्वर प्यारे । रहैं राम का बाना धारे ॥
जिनके दरशन पातक नासैं । जनम मरन की छूटैं गासैं ॥
किरपा कर निज भेद बतावैं । चौथे पद आनन्द दरसावैं ॥
ऐसे साधुन कूँ कहिं देखो । हरि सम जिनकूँ जान बिसेखो ॥
साधु बसैं जहाँ तुम मत जइयो । उनके सेवक कूँ मत गहियो ॥
और साधु जाँ जिस घर माहीं । ह्वाँ भी तुम कूँ जाना नाहीं ॥
दो० साधुन की सेवा करैं, अरु चरणामृत लेह ।
तिनके भी मत जाइयो, जिनसे उनका नेह ॥२॥
और गिरस्ती ठाकुर सेवैं । माला फेर नाम हरि लेवैं ॥
राखैं बरत जागरन करैं । संध्या समै आरती सरैं ॥
भोग लगा कर भोजन खावैं । और सन्तों को सीस नवावैं ॥
जिनके घर तुम कभी न जावो । अपनी सूरत नाहिं दिखावो ॥
दो० परमेश्वर के पारषद, उनकूँ लेने जाहिं ।
तुम तो भूल न जाइयो, याद रखो मन माहिं ॥३॥
विष्णुभक्ति परभाव कूँ, अरु साधन की बात ।
चित्रगुप्त भी ना लखैं, न्याव नहीं उन हाथ ॥४॥
अरु इक नदी स्वर्ग के माहीं । नाम पुहपका अधिक सुहाई ॥
सिध गंध्रव ता निकट बिराजैं । देवत अरु धर्मातम राजैं ॥
पुण्य बढ़त है न्हाने सेती । तामें है सोने की रेती ॥

शंख पद्म ता माँहि भरे ही । पुहुप भरे जहाँ वृक्ष खरे ही ॥
दूध सुधा सा जल है ताकै । ढेर मणी का कूल जु वाकै ॥
सूरज किरणों से अति दमकैं । चन्द चाँदनी सों वे चमकैं ॥
दो० वाके तट इक बाग है, सुख का दैन सुथान ।
पवन सुगन्धी लिये जहाँ, बहत रहत सामान[१] ॥५॥
देखे तहाँ बिलास ही करते । बहुत भाँति कर सुख ही धरते ॥
भूख प्यास जाड़ा नहिं गर्मी । सदा निरोग रहैं वहाँ धरमी ॥
बूढ़ा बाला ज्वान न दरसै । दुख कलेश ह्याँ कछू न परसै ॥
कष्ट तपस्या जो जग करई । भय अरु दुख वह कहूँ न भरई ॥
करैं किलोल हरष सुख पावैं । चरणदास जो स्वर्ग ही जावैं ॥
अरु पतिवर्ता फल बहु भोगे । संग पुरुष के जोगा जोगे ॥
इच्छा करत भोग जो आवै । कहाँ लग कहूँ बहुत सुख पावै ॥
पतिव्रता बहु नैंन निहारी । शुभ कर्मों के करने वारी ॥
अरु जो हैं विभिचारिन नारी । उन पर विपता देखी भारी ॥
जिनहूँ की मैं कहूँ सुनाई । दुराचारिनी पति दुखदाई ॥
दो० खोटा चित खोटे करम, पुरुष पराये साथ ।
चौरन जारन हैं घनी, जिनकी सुनो जो बात ॥६॥
कलह सुहावै अति कंकाली । मैले मन की अति जंजाली ॥
अपने पति कूँ दोष लगावैं । आन पुरुष सों चित्त मिलावैं ॥
जलती रहैं हिये के माहीं । या जग में जस नेकहु नाहीं ॥
जब वह मरै पकड़ जम ले जाँ । उनकूँ देंहि नरक दारुण माँ ॥

१ समान-मंद ।

चौरासी वर्ष क्रोड जु ताहीं। ह्वाँसूँ तिन्हैं निकासें नाहीं ॥
अष्ट धातु के पुरुष बनाये। पावक सम वै अधिक तपाये ॥
जम कहै इनके संग मिलो ही। जार तुम्हारे गलै लगो ही ॥
मार मार कै ही लिपटावैं। जलते त्राहि कहैं दुख पावैं ॥
अरु जो पापी नर ह्वाँ जावैं। जम आज्ञा वहु पीड़ा पावैं ॥
अरु जम यों कहैं पापी लोगो। खोटे कर्म किये अब भोगो ॥
रे मूरख ऐसा तन पाया। सो तुम पापहि माँहि गँवाया ॥
एक जनम के सुख के काजा। एक कल्प भुगतौ नर्क साजा ॥

दो० बहुत दिनों तन ना रहै, जानत हैं सब कोय।
पाप गाँठ बाँधैं घने, ये अपराधी लोय ॥७॥

कलह लड़ाई करत हैं, औरन कूँ दुख देत।
ह्वाँ भी वे दुख पावई, नरक माँहि दुख लेत ॥८॥
पापी जीवन कूँ कहैं, किंकर मारहि मार।
करम भौम दुर्लभ महा, जनम न बारंबार ॥९॥
बोये ना शुभ करम ही, अब लुनते सुख भोग।
तैं कीने खोटे करम, बड़ा लगाया रोग ॥१०॥

इति श्री नासकेतोपाख्याने विष्णु भक्ति प्रभाव वर्णनो नाम
पंचदशोऽध्यायः ॥१५॥



अथ षोड़शोऽध्यायः

—: नासकेत उवाच :—

स्वर्ग लोक इक और अनूठा । सो वह मृत्युलोक में डीठा ॥
वह भी बड़भागन सूँ पावै । हरि किरपा पुन्य से बन आवै ॥

दो० अचरज मनुषा देह कूँ, स्वर्ग लोक ही जान ।
तामें आये होत है, परमेश्वर पहिचान ॥१॥

ऐसा स्वर्ग लोक नहिं दूजा । तामें आकै सब कुछ सूझा ॥
तामें भोगै भोग अपारा । तामें दीखै अति गुलजारा ॥
मूरख याका भेद न पाया । तामें सब ब्रह्माण्ड समाया ॥
तामें पावै ब्रह्म विचारै । तामें आकै तत्त्व निहारै ॥
जाके दीखैं दस दरवाजे । तामें अनहद बाजे बाजें ॥
करम धरम बहुतै तप कीना । ताते हरि ने नर तन दीना ॥
ऐसा पाया स्वर्ग गँवावैं । कलप कलप बहुतै पछतावैं ॥
जो कोई ह्याँ सूँ गिर जावै । मनुषा देह बहुरि नहिं पावै ॥

दो० मनुषा देह अनूप की, कही चरनही दास ।
और बात अब कहत हूँ, लहै स्वर्ग में बास ॥२॥
नारी जनक विदेह की, जाका बहुत विचार ।
सूक्षम करि वर्णन करूँ, ताकूँ हिय में धार ॥३॥
तन तजकै स्वर्गहि गई, मुँद गये जमपुर द्वार ।
जो कोइ मूये ता दिना, सबकूँ लेगई लार ॥४॥
आगे पीछे भोर लौं, और साँझ लग जान ।

सबै जीव सुरपुर गये, यह तू निहचै मान ॥५॥
सुनों ऋषीश्वर कहत हूँ, बड़ा अचंभा जोर।
सभा धरमहीराय की, मैं भी था वह ठौर ॥६॥
बैठक धर्महि राय की, तामें सभा सुजान।
जहाँ ऋषि बैठे गुण भरे, तिनकूँ निर्मल ज्ञान ॥७॥
धरमराय बैठा दिपै, ज्यों तारों में चन्द।
जहाँ ब्रह्मासुत आइया, नारद सुख का कन्द ॥८॥

बारह रवि सम तेज उसी का। धरमराय किया भाव[१] जिसी का ॥
धरमराय लखि उठिकै धाया। करि प्रणाम आसन बैठाया ॥
अरघ पाद करि पूजन कीया। हाथजोड़ बोलन फिर लीया ॥
हे ब्रह्मासुत हे ऋषिराये। हे बुधिवान भले तुम आये ॥
आज सुफल भया जनम हमारा। भगवत किरपा भई अपारा ॥
तुमसे ऋषि का दरशन पाया। बड़े भाग जागे सुख छाया ॥
यह सुन नारद मुनिजी बोले। बचन प्रीति के मुख सों खोले ॥

—: नारद उवाच :—

मोकूँ तुम दरशन की इच्छा। अरु कछु पूछन आयो सिच्छा ॥

दो० तुम सब लायक जोग हो, हे राजा धर्मराय।
धरम कहा अधरम कहा, मोकूँ देहु बताय ॥९॥

॥ सोरठा ॥

और कहो तुम मोहि, आश्रम चारौं के धरम।
सबै ज्ञान है तोहि, यह मेटो मेरो भरम ॥

१ पूजन।

—: नासकेत उवाच :—

दो० यों नारदजी कहत थे, जम सेती यह बात ।
इतने ही में दीखिया, बहुत बिमान जु आत ॥१०॥
अरु बाजे बहु बाजत आवैं । करती नृत्य अप्सरा धावैं ॥
मुरली शंख पखावज भेरा । हाथी घोड़े शब्द घनेरा ॥
ऐरावत पर इन्दर राजा । ह्वाँई था लीये सब साजा ॥
उसही समैं वायु की नाईं । लखि जमराज छिपा घर माहीं ॥
मुनों समेत तेजस्वी राजा । और दूत भय सूँ गये भाजा ॥
अरु उसके गण भी कहीं भागे । जो कोइ रहे सो छिपने लागे ॥
मोकूँ बड़ा अचंभा भया । खड़ा होय कर देखत रहा ॥
वाही समैं जु रथ ह्वाँ आये । मानों पुंज अग्नि के धाये ॥
उनसूँ उड़ैं पतंगे ऐसे । छूटैं तारे नभ में जैसे ॥
ऐसा ठाठ वहाँ कर गया । धरमराय फिर अथिर[1] भया ॥
दो० आ बैठा भयभीत सा, डरता सा मन माँहि ।
पीछे से देखन लगो, तेज धरे वे जाँहि ॥११॥

—: नारद उवाच :—

कौतुक[2] विष्णु समान ही, ऐसे हो महाराज ।
यक्ष राक्षस के भूप तुम, तीन लोक तो[3] राज ॥१२॥
बड़ा अचंभा मो भया, डर भागे किस काज ।
वायु वेग ज्यों उठ गये, कारन कहिए आज ॥१३॥
फिर बहुरे[4] तुम आपही, आसन बैठे आय ।

१ स्थिर नहीं रहे २ वैभव ३ तेरा ४ पधारे ।

साँच कहो संक्षेप से, मोकूँ देहु सुनाय ॥१४॥

—: यम उवाच :—

हे मुनि महा जु श्रेष्ठ हो, कहूँ सु तुम सुन लेह ।
छिपी बात है एक यह, सावधान चित देह ॥१५॥
पुन्य विचार संपूरन तामें । सुनो प्रीति सों कहूँ कथा में ॥
हे मुनि मृत्यु लोक के माँहीं । श्रीमान महाराजा ह्वाँहीं ॥
साँच बचन का बोलन वारा । जिसका नाम जनक उजियारा ॥
अश्वमेध जग का कर्त्ता जानों । सत्य धर्म में डिढ पहिचानों ॥
छिमा दया अरु शील सहित है । हरि की सेवा करत रहत है ॥
ज्ञानवन्त शीतल सुखदाई । क्रोध लोभ बिन रहत सदाई ॥
वेद अर्थ का जानन हारा । नीति धरम का है रखवारा ॥
अपनी परजा कूँ सुख देवै । एक एक की सुधि ही लेवै ॥
दो० जैसे माली बाग की, सुध कूँ भूलै नाहिं ।
ऐसे अपनी सृष्टि कूँ, राखै रक्ष्या माहिं ॥१६॥
दूधभरी गऊ दान करत है । रंकन का वहु दुःख हरत है ॥
खेती सहित भूमि का दाना । विप्रन कूँ देकर सनमाना ॥
बड़ी उमर को परजा सारी । नीति धर्म सब करै सँभारी ॥
ऐसा महाराजा अनुरागी । जाका नाँव जनक वड़भागी ॥
जाकी नारि सतवंती नामा । जिसके भये संपूरन कामा ॥
सभी लक्षणों सहित बिराजै । सब धर्मों कूँ लीयें राजै ॥
पतिवर्ता अरु पति की प्यारी । सदा पिया की आज्ञाकारी ॥
भरता ही की भक्ति करेवा । भरता ही जिसका है देवा ॥

दो० स्वामी के दुख से दुखी, स्वामी के सुख सोय।
स्वामी के रंग में रंगी, और नेह सब खोय ॥१७॥
जब भरता के दरशन करै। पिया की अस्तुति कर मन भरै॥
भरता क्रोध करै जब वा पै। मीठे बचन कहै वह ता पै॥
भरता अरु सब कुटुँब जिमावै। पाछै बचा आपहूं खावै॥
ऐसे और बहुत गुनवंती। तिरियन में अधिकी सतवंती॥
पतिवर्ता मैं जान बड़ी ही। जाती स्वर्ग विमान चढ़ी ही॥
इन्दर सहित देव बहु साथा। सभी नवावैं जाकूँ माथा॥
सभी विमान संग यों जावैं। झमझमात करते ही आवैं॥
बाजे बजत बहुत परकारा। गंध्रव गावन राग विचारा॥
दो० चाहै जा अमरावती, चाहै जा ब्रह्मलोक।
चाहै जावै शिवपुरी, किये पुण्य के थोक ॥१८॥
आनन्द भरता सहित जु पावै। चढ़ी विमानों ऊपर जावैं॥
वाका तेज अचानक आया। हो भयभीत भाज मैं गया॥
घर में गया छिपा पहिचानौ। दूत भजे सो भी तुम जानौ॥
बातों ही के करने माँहीं। दूत गए सो आये ह्वाँहीं॥
सुनके नारद वहु हुलसाया। पतिवर्ता का उत्तर पाया॥
अरु फिर नारद पूछन लागे। सूरज पुत्तर[1] सुनो सुभागे॥
भानु तेज सा तन है तेरा। ताये सोने का सा हेरा॥
देह तुम्हारी गौरी सुहनी। मुख साँवरा जु कारन कौनी॥
याका भी मोहिं उत्तर दीजे। कहो भेद अरु किरपा कीजे॥

१. सूर्य के पुत्र धर्मराजजी।

धरमराय बोले मुसकाई । छिपी बात यह है ऋषिराई ॥
मेरे ही हिरदै में रही । अब लग काहू से नहिं कही ॥
ब्रह्मासुत अब तोसूँ भाखूँ । याका भेद कछू नहिं राखूँ ॥
जिन मनुषौं तप दान किया है । निहचै हरि का नाम लिया है ॥
दो० अरु इन्द्री मन वश किया, कियो योग ही ध्यान ।
हरि गुण गाये भक्ति करि, आराधे भगवान ॥१९॥
गुरु के भक्त साधु सँग कीन्हा । हरिजन सेवन का व्रत लीन्हा ॥
क्षमा शील अरु दया बिचारी । सतवादी भये नर क्या नारी ॥
तीरथ करके फल नहिं चाहा । हरि की भक्ति करन का लाहा ॥
दुख सुख एक बराबर जानैं । सत संतोष सदा हिये आनैं ॥
पाँच यज्ञ कर हरि कू अरपैं । फल नहिं चाहैं आप न थरपैं ॥
कौन कौन यज्ञ सो बतलाऊँ । जुदे जुदे कर सब दिखलाऊँ ॥
मावस अरु संक्रायत जानों । व्यतीपात द्वादशी मानों ॥
और पाँचवें पूरनवासी । देवें दान रहैं निरवासी ॥
अरु पँच अगनी तपैं निरासा । तप ही की पूँजी जिन पासा ॥
दो० प्रेम भक्ति निहकाम जो, करैं अनन्य ही भाय ।
तन मन हरि के ध्यान में, राखैं चित्त लगाय ॥२०॥
ऐसे साधु संत जो आवैं । पुरी पास हो आगे जावैं ॥
तिनकूँ देखूँ नयन निहारा । जिनके तेज श्याम मुख म्हारा ॥
पहिरे रहूँ कवच तन माहीं । तासूँ आँच लगत है नाहीं ॥
नारद यह सुन निहचै कीजे । यही बात हिरदै धर लीजे ॥
धरमराय अरु नारद मुनी । दोनों की हम चित दे सुनी ॥

स्वरग नरक की सब ही गाथा। तुमसों कही खोल ये बाता ॥
देखी नासकेत नहिं राखी। नैन निहारी सगरी भाखी ॥
इति श्री नासकेतोपाख्याने यम नारद संवादो नाम षोडशोऽध्यायः॥१६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

—:नासकेत उवाच :—

दो० और बात इक जगत में, है परसिद्ध लहूँ।
देखी अपने नैंन ही, सो भी सुनो कहूँ ॥१॥
जो पापी जीवों किये, पिछले करम अघाय।
जनम पाय या जगत में, सोई भुगतैं आय ॥२॥

हत गउवाँ पातक कियो भारी। बिष दे मनुष मारिहू डारी ॥
अपने गुरु के घर के माहीं। देखें खोटी दिष्ट बुराई ॥
सो निषिद्ध काया धर आवैं। ह्याँ चंडाल जौन ही पावैं ॥
मारैं राह[1] झूँठ बहु बोलें। सो रोगी हो जग में डोलें ॥
जो सोना जग माँहि चुरावैं। जनम पाय कुष्ठी हो जावैं ॥
जो मदिरा पी भये मतवाले। जिनके दाँत हुये नख काले ॥
ब्राह्मण पुस्तक पढ़ि न विचारा। पावै जनम नाग ही कारा ॥
और जिन पाप जान कर कीन्हा। वाहू जनम सर्प का लीन्हा ॥

दो० जो कन्या कूँ हनत है, कै बाहिर कै गेह।
जनम पाय है जगत में, होय गधे की देह ॥३॥

[1] राहगीरों को।

विप्पर भिष्टल माँस अहारी । देत दान जिनकूँ ग्रहचारी ॥
दोनों गीदड़ को तन पावैं । नासकेत यह खोल दिखावैं ॥
जो नर परतिरिया कूँ ताकै । पावै जनम सुवर को आकै ॥
जो नारी पर पुरुष लुभानी । सो वे सूरी होती जानी ॥
अरु जो दान करत कोइ रोकै । पीठ लदै वह घोड़ा होकै ॥
झूठा कर ब्राह्मण कूँ देवै । सो तो जनम बाज का लेवै ॥
जो कोइ धरी धरोहर नाटै । अरु पक्षी के पर जो काटै ॥
सो विष्टाके कीड़े जानों । उनको पापी अधिक पिछानों ॥
काहू के जो बसन चुरावैं । सो वे नर धोबी हो आवैं ॥
और जिन मोती रतन चुराया । अपना खाविंद मार गँवाया ॥
सो होवें पत्थर के कीड़ा । निहचै पावैं किरम शरीरा ॥
दो० सब बिधि देवे जोग हो, नहीं देत वे दान ।
मनैं करै जो और दे, बागल[1] हो जग आन ॥४॥
जो कुदिष्ट आँखन सूँ देखै । अंधे काने होत विसेखै ॥
झूँठा वाद विवाद बढ़ावै । सो कछुवे की काया पावै ॥
जो कोइ पर का दरब चुरावै । सो तो जन्म इल्ल[2] हो आवै ॥
इल्ल देह तज बन्दर होवै । जनम अकारथ निहचै खोवै ॥
जो कोइ बेटी होती मारै । सो गिरगिट की काया धारै ॥
जो काहू का सूत मुसावै[3] । होय नहारू[4] वहु दुख पावैं ॥
गुली कपूर कपास चुरावै । सो मकड़ी की देही पावै ॥

१ चिमगादड़ २ चील ३ चोरी करना ४ पैर का फोड़ा जिसमें डोरे के समान जानवर होता है ।

जो काहू की चौरै पनही । जनम लेत चकचूँदर तन ही ॥
दो० जिन काहू के फल चुरा, मानी नाहीं संक ।
ते नर हाथी होय कर, सिर में खावैं अंक[1] ॥५॥
गुरू ब्राह्मण का लिया, जानैं अंस चुराय ।
काला होवै सरप ही, मारूदेश[2] में जाय ॥६॥
विप्र साध पैरों जिन मारे । जनमत पिंगल[3] भये बिचारे ॥
जो ब्राह्मण कूँ मदिरा प्यावै । कूकर जौन सोई हो आवै ॥
जो काहू का अन्न चुरावै । होवे बहिरा सुना न जावै ॥
काहू से कीन्ही दुष्टाई । वे तो मृग होवैं बन जाई ॥
आप गुरू हो गुरू न कीन्हा । सो बिलाव होता हम चीन्हा ॥
वृक्ष काट जो फूल चुरावैं । जौन पपीहा की वे पावैं ॥
नितप्रति क्रोध नहीं हरषावैं । सो वे जौन न्योल[4] हो धावैं ॥
जो काहू की निन्दा करैं । जौन कोकिला की वे धरैं ॥
दो० हरि के भोग लगे बिना, खाय रसोई कोय ।
चरनदास यों कहत है, जौन काग की होय ॥७॥
देकर दान बहुरि पछितावैं । सो तो जौन भेड़ की पावैं ॥
भली वस्तु छिपकर जो खावैं । कुटुम्ब मित्रको नाहिं दिखावैं ॥
सो होवैं बगुले की देही । कपटरूप धारत हैं वेही ॥
जो अनहोती लड़ैं लड़ाई । सो जंगल मक्खी हो जाई ॥
जिन सेवा पति की नहिं रोपी । सो तिरिया तन धरै जलोकी[5] ॥
जिन सतगुरु की वस्तु चुराई । अजगर प्रेत होत गिरि माहीं ॥

१ अंकुश २ रेगिस्तान ६ पाँगला ४ नेवला ५ जौंक ।

राखैं कपट शीस बहु नावैं । सो पापी चीता हो आवैं ॥
जान सीख गुरु सूँ फिर जावैं । सो शरीर कोढ़ी को पावैं ॥
दो० खोटे कर्मन सूँ सबै, चौरासी में जाहिं ।
कहाँ लौं गिनती मैं करूँ, समझ देख मन माहिं ॥८॥

इति श्री नासकेतोपाख्याने कर्मानुसार योनि प्राप्ति वर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

—: नासकेत उवाच :—

जिन मनुषों शंकर नहिं माना । ब्रह्मा का पूजन नहिं ठाना ॥
विष्णु भक्ति में मन नहिं दीन्हा । गुरु सेवा का नेम न लीन्हा ॥
साधों की सेवा नहिं जानी । तीरथ किये न परब पिछानी ॥
गुरु का कबहूँ नाम न लीया । कबहूँ पापी होम न कीया ॥
परमेश्वर का जप नहिं साधा । योग जुगत नाहीं अराधा ॥
पाँचों इन्द्री बस नहिं कीन्हीं । भली वस्तु काहू नहिं दीन्हीं ॥
कथा कीरतन में नहिं गया । हरि सों बेमुख दुखी भया ॥
जिन नर ऐसी चाल बिसारी । सो डूबत हैं नरक मँझारी ॥
दो० जिन पूजे हैं देवता, होम यज्ञ कर दान ।
नासकेत देखी कहै, स्वर्ग लहैं वह जान ॥१॥
धरमराय जब पकड़ बुलावै । पाप पुण्य का न्याव चुकावै ॥
पापी पठवै नरक मँझारी । पुण्यी पठवै स्वर्ग मँझारी ॥
पाप पुण्य क्षीण हो जावै । फिर वह मृत्युलोक में आवै ॥

पापी देह निषद[१] जो पावै । पुण्यी मनुष होय हुलसावै ॥
धनवन्ते उत्तम घर जनमैं । भले भले लक्षण आवैं तिनमें ॥
अरु जो चौरासी सूँ कढ़ैं । मनुष देह धर ऊँचे चढ़ैं ॥
खोटे लक्षण तिनके माहीं । चरनदास कहै निहचै आई ॥
जितके जीव जहाँईं जाईं । यह मत वेद पुराणन गाईं ॥
साधु संगत कोइ उतरै पारा । और चौरासी जाहि मँझारा ॥
मुनी ऋषीश्वर रस में पागे । धन्य धन्य जब कहने लागे ॥
अस्तुति करि मन में हरषाये । अपने अपने अस्थल आये ॥

दो० नासकेत्त की यह कथा, संस्कृत के माँहि ।
चरनदास ने सो करी, उक्ति आपनी नाँहि ॥२॥
पढ़ा लिखा मैं कुछ नहीं, सतगुरु दीन्हों ज्ञान ।
रणजीता यों कहत है, ताही की पहिचान ॥३॥
कथा जु अधिक सुहावनी, सुनकर उपजै चाव ।
दया धरम हिए आ बसै, भाजैं सबै कुभाव ॥४॥
सुनकर जो रहनी रहै, मन माहीं गहि लेह ।
पाप निकट आवैं नहीं, जनम नाँहि दुख देह ॥५॥
कथा सुनैं चितवन करै, समझ धरै मन माँहि ।
पवन नरक की ना लगै, पातक सबहिं नसाँहि ॥६॥
सुन कर रहनी ना रहै, चलै न याकी चाल ।
चरनदास यों कहत है, ताहि नरक तत्काल ॥७॥
सुनकर मन लावै नहीं, तामें चित नहिं दै ।

१ निषिद्ध ।

जीवत भिष्टल ही रहै, मुये नरक का भै ॥ ८ ॥
जनमेजय की साख ही, कहूँ सुनों चित लाय ।
कुष्ठ[1] अठारह ही हुते, सुनकर गये नसाय ॥ ९ ॥
नासकेत ऐसी कथा, जैसा धरम जहाज ।
जनमेजय तापर चढ़ा, कुष्ठ गये सब भाज ॥१०॥
खेवटिया जहाँ ब्यास से, बचन वादहीवान[2] ।
जगत सिन्धु सम जानिए, धरम जहाज पिछान ॥११॥
यामें जो कोई चढ़ै, सोई उतरै पार ।
रहि जावै अभिमान सूँ, सो डूबै मँझधार ॥१२॥
सतगुरु बिन डूबै सभी, रामभक्ति नहिं जान ।
सतसंगत आवै नही, करके बहु अभिमान ॥१३॥
नासकेत की कथा कूँ, कहै सुनै चित लाय ।
पाप तजै अरु पुन्य करै, बसै स्वर्ग वह जाय ॥१४॥
शुकदेव के परताप सूँ, कह्यो नासहीकेत ।
पाप पुण्य के भेद कूँ, समझन कारण हेत ॥१५॥

इति श्री श्यामचरणदासजी कृत नासकेतोपाख्याने शुभाशुभनिर्णय-वर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

१ कोढ़ २ नाव चलाने का कपड़े का पाल ।

आरती श्री भक्तिसागर जी की

आरती ग्रन्थ भक्ति सागर की,
नित ही हुलस सकल जन कीजे।
पूरन प्रेम घृत हित बाती चित,
चौमुख माँहीं जोय सु दीजे॥
ज्ञान प्रकाश वासना नाशें,
घट में तिमिर अविद्या छीजे।
दरशें श्यामाँ श्याम हिये में,
नैंनन निरख रूप रस पीजे॥
पराभक्ति को पाय परम रस,
दंपति भाव माँहि मन भीजे।
युगल ध्यान धुन सहज समाधी,
हरि गुरु कृपा सु पाय पतीजे॥
श्री ठाकुर बलदेव दास गुरु,
सरसमाधुरी सुन गुन लीजे।
भजन प्रताप पहुँच चौथे पद,
अजर अमर हो जुग जुग जीजे॥